# अशोकमल्ल विरचित नृत्याध्याय

वाचस्पति गैरोला

अशोकमल्ल

विरचित

# नृत्याध्याय

अनुवादक

वाचस्पति गैरोला

संवर्तिका प्रकाशन

इलाहाबाद

# नृत्याध्याय

संवर्तिका प्रकाशन
इलाहाबाद

वाचस्पति गैरोला

# अशोकमल्ल विरचित नृत्याध्याय

अशोकमल्ल

विरचित

# नृत्याध्याय

[ भारतीय नाट्यशास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ ]

वाचस्पति गैरोला

प्रकाशक

संवर्तिका प्रकाशन

इलाहाबाद-३

# NRTYADHYAYA

[ A work on Indian Dancing ]

by

ASOKAMALLA

Tr. by

Vachaspati Gairola

*Price Rs.* 250/-

प्रथम संस्करण भारत सरकार की वित्तीय सहायता से मुद्रित

संवर्तिका प्रकाशन
३३/६, करेलाबाग कॉलोनी, इलाहाबाद द्वारा
प्रकाशित

प्रथम संस्करण : १९६६
द्वितीय संस्करण ; १९७१

कापीराइट :
वाचस्पति गैरोला

मूल्य :

आवरण सज्जा : रेखानुकृति
श्री कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव
श्री गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

ब्लाक निर्माता
सरस्वती ब्लाक वर्क्स, इलाहाबाद

मुद्रक
लीडर प्रेस, प्रयाग

श्रद्धेय

डाक्टर के० एन० गैरोला

को

सादर समर्पित

# प्राक्कथन

## अशोकमल्ल और उनका नृत्याध्याय

ग्रन्थ के अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध होता है कि अशोकमल्ल एक राजा था। **नृत्याध्याय** के कतिपय स्थलों पर उसने स्वयं ही अपने नाम का उल्लेख किया है ( यथा ५६४, ९४५, १०१८, १०६४, १०७७ और १२७२ आदि )। अपने लिए उसने अनेक प्रकार के विशेषणों का प्रयोग किया है, जिनके आधार पर उसका राजा होना सिद्ध होता है। स्वयं को उसने **अशोकेन पृथ्वीन्द्रेण** (४६), **अशोकमल्लेन भूभुजा** ( ८०, १०७, १८४, ३३९, ३९९ तथा १५९७ ), **अशोकमल्लो नृपाग्रणी** (२४१, ५४५, ८८५ तथा १५१९ आदि) और **नृपाशोकमल्लेन** (१२९४, १३२७ एवं १४८९ आदि) राजपदवाच्य विशेषणों से अभिहित किया है। राजा होने के साथ ही उसने अपने को **धीमान्** ( ४६, ५२६ ) और **विदुषां चरः** ( ४२४) भी बताया है। अपने लिए उसने विशेष सम्मानजनक पदवियों एवं गौरवशाली पर्यायों का भी उल्लेख किया है, जो कि ६९५, ७०७, ९७३, १०८८, १२०८ और १२१२ आदि श्लोकों में दृष्टव्य हैं।

परिचयात्मक दृष्टि से अशोकमल्ल के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। **नृत्याध्याय** के कतिपय स्थलों से केवल इतना ज्ञात होता है कि अशोकमल्ल के पिता का नाम वीरसिंह था। वीरसिंह भी राजपद पर आसीन हुआ, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु अशोकमल्ल द्वारा अपने लिए प्रयुक्त **वीरसिंहसुतः** ( ३३८, ४०१ ४६५ ), **वीरसिंहसूनुना** ( ३९८, ४८६, १०१३), **वीरसिंहात्मजः** (८८९, १०४१), **वीरसिंहजः** (९१३, १०४४, १३०६) और **वीरसिंहसुनन्दनः** (१५३७) आदि उल्लेखों से स्पष्ट है कि उसके पिता का नाम वीरसिंह था।

अशोकमल्ल कहाँ का राजा था और उसका स्थितिकाल क्या था, इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है; किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ में जिन आचार्यों का उल्लेख किया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे १४वीं, १५वीं शती ई० के आस-पास हुए। ऐसा ज्ञात होता है कि वे क्षत्रिय वंशोद्भव थे और दक्षिण-मध्य भारत के निवासी। नाट्य-संगीत के वे पारंगत विद्वान् थे और अन्य कलाओं में भी निष्णात थे। विद्वान् होने के साथ ही वे विद्वत्प्रिय भी थे।

उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति **नृत्याध्याय** के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अपनी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा अपने मूल रूप में वह कुछ भिन्न थी। जिस रूप में उसका एकमात्र हस्तलेख उपलब्ध हुआ है, उसमें निश्चित ही उसके लिपिकार की स्वबुद्धि का भी आँशिक समावेश देखने को मिलता है। आदि से अन्त तक उसको एक ही गति से लिपिबद्ध किया गया है और बीच-बीच में उसके अनेक स्थल स्खलित तथा अशुद्ध हो गये हैं। मूल हस्तलेख के लिपिकरण की इस अवैज्ञानिकता, अज्ञता एवं असावधानी के कारण अनेक स्थल

अत्यन्त अस्पष्ट भी हो गये हैं। प्रस्तुत संस्करण में इन त्रुटियों को परिमार्जित करने का यथा सम्भव प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वह नाट्यशास्त्र-विषयक किसी विशाल ग्रन्थ का एक अंश है; क्योंकि उसके **नृत्याध्याय** नाम से ही ज्ञात होता है कि उसमें नृत्य-विषयक अंग-उपांगों का ही समावेश है। यदि यह उपलब्ध रूप किसी बृहद् ग्रन्थ का एक अध्याय या अंश मात्र है तो निश्चित ही अपने मूल रूप में वह आचार्य भरत के **नाट्यशास्त्र** से भी विशाल रहा होगा।

**नृत्याध्याय** की उपलब्ध सामग्री के आधार पर उसे पन्द्रह प्रकरणों में विभाजित किया गया है। अधिकतर प्रकरणों का उसमें उल्लेख भी हुआ है; किन्तु जिनका उल्लेख नहीं हुआ है, विषय-सामग्री के आधार पर उनको पृथक् कर उनका नामोल्लेख कर दिया गया है। इसी प्रकार प्रस्तुत संस्करण में विभिन्न प्रकरणों की सुव्यवस्था के साथ-साथ उसके शीर्षकों तथा उपशीर्षकों का भी समुचित रीति से यथास्थान निर्धारण किया गया है। गायकवाड़ ओरिएण्टल ग्रन्थमाला के संस्करण में मूल हस्तलेख के आधार पर श्लोक-संख्या का उल्लेख किया गया है; किन्तु उसमें भी अव्यवस्था देखने को मिलती है, जो कि सम्भवतः लिपिकार की त्रुटि हो सकती है। इस अव्यवस्था के निराकरण के लिए प्रस्तुत संस्करण में अनुष्टुप् छन्द के आधार पर साद्यन्त रोमन अंकों की संख्या दे दी गयी है।

अध्येताओं की सुविधा के लिए इस संस्करण में १०८ नृत्तकरणों की रेखाकृतियाँ भी प्रस्तुत की गयी हैं। अभिनय विषय में अभिरुचि रखने वाले अध्येताओं एवं छात्र-छात्राओं को नृत्तकरणों की व्यावहारिक जानकारी देने में इन रेखाकृतियों की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। जहाँ तक पुस्तक की सज्जा एवं कलात्मक अभिरुचि का सम्बन्ध है, उसको प्रत्येक दृष्टि से भव्य तथा आकर्षक बनाने का यथा संभव पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

## पूर्वाचार्य और उनके मतों का उल्लेख

अशोकमल्ल ने अपने ग्रन्थ में नाट्यशास्त्रीय परम्परा के कुछ आचार्यों के नामों का स्पष्ट उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने यत्र-तत्र मुनि (३४४, ३९६, ४१८, ४३०, ८३४, ८६७, ८६८, ८८१, १४२१ तथा १४३९ आदि) या भरत मुनि (५६०, ७०५, ८७५ आदि) के मत का उल्लेख करते हुए उनका नाम उद्धृत किया है। इसी प्रकार दो स्थलों पर तण्डु (७८३) और वायुसूनु (७१४) का उल्लेख किया है। नाट्य-संगीत की परम्परा में आचार्य कोहल का महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। अशोकमल्ल के समक्ष आचार्य कोहल का कोई लक्षण ग्रन्थ विद्यमान था, जिसके आधार पर उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए उनका तीन बार उल्लेख (५१७, ७२२ तथा १०८२) किया है। इसी प्रकार आचार्य कीर्तिधर और आचार्य अभिनवगुप्त का नाम-निर्देश किया गया है। कीर्तिधर के नाम को चार बार (२९३, २९७, ७२९ और १२४१) उद्धृत किया गया है। नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त को अशोकमल्ल ने भट्ट (६०१) तथा भट्टाभिनवगुप्त (९०८) के नाम से उद्धृत किया है।

## प्राक्कथन

अशोकमल्ल ने पूर्वाचार्यों के नाम-निर्देश के अतिरिक्त **नृत्याध्याय** के विभिन्न स्थलों पर विभिन्न रूपों में पूर्ववर्ती विद्वानों एवं आचार्यों के केवल मतों का उल्लेख किया है। इस रूप में उन्होंने **पूर्वाचार्यैः** (१३२), **पूर्वसूरिभिः** (३२५, ३५३, ४५५, ५०१, ५०९, ५२३, ७३१, ७९४ आदि ), **प्राच्यसूरिभिः** (७७८), **प्राक्तनैर्बुधैः** ( ७८०, १३३८ ), **पूर्वसूरयः** (८४३) और **प्राक्तने मते** (१३८६) आदि से प्राचीन नाट्याचार्यों के मतों को उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने **मतः सताम्** ( १, १५० आदि ) या **सतां मतः** (२३, ५४ आदि ) का भी विभिन्न स्थानों पर उल्लेख किया है।

इस दृष्टि से **नृत्याध्याय** में अन्य भी प्रचुर उद्धरण देखने को मिलते है; यथा **बुधैर्योज्यः** (१५), **कथितो बुधैः**(३३, ३९), **बुधैरुक्तानि** (४०), **बुधैः** (७५, २११, २१९, ४१२ ), **बुधाः** ( २५५ ), **धीरैः** (७४, २४१ ), **सुधीः** ( ६२०, ६३१ ), **मनीषिभिः** ( ६२, ७२, ९२, ३८६, ४८४, १०२७), **पण्डितैः** (७९), **पण्डिताः**(२९७), **ज्ञैः**(८३४), **विद्वद्भिः**(८५७), **सद्भिः**( १६३, २३९, ३५४, ४२०), **विचक्षणैः** (८९, ८६०, ९८६, १०६७), **धीमान्**(६१९, ६५८) और **कलाभिज्ञाः**(४३२)आदि प्रसंग अवलोकनीय हैं।

अभिनय के सामान्य सन्दर्भों के अतिरिक्त अशोकमल्ल ने विशेष विधाओं पर तत्तत् विषयों के विशिष्ट आचार्यों के मतों का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए **करणपण्डिताः** (११४७), **करणवेदिभिः** (१३१५), **करणकोविदैः** (१३२६), **कण्ठरेचककोविदैः** (१४२४), **लक्ष्यवेदिभिः** (५१९) और **लक्ष्मलक्ष्यविशारदाः** (५५३, ७३३, ७९२ तथा ८३३ ) आदि स्थल द्रष्टव्य हैं।

इसी प्रकार नृत्त और नृत्य के लक्षण-विनियोगों के सन्दर्भों में अशोकमल्ल ने विभिन्न पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए **नृत्यवित्** (६४८), **नृत्यज्ञैः** (७७५, ११९५), **नृत्यविचक्षणः** (१११५), **नृत्यपण्डितैः** (३७, ६०, ९४, ३६९,३७६, ५३१), **नाट्यवित्** (६४८), **नाट्यज्ञः** (६५०), **नाट्यकोविदैः** (२८१, ४४५, ६८४ ), **नृत्तविचक्षणैः**(४४२, ८१४, १३०३ ), **नृत्तविचक्षणाः** ( १००४, १२४१ ), **नृत्तसुविचक्षणैः** (१०१२), **नृत्तवेदिभिः** ( १०७३, १११४, १२३५, १२८६, १३३५ ), **नृत्तवेदिनः** (१०७६), **नृत्तविशारदैः** (२७५, १२७३, १२७९), **नृत्तमनीषिणः** (१३८३), **नृत्तधीमताम्** (२८६) और **हस्ताभिनयपण्डितैः** (१०६) आदि प्रसंग उद्धरणीय है।

इनके अतिरिक्त **केचित्** (२४१, २७४, ३१०), **केचन** (२८५), **केऽपि** (६०४, ११८१) और **परे** (२७९) आदि के रूप में भी विभिन्न पूर्वाचार्यों के मतों को आधार मानकर उद्धृत किया गया है।

इस सामग्री का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि अशोकमल्ल के समय तक नाट्यशास्त्र और विशेषरूप से नृत्य-अभिनय पर अनेक ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था। इसके अतिरिक्त नाट्य की कुछ पद्धतियाँ ग्रन्थ रूप में निबद्ध न होकर परम्परा द्वारा मौखिक रूप में जीवित थीं। इन लोकजीवित एवं लोकानुगत पद्धतियों का उल्लेख अशोकमल्ल ने स्थान-स्थान पर किया है। शास्त्ररूप में निबद्ध और लोकप्रचलित परम्पराओं का अनुशीलन कर अशोकमल्ल ने **नृत्याध्याय** में सभी प्रकार की सामग्री का समन्वय किया है। इस आधार पर **नृत्याध्याय** न केवल एक सर्वांगीण ग्रन्थ प्रतीत होता है, अपितु यह

भी ज्ञात होता है कि उसकी इस सर्वांगीणता के कारण लोकदृष्टि और शास्त्रदृष्टि, दोनों प्रकार से उसको असाधारण ख्याति प्राप्त हुई।

आभार

महाराज अशोकमल्ल विरचित **नृत्याध्याय** को सर्व प्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदा को है। श्री बी० जे० सन्देसर के प्रधान सम्पादकत्व और सुश्री डॉ० प्रियबाला शाह के सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज संख्या १४१ में १९६३ ई० को प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ की मूल हस्तलिखित प्रति ओरिएण्टल इंस्टिटचूट, बड़ोदा के हस्तलेख-संग्रह में सुरक्षित थी। इस हस्तलेख को महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदा ने अपने संगीत तथा नाटच विषयक ग्रन्थों की सम्पादन-प्रकाशन-योजना में सम्मिलित कर उसका सम्पादन तथा प्रकाशन कराया। संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता में उसका सम्पादन तथा प्रकाशन हुआ।

इस प्रकार यह ग्रन्थ ओरिएण्टल इंस्टिटचूट, बड़ोदा, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदा और संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली, इन तीन संस्थानों से सम्बद्ध है। मुझे यह ज्ञापित करते प्रसन्नता हो रही है कि ओरिएण्टल इंस्टिटयूट, बड़ोदा के निदेशक एवं **नृत्याध्याय** के प्रधान सम्पादक श्री बी० जे० सन्देसर, (B. J. Sandesara), महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदा के रजिस्ट्रार श्री के० ए० अमीन (K. A. Amin) और संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली के सचिव डॉ०सुरेश अवस्थी ने मेरे निवेदन पर इस महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत करने की स्वीकृति प्रदान की। इस औदार्य एवं सहयोग के लिए मैं उक्त तीनों संस्थानों एवं सम्बन्धित विद्वान् महानुभावों के प्रति अपनी सादर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

संस्कृत साहित्य के इस ग्रन्थरत्न का यह सचित्र हिन्दी संस्करण संभवतः प्रकाश में न आया होता, यदि शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा इसके मुद्रण आदि के लिए मुझे आँशिक वित्तीय सहायता प्राप्त न हुई होती। हिन्दी साहित्य में नाटच-विषयक लक्षण ग्रन्थों का प्रायः अभाव ही है। इस दृष्टि से विभिन्न भारतीय भाषाओं के विशिष्ट ग्रन्थों को अनुवाद तथा रूपान्तर द्वारा अन्य भाषाओं में लाने तथा उन्हें सर्व सुलभ बनाने के उद्देश्यसे भारत सरकार ने अपनी विशेष योजना के अन्तर्गत इस ग्रन्थ का हिन्दी संस्करण प्रकाशित कराया है। एतदर्थ भारत सरकार के प्रति मैं अपना सादर आभार प्रकट करता हूँ।

इस ग्रन्थ के निर्माण, मुद्रण तथा सज्जा आदि में मुझे लीडर प्रेस के व्यवस्थापक श्री बालादत्त पाण्डेय और आचार्य तारणीश झा से जो सहयोग प्राप्त हुआ है तदर्थ उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में नाटचकला (Dramaturgy) विषय के अध्ययन के लिए हिन्दी के माध्यम से पाठच-सामग्री का जो अभाव बना हुआ है, मुझे विश्वास है कि इस उपयोगी ग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने से उसकी पूर्ति में सहायता होगी और उसके द्वारा इस विषय के छात्रों तथा अध्येताओं का बहुत-कुछ लाभ होगा। **—वाचस्पति गैरोला**

# विषयानुक्रम

## हस्त प्रकरण एक

*असंयुत हस्त और उनका विनियोग*


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ५. | चतुर हस्त और उसका विनियोग | १-१९ | ५९-६२ |
| ६. | हंसास्य हस्त और उसका विनियोग | २०-३० | ६२-६४ |
| ७. | भ्रमर हस्त और उसका विनियोग | ३१-३३ | ६४-६५ |
| ८. | काँगूल हस्त और उसका विनियोग | ३४-४० | ६५-६६ |
| ९. | ताम्रचूड हस्त और उसका विनियोग | ४१-४४ | ६६-६७ |
| १०. | मुष्टि हस्त और उसका विनियोग | ४५-५२ | ६७-६८ |
| ११. | शिखर हस्त और उसका विनियोग | ५३-६२ | ६८-७० |
| १२. | कपित्थ हस्त और उसका विनियोग | ६३-७१ | ७०-७२ |
| १३. | खटकामुख हस्त और उसका विनियोग | ७२-७९ | ७२-७३ |
| १४. | सूचीमुख हस्त और उसका विनियोग | ८०-१०६ | ७३-७८ |
| १५. | त्रिपताक हस्त और उसका विनियोग | १०७-१३२ | ७८-८३ |
| १६. | कर्तरीमुख हस्त और उसका विनियोग | १३३-१४१ | ८३-८४ |
| १७. | अर्धचन्द्र हस्त और उसका विनियोग | १४२-१४९ | ८४-८५ |
| १८. | अराल हस्त और उसका विनियोग | १५०-१६४ | ८५-८८ |
| १९. | शुकतुण्ड हस्त और उसका विनियोग | १६५-१६८ | ८८-८९ |
| २०. | सन्दंश हस्त और उसका विनियोग | १६९-१८३ | ८९-९१ |
| २१. | मुकुल हस्त और उसका विनियोग | १८४-१९० | ९१-९२ |
| २२. | पद्मकोश हस्त और उसका विनियोग | १९१-१९८ | ९२-९४ |
| २३. | ऊर्णनाभ हस्त और उसका विनियोग | १९९-२०२ | ९४ |
| २४. | अलपल्लव हस्त और उसका विनियोग | २०३-२११ | ९४-९६ |

## संयुत हस्त और उनका विनियोग


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १. | अंजलि हस्त और उसका विनियोग | २१२-२१३ | ९६ |
| २. | कपोत हस्त और उसका विनियोग | २१४-२१९ | ९७-९८ |
| ३. | कर्कट हस्त और उसका विनियोग | २२०-२२६ | ९८-९९ |
| ४. | गजदन्त हस्त और उसका विनियोग | २२७-२३० | ९९ |
| ५. | निषध हस्त और उसका विनियोग | २३१-२३३ | ९९-१०० |
| ६. | पुष्पपुट हस्त और उसका विनियोग | ३३४-२३५ | १०० |
| ७. | खटकावर्धन हस्त और उसका विनियोग | २३६-२३९ | १००-१०१ |
| ८. | उत्संग हस्त और उसका विनियोग | २४०-२४२ | १०१-१०२ |
| ९. | स्वस्तिक हस्त और उसका विनियोग | २४३-२४६ | १०२ |
| १०. | दोला हस्त और उसका विनियोग | २४७-२४८ | १०२-१०३ |
| ११. | अवहित्थ हस्त और उसका विनियोग | २४९-२५० | १०३ |
| १२. | मकरचेहस्त और उसका विनियोग | २५१-२५२ | १०३ |
| १३. | वर्धमान हस्त और उसका विनियोग | २५३-२५५ | १०४ |


## नृत्तहस्त और उनका विनियोग


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | चतुरस्त्र हस्त और उसका विनियोग | २५६ | १०४-१०५ |
| २. | उद्‌वृत्त हस्त और उसका विनियोग | २५७-२६० | १०५ |
| ३. | तलमुख हस्त और उसका विनियोग | २६१ | १०५-१०६ |
| ४. | नितम्ब हस्त और उसका विनियोग | २६२ | १०६ |
| ५. | केशबन्ध हस्त और उसका विनियोग | २६३-२६४ | १०६ |
| ६. | उत्तानवंचित हस्त और उसका विनियोग | २६५-२६६ | १०६ |
| ७. | लताकर हस्त | २६७ | १०७ |
| ८. | करि हस्त | २६८-२६९ | १०७ |
| ९. | रेचित हस्त | २७०-२७१ | १०७- १०८ |
| १०. | अर्धरेचित हस्त | २७२ | १०८ |
| ११. | पल्लव हस्त | २७३-२७५ | १०८ |
| १२. | ललित हस्त | २७६-२७७ | १०८- १०९ |
| १३. | पक्षवंचितक हस्त | २७८ | १०९ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १४. | पक्षप्रद्योतक हस्त | २७९ | १०९ |
| १५. | ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त | २८०-२८१ | १०९ |
| १६. | पार्श्वमण्डलिन् हस्त | २८२-२८३ | ११० |
| १७. | उरोमण्डलिन् हस्त | २८४-२८६ | ११० |
| १८. | उरःपार्श्वार्धमण्डल हस्त | २८७-२८८ | ११० |
| १९. | नलिनी पद्मकोश हस्त | २८९-२९३ | १११ |
| २०. | मुष्टि स्वस्तिक हस्त | २९४-२९७ | १११-११२ |
| २१. | वलित हस्त | २९८-२९९ | ११२ |
| २२. | दण्डपक्ष हस्त | ३००-३०१ | ११२-११३ |
| २३. | गरुड पक्षक हस्त | ३०२ | ११३ |
| २४. | अलपद्म हस्त | ३०३ | ११३ |
| २५. | उल्वण हस्त | ३०४ | ११३ |
| २६. | स्वस्तिक हस्त | ३०५ | ११३ |
| २७. | विप्रकीर्ण हस्त | ३०६ | ११३-११४ |
| २८. | आविद्धवक्र हस्त | ३०७ | ११४ |
| २९. | सूच्यास्य हस्त | ३०८-३१० | ११४ |
| ३०. | अरालखटकामुख हस्त | ३११-३१७ | ११४-११५ |
| *हस्ताभिनय का उपसंहार* | | | |
| | हस्ताभिनय विधान | ३१८-३२६ | ११६-११७ |


## अंग प्रत्यंग प्रकरण / दो


| | | | |
|---|---|---|---|
| *अंगाभिनय और उनका विनियोग* | | | |
| | पाँच प्रकार का वक्षाभिनय | ३२७-३३२ | १२१ |
| | वक्षाभिनय के भेद | ३२७ | १२१ |
| १. | सम और उसका विनियोग | ३२८ | १२१ |
| २. | निर्भुग्न और उसका विनियोग | ३२९ | १२१ |
| ३. | आभुग्न और उसका विनियोग | ३३० | १२१-१२२ |
| ४. | प्रकम्पित और उसका विनियोग | ३३१ | १२२ |
| ५. | उद्वाहित और उसका विनियोग | ३३२ | १२२ |

*पाँच प्रकार का पार्श्वाभिनय*

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| | पार्श्वाभिनय के भेद | | |
| १. | विवर्तित और उसका विनियोग | ३३३ | १२२ |
| २. | अपसृत और उसका विनियोग | ३३४ | १२२ |
| ३. | प्रसारित और उसका विनियोग | ३३५ | १२३ |
| ४. | नत और उसका विनियोग | ३३६ | १२३ |
| ५. | उन्नत और उसका विनियोग | ३३७ | १२३ |

*पाँच प्रकार का कटि अभिनय*

| | | | |
|---|---|---|---|
| | कटि अभिनय के भेद | ३३८ | १२३ |
| १. | कम्पिता और उसका विनियोग | ३३९ | १२३ |
| २. | उद्वाहिता और उसका विनियोग | ३४० | १२३ |
| ३. | छिन्ना और उसका विनियोग | ३४१ | १२४ |
| ४. | विवृत्ता और उसका विनियोग | ३४२ | १२४ |
| ५. | रेचिता और उसका विनियोग | ३४३ | १२४ |

*तेरह प्रकार का पादाभिनय*

| | | | |
|---|---|---|---|
| | पादाभिनय के भेद | ३४४-३४५ | १२४-१२५ |
| १. | सम पाद औरउसका विनियोग | ३४६ | १२५ |
| २. | अञ्चित पाद और उसका विनियोग | ३४७ | १२५ |
| ३. | कुञ्चित पाद और उसका विनियोग | ३४८ | १२५ |
| ४. | सूची पाद और उसका विनियोग | ३४९ | १२५ |
| ५. | अग्रतलसञ्चर पाद और उसका विनियोग | ३५०-३५१ | १२६ |
| ६. | उद्घट्टित पाद और उसका विनियोग | ३५२ | १२६ |
| ७. | त्रोटित पाद और उसका विनियोग | ३५३ | १२६ |
| ८. | घट्टितोत्सेध पाद और उसका विनियोग | ३५४ | १२६ |
| ९. | घट्टित पाद और उसका विनियोग | ३५५ | १२६-१२७ |
| १०. | मर्दित पाद और उसका विनियोग | ३५६ | १२७ |
| ११. | अग्रग पाद और उसका विनियोग | ३५७ | १२७ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १२. | पार्ष्णिग पाद और उसका विनियोग | ३५८ | १२७ |
| १३. | पार्श्वग पाद और उसका विनियोग | ३५९ | १२७ |

*प्रत्यंगाभिनय और उनका विनियोग*

| | | | |
|---|---|---|---|
| | नौ प्रकार का ग्रीवाभिनय | | |
| | ग्रीवा के भेद | ३६० | १२७ |
| १. | समा और उसका विनियोग | ३६१ | १२८ |
| २. | नता और उसका विनियोग | ३६२ | १२८ |
| ३. | उन्नता और उसका विनियोग | ३६३ | १२८ |
| ४. | त्र्यस्रा और उसका विनियोग | ३६४ | १२८ |
| ५. | वलिता और उसका विनियोग | ३६५ | १२८ |
| ६. | कुञ्चिता और उसका विनियोग | ३६६ | १२९ |
| ७. | अञ्चिता और उसका विनियोग | ३६७ | १२९ |
| ८. | निवृत्ता और उसका विनियोग | ३६८ | १२९ |
| ९. | रेचिता और उसका विनियोग | ३६९ | १२९ |

*सोलह प्रकार का बाहु अभिनय*

| | | | |
|---|---|---|---|
| | बाहु के भेद | ३७०-३७१ | १२९-१३० |
| १. | प्रसारित और उसका विनियोग | ३७२ | १३० |
| २. | अधोमुख और उसका विनियोग | ३७३ | १३० |
| ३. | ऊर्ध्वस्थ और उसका विनियोग | ३७४ | १३० |
| ४. | आवेष्टित और उसका विनियोग | ३७५ | १३० |
| ५. | अञ्चित और उसका विनियोग | ३७६ | १३० |
| ६. | स्वस्तिक और उसका विनियोग | ३७७ | १३१ |
| ७. | मण्डलगति और उसका विनियोग | ३७८ | १३१ |
| ८. | तिर्यक् और उसका विनियोग | ३७९ | १३१ |
| ९. | पृष्ठानुसारी और उसका विनियोग | ३८० | १३१ |
| १०. | अपविद्ध और उसका विनियोग | ३८१ | १३१-१३२ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ११. | कुञ्चित और उसका विनियोग | ३८२ | १३२ |
| १२. | सरल और उसका विनियोग | ३८३ | १३२ |
| १३. | नम्र और उसका विनियोग | ३८४ | १३२ |
| १४. | आन्दोलित और उसका विनियोग | ३८५ | १३२ |
| १५. | उत्सारित और उसका विनियोग | ३८६ | १३२-१३३ |
| १६. | अविद्ध और उसका विनियोग | ३८७ | १३३ |
| चार प्रकार का उदराभिनय | | | |
| | उदर के भेद | ३८८ | १३३ |
| १. | क्षाम और उसका विनियोग | ३८९ | १३३ |
| २. | खल्ल और उसका विनियोग | ३९० | १३३ |
| ३. | पूर्ण और उसका विनियोग | ३९१ | १३३ |
| ४. | रिक्तपूर्ण और उसका विनियोग | ३९२ | १३३-१३४ |
| चार प्रकार का पृष्ठाभिनय | | | |
| १. | क्षाम | १९३ | १३४ |
| २. | खल्ल | १९३ | १३४ |
| ३. | पूर्ण | १९३ | १३४ |
| ४. | रिक्त | १९३ | १३४ |
| पाँच प्रकार का ऊरु अभिनय | | | |
| | ऊरु के भेद | ३९४ | १३४ |
| १. | स्तब्ध और उसका विनियोग | ३९४ | १३४ |
| २. | कम्पित और उसका विनियोग | ३९५ | १३४ |
| ३. | वलित और उसका विनियोग | ३९६ | १३४-१३५ |
| ४. | उद्वर्तित और उसका विनियोग | ३९७ | १३५ |
| ५. | निर्वर्तित और उसका विनियोग | ३९८ | १३५ |
| दस प्रकार का जंघाभिनय | | | |
| | जंघा के भेद | ३९९-४०० | १३५ |
| १. | क्षिप्ता और उसका विनियोग | ४०० | १३५ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| २. | नता और उसका विनियोग | ४०१ | १३६ |
| ३. | उद्वाहिता और उसका विनियोग | ४०२ | १३६ |
| ४. | आवर्तिता और उसका विनियोग | ४०३ | १३६ |
| ५. | परिवर्तिता और उसका विनियोग | ४०४ | १३६ |
| ६. | बहिर्गता और उसका विनियोग | ४०५ | १३६ |
| ७. | कम्पिता और उसका विनियोग | ४०६ | १३६ |
| ८. | तिरश्चीना और उसका विनियोग | ४०७ | १३७ |
| ९. | परावृत्ता और उसका विनियोग | ४०८ | १३७ |
| १०. | निःसृता | ४०९ | १३७ |
| सात प्रकार का जानु अभिनय | | | |
| | जानु के भेद | ४१० | १३७ |
| १. | नत और उसका विनियोग | ४११ | १३७ |
| २. | उन्नत और उसका विनियोग | ४११ | १३७ |
| ३. | संहृत और उसका विनियोग | ४१२ | १३८ |
| ४. | विवृत और उसका विनियोग | ४१३ | १३८ |
| ५. | सम और उसका विनियोग | ४१४ | १३८ |
| ६. | अर्धकुञ्चित | ४१५ | १३८ |
| ७. | कुञ्चित और उसका विनियोग | ४१६ | १३८ |
| पाँच प्रकार का मणिबन्ध अभिनय | | | |
| | मणिबन्ध के भेद | ४१७ | १३८-१३९ |
| १. | निकुञ्च और उसका विनियोग | ४१८ | १३९ |
| २. | आकुञ्चित और उसका विनियोग | ४१९ | १३९ |
| ३. | चल और उसका विनियोग | ४२० | १३९ |
| ४. | भ्रमित और उसका विनियोग | ४२१ | १३९ |
| ५. | सम और उसका विनियोग | ४२२ | १३९ |
| | प्रत्यंग भूषणों का निरूपण | ४२३-४२५ | १४० |

## दृष्टि प्रकरण / तीन


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *दृष्टि अभिनय और उनका विनियोग* | | | |
| | रसजा दृष्टि के भेद | ४२६ | १४३ |
| | स्थायी भावजा दृष्टि के भेद | ४२७ | १४३ |
| | संचारी भावजा दृष्टि के भेद | ४२८-४३० | १४३-१४ |
| *आठ प्रकार की रसजा दृष्टियाँ* | | | |
| १. | कान्ता | ४३१-४३२ | १४४ |
| २. | हास्या और उसका विनियोग | ४३३ | १४४ |
| ३. | करुणा और उसका विनियोग | ४३४ | १४४-१४५ |
| ४. | रौद्री और उसका विनियोग | ४३५ | ४४५ |
| ५. | वीरा और उसका विनियोग | ४३६-४३७ | १४५ |
| ६. | भयानका और उसका विनियोग | ४३८ | ४४५ |
| ७. | बीभत्सा और उसका विनियोग | ४३९ | १४५-१४६ |
| ८. | अद्भुता और उसका विनियोग | ४४० | १४६ |
| *आठ प्रकार की स्थायी भावजा दृष्टियाँ* | | | |
| १. | स्निग्धा | ४४१ | १४६ |
| २. | हृष्टा और उसका विनियोग | ४४२ | १४६ |
| ३. | दीना | ४४३ | १४६-१४७ |
| ४. | क्रुद्धा और उसका विनियोग | ४४४ | १४७ |
| ५. | दृप्ता और उसका विनियोग | ४४५ | १४७ |
| ६. | भयान्विता | ४४६ | १४७ |
| ७. | जुगुप्सिता | ४४७ | १४७ |
| ८. | विस्मिता और उसका विनियोग | ४४८ | १४७-१४८ |
| *बीस प्रकार की संचारी भावजा दृष्टियाँ* | | | |
| १. | शून्या और उसका विनियोग | ४४९ | १४८ |
| २. | मलिना और उसका विनियोग | ४५०-४५१ | १४८ |

विषयानुक्रम


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ३. | श्रान्ता और उसका विनियोग | ४५२ | १४८ |
| ४. | लज्जिता और उसका विनियोग | ४५३ | १४९ |
| ५. | ग्लाना और उसका विनियोग | ४५४ | १४९ |
| ६. | शंकिता और उसका विनियोग | ४५५ | १४९ |
| ७. | विषण्णा और उसका विनियोग | ४५६ | १४९ |
| ८. | मुकुला और उसका विनियोग | ४५७ | १४९-१५० |
| ९. | कुञ्चिता और उसका विनियोग | ४५८ | १५० |
| १०. | अभितप्ता और उसका विनियोग | ४५९ | १५० |
| ११. | जिह्वा और उसका विनियोग | ४६० | १५० |
| १२. | ललिता और उसका विनियोग | ४६१ | १५०-१५१ |
| १३. | वितर्किता और उसका विनियोग | ४६२ | १५१ |
| १४. | अर्धमुकुला और उसका विनियोग | ४६३ | १५१ |
| १५. | आकेकरा और उसका विनियोग | ४६४-४६५ | १५१ |
| १६. | विभ्रान्ता और उसका विनियोग | ४६६ | १५१-१५२ |
| १७. | विप्लुता और उसका विनियोग | ४६७ | १५२ |
| १८. | त्रस्ता और उसका विनियोग | ४६८ | १५२ |
| १९. | विकोशा और उसका विनियोग | ४६९ | १५२ |
| २०. | त्रिविधा मदिरा और उसका विनियोग | ४७०-४७२ | १५३ |
| | दृष्टि के अनन्त भेद | ४७३-४७४ | १५३ |
| | *सात प्रकार की भ्रू (भौं) का अभिनय* | | |
| | भ्रू के भेद | ४७५ | १५४ |
| १. | सहजा और उसका विनियोग | ४७५ | १५४ |
| २. | रेचिता और उसका विनियोग | ४७६ | १५४ |
| ३. | उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग | ४७७ | १५४ |
| ४. | कुञ्चिता और उसका विनियोग | ४७८ | १५४-१५५ |
| ५. | पतिता और उसका विनियोग | ४७९ | १५५ |
| ६. | चतुरा और उसका विनियोग | ४८० | १५५ |
| ७. | भ्रुकुटी और उसका विनियोग | ४८१ | १५५ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| नौ प्रकार की पलकों का अभिनय | | | |
| | पलकों के भेद | ४८२ | १५५-१५६ |
| १. | सम और उसका विनियोग | ४८३ | |
| २. | विवर्तित और उसका विनियोग | ४८४ | १५६ |
| ३. | प्रसृत और उसका विनियोग | ४८५ | १५६ |
| ४. | कुञ्चित और उसका विनियोग | ४८६ | १५६ |
| ५. | पिहित और उसका विनियोग | ४८७ | १५६ |
| ६. | स्फुरित और उसका विनियोग | ४८८ | १५७ |
| ७. | उन्मेषित और उसका विनियोग | ४८९ | १५७ |
| ८. | निमेषित और उसका विनियोग | ४८९ | १५७ |
| ९. | वितालित और उसका विनियोग | ४९० | १५७ |
| तारों का निरूपण | | | |
| | तारों के भेद | ४९१ | १५८ |
| | आत्मनिष्ठ ताराकर्म | ४९२ | १५८ |
| १. | प्राकृत | ४९३ | १५८ |
| २. | भ्रमण | ४९४ | १५८ |
| ३. | पात | ४९५ | १५८ |
| ४. | वलन | ४९५ | १५८ |
| ५. | चलन | ४९५ | १५८ |
| ६. | प्रवेशन | ४९५ | १५८ |
| ७. | समुद्वृत | ४९६ | १५८ |
| ८. | निष्क्राम | ४९६ | १५८ |
| ९. | विवर्तन | ४९६ | १५८ |
| | विनियोग | ४९७-४९९ | १५९ |
| | विषयाभिमुख ताराकर्म | ५०० | १५९ |
| १. | सम | ५०१ | १५९ |
| २. | साचि | ५०२ | १५९ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ३. | अनुवृत्त | ५०३ | १५९-१६० |
| ४. | अवलोकित | ५०४ | १६० |
| ५. | विलोकित | ५०५ | १६० |
| ६. | आलोकित | ५०६ | १६० |
| ७. | उल्लोकित | ५०७ | १६० |
| ८. | प्राविलोकित | ५०८ | १६० |
| | विनियोग | ५०९ | १६० |


## उपांग प्रकरण / चार

*उपांगाभिनय और उनका विनियोग*


| | | | |
|---|---|---|---|
| | छह प्रकार का न साभिनय | | |
| १. | स्वाभाविकी और उसका विनियोग | ५१० | १६३ |
| २. | विकृष्टा और उसका विनियोग | ५११ | १६३ |
| ३. | सोच्छ्वासा और उसका विनियोग | ५१२ | १६३ |
| ४. | विकूणिता और उसका विनियोग | ५१३ | १६४ |
| ५. | नता और उसका विनियोग | ५१४ | १६४ |
| ६. | मन्दा और उसका विनियोग | ५१५ | १६४ |


*उन्नीस प्रकार का वायु अभिनय*


| | | | |
|---|---|---|---|
| | वायु के भेद | ५१६-५१८ | १६४-१६५ |
| १. | स्वस्थ और उसका विनियोग | ५१९ | १६५ |
| २. | चल और उसका विनियोग | ५२० | १६५ |
| ३. | विमुक्त और उसका विनियोग | ५२१ | १६५ |
| ४. | प्रवृद्ध और उसका विनियोग | ५२२ | १६५ |
| ५. | उल्लासित और उसका विनियोग | ५२३ | १६५-१६६ |
| ६. | निरस्त और उसका विनियोग | ५२४ | १६६ |
| ७. | स्खलित और उसका विनियोग | ५२५ | १६६ |
| ८. | प्रसृत और उसका विनियोग | ५२६ | १६६ |
| ९. | विस्मित और उसका विनियोग | ५२७ | १६६ |
| १०. | सम | ५२८-५३३ | १६७ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ११. | भ्रान्त | ५२८-५३३ | १६७ |
| १२. | कम्पित | ५२८-५३३ | १६७ |
| १३. | विलीन | ५२८-५३३ | १६७ |
| १४. | आन्दोलित | ५२८-५३३ | १६७ |
| १५. | स्तम्भित | ५२८-५३३ | १६७ |
| १६. | उच्छ्वास | ५२८-५३३ | १६७ |
| १७. | निःश्वास | ५२८-५३३ | १६७ |
| १८. | सूत्कृत | ५२८-५३३ | १६७ |
| १९. | सीत्कृत | ५२८-५३३ | १६७ |
| *दस प्रकार के अधरों का अभिनय* | | | |
| | अधर के भेद | ५३४ | १६७ |
| १ | विर्वातत और उसका विनियोग | ५३५ | १६८ |
| २. | विसृष्टि और उसका विनियोग | ५३६ | १६८ |
| ३. | कम्पित और उसका विनियोग | ५३७ | १६८ |
| ४. | विनिगूहित और उसका विनियोग | ५३८ | १६८ |
| ५. | सन्दष्टक और उसका विनियोग | ५३९ | १६८ |
| ६. | समुद्गक और उसका विनियोग | ५४० | १६८-१६९ |
| ७. | उद्वृत्त और उसका विनियोग | ५४१ | १६९ |
| ८. | विकासी और उसका विनियोग | ५४२ | १६९ |
| ९. | रेचित और उसका विनियोग | ५४३ | १६९ |
| १०. | आयत और उसका विनियोग | ५४४ | १६९ |
| *छह प्राकर का जिह्वा अभिनय* | | | |
| | जिह्वा के भेद | ५४५ | १६९ |
| १. | ऋज्वी और उसका विनियोग | ५४६ | १६९-१७० |
| २. | लोला और उसका विनियोग | ५४७ | १७० |
| ३. | लेहिनी और उसका विनियोग | ५४८ | १७० |
| ४. | वक्रा और उसका विनियोग | ५४९ | १७० |
| ५. | सृक्कानुगा और उसका विनियोग | ५५० | १७० |
| ६. | उन्नता और उसका विनियोग | ५५१ | १७० |

विषयानुक्रम


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *आठ प्रकार के दन्तकर्म का निरूपण* | | | |
| | दाँतों के भेद | ५५२-५५३ | १७०-१७१ |
| १. | सम और उसका विनियोग | ५५४ | १७१ |
| २. | छिन्न और उसका विनियोग | ५५४ | १७१ |
| ३. | खण्डन और उसका विनियोग | ५५५ | १७१ |
| ४. | चुक्कित और उसका विनियोग | ५५६ | १७१ |
| ५. | कुट्टन और उसका विनियोग | ५५७ | १७१ |
| ६. | दृष्ट और उसका विनियोग | ५५८ | १७२ |
| ७. | निष्कर्षण और उसका विनियोग | ५५९ | १७२ |
| ८. | ग्रहण और उसका विनियोग | ५६० | १७२ |
| *छह प्रकार के कपोलों का अभिनय* | | | |
| | कपोलों के भेद | ५६१-५६४ | १७२-१७३ |
| १. | सम | ५६१-५६४ | १७२-१७३ |
| २. | क्षाम | ५६१-५६४ | १७२-१७३ |
| ३. | कम्पित | ५६१-५६४ | १७२-१७३ |
| ४. | फुल्ल | ५६१-५६४ | १७२-१७३ |
| ५. | कुञ्चित | ५६१-५६४ | १७२-१७३ |
| ६. | पूर्ण | ५६१-५६४ | १७२-१७३ |
| *आठ प्रकार के चिबुक का अभिनय* | | | |
| | चिबुक (ठोढ़ी) के भेद | ५६५-५६६ | १७३ |
| १. | व्यादीर्ण और उसका विनियोग | ५६६ | १७३ |
| २. | चलित और उसका विनियोग | ५६७ | १७३-१७४ |
| ३. | लोलित और उसका विनियोग | ५६८ | १७४ |
| ४. | श्वसित और उसका विनियोग | ५६९ | १७४ |
| ५. | चलसंहत और उसका विनियोग | ५७० | १७४ |
| ६. | संहत और उसका विनियोग | ५७१ | १७४ |
| ७. | स्फुरित और उसका विनियोग | ५७२ | १७४ |
| ८. | वक्र और उसका विनियोग | ५७३ | १७४ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *छह प्रकार के मुख का अभिनय* | | | |
| | मुख के भेद | ५७४ | १७५ |
| १. | भुग्न और उसका विनियोग | ५७४ | १७५ |
| २. | उद्वाहि और उसका विनियोग | ५७५ | १७५ |
| ३. | विवृत और उसका विनियोग | ५७६ | १७५ |
| ४. | विधुत और उसका विनियोग | ५७७ | १७५ |
| ५. | विनिवृत्त और उसका विनियोग | ५७८ | १७५-१७ |
| ६. | व्याभुग्न और उसका विनियोग | ५७९ | १७६ |
| *चार प्रकार के मुखराग का निरूपण* | | | |
| | मुखराग (मुख के भाव) के भेद | ५८०-५८१ | १७६ |
| १. | स्वाभाविक और उसका विनियोग | ५८२ | १७६ |
| २. | प्रसन्न और उसका विनियोग | ५८२ | १७६ |
| ३. | रक्त और उसका विनियोग | ५८३ | १७७ |
| ४. | श्याम और उसका विनियोग | ५८४ | १७७ |
| *बीस प्रकार के पार्ष्णि, गुल्फ और हस्तांगुलि निरूपण* | | | |
| | पार्ष्णि (एड़ी) के भेद | ५९० | १७८ |
| १. | बहिर्गता | ५९० | १७८ |
| २. | मिथोयुक्ता | ५९० | १७८ |
| ३. | वियुक्ता | ५९० | १७८ |
| ४. | अंगुलिसंगता | ५९० | १७८ |
| ५. | उत्क्षिप्ता | ५९० | १७८ |
| ६. | पतितोत्क्षिप्ता | ५९० | १७८ |
| ७. | पतिता | ५९० | १७८ |
| ८. | अन्तर्गता | ५९० | १७८ |
| | गुल्फ (टखनों) के भेद | ५९१ | १७८ |
| १. | मिथोयुक्त | ५९१ | १७८ |
| २. | वियुक्त | ५९१ | १७८ |
| ३. | क्लिटांगुष्ठ | ५९१ | १७८ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ४. | बहिर्गत | ५९१ | १७८ |
| ५. | अन्तर्यात | ५९१ | १७८ |
| | करांगुलि (हाथों की उँगलियों) के भेद | ५९२ | १७८ |
| १. | वियुक्ता | ५९२ | १७८ |
| २. | संहता | ५९२ | १७८ |
| ३. | वक्रा | ५९२ | १७८ |
| ४. | पतिता | ५९२ | १७८ |
| ५. | वलिता | ५९२ | १७८ |
| ६. | प्रसृता | ५९२ | १७८ |
| ७. | कुञ्चन्मूला | ५९२ | १७८ |

*पाँच प्रकार की चरणांगुलि निरूपण*

| | | | |
|---|---|---|---|
| | चरणांगुलि (पैरों की उँगलियों) के भेद | ५९३ | १७८-१७९ |
| १. | प्रसारिता और उसका विनियोग | ५९४ | १७९ |
| २. | अधः क्षिप्ता और उसका विनियोग | ५९५ | १७९ |
| ३. | उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग | ५९६ | १७९ |
| ४. | कुञ्चिता और उसका विनियोग | ५९७ | १७९ |
| ५. | संलग्ना और उसका विनियोग | ५९८ | १७९ |
| | अंगुष्ठ के लक्षण विनियोग | ५९९ | १८० |

*छह प्रकार के पादतल का निरूपण*

| | | | |
|---|---|---|---|
| | पादतल के भेद | ५९९ | १८० |
| १. | कुञ्चन्मध्य | ५९९ | १८० |
| २. | तिरश्चीन | ५९९ | १८० |
| ३. | पतिताग्र | ५९९ | १८० |
| ४. | अधोगत | ५९९ | १८० |
| ५. | उद्वृत्ताग्र | ५९९ | १८० |
| ६. | भूमिलग्न | ५९९ | १८० |

## हस्तप्रचार प्रकरण / पाँच


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *पन्द्रह हस्तप्रचार का निरूपण* | | | |
| | हस्तप्रचार (संचालन) के भेद | ६००-६०४ | १८३ |
| १. | उत्तान | ६००-६०४ | १८३ |
| २. | अधस्तल | ६००-६०४ | १८३ |
| ३. | पार्श्वमुख | ६००-६०४ | १८३ |
| ४. | अग्रतल | ६००-६०४ | १८३ |
| ५. | स्वसंमुखतल | ६००-६०४ | १८३ |
| ६. | पार्श्वतल | ६००-६०४ | १८३ |
| ७. | पार्श्वगत | ६००-६०४ | १८३ |
| ८. | अग्रग | ६००-६०४ | १८३ |
| ९. | ऊर्ध्वग | ६००-६०४ | १८३ |
| १०. | अधोगत | ६००-६०४ | १८३ |
| ११. | संमुख | ६००-६०४ | १८३ |
| १२. | संमुखागत | ६००-६०४ | १८३ |
| १३. | ऊर्ध्वमुख | ६००-६०४ | १८३ |
| १४. | अधोमुख | ६००-६०४ | १८३ |
| १५. | पराङ्मुख | ६००-६०४ | १८३ |
| *तेरह हस्तक्षेत्र का निरूपण* | | | |
| | हस्तक्षेत्र (हाथों के स्थानों) के भेद | ६०५ | १८४ |
| १. | शिर | ६०५ | १८४ |
| २. | ललाट | ६०५ | १८४ |
| ३. | श्रवण | ६०५ | १८४ |
| ४. | स्कन्ध | ६०५ | १८४ |
| ५. | उर | ६०५ | १८४ |
| ६. | कटिशीर्ष | ६०५ | १८४ |
| ७. | नाभि | ६०५ | १८४ |

## विषयानुक्रम


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ८. | पार्श्वद्वय | ६०५ | १८४ |
| ९. | उध्र्व | ६०५ | १८४ |
| १०. | अधः | ६०५ | १८४ |
| ११. | पुरः | ६०५ | १८४ |
| १२. | उरुद्वय | ६०५ | १८४ |
| १३. | शीर्ष | ६०५ | १८४ |
| *बीस करकर्मों का निरूपण* | | | |
| | करकर्म (हाथों के कार्यों) के भेद | ६०६-६०७ | १८४ |
| १. | मोक्षण | ६०६-६०७ | १८४ |
| २. | रक्षण | ६०६-६०७ | १८४ |
| ३. | क्षेप | ६०६-६०७ | १८४ |
| ४. | निग्रह | ६०६-६०७ | १८४ |
| ५. | परिग्रह | ६०६-६०७ | १८४ |
| ६. | धूनन | ६०६-६·७ | १८४ |
| ७. | स्फोटन | ६०६-६०७ | १८४ |
| ८. | श्लेष | ६०६-६०७ | १८४ |
| ९. | विश्लेष | ६०६-६०७ | १८४ |
| १०. | मोटन | ६०६-६०७ | १८४ |
| ११. | तोलन | ६०६-६०७ | १८४ |
| १२. | ताडन | ६०६-६०७ | १८४ |
| १३. | छेद | ६०६-६०७ | १८४ |
| १४. | उत्कृष्टि | ६०६-६०७ | १८४ |
| १५. | आकृष्टि | ६०६-६०७ | १८४ |
| १६. | विकृष्टि | ६०६-६०७ | १८४ |
| १७. | विसर्जन | ६०६-६०७ | १८४ |
| १८. | आह्वान | ६०६-६०७ | १८४ |
| १९. | तर्जन | ६०६-६०७ | १८४ |
| २०. | भेद | ६०६-६०७ | १८४ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *चार हस्तकरणों का निरूपण* | | | |
| | हस्तकरण (हस्त चेष्टाएँ) के भेद | ६०८-६०९ | १८४-१८५ |
| १. | आवेष्टित | ६१०-६११ | १८५ |
| २. | उद्वेष्टित | ६१२ | १८५ |
| ३. | व्यावर्तित | ६१३ | १८६ |
| ४. | परिवर्तित | ६१४ | १८६ |


## विचित्राभिनय प्रकरण / छह


| | | | |
|---|---|---|---|
| *विचित्राभिनय निरूपण* | | | |
| | भावाभिनय (१) | | |
| १. | इष्ट | ६१५-६१९ | १८९-१९० |
| २. | अनिष्ट | ६१५-६१९ | १८९-१९० |
| ३. | मध्य | ६१५-६१९ | १८९-१९० |
| | इन्द्रियाभिनय (२) | | |
| १. | शब्दाभिनय | ६२०-६२४ | १९० |
| २. | स्पर्शाभिनय | ६२०-६२४ | १९० |
| ३. | रूपाभिनय | ६२०-६२४ | १९० |
| ४. | रसनाभिनय | ६२०-६२४ | १९० |
| ५. | गन्धाभिनय | ६२०-६२४ | १९० |
| | विचित्राभिनय (३) | ६२५-६५५ | १९१-१९५ |
| १. | हर्ष | ६५६-६५७ | १९५-१९६ |
| २. | क्रोध | ६५८-६६० | १९६ |
| ३. | दुःख | ६६१-६६२ | १९६ |
| ४. | भय | ६६३-६६५ | १९७ |
| ५. | शब्द | ६६६-६६७ | १९७ |
| | पक्षियों का अभिनय (४) | ६६८-६६९ | १९७-१९८ |
| | यक्षों तथा देवताओं का अभिनय (५) | ६७०-६७५ | १९८ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| | विभिन्न अभिनय (६) | ६७६-६८५ | १९९-२०० |
| | अभिनेताओं को नाट्य निर्देश | ६८६-७०७ | २००-२०४ |


## वर्तना प्रकरण / सात

*वर्तना (हस्तविन्यास) का निरूपण*


| | | | |
|---|---|---|---|
| | वर्तना के भेद | ७०८-७१४ | २०७-२०८ |
| १. | पताकवर्तना | ७१५ | २०८ |
| २. | अलपद्मवर्तना | ७१६ | २०८ |
| ३. | अरालवर्तना | ७१७ | २०८ |
| ४. | शुकतुण्डवर्तना | ७१८ | २०८ |
| ५. | अवहित्थवर्तना | ७१९ | २०८ |
| ६. | मकरवर्तना | ७२० | २०९ |
| ७. | खटकामुखवर्तना | ७२१ | २०९ |
| ८. | ऊर्ध्ववर्तना | ७२२ | २०९ |
| ९. | रेचितवर्तना | ७२३ | २०९ |
| १०. | आविद्धवर्तना | ७२४ | २०९ |
| ११. | केशबन्धवर्तना | ७२५ | २०९ |
| १२. | भालवर्तना | ७२६ | २०९-२१० |
| १३. | उरःस्थवर्तना | ७२७ | २१० |
| १४. | कक्षवर्तनिका | ७२८ | २१० |
| १५. | खड्गवर्तना | ७२९ | २१० |
| १६. | दण्डवर्तना | ७३० | २१० |
| १७. | पद्मवर्तना | ७३१ | २११ |
| १८. | नितम्बवर्तना | ७३२-७३३ | २११ |
| १९. | पल्लववर्तना | ७३४ | २११ |
| २०. | ललितवर्तना | ७३५ | २११ |
| २१. | अर्धमण्डलवर्तना | ७३६ | २११-२१२ |
| २२. | वलितवर्तना | ७३७ | २१२ |
| २३. | घातवर्तना | ७३८ | २१२ |




५

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| २४. | गात्रवर्तना | ७३९ | २१२ |
| २५. | प्रतिवर्तना | ७४० | २१२ |
| वर्तना के अन्य भेद | | ७४१-७४३ | २१२-२१३ |
| १. | चतुरस्राख्यवर्तना | ७४४ | २१३ |
| २. | तलमुखवर्तना | ७४५ | २१३ |
| ३. | स्वस्तिकवर्तना | ७४६ | २१३ |
| ४. | विप्रकीर्णवर्तना | ७४७ | २१३ |
| ५. | पुष्पपुटवर्तना | ७४८ | २१४ |
| ६. | त्रिपताकवर्तना | ७४९ | २१४ |
| ७. | कर्तरीमुखवर्तना | ७५० | २१४ |
| ८. | मुष्टिवर्तना | ७५१ | २१४ |
| ९. | शिखरवर्तना | ७५२-७५३ | २१५ |
| १०. | कपित्थवर्तना | ७५२-७५३ | २१५ |
| ११. | सूचीमुखवर्तना | ७५२-७५३ | २१५ |


## चालन प्रकरण /आठ


| | | | |
|---|---|---|---|
| *हस्त संचालन क्रियाओं का निरूपण* | | | |
| | चालकों के भेद | ७५४-७६६ | २१९-२२० |
| १. | विश्लिष्टवर्तित | ७६७ | २२०-२२१ |
| २. | वेपथुव्यंजक | ७६८ | २२१ |
| ३. | अपविद्ध | ७६९ | २२१ |
| ४. | लहरीचक्रसुन्दर | ७७०-७७२ | २२१ |
| ५. | वर्तनास्वस्तिक | ७७३-७७४ | २२१-२२२ |
| ६. | संमुखीनरथाङ्ग | ७७५-७७६ | २२२ |
| ७. | पुरोदण्डभ्रम | ७७७-७७८ | २२२ |
| ८. | त्रिभंगीवर्णसारक | ७७९ | २२२ |
| ९. | दोल | ७८० | २२३ |
| १०. | नीराजित | ७८१ | २२३ |
| ११. | स्वस्तिकाश्लेष | ७८२ | २२३ |

विषयानुक्रम


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १२. | वामदक्षतिरश्चीन | ७८३ | २२३ |
| १३. | वर्तनाभरण | ७८४ | २२३-२२४ |
| १४. | मिथोंसवीक्षा बाह्य | ७८५ | २२४ |
| १५. | मौलिरेचितक | ७८६ | २२४ |
| १६. | मणिबन्धासिकर्ष | ७८७-७८९ | २२४ |
| १७. | अंसवर्तनिक | ७९०-७९२ | २२५ |
| १८. | आदिकूर्मावतार | ७९३-७९४ | २२५ |
| १९. | कलविङ्कविनोद | ७९५-७९६ | २२५-२२६ |
| २०. | मण्डलाग्र | ७९७-७९८ | २२६ |
| २१. | चतुष्पत्राब्ज | ७९९-८०० | २२६ |
| २२. | बालव्यजन चालन | ८०१ | २२६-२२७ |
| २३. | विरुडिबन्धन | ८०२ | २२७ |
| २४. | विशृंगाटकबन्धन | ८०३ | २२७ |
| २५. | कुण्डलिचारक | ८०४ | २२७ |
| २६. | धनुराकर्षण | ८०५ | २२७ |
| २७. | हारदाम विलासक | ८०६ | २२८ |
| २८. | समप्रकोष्ठ | ८०७ | २२८ |
| २९. | मुरजाडम्बर | ८०८-८१० | २२८ |
| ३०. | तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र | ८११-८१२ | २२८-२२९ |
| ३१. | देवोपहारक | ८१३-८१४ | २२९ |
| ३२. | अलातचक्र | ८१५ | २२९ |
| ३३. | साधारण | ८१६ | २२९ |
| ३४. | उरभ्रसम्बाध | ८१७ | २२९-२३० |
| ३५. | मणिबन्धगतागत | ८१८ | २३० |
| ३६. | तार्क्ष्यपक्ष विनोदक | ८१९ | २३० |
| ३७. | धनुर्बल्लविमानक | ८२०-८२१ | २३० |
| ३८. | तिर्यक्ताण्डव | ८२२ | २३०-२३१ |
| ३९. | व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक | ८२३ | २३१ |
| ४०. | कररेचितरत्न | ८२४-८३५ | २३१-२३२ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ४१. | मण्डलाभरण | ८३६ | २३३ |
| ४२. | अष्टबन्धविहाराख्य | ८३७-८३८ | २३३ |
| ४३. | शरसन्धानक | ८३९-८४० | २३३ |
| ४४. | पर्यायगजदन्तक | ८४१ | २३३ |
| ४५. | अंसपर्यायनिर्गत | ८४२ | २३४ |
| ४६. | स्वस्तिकत्रिकोण | ८४३ | २३४ |
| ४७. | रथनेमिसम | ८४४ | २३४ |
| ४८. | लतावेष्टित | ८४५ | २३४ |
| ४९. | कर्णयुग्मप्रकीर्ण | ८४६ | २३५ |
| ५०. | नवरत्नमुख | ८४७-८५० | २३५ |
| मतान्तर से अन्य भेद | | ८५१ | २३५-२३६ |
| १. | दिग्वर्ष | ८५२ | २३६ |
| २. | अनगामोटन | ८५३ | २३६ |
| ३. | तोरण | ८५४-८५५ | २३६ |
| ४. | अनंगोद्दीपन | ८५६-८५७ | २३६-२३७ |
| ५. | मुरजकर्तरी | ८५८-८६२ | २३७ |


## स्थानक प्रकरण / नौ


| | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| स्थानकों का निरूपण | | |
| स्थानक (खड़े होने का ढंग) | ८६३-८६५ | २४१ |
| पुरुष स्थानक के भेद | ८६६ | २४१ |
| स्त्री स्थानक के भेद | ८६७ | २४१ |
| अन्य स्थानक के भेद | ८६८-८६९ | २४२ |
| देशी स्थानक के भेद | ८७०-८७३ | २४२ |
| उपविष्ट स्थानक के भेद | ८७४-८७५ | २४२-२४३ |
| सुप्त स्थानक | ८७६ | २४३ |
| स्थानकों की सम्पूर्ण संख्या | ८७७ | २४३ |
| विनियोग | ८७८ | २४३ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *छह पुरुष स्थानक (१)* | | | |
| १. | वैष्णव और उसका विनियोग | ८७९-८८९ | २४३-२४५ |
| २. | समपाद और उसका विनियोग | ८९०-८९१ | २४५ |
| ३. | वैशाख और उसका विनियोग | ८९२-८९३ | २४५-२४६ |
| ४. | मण्डल और उसका विनियोग | ८९४-८९६ | २४६ |
| ५. | आलीढ़ और उसका विनियोग | ८९७-८९९ | २४६-२४७ |
| ६. | प्रत्यालीढ़ और उसका विनियोग | ९०० | २४७ |
| *आठ स्त्री स्थानक (२)* | | | |
| १. | आयत और उसका विनियोग | ९०१-९०८ | २४७-२४८ |
| २. | अवहित्थ और उसका विनियोग | ९०९-९११ | २४८-२४९ |
| ३. | अश्वक्रान्त और उसका विनियोग | ९१२-९१४ | २४९ |
| ४. | गतागत | ९१५ | २५० |
| ५. | वलित और उसका विनियोग | ९१६ | २५० |
| ६. | मोटित | ९१७ | २५० |
| ७. | विनिर्वातित | ९१८ | २५० |
| ८. | प्रोन्नत और उसका विनियोग | ९१९-९२० | २५०-२५१ |
| *तेईस देशी स्थानक (३)* | | | |
| १. | समपाद | ९२१ | २५१ |
| २. | स्वस्तिक | ९२२ | २५१ |
| ३. | संहत | ९२३ | २५१ |
| ४. | वर्धमान | ९२४ | २५१ |
| ५. | नन्द्यावर्त | ९२५ | २५२ |
| ६. | एकपाद | ९२६ | २५२ |
| ७. | चतुरस्र | ९२७ | २५२ |
| ८. | पृष्ठोत्तानतल | ९२८ | २५२ |
| ९. | पार्ष्णिविद्ध | ९२९ | २५२ |
| १०. | समसूचि | ९३० | २५२ |
| ११. | विषमसूचि | ९३१ | २५३ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १२. | खण्डसूचि | ९३२ | २५३ |
| १३. | पार्ष्णिपार्श्वगत | ९३३ | २५३ |
| १४. | एकपार्श्वगत | ९३४ | २५३ |
| १५. | परावृत्त | ९३५ | २५३ |
| १६. | एकजानुनत | ९३६ | २५४ |
| १७. | ब्राह्म | ९३७ | २५४ |
| १८. | वैष्णव | ९३८ | २५४ |
| १९. | शैव | ९३९ | २५४ |
| २०. | कूर्मासन | ९४० | २५४ |
| २१. | गरुड | ९४१ | २५५ |
| २२. | वृषभासन | ९४२ | २५५ |
| २३. | नागबन्ध | ९४३ | २५५ |
| *छह सुप्त स्थानक* | | | |
| १. | सम | ९४३ | २५५ |
| २. | नत और उसका विनियोग | ९४४ | २५५ |
| ३. | आकुञ्चित और उसका विनियोग | ९४५ | २५६ |
| ४. | प्रसारित | ९४६ | २५६ |
| ५. | विवर्तित | ९४७ | २५६ |
| ६. | उद्वाहित और उसका विनियोग | ९४८ | २५६ |


## चारी प्रकरण / दस

*चारियों का निरूपण*


| | | |
|---|---|---|
| चारी ( चेष्ठाकृतिविशेष भावाभिव्यंजन) | ९४९-९५० | २५९ |
| चारियों के भेद | ९५१-९५३ | २५९-२६० |
| भूमिचारी के भेद | ९५४-९५६ | २६० |
| आकाशचारी के भेद | ९५७-९५९ | २६० |
| देशीचारी (भूमिगत) के भेद | ९६०-९६५ | २६१ |
| देशीचारी (आकाशगत) के भेद | ९६६-९६९ | २६१-२६२ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *सोलह भूमिचारियाँ (१)* | | | |
| १. | समपादा | ९७०-९७३ | २६२-२६३ |
| २. | आड्डिता | ९७४ | २६३ |
| ३. | बद्धा | ९७५-९७६ | २६३ |
| ४. | स्पन्दिता | ९७७ | २६३ |
| ५. | विच्यवा | ९७८ | २६३-२६४ |
| ६. | जनिता | ९७९-९८० | २६४ |
| ७. | उत्सन्दिता | ९८१-९८२ | २६४ |
| ८. | चाषगति | ९८३-९८४ | २६४ |
| ९. | अध्यर्धिका | ९८५-९८६ | २६५ |
| १०. | एलकाक्रीडिता | ९८७ | २६५ |
| ११. | शकटास्या | ९८८-९८९ | २६५ |
| १२. | ऊरूद्वृत्ता | ९९०-९९१ | २६५-२६६ |
| १३. | स्थितावर्ता | ९९२ | २६६ |
| १४. | अपस्यन्दिता | ९९३ | २६६ |
| १५. | समोत्सरितमत्तल्ली | ९९४-९९५ | २६६ |
| १६. | मत्तल्ली | ९९६ | २६६-२६७ |
| | विनियोग | ९९७ | २६७ |
| *सोलह आकाशचारियाँ (२)* | | | |
| १. | अतिक्रान्ता | ९९८-९९९ | २६७ |
| २. | अपक्रान्ता | १००० | २६७ |
| ३. | भ्रमरी | १००१ | २६७-२६८ |
| ४. | मृगप्लुता | १००२ | २६८ |
| ५. | पार्श्वक्रान्ता | १००३-१००४ | २६८ |
| ६. | ऊर्ध्वजानु | १००५ | २६८-२६९ |
| ७. | भुजंगत्रासिता | १००६-१००७ | २६९ |
| ८. | अलाता | १००८ | २६९ |
| ९. | दण्डपादा | १००९ | २६९ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १०. | विद्युद्भ्रान्ता | १०१० | २६९ |
| ११. | सूची | १०११-१०१२ | २७० |
| १२. | दोलापादा | १०१३ | २७० |
| १३. | उद्वृत्ता | १०१४-१०१५ | २७० |
| १४. | आविद्धा | १०१६ | २७०-२७१ |
| १५. | नूपुरपादिका | १०१७-१०१८ | २७१ |
| १६. | आक्षिप्ता | १०१९ | २७१ |
| | विनियोग | १०२०-१०२५ | २७१-२७२ |
| *पैंतीस देशी भूमिचारियाँ (३)* | | | |
| १. | रथचक्रा | १०२६ | २७२ |
| २. | तलोद्वृत्ता | १०२७ | २७३ |
| ३. | मराला | १०२८ | २७३ |
| ४. | पार्ष्णिरेचिता | १०२९ | २७३ |
| ५. | परावृत्ततला | १०३० | २७३ |
| ६. | तिर्यङ्मुखा | १०३१ | २७३ |
| ७. | नूपुरविद्धिका | १०३२ | २७४ |
| ८. | कतरा | १०३३ | २७४ |
| ९. | करिहस्ता | १०३४ | २७४ |
| १०. | हरिणत्रासिता | १०३५ | २७४ |
| ११. | अर्धमण्डलिका | १०३६ | २७४ |
| १२. | उरुताडिता | १०३७ | २७४-२७५ |
| १३. | मदालसा | १०३८ | २७५ |
| १४. | संचारिता | १०३९ | २७५ |
| १५. | उत्कुञ्चिता | १०४० | २७५ |
| १६. | अपकुञ्चिता | १०४१ | २७५ |
| १७. | स्फुरिता | १०४२ | २७५ |
| १८. | स्तम्भ क्रीडनिका | १०४३ | २७६ |
| १९. | तिर्यक्कुञ्चिता | १०४४ | २७६ |
| २०. | तलदर्शिनी | १०४५ | २७६ |

विषयानुक्रम


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| २१. | खुत्ता | १०४६ | २७६ |
| २२. | लङ्घितजङ्घा | १०४७ | २७६ |
| २३. | स्वस्तिका | १०४८ | २७६ |
| २४. | कुलीरिका | १०४९ | २७७ |
| २५. | निकुट्टक | १०५० | २७७ |
| २६. | पुराटिका | १०५१ | २७७ |
| २७. | अर्धपुराटिका | १०५२ | २७७ |
| २८. | स्फुरिका | १०५३ | २७७ |
| २९. | सारिका | १०५४ | २७७ |
| ३०. | लताक्षेप | १०५५ | २७७ |
| ३१. | अड्डस्खलितिका | १०५६ | २७८ |
| ३२. | ऊरुवेणी | १०५७ | २७८ |
| ३३. | विश्लिष्टा | १०५८ | २७८ |
| ३४. | समस्खलितिका | १०५९ | २७८ |
| ३५. | संघट्टिता | १०६० | २७८ |
| *उन्नीस देशी आकाशचारियाँ (४)* | | | |
| १. | दण्डपादा | १०६१ | २७९ |
| २. | पुरःक्षेपा | १०६२ | २७९ |
| ३. | अपक्षेपा | १०६३ | २७९ |
| ४. | हरिणप्लुता | १०६४ | २७९ |
| ५. | विद्युद्भ्रान्ता | १०६५ | २७९ |
| ६. | विक्षेपा | १०६६ | २७९-२८० |
| ७. | जङ्घावर्ता | १०६७ | २८० |
| ८. | अङ्घ्रिताडिता | १०६८ | २८० |
| ९. | अलाता | १०६९ | २८० |
| १०. | डमरी | १०७० | २८० |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ११. | विद्धा | १०७१ | २८०-२८१ |
| १२. | जङ्घालङ्घनिका | १०७२ | २८१ |
| १३. | सूची | १०७३ | २८१ |
| १४. | प्रावृत | १०७४ | २८१ |
| १५. | उल्लाल | १०७५ | २८१ |
| १६. | वेष्टन | १०७६ | २८१ |
| १७. | उद्वेष्टन | १०७७ | २८२ |
| १८. | उत्क्षेप | १०७८ | २८२ |
| १९. | पृष्टोत्क्षेप | १०७९ | २८२ |

*पच्चीस. मुडुपचारियाँ* (५)

| | | | |
|---|---|---|---|
| | मुडुपचारी का अर्थ | १०८०-१०८१ | २८२ |
| | मुडुपचारी के भेद | १०८२-१०८८ | २८२-२८३ |
| १. | पुरःपश्चात्सरा | १०८९ | २८३-२८४ |
| २. | पश्चात्पुरः सरा | १०९० | २८४ |
| ३. | मध्यचक्रा | १०९१ | २८४ |
| ४. | एकपदकुट्टिता | १०९२ | २८४ |
| ५. | पदद्वयनिकुट्टा | १०९३ | २८४ |
| ६. | पादस्थितिनिकुट्टिता | १०९४ | २८४ |
| ७. | क्रमपादनिकुट्टिका | १०९५ | २८४-२८५ |
| ८. | समपादनिकुट्टिता | १०९६ | २८५ |
| ९. | डमरुकुट्टिता | १०९७ | २८५ |
| १०. | डमरु द्वय कुट्टिता | १०९८ | २८५ |
| ११. | पुरः क्षेपनिकुट्टिता | १०९९ | २८५ |
| १२. | पश्चात्क्षेप निकुट्टिता | ११०० | २८५ |
| १३. | पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता | ११०१ | २८५ |
| १४. | चक्रकुट्टनिका | ११०२ | २८६ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १५. | मध्यस्थापनकुट्टा | ११०३ | २८६ |
| १६. | चतुष्कोणनिकुट्टिता | ११०४ | २८६ |
| १७. | त्रिकोणचारी | ११०५-११०६ | २८६ |
| १८. | तिरश्चीन कुट्टिता | ११०७ | २८७ |
| १९. | अनुलोमविलोमका | ११०८ | २८७ |
| २०. | प्रतिलोमानुलोमका | ११०९ | २८७ |
| २१. | पुरस्ताल्लुठिता | १११० | २८७ |
| २२. | पृष्ठलुठिता | ११११ | २८७ |
| २३. | वक्रकुट्टिता | १११२ | २८८ |
| २४. | पार्श्वद्वयचरी | १११३ | २८८ |
| २५. | मध्यलुठिता | १११४-१११५ | २८८ |


## नृत्तकरण प्रकरण / ग्यारह

*नृत्तकरणों का निरूपण*


| | | | |
|---|---|---|---|
| | करण और उनके भेद | १११६-११३८ | २९१-२९४ |
| १. | तलपुष्पपुट और उसका विनियोग | ११३९-११४१ | २९४ |
| २. | वक्षःस्वस्तिक और उसका विनियोग | ११४२-११४३ | २९४-२९५ |
| ३. | वर्तित और उसका विनियोग | ११४४-११४७ | २९५ |
| ४. | मण्डलस्वस्तिक और उसका विनियोग | ११४८-११४९ | २९६ |
| ५. | लीन और उसका विनियोग | ११५० | २९६ |
| ६. | उन्मत्त और उसका विनियोग | ११५१ | २९६ |
| ७. | वलितोरु और उसका विनियोग | ११५२-११५३ | २९७ |
| ८. | स्वस्तिक और उसका विनियोग | ११५४ | २९७ |
| ९. | अर्धस्वस्तिक और उसका विनियोग | ११५५-११५६ | २९७-२९८ |
| १०. | दिक्स्वस्तिक और उसका विनियोग | ११५७ | २९८ |
| ११. | पृष्ठस्वस्तिक और उसका विनियोग | ११५८-११५९ | २९८-२९९ |
| १२. | आक्षिप्तरेचित और उसका विनियोग | ११६०-११६२ | २९९ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १३. | अलात और उसका विनियोग | ११६३-११६४ | २९९ |
| १४. | भुजंगत्रासित और उसका विनियोग | ११६५-११६६ | ३०० |
| १५. | कटीसम और उसका विनियोग | ११६७-११६९ | ३०० |
| १६. | कटीछिन्न और उसका विनियोग | ११७०-११७१ | ३००-३०१ |
| १७. | घूर्णित और उसका विनियोग | ११७२-११७३ | ३०१ |
| १८. | निकुञ्चित और उसका विनियोग | ११७४-११७५ | ३०१-३०२ |
| १९. | निकुट्टक | ११७६-११७७ | ३०२ |
| २०. | अर्धनिकुट्टक | ११७८ | ३०२ |
| २१. | विक्षिप्ताक्षिप्तक और उसका विनियोग | ११७९-११८४ | ३०२-३०३ |
| २२. | अपविद्ध और उसका विनियोग | ११८५ | ३०३-३०४ |
| २३. | समनख और उसका विनियोग | ११८६ | ३०४ |
| २४. | स्वस्तिक रेचित और उसका विनियोग | ११८७-११९० | ३०४-३०५ |
| २५. | मत्तल्लि और उसका विनियोग | ११९१ | ३०५ |
| २६. | अर्धमत्तल्लि और उसका विनियोग | ११९२ | ३०५ |
| २७. | वल्लित | ११९३ | ३०५ |
| २८. | अर्धरेचित | ११९४-११९५ | ३०६ |
| २९. | ऊर्ध्वजानु | ११९६-११९७ | ३०६ |
| ३०. | कटिभ्रान्त और उसका विनियोग | ११९८-१२०० | ३०६-३०७ |
| ३१. | छिन्न और उसका विनियोग | १२०१ | ३०७ |
| ३२. | पादापविद्धक | १२०२ | ३०७ |
| ३३. | भ्रमर | १२०३-१२०४ | ३०७-३०८ |
| ३४. | दण्डपक्ष | १२०५ | ३०८ |
| ३५. | नूपुर | १२०६ | ३०८ |
| ३६. | ललित और उसका विनियोग | १२०७-१२०८ | ३०८ |
| ३७. | व्यंसित और उसका विनियोग | १२०९-१२१० | ३०९ |
| ३८. | चतुर और उसका विनियोग | १२११-१२१२ | ३०९ |
| ३९. | क्रान्त | १२१३-१२१४ | ३०९-३१० |
| ४०. | भुजंगत्रस्तरेचित | १२१५ | ३१० |

विषयानुक्रम


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ४१. | भुजंगाञ्चित | १२१६ | ३१० |
| ४२. | आक्षिप्त और उसका विनियोग | १२१७ | ३१० |
| ४३. | उद्घट्टित | १२१८ | ३११ |
| ४४. | दण्डरेचित और उसका विनियोग | १२१९ | ३११ |
| ४५. | वृश्चिक और उसका विनियोग | १२२० | ३११ |
| ४६. | वृश्चिकरेचित और उसका विनियोग | १२२१ | ३११ |
| ४७. | वृश्चिककुट्टित और उसका विनियोग | १२२२ | ३१२ |
| ४८. | लतावृश्चिक और उसका विनियोग | १२२३ | ३१२ |
| ४९. | वैशाखरेचित | १२२४ | ३१२ |
| ५०. | चक्रमण्डल और उसका विनियोग | १२२५-१२२६ | ३१२-३१३ |
| ५१. | आवर्त और उसका विनियोग | १२२७ | ३१३ |
| ५२. | कुञ्चित और उसका विनियोग | १२२८-१२२९ | ३१३-३१४ |
| ५३. | दोलापाद और उसका विनियोग | १२३० | ३१४ |
| ५४. | तलविलासित और उसका विनियोग | १२३० | ३१४ |
| ५५. | विवृत्त और उसका विनियोग | १२३१-१२३२ | ३१४ |
| ५६. | विनिवृत्त और उसका विनियोग | १२३३-१२३४ | ३१४-३१५ |
| ५७. | ललाटतिलक और उसका विनियोग | १२३५ | ३१५ |
| ५८. | विवर्तित | १२३६ | ३१५ |
| ५९. | अतिक्रान्त | १२३७ | ३१५ |
| ६०. | विद्युद्भ्रान्त और उसका विनियोग | १२३८ | ३१५-३१६ |
| ६१. | निशुम्भित और उसका विनियोग | १२३९-१२४१ | ३१६ |
| ६२. | उरोमण्डल | १२४२ | ३१६-३१७ |
| ६३. | विक्षिप्त और उसका विनियोग | १२४३-१२४४ | ३१७ |
| ६४. | पार्श्वनिकुट्टक और उसका विनियोग | १२४५-१२४६ | ३१७ |
| ६५. | तलसंस्फोटित | १२४७ | ३१७-३१८ |
| ६६. | गण्डसूचि और उसका विनियोग | १२४८-१२४९ | ३१८ |
| ६७. | सूचि और उसका विनियोग | १२५० १२५१ | ३१८ |
| ६८. | अर्धसूचि | १२५२ | ३१८ |

नृत्याध्यायः


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ६९. | गजक्रीडितक | १२५३ | ३१९ |
| ७०. | पार्श्वजानु और उसका विनियोग | १२५४ | ३१९ |
| ७१. | गरुडप्लुत | १२५५ | ३१९ |
| ७२. | गृध्रावलीनक और उसका विनियोग | १२५६ | ३१९-३२० |
| ७३. | दण्डपाद और उसका विनियोग | १२५७ | ३२० |
| ७४. | सन्नत और उसका विनियोग | १२५८ | ३२० |
| ७५. | समर्पित और उसका विनियोग | १२५९-१२६० | ३२०-३२१ |
| ७६. | मयूरललित | १२६१ | ३२१ |
| ७७. | सूचीविद्ध और उसका विनियोग | १२६२ | ३२१ |
| ७८. | प्रेङ्खोलित और उसका विनियोग | १२६३ | ३२१ |
| ७९. | स्खलित | १२६४ | ३२२ |
| ८०. | परिवृत्त | १२६५ | ३२२ |
| ८१. | करिहस्त | १२६६ | ३२२ |
| ८२. | प्रसर्पित और उसका विनियोग | १२६७ | ३२२ |
| ८३. | पार्श्वक्रान्त और उसका विनियोग | १२६८ | ३२३ |
| ८४. | निवेश | १२६९ | ३२३ |
| ८५. | नितम्ब | १२७०-१२७१ | ३२३ |
| ८६. | हरिणप्लुत और उसका विनियोग | १२७२ | ३२३-३२४ |
| ८७. | सिंहविक्रीडित और उसका विनियोग | १२७३ | ३२४ |
| ८८. | सिंहाकर्षित और उसका विनियोग | १२७४ | ३२४ |
| ८९. | जनित और उसका विनियोग | १२७५ | ३२४ |
| ९०. | अवहित्थ और उसका विनियोग | १२७६-१२७९ | ३२५ |
| ९१. | उद्वृत्त | १२८० | ३२५ |
| ९२. | तलसंघट्टित | १२८१-१२८२ | ३२५-३२६ |
| ९३. | लोलित | १२८३ | ३२६ |
| ९४. | शकटास्य और उसका विनियोग | १२८४ | ३२६ |
| ९५. | वृषभक्रीडित | १२८५ | ३२६-३२७ |
| ९६. | एलकाक्रीडित और उसका विनियोग | १२८६ | ३२७ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ९७. | विष्कम्भ | १२८७-१२८८ | ३२७ |
| ९८. | अपसृत और उसका विनियोग | १२८९-१२९० | ३२७-३२८ |
| ९९. | विष्णुक्रान्त और उसका विनियोग | १२९१ | ३२८ |
| १००. | अपक्रान्त | १२९२ | ३२८ |
| १०१. | उरूद्वृत्त और उसका विनियोग | १२९३-१२९४ | ३२८-३२९ |
| १०२. | अञ्चित और उसका विनियोग | १२९५ | ३२९ |
| १०३. | सम्भ्रान्त और उसका विनियोग | १२९६ | ३२९ |
| १०४. | मदस्खलितक और उसका विनियोग | १२९७ | ३२९-३३० |
| १०५. | अर्गल और उसका विनियोग | १२९८-१२९९ | ३३० |
| १०६. | रेचकनिकुट्टक | १३०० | ३३० |
| १०७. | नागापसर्पित और उसका विनियोग | १३०१ | ३३०-३३१ |
| १०८. | गङ्गावतरण और उसका विनियोग | १३०२-१३०३ | ३३१ |
| | करण प्रयोग के विशेष निर्देश | १३०४-१३०५ | ३३१ |


## उत्प्लुतिकरणों का निरूपण / बारह

*अड़तीस उत्प्लुतिकरणों का निरूपण*


| | | | |
|---|---|---|---|
| | उत्प्लुति करणों के भेद | १३०६-१३१४ | ३३५-३३६ |
| १. | अञ्चित | १३१५ | ३३६ |
| २. | एकपादाञ्चित | १३१६ | ३३६ |
| ३. | समपादाञ्चित | १३१७ | ३३६ |
| ४. | तिर्यगाञ्चित | १३१८ | ३३६ |
| ५. | भैरवाञ्चित | १३१९ | ३३७ |
| ६. | भ्रान्तपादाञ्चित | १३२०-१३२१ | ३३७ |
| ७. | दण्डप्रणामाञ्चित | १३२२ | ३३७ |
| ८. | कर्त्तर्यञ्चित | १३२३ | ३३७ |
| ९. | लङ्कादाहाञ्चित | १३२४ | ३३७ |
| १०. | समकर्त्तर्यञ्चित | १३२५ | ३३८ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ११. | बलिबन्धाञ्चित | १३२६ | ३३८ |
| १२. | क्षेत्राञ्चित | १३२७ | ३३८ |
| १३. | स्कन्धाञ्चित | १३२८ | ३३८ |
| १४. | अलग | १३२९ | ३३८ |
| १५. | ऊर्ध्वालग | १३३० | ३३९ |
| १६. | अन्तरालग | १३३१ | ३३९ |
| १७. | कूर्मालग | १३३२ | ३३९ |
| १८. | लोहडी | १३३३ | ३३९ |
| १९. | एकपाद लोहडी | १३३४ | ३३९ |
| २०. | विचित्र लोहडी | १३३५ | ३३९ |
| २१. | बाहुबन्ध लोहडी | १३३६ | ३४० |
| २२. | कर्त्तरी लोहडी | १३३७ | ३४० |
| २३. | समकर्त्तरी लोहडी | १३३८ | ३४० |
| २४. | चतुर्मुख लोहडी | १३३९ | ३४० |
| २५. | अलगाञ्चित | १३४० | ३४० |
| २६. | जलशयन | १३४१ | ३४० |
| २७. | दर्पशरण | १३४२ | ३४१ |
| २८. | नागबन्ध | —— | ३४१ |
| २९. | मत्स्यकरण | —— | ३४१ |
| ३०. | तिर्यक्करण | —— | ३४१ |
| ३१. | तिर्यक् स्वस्तिक | —— | ३४१ |
| ३२. | कपालचूर्णन | —— | ३४२ |
| ३३. | नतपृष्टक | —— | ३४२ |
| ३४. | करस्पर्श | —— | ३४२ |
| ३५. | स्कन्धभ्रान्त | —— | ३४२ |
| ३६. | एणप्लुत | —— | ३४३ |
| ३७. | लोहड्याञ्चित | —— | ३४३ |
| ३८. | सूच्यन्तर | —— | ३४३ |

# अंगहार रेचक मण्डल प्रकरण / तेरह


| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| *अंगहारों का निरूपण* | | | |
| | चतुरस्रमान में सोलह अंगहार (१) | | |
| | अंगहार | —— | ३४७-३४९ |
| १. | स्थिरहस्त | —— | ३४९ |
| २. | पर्यस्तक | —— | ३४९ |
| ३. | सूचीविद्ध | १३४३ | ३५० |
| ४. | अपराजित | १३४४-१३४५ | ३५० |
| ५. | मदविलासित | १३४६-१३४७ | ३५० |
| ६. | मत्तक्रीड | १३४७-१३५० | ३५०-३५१ |
| ७. | भ्रमर | १३५१ | ३५१ |
| ८. | विद्युद्भ्रान्त | १३५२-१३५४ | ३५१-३५२ |
| ९. | परिच्छिन्न | १३५५-१३५६ | ३५२ |
| १०. | पार्श्वच्छेद | १३५७-१३५८ | ३५२ |
| ११. | अपसर्पित | १३५९-१३६१ | ३५२-३५३ |
| १२. | आक्षिप्त | १३६२ | ३५३ |
| १३. | आच्छुरित | १३६३ | ३५३ |
| १४. | आलीढ़ | १३६४ | ३५३ |
| १५. | वैशाखरेचित | १३६५-१३६६ | ३५३-३५४ |
| १६. | पार्श्वस्वस्तिक | १३६७-१३६८ | ३५४ |
| | त्र्यस्रमान में सोलह अंगहार (२) | | |
| १. | अपविद्ध | १३६९-१३७० | ३५४ |
| २. | परावृत्त | १३७१-१३७२ | ३५५ |
| ३. | रेचित | १३७३-१३८० | ३५५-३५६ |
| ४. | आक्षिप्तरेचित | १३८१-१३८८ | ३५६-३५७ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ५. | उद्वृत्त | १३८९-१३९१ | ३५७ |
| ६. | उद्घट्टित | १३९२ | ३५७-३५८ |
| ७. | अलात | १३९३-१३९४ | ३५८ |
| ८. | सम्भ्रान्त | १३९५-१३९७ | ३५८ |
| ९. | अर्धनिकुट्ट | १३९८-१४०१ | ३५८-३५९ |
| १०. | परिवृत्तरेचित | १४०२-१४०६ | ३५९ |
| ११. | स्वस्तिकरेचित | १४०७-१४०८ | ३६० |
| १२. | विष्कम्भापसृत | १४०९-१४१० | ३६० |
| १३. | विष्कम्भ | १४११-१४१२ | ३६० |
| १४. | गतिमण्डल | १४१३ | ३६१ |
| १५. | वृश्चिकापसृत | १४१४ | ३६१ |
| १६. | मतस्खलित | १४१५-१४२० | ३६१-३६२ |

*चार प्रकार के रेचकों का निरूपण*

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | पाणिरेचक | १४२१-१४२२ | ३६२-३६३ |
| २. | कण्ठरेचक | १४२३ | ३६३ |
| ३. | कटीरेचक | १४२४ | ३६३ |
| ४. | पादरेचक | १४२५-१४२६ | ३६३ |

*दस आकाशगत मण्डल ( ? )*

| | | | |
|---|---|---|---|
| | मण्डल (गति) के भेद | १४२७-१४३० | |
| १. | अतिक्रान्त | १४३१-१४३४ | ३६४-३६६ |
| २. | वामविद्ध | १४३५-१४३७ | ३६६ |
| ३. | क्रान्त | १४३८-१४३९ | ३६६-३६७ |
| ४. | ललितसञ्चर | १४४०-१४४३ | ३६७ |
| ५. | सूचीविद्ध | १४४४-१४४५ | ३६७ |
| ६. | अलात | १४४६-१४४८ | ३६८ |
| ७. | विचित्र | १४४९-१४५१ | ३६८ |
| ८. | विहृत | १४५२-१४५५ | ३६९ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| ९. | ललित | १४५६-१४५८ | ३६९ |
| १०. | दण्डपाद | १४५९-१४६१ | ३७० |

*दस भूमिगत मण्डल (२)*

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | भ्रमर | १४६२-१४६४ | ३७० |
| २. | शकटास्य | १४६५-१४६७ | ३७१ |
| ३. | पिष्टकुट्टक | १४६८ | ३७१ |
| ४. | अड्डित | १४६९-१४७२ | ३७१-३७२ |
| ५. | समोत्सारित | १४७३-१४७५ | ३७२ |
| ६. | आवर्त | १४७६-१४७८ | ३७२-३७३ |
| ७. | एलकाक्रीडित | १४७९-१४८० | ३७३ |
| ८. | आस्कन्दित | १४८१-१४८२ | ३७३-३७४ |
| ९. | चाषगत | १४८३ | ३७४ |
| १०. | अध्यर्ध | १४८४-१४८६ | ३७४ |


## लास्यांग प्रकरण / चौदह

*मार्गस्थित लास्यांगों का निरूपण (१)*


| | | | |
|---|---|---|---|
| | मार्गस्थित लास्यांगों के भेद | १४८७-१४८९ | ३७७ |
| १. | स्थितपाठ्य | १४९०-१४९१ | ३७७ |
| २. | आसीन | १४९२-१४९४ | ३७८ |
| ३. | सैन्धव | १४९५ | ३७८ |
| ४. | पुष्पमण्डिका | १४९६ | ३७८-३७९ |
| ५. | प्रच्छेदक | १४९७-१४९८ | ३७९ |
| ६. | शेषपद | १४९९ | ३७९ |
| ७. | द्विमूढ़ | १५००-१५०१ | ३७९-३८० |
| ८. | त्रिमूढ़ | १५०२-१५०४ | ३८० |
| ९. | वैभाविक | १५०५-१५०६ | ३८०-३८१ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| १०. | चित्रपद | १५०७-१५०८ | ३८१ |
| ११. | उक्तप्रत्युक्त | १५०९-१५१० | ३८१-३८२ |
| १२. | उत्तमोत्तम | १५११-१५१३ | ३८२ |

देशी लास्यांगों का निरूपण (२)

| | | | |
|---|---|---|---|
| | देशी लास्यांगों के भेद | १५१३-१५१७ | ३८२-३८३ |
| १. | चालि | १५१८-१५१९ | ३८३ |
| २. | चालिवट | १५२० | ३८३-३८४ |
| ३. | तूक | १५२१ | ३८४ |
| ४. | मन | १५२२-१५२३ | ३८४ |
| ५. | लेढि | १५२४-१५२५ | ३८४ |
| ६. | उरोङ्कण | १५२६-१५२९ | ३८४-३८५ |
| ७. | ढिल्लाई | १५३० | ३८५ |
| ८. | त्रिकलि | १५३१-१५३२ | ३८५-३८६ |
| ९. | किन्तु | १५३३ | ३८६ |
| १०. | देशीकारक | १५३४ | ३८६ |
| ११. | निजापन | १५३५ | ३८६ |
| १२. | उल्लास | १५३६-१५३७ | ३८६-३८७ |
| १३. | थसक | १५३८ | ३८७ |
| १४. | भाव | १५३९ | ३८७ |
| १५. | सुकलास | १५४०-१५४१ | ३८७ |
| १६. | लय | १५४२ | ३८७ |
| १७. | ढाल | १५४३ | ३८८ |
| १८. | छेवा | १५४४ | ३८८ |
| १९. | अंगहार | १५४५ | ३८८ |
| २० | लंघित | १५४६ | ३८८ |
| २१. | विहसी | १५४७ | ३८८ |
| २२. | नीकी | १५४८ | ३८८-३८९ |
| २३. | नमनिका | १५४९ | ३८९ |

| | | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|---|
| २४. | शंका | १५५० | ३८९ |
| २५. | वितड | १५५१ | ३८९ |
| २६. | गीतवाद्यता | १५५२ | ३८९ |
| २७. | विवर्तन | १५५३ | ३८९-३९० |
| २८. | थरहर | १५५४ | ३९० |
| २९. | स्थापना | १५५५ | ३९० |
| ३०. | सौष्ठव | १५५६-१५५७ | ३९० |
| ३१. | स्रुवा | १५५८ | ३९०-३९१ |
| ३२. | मसृणता | १५५९ | ३९१ |
| ३३. | उपार | १५६० | ३९१ |
| ३४. | अंगानंग | १५६१ | ३९१ |
| ३५. | अभिनय | १५६२ | ३९१ |
| ३६. | कोमलिका | १५६३ | ३९१-३९२ |
| ३७. | मुखरस | १५६४-१५६५ | ३९२ |

## कलास करण प्रकरण/पन्द्रह

*कलास करणों का निरूपण*

| | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| कलास (ताल के अनुसार नृत्य) के भेद | १५६६-१५६९ | ३९५ |
| *१. विद्युत्कलास* | | |
| प्रथम | १५७०-१५७३ | ३९५-३९६ |
| द्वितीय | १५७४ | ३९६ |
| तृतीय | १५७५ | ३९६ |
| चतुर्थ | १५७६ | ३९६-३९७ |
| पञ्चम | १५७७-१५७८ | ३९७ |
| षष्ठ | १५७९ | ३९७ |
| *२. खड्गकलास* | | |
| प्रथम | १५८०-१५८१ | ३९७ |
| द्वितीय | १५८२-१५८३ | ३९८ |
| तृतीय | १५८४ | ३९८ |
| चतुर्थ | १५८५-१५८६ | ३९८ |

| | श्लोक संख्या | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| ३. मृगकलास | १५८७-१५८८ | ३९८-३९९ |
| ४. वककलास | | |
| प्रथम | १५८९-१५९३ | ३९९ |
| द्वितीय | १५९४-१५९५ | ३९९-४०० |
| तृतीय | १५९६-१५९९ | ४०० |
| चतुर्थ | १६००-१६०१ | ४००-४०१ |
| ५. प्लवकलास | | |
| प्रथम | १६०२-१६०४ | ४०१ |
| द्वितीय | १६०५-१६०६ | ४०१ |
| तृतीय | १६०७-१६०८ | ४०१-४०२ |
| चतुर्थ | १६०९ | ४०२ |
| ६. हंसकलास | | |
| प्रथम | १६१०-१६११ | ४०२ |
| द्वितीय | —— | ४०२ |
| तृतीय | —— | ४०३ |
| चित्रसूची | —— | ४०५-४२८ |
| परिशिष्ट | | |
| श्लोकानुक्रमणिका | | ४३१-४८२ |
| पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका | | ४८३-५०१ |

अशोकमल्लविरचितः

# नृत्याध्यायः

[ मूल और हिन्दी अनुवाद ]

अशोकमल्लविरचितः

# नृत्याध्यायः

## असंयुत हस्त और उसका विनियोग

**५. चतुर हस्त और उसका विनियोग**

**--ज्योव् ( ? प्रयोज्यौ च ) यथोचितम् ।**
**सखित्वे संयुतः स स्यात् सुखे तु हृदयस्थितः ॥१॥** 1

[अभिनय के समय हस्तमुद्रा को] यथोचित रूप से प्रदर्शित करना चाहिए । मित्रता का भाव अभिव्यंजित करने के लिए **संयुत हस्त** का प्रयोग करना चाहिए; किन्तु सुख के भाव को प्रदर्शित करने के लिए हाथ को हृदय पर अवस्थित करना उचित है ।

**ऊर्ध्वोत्थितो नाभिदेशाद्यौवनेऽथ मृदुन्यसौ ।**
**मर्दिताङ्गुष्ठकः कार्यो रचनायां त्वधोमुखः ॥२॥** 2

यौवन का भाव प्रदर्शित करने के लिए उत्तानावस्था में हथेली को ऊपर उठाते हुए धीरे से नाभि के पास ले जाकर रख दे । यदि रचना या निर्माण का भाव व्यंजित करना हो तो अँगूठे को मसलते हुए हथेली को औंधा कर नाभिदेश में अवस्थित करना चाहिए ।

**अथ ज्ञानेच्छयोस्तोषे चिन्तने हृदयेऽपि वा ।**
**अनुरागे प्रतिज्ञायां स्वभावे पण्डितेऽपि च ॥३॥** 3
**अन्यदर्थे समर्थे च विश्रब्धेऽपि तथादरे ।**
**समाश्वासे गुणे चायं हृदयस्थो मतः सताम् ॥४॥** 4

लोकमान्य व्यक्तियों (**सताम्**) का अभिमत है कि ज्ञान, इच्छा, सन्तोष, चिन्तन, हार्दिक भाव, अनुराग,

प्रतिज्ञा, स्वभाव, पाण्डित्य, परार्थ, समर्थता या समर्थन, विश्वास, आदर, सान्त्वना और गुण आदि के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए हृदयस्थ अधोमुख हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए।

**परिमण्डलितो रक्ते वर्णे पीतेऽप्यसौ कनः (? र): ।**
**सिते वर्णे तूर्ध्वगतो नीलेऽसौ पनि (? रि) मर्दितः ॥५॥** 5

लाल और पीले रंग का भाव प्रदर्शित करने के लिए मण्डलाकार हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए; किन्तु स्वेत वर्ण के लिए **उत्तान हस्त** का और नीले वर्ण के लिए **परिमर्दित हस्त** का प्रयोग करना चाहिए।

**आदिष्टेऽधोमुखः स स्यात् सोदर्ये बालकेऽपि च ।**
**स्वल्पे कुब्जे कुमार्यां च मध्ये मध्यस्थितो भवेत् ॥६॥** 6

आदेश देने, सोदर भाई और बाल-कथन का भाव प्रदर्शित करने के लिए हृदयस्थ हस्त को अधोमुख; और अल्पता, कुबड़ापन, कौमार्य और मध्यावस्था का भाव अभिव्यंजित करने के लिए हाथ को ऊर्ध्व-अधः की मध्यस्थिति में रखना चाहिए।

**अपराधेऽप्युपादाने प्रिये च हृदि सम्मुखः ॥७॥**

अपराध, स्वीकार या ग्रहण तथा प्रियजन के अभिनय में हृदयस्थ हाथ को संमुखावस्था में रखना चाहिए।

**परिवृत्तस्त्वविनये मलिने दुर्लभेऽपि च ।** 7
**अनुत्पन्नेऽनातुरे [?च] विस्मये निर्गुणेऽपि च ।**

अविनय, मलिनता, दुर्लभता, अनुत्पत्ति, उदासीनता, विस्मय और निर्गुण का भाव अभिव्यंजित करने के लिए **परिवृत्त चतुर हस्त** का प्रयोग करना चाहिए।

**विस्मृतावथ मायायां पापे व्यावर्तितः [?करः] ॥८॥** 8

विस्मृति, छल,कपट और पाप के आशय में **व्यावर्तित चतुर हस्त** का विनियोग करना चाहिए।

**–स स्यादधीने सम्मुखागतः ।**
**अङ्गुल्यनासिकास्पर्शात्सुवर्णाभिनये भवेत् ।** 9

अधीनता के अर्थ में और अनामिका उँगुलि तथा सुवर्ण का स्पर्श करने में हथेली को संमुखावस्था में रखना चाहिए।

**मृगकर्णविनिर्देशे त्वसावुत्तानितो भवेत् ॥६॥**

हरिण के कान का भाव प्रदर्शित करने के लिए हथेली को उत्तानावस्था में रखना चाहिए ।

**मुखदेशस्थितः प्रश्ने भये वाथ प्रकम्पितः ।** 10
**असमग्रे प्रयोक्तव्यः कीदृशे मुखदेशगः ॥१०॥**

प्रश्न और भय के भावों को अभिव्यंजित करने के लिए हाथ को कम्पित कर संमुखावस्था में रखना चाहिए । असमग्रता और '**किस तरह**' का भाव व्यंजित करने में हाथ को संमुखावस्था में रखना चाहिए ।

**इदमर्थे किमर्थे च तथा ग्रथितवस्तुनि ।** 11
**उत्तानितो मुखस्थः स्यात्काव्याद्यर्थनिदर्शने ॥११॥**

'**यह इसलिए है**' '**यह किसलिए है**' ऐसा आशय व्यक्त करने तथा ग्रथित (क्रमवद्ध या गुंथी हुई) वस्तु और काव्य आदि का अर्थ प्रकट करने के आशय में हथेली को मुख के सामने उत्तानावस्था में रखना चाहिए।

**उद्वेष्टितो दर्शने स्यात् प्रयोक्तव्ये भवेदसौ ।** 12
**उत्तानितोऽथ विश्वासे प्रयोक्तव्यो हृदि स्थितः ॥१२॥**

देखने के अर्थ में हथेली मुड़ी हुई; किसी वस्तु का प्रयोग करने में उत्तान और विश्वास के भाव प्रदर्शित करने में हृदय पर अवस्थित होनी चाहिए ।

**परिवर्तितो भवेदेष निन्दिते तु विवर्तितः ।** 13
**समे तूर्ध्वतलः स स्याद्दोषे तु हृदयस्थितः ॥१३॥**

निन्दा के भाव प्रदर्शित करने में हथेली उलटी या घूमी हुई होनी चाहिए । समावस्था के अभिव्यंजन में हथेली ऊपर की ओर होनी चाहिए । यदि दोष का भाव प्रदर्शित करना हो तो वही उत्तान हथेली हृदय पर अवस्थित होनी चाहिए ।

**उत्तानो नयनौपम्ये पद्मपत्रेऽपि सम्मतः ।** 14
**अथातुरे तथा सत्ये वाक्ये युक्तेऽप्यसौ करः ॥१४॥**
**यथोचितं बुधैर्योज्यः पथ्यकैतवयोरपि ।** 15

नेत्रों के सादृश्य तथा पद्मपत्र के भावाभिव्यंजन में हथेली को उत्तानावस्था में रखना चाहिए । आतुरता, सत्यता, समीचीन वचन, पथ्य और प्रवंचना के भाव प्रदर्शित करने में (उत्तान स्थिति में) ; या नाटय-विशारदों द्वारा अभिमत हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए ।

परिमण्डलितोत्तानश्चरितेऽथ स्वसम्मुखः ॥१५॥
मध्ये गते स्वस्तिकोऽसौ पुरस्कारेऽपि संमतः । 16

चरित के प्रदर्शन में स्वसंमुख हस्त को चारों ओर घुमाकर उत्तानावस्था में रखना चाहिए। मध्यावस्था तथा पुरस्कार के अर्थ में **स्वस्तिक हस्त** का प्रयोग करना चाहिए।

संश्लिष्य मणिबन्धौ स्तः विनये चतुरोदितौ ॥१६॥

विनय के भाव प्रदर्शित करने में दोनों कलाइयों को सटाकर **चतुर हस्त** का विनियोग करना चाहिए।

सुरते स्वस्तिकाकारौ चातुर्यवचनेषु तु । 17
संयुतौ तौ विधातव्यावर्हायां मुखदेशगौ ॥१७॥
स्वस्तिकौ तौ प्रयोक्तव्यौ स्वागताभिनयेऽपि च । 18
निपुणे श्लिष्टविश्लिष्टौ नेत्रे तद्देशविच्युतौ ॥१८॥
स्वस्तिकीभूय तो स्तोऽथ चाक्षुषे विस्तृताविमौ । 19
स्वस्तिकावथ कर्तव्यौ प्रजा(?ज्ञौ) स्तद्वेष्टिताविमौ ॥१९॥

रतिक्रीड़ा और चातुर्यपूर्ण बातों के अभिव्यंज में **स्वस्तिक** हाथों का प्रयोग करना चाहिए। पूजा-आराधना का भाव व्यक्त करने में दोनों **स्वस्तिक** हाथों को मुख के सामने अवस्थित रखना चाहिए। स्वागत के अभिनय में भी **स्वस्तिक** हस्तमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए। निपुणता के भाव दिखाने में **स्वस्तिक हस्त** को मिला कर या अलग-अलग भी दिखाना चाहिए। नेत्र का भाव प्रदर्शित करने में **स्वस्तिक** हस्त को आँख से गिरा कर रखना चाहिए। आँखों का भाव दिखाने के लिए स्वस्तिक हस्त को फैला कर भी रखा जा सकता है। नाटचशास्त्रियों के मत से नेत्रों का भाव प्रदर्शित करने के लिए **स्वस्तिक** हस्त को वेष्टितावस्था में भी रखा जा सकता है।

**६. हंसास्य हस्त और उसका विनियोग**

यत्र त्रेताग्निसंस्थानास्तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाः । 20
संलग्नाग्रा यदाङ्गुल्यो शेषे स्तो विरलोर्ध्वगे ॥२०॥
हंसास्यः स करः प्रोक्तस्तदा

**जिस अभिनय** में तीन अग्नियों (दक्षिण, गार्हस्पत्य और आहवनीय) के विन्यास रूप तर्जनी [अँगूठे के पास की उँगली], अँगुष्ठ और मध्यमा [बीच की उँगली] नामक उँगलियों के अग्रभाग सटे हों और शेष

दोनों उँगलियाँ [अर्थात् अनामिका और कनिष्ठा] अलग-अलग ऊपर की ओर उठी हों, उस हस्तमुद्रा को **हंसास्य** कहा जाता है।

**—त्रेताग्निदर्शने ।** 21
**निःसारे मृदुनि श्लक्ष्णे दधदेषोऽङ्गुलित्रयम् ॥२१॥**

उक्त तीनों अग्नियों, सारहीन वस्तु, कोमल वस्तु और चिकनी वस्तु का भाव प्रदर्शित करने में **हंसास्य हस्त** का विनियोग होता है।

**मर्दिताग्रमथाग्रं तु क्षिप्तं तद्वद्विधूनितम् ।** 22
**दधल्लाद्यौ(?ल्लद्यौ)तु शिथिले स्वल्पेऽसौ परिकीर्तितः ॥२२॥**

यदि हलकी, शिथिल और स्वल्प वस्तु का भाव प्रदर्शित करना हो, तो उक्त तीनों उँगलियों के अग्रभाग को मर्दित कर, झटक कर या कम्पित कर **हंसास्य हस्त** का प्रयोग करना चाहिए।

**असौ दरिद्रे मन्देऽपि चञ्चलोऽसौ सतां मतः ।** 23
**बुधैर्योज्यो विमर्दे तु निषेधेऽपि स मर्दितः ॥२३॥**

लोक संपूज्य (सताम्) व्यक्तियों का अभिमत है कि दरिद्र और मूर्ख व्यक्ति के भाव-प्रदर्शन के लिए **हंसास्य हस्त** का विनियोग करना चाहिए। इसी प्रकार विद्वान् व्यक्तियों के कथनानुसार युद्ध या शरीर रगड़ने तथा निषेध करने के आशय में **हंसास्य हस्त** को मसल कर प्रयोग में लाना चाहिए।

**हृद्यूर्ध्वाधोमुखः स स्यात् प्राणेष्वथ निषेवणे ।** 24
**अधो घर्षन् रताश्वासे कन्दर्पेऽपि हृदि स्थितः ॥२४॥**

यदि हृदय का भाव प्रदर्शित करना हो तो **हंसास्य हस्त** को ऊर्ध्वमुख और प्राणों के तथा किसी वस्तु के सेवन के आशय में अधोमुख रखना चाहिए। रतिक्रीड़ा के समय श्वास-प्रश्वास और कन्दर्प के भाव व्यंजित करने में भी **हंसास्य हस्त** को हृदय पर अवस्थित रखना चाहिए।

**स्तनप्रदेशविधृतः परिहासे तरौ (?रतौ) तु सः ।** 25
**ऊर्ध्वमुखो नियोज्योऽसावर्पितेऽधो मुखो मतः ॥२५॥**

परिहास और रतिक्रीड़ा के प्रदर्शन में **हंसास्य** को ऊर्ध्वमुख करके स्तनों पर रखना चाहिए। अर्पण का भाव प्रदर्शित करने में उसे अधोमुख रखना चाहिए।

अधोमुखः प्रयोक्तव्यश्व(?श्च)रणे ङ्गुधृ(?ष्ठ) देशगः । 26
अधरस्फुरणे त्वेषोऽधरस्थो विवृतोऽथ सः ॥२६॥

चरण का भाव प्रदर्शित करने में **हंसास्य** को पैर के अँगूठे के पास अधोमुख करके रखना चाहिए। निचले ओठ (अधर) के फड़कने के आशय में उसे मोड़ कर अधर पर रखना चाहिए।

चलाङ्गुलिस्तु लेपे स्यान्मुकुलोद्गमने तु सः । 27
ऊर्ध्वविच्युतसन्दंशः प्रसवेऽपि च संमतः ॥२७॥

लेप या अंगराग का भाव दिखाने में **हंसास्य** की कम्पित उँगली का और कली के निकलने तथा प्रसव का भाव व्यक्त करने में उँगलियों को ऊर्ध्वावस्था में सँड़सी की तरह प्रयोग में लाना चाहिए।

ऊर्ध्वमुखो विचित्रः स्याद् वसन्ताभिनये करः । 28
अन्याङ्गुलिसमीपस्थो मुद्रायां स्यादधोमुखः ॥२८॥

वसन्त ऋतु के अभिनय में **हंसास्य** को ऊर्ध्वमुख और मुद्रा का भाव दिखाने में अन्य उँगलियाँ के समीप अधोमुख करके रखना चाहिए।

पुष्पितेऽधोमुखः कार्यः परिमण्डलितश्चलः । 29
उदये विवृतास्योऽथ द्विस्त्रिर्वोर्ध्वं चलत्करः ॥२९॥

फूल खिलने के भाव में **हंसास्य** को मण्डलाकार अवस्था में कम्पित करते हुए अधोमुख रखना चाहिए और उदय का भाव दिखाने में उसे खोल कर तथा ऊर्ध्वमुख करके दो-तीन बार कम्पित कर देना चाहिए।

असावुडुगणे कार्यः परावृत्तस्त्वपुष्पिते । 30
नासादेशगतः कार्यः सुगन्धिद्रव्यदर्शने ।
उचितश्चयुतसन्दन्शः पुष्पोपचयनादिषु ॥३०॥ 31

तारों तथा अपुष्पित वृक्षों के अभिनय में **हंसास्य** को परावृत्त करना चाहिए। सुगन्धित द्रव्यों का भाव दिखाने में उसे नासिका के पास रखना चाहिए। फूल चुनने आदि का भाव प्रदर्शित करने में उसे खुली हुई सँड़सी के समान अधोमुख करना चाहिए।

**७. भ्रमर हस्त और उसका विनियोग**

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्योः सन्दंशे तर्जनी नता ।

यदि मध्यमा और अंगुष्ठ परस्पर मिले हुए हों और तर्जनी सँड़सी की तरह मुड़ी हुई (अँगुष्ठ के मूल का स्पर्श करती हुई) नत हो (और शेष दोनों उँगलियाँ अनामिका तथा कनिष्ठा सीधी फैली हों) तो उस हस्त-मुद्रा को **भ्रमर हस्त** कहा जाता है।

बुधैर्व्यो(?र्यो)ज्योऽथ विश्वासे बालालापे च भर्त्सने ॥३१॥ 32
ताले शीले(?ते) च कर्तव्यः सशब्दो विच्युतोऽपि सः ।
तालपत्रे त्वसौ कर्णक्षेत्रमण्डलितभ्रमः ॥३२॥ 33
अक्षरेषु चलन् कार्यो भ्रमरे त्वेष कम्पितः ।
अधोमुखो नियोज्योऽथ यन्त्रेहायामिमौ करौ । 34
इतरेतरसंश्लेषात्तर्जन्योः कथितौ बुधैः ॥३३॥

नाटचविशारदों के मतानुसार विश्वास, बालकों के साथ बात-चीत, डाँटने-फटकारने, तालपत्र और शीत आदि का भाव अभिव्यंजित करने में **भ्रमर हस्त** को सशब्द गिराकर प्रयोग में लाना चाहिए। तालपत्र के भाव-प्रदर्शन में इस हस्त को कान के चारों ओर घुमाकर प्रयुक्त करना चाहिए। अक्षरों के अभिव्यंजन में और भौंरों की अभिव्यक्ति में उसे कम्पित करके प्रदर्शित करना चाहिए। ग्रन्थि या कुण्डी (यंत्र) खोलने की इच्छा प्रकट करने में दोनों भ्रमर हस्तों को अधोमुख करके रखना चाहिए। बुधजनों का कहना है कि दोनों तर्जनियों के पारस्परिक गूंथने के भाव में भी **भ्रमर हस्त** का प्रयोग करना चाहिए।

### ८. काँगूल हस्त और उसका विनियोग

यत्र वक्रानामिका स्यात् कनिछो(? ष्ठो)र्ध्वा यदाङ्गुलिः । 35
शेषास्त्रेताग्निसंस्थाना अलग्नाग्रास्तदा करः ॥३४॥
काङ्गुगूलः संज्ञितस्तस्य विनियोगः प्रकथ्यते । 36

यदि (अभिनय के समय) अनामिका मुड़ी हो, कनिष्ठा ऊपर की ओर हो, शेष अग्निस्थापन रूप तीनों (तर्जनी, मध्यमा और अँगुष्ट) उगलियों के अग्रभाग परस्पर मिले न हों, तो उसे **काँगूल हस्त** कहा जाता है। उसका विनियोग इस प्रकार है :

अल्पे फले मिते ग्रासे बालस्य चिबुकग्रहे ॥३५॥
चुचुकाभिनयेऽप्येष प्रसूने पञ्चकस्य च । 37
मन्त्रणे मुखदेशस्थः स्त्रीरोषवचने तु सः ॥३६॥
आस्यदेशेऽङ्गुलिक्षेपात्कर्तव्यो नृत्यपण्डितैः । 38

नृत्याचार्यों के मतानुसार थोड़े फल, नपे-तुले कौर, बालक की ठुड्डी पकड़ने, स्तनाग्र, पाँच फूल (कमल, अशोक, आम्रमंजरी, नवमल्लिका और रक्त अशोक), मंत्रणा और स्त्री की क्रोधभरी वाणी के भाव व्यक्त करने में उँगुलियों को मुख के पास रखकर काँगूल हस्त का विनियोग करना चाहिए।

बिडालादिपदेऽप्येष तथा यवनभोजने ॥३७॥
अधोमुखो नियोज्योऽथ वुल्पा(? ह्यूर्मा) वूर्ध्वमुखो मतः । 39
ऋतौ बिम्बे च शङ्कायां वृत्तान्ते रत्नशब्दयोः ॥३८॥

बिल्ली आदि के पैरों और यवनों के भोजन के अभिनय में काँगूल हस्त को अधोमुख करना चाहिए। तरंग, यज्ञ, बिम्ब, शंका, वृतान्त, रत्न और शब्द के अभिनय में उसे ऊर्ध्वमुख में रखना चाहिए।

अग्रसंकोचनादेष सन्दष्टे कथितो बुधैः । 40
मुखस्थितो भवेदेष सन्देशवचनादिषु ॥३९॥

पूर्वाचार्यों का मत है कि काटने या डंक मारने के अभिनय में काँगुल हस्त की उँगलियों को अग्रभाग से सिकोड़ लेना चाहिए। सन्देश-कथन आदि के अभिनय में उसे मुख पर अवस्थित करना चाहिए।

पृष्ठायातावुभौ कार्यौ बालायां स्वस्तिकाविमौ । 41
कुचदेशगतौ कार्यौ पश्चादर्थे तु लोकतः ।
कर्म्मान्तराण्येवमस्य बुधैरुक्तानि शास्त्रतः ॥४०॥ 42

बाला स्त्री के अभिनय में दोनों काँगूल हस्तों को स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित कर पृष्ट भाग से आते हुए दिखाना चाहिए। लोक-परम्परा के अनुसार इस हस्त-मुद्रा को कुचों के पास रखने का भी विधान है। इसी प्रकार नाटयाचार्यों ने शास्त्रीय दृष्टि से काँगूल हस्त के अन्य भी अनेक भेद बताये हैं।

**९. ताम्रचूड हस्त और उसका विनियोग**

मध्यमाङ्गुष्ठयोर्यत्र सन्दंशस्तर्जनी नता ।
शेषे तलस्थिते स्तोऽसौ ताम्रचूडः करो मतः ॥४१॥ 43

यदि मध्यमा और अँगुष्ठ को मोड़ कर मिला दिया जाय तथा तर्जनी को घुमा कर झुका दिया जाय (किन्तु वह हथेली को स्पर्श न करती हो) और शेष दोनों उँगलियों (अनामिका और कनिष्ठा) को हथेली पर रख दिया जाय तो उसे ताम्रचूड हस्त कहा जाता है।

सशब्दच्युतसन्दंश एष विश्वासनादिषु ।
कलाकाष्त्या (?ष्ठा) मुहूर्त्तेषु जृम्भणेऽपि क्षणे तथा ।।४२।। 44
गीतादिमानताले च शैघ्र्ये निर्भर्त्सनेऽपि च ।
बालाह्वानेऽप्यसावेव छोटिका प्रोच्यते बुधैः ।।४३।। 45

विश्वास दिलाने आदि कार्यों में, समय के परिणाम, यथा काष्ठा (कला का ३०वां भाग), मुहूर्त, जमुहाई की काल-मर्यादा तथा क्षण में, संगीत आदि के ताल-मेल में, शीघ्रता में, भर्त्सना करने में और बालकों को बुलाने में––सँडसी की तरह मुड़ी एवं मिली हुई उँगलियों के शब्द, अर्थात् चुटकी बजाने या चुटकी काटने, का प्रयोग करना चाहिए। नाटयाचार्यों ने इस **ताम्रचूड हस्त** को **छोटिका** (चुटकी काटने) नाम से कहा है।

मुष्टिमूर्धू (?ध्वं) कनिष्ठं तु ताम्रचूडं परे जगुः ।
असौ योज्यः सहश्रा (?स्रा)दौ संख्यायामथविन्दुषु । 46
क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिस्तद्वत्स्फुलिङ्गेष्वपि कीर्तितः ।।४४।।

कुछ विद्वान् ऐसे मुष्ठिबन्ध को **ताम्रचूड हस्त** कहते हैं, जिसमें कनिष्ठा उँगली ऊपर उठी हुई हो। इस हस्त-मुद्रा का विनियोग हजार आदि संख्या या विन्दुओं का भाव व्यक्त करने में किया जाता है। इसी प्रकार कुछ लोगों के मत से यदि इस हस्त मुद्रा की उँगलियों को खोल दिया जाय तो अग्निकणों के भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग किया जाता है।

**१०. मुष्टि हस्त और उसका विनियोग**

अङ्गुल्यग्रा यदा गुप्तास्तलमध्ये सुसंयताः । 47
पीडयित्वा स्थितोऽङ्गुध्वो(?ष्ठो)मध्यमां यस्यस स्मृतः ।।४५।।
करो मुष्टिरशोकेन पृथिवीन्द्रेण धीमता । 48

बुद्धिमान् राजा अशोक का कहना है कि यदि हाथ की (चारों) उँगलियों के अग्रभाग को हथेली के बीच भली भाँति बाँध दिया जाय और अंगुष्ठ मध्यमा को दबा कर अवस्थित रहे तो उसे **मुष्टि हस्त** कहते हैं।

यष्टिग्रहे किमर्थे च स्थितावप्ययमिव्य (?ष्य) ते ।।४६।।
दोहने च गवादीनां रसनिष्कासनेऽपि च । 49
कुन्तखड्गग्रहेऽप्येष मल्लयुद्धे कराविमौ ।।४७।।

लाठी पकड़ने, **'ऐसा क्यों'**––इस प्रकार पूछने, ठहरने, गो आदि दोहने, रस निकालने, भाला तथा

तलवार पकड़ने और दोनों हाथों से मल्लयुद्ध का भाव प्रदर्शित करने में **मुष्टि हस्त** का विनियोग होता है।

कथने स्कन्धदेशस्थः स मनाक्कलितो मतः । 50
मध्ये मध्यप्रदेशस्थः स स्वयमित्यस्य दर्शने ॥४८॥
हृदयस्थो निरालम्बे त्वसौ स्यात्परिवर्तितः । 51
परिग्रहे यथौचित्यमप्यर्थे स्कन्धदेशगः ॥४९॥
तत्रेत्यर्थेऽप्यसावेव परिवर्तित इष्यते । 52

कहने का भाव प्रदर्शित करने में **मुष्टि हस्त** को ईषत् कम्पन के साथ कन्धे पर रखना चाहिए। मध्य का भाव दिखाना हो तो उसे मध्य में और '**वह स्वयं हुआ**' ऐसा भाव प्रदर्शित करने में हृदय पर अवस्थित रखना चाहिए। निराश्रय वस्तु को प्रकट करने में उसे परिवर्तित (उल्टा) कर देना चाहिए। पकड़ने या भोग-सामग्री ग्रहण करने के आशय प्रकट करने में उसे यथोचित स्थान पर रखना चाहिए। '**यह भी होगा**' ऐसा भाव दिखाने में उसे कन्धे पर, और '**वहाँ होगा**' ऐसा आशय प्रकट करने में कन्धे के अतिरिक्त दूसरे स्थान पर रखना चाहिए।

भञ्जने कार्मुकादीनामुपर्येकः करोऽपरः ॥५०॥
मध्यस्थः स्याद्विचारे तु बाहुदेशस्थितो मतः । 53
व्यावृत्तपरिवृत्तौ च वस्त्रकेशादिपीडने ॥५१॥
पतन्तावुत्पतन्तौ तौ वस्त्रप्रक्षालने क्रमात् । 54
संवाहनेऽप्यथ स्यातां धावने तौ पराङ्मुखौ ॥५२॥

धनुष आदि के तोड़ने के भाव में एक **मुष्टि हस्त** ऊपर और दूसरा मध्य भाग में (हृदय के पास) अवस्थित रहना चाहिए। किन्तु विचार का भाव प्रकट करने के लिए उसे बाँह पर रखना चाहिए। वस्त्रों और केशों को निचोड़ने में दोनों मुष्टि हस्तों को उलट-पलट कर अवस्थित करना चाहिए। वस्त्रों को धोने के आशय में उनको क्रमशः गिराते-उठाते रहना चाहिए। बोझा ढोने और दौड़ने का भाव दिखाने के लिए दोनों मुष्टि हस्तों को विपरीत स्थिति में रखना चाहिए।

### ११. शिखर हस्त और उसका विनियोग

ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो यदा मुष्ठिस्तदासौ शिखरः करः । 55

यदि मुष्टि हस्त-मुद्रा में अँगूठे को उँगलियों के ऊपर न मोड़ कर सीधे खड़ा कर दिया जाय, तो उस मुद्रा को **शिखर हस्त** कहते हैं।

कुशाङ्कुशग्रहे चापवज्त्रयोर्ग्रहणेऽपि च ।।५३।।
अलकोत्क्षेपणेऽप्येषोऽलक्तकोत्पीडने तथा । 56
मोक्षणे तोमरस्यासौ शक्तेरपि सतां मतः ।।५४।।

कुश, अंकुश, धनुष और बज्र धारण करने, बाल झाड़ने या सँवारने, महावर लगाने, तोमर (भाले की तरह का अस्त्र विशेष), तथा शक्ति (साँग) नामक अस्त्रों को चलाने का भाव प्रदर्शित करने में **शिखर हस्त** का विनियोग होता है।

नीव्यादिरचने त्वेष चञ्चलाङ्गुष्ठका मनाक् । 57
नाभिदेशस्थितो नीविधारणेऽधोमुखः स्थितः ।।५५।।

नीवी (धोती की गाँठ या इजारबन्द) आदि बाँधने के अभिनय में **शिखर हस्त** का अँगूठा कुछ कम्पित कर देना चाहिए। किन्तु नीवी धारण करने के अभिनय में उसे अधोमुख करके नाभि के पास रखना चाहिए।

वादने कोहलादीनां घण्टादीनां तु वादने । 58
स्वपार्श्वे दोलितोऽथासौ रञ्जनेऽलक्तकादिना ।।५६।।
अधरस्य प्रकर्तव्यस्तद्देशस्थोऽभिनेतृभिः । 59

कोहल (एक प्रकार का वाद्य यंत्र) और घंटा आदि बाजों को बजाने के अभिनय में **शिखर हस्त** को बगल में करके कम्पित कर देना चाहिए। अधर को महावर आदि से रँगने के भावाभिव्यंजन में अभिनेताओं को चाहिए कि वे **शिखर हस्त** को अधर के पास अवस्थित करें।

वंशादिजलयन्त्रे स्यात् पश्चादेकोऽपरः पुरः ।।५७।।
यवादिताडने दण्डे पतनोत्पतनान्वितः । 60
असौ शिरसि तद्देशेऽधोमुखः परिकीर्तितः ।।५८।।

बाँस आदि के बने जलयंत्र के भाव-प्रदर्शन में एक **शिखर हस्त** को पीछे और दूसरे को आगे रखना चाहिए। यव (जौ) आदि धानों के कूटने-पीटने में प्रयुक्त डण्डे के भाव-दर्शन में **शिखर हस्त** को उठाते-गिराते हुए (अथवा) शिर पर अधोमुख करके रखना चाहिए।

सीधुपाने मुखस्थः स्यान्नियोगे तावधोमुखौ । 61
शिरो देशगतौ कार्यौ शिखरौ नृत्यपण्डितैः ।।५९।।

नाट्याचार्यों के अभिमत से मद्यपान के अभिनय में **शिखर हस्त** को ( ऊर्ध्वमुख में ) मुख पर अवस्थित करना चाहिए । आदेश या निषेधाज्ञा के आशय में दोनों शिखर हस्तों को अधोमुख करके शिर पर रखना चाहिए ।

**ऊर्ध्वाधः शिखरौ हस्तौ सम्मुखाङ्गुष्ठकौ मिथः ।** 62
**वर्तितौ नावि संप्रोक्तौ बुधैस्तच्चालनेऽप्यथ ॥६०॥**

विद्वानों का कहना है कि नाव और उसके चलाने के अभिनय में दोनों शिखर हस्तों के अँगूठों को परस्पर आमने-सामने करके ऊपर-नीचे अवस्थित करना चाहिए ।

**क्रोशनेऽङ्गुलिसंस्फोटे स्त्रीभिस्तु शिखरद्वयम् ।** 63
**संयुतं तद्विधातव्यं संयुज्य तु वियोजितम् ॥६१॥**

स्त्रियों को चाहिए कि वे चिल्लाने और उँगली तोड़ने के अभिनय में दोनों शिखर हस्तों को पहले मिला दें और बाद में अलग कर दें ।

**नास्तीत्युक्तावथ मनाक्चलस्तूष्णीं निरूपणे ।** 64
**एवं कर्मान्तराण्यस्य ज्ञातव्यानि मनीषिभिः ॥६२॥**

**'नहीं है'** ऐसे कथन तथा मौन होने का भाव दिखाने में **शिखर हस्त** को थोड़ा कम्पित कर देना चाहिए । **शिखर हस्त** के अन्य अनेक प्रयोगों की जानकारी के लिए नाट्यविशेषज्ञों का आश्रय लेना चाहिए ।

**१२. कपित्थ हस्त और उसका विनियोग**

**करस्य शिखरस्य स्यादङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् ।** 65
**तर्जन्यग्रं यदा यत्र कपित्थोऽसौ तदा करः ॥६३॥**

यदि **शिखर हस्त** मुद्रा की तर्जनी के अग्रभाग को अँगूठे के अग्रभाग से दबा दिया या योजित किया जाय तो उसे **कपित्थ हस्त** कहते हैं ।

**कार्मुकाकर्षणे योज्यो यथाभूतार्थदर्शने ।** 66
**चक्रचापगदादीनां धारणे तालवादने ॥६४॥**
**प्रतोदग्रहणेऽप्येष मुक्तादिग्रथने तथा ।** 67

धनुष खींचने, किसी वस्तु को ज्यौं-का-त्यौं दिखाने, चक्र-धनुष-गदा आदि धारण करने, ताल देने

या तबला बजाने, चाबुक धारण करने और मोती आदि गूँथने के भाव प्रकट करने में **कपित्थ हस्त** का वनियोग होता है।

> तिर्यगायत एष स्याद्रेखायामथ नाभितः ।।६५।।
> ऊर्ध्वोत्थितो रोमराजौ दिग्बन्धे तूर्ध्वगो भ्रमन् । 68
> सशब्दच्युतसन्दंशोऽधस्त्वगादि निरूपणे ।।६६।।
> उत्तानितोऽधोमुखः स्यादूर्ध्वास्यः सूक्ष्मवस्तुनि । 69

रेखा का भाव दिखाने के लिए **कपित्थ हस्त** को तिरछा करके प्रदर्शित करना चाहिए। रोमावली का भाव दिखाने के लिए उसे नाभि से ऊपर उठाना चाहिए। दिशाओं को बाँधने का भाव दिखाने में उसे ऊपर की ओर घुमाकर फिर सँड़सी के आकर में सशब्द करके (चुटकी बजाकर) उठा देना चाहिए। पर्वत या वृक्ष का भाव दिखाना हो तो उसे उत्तान करके अधोमुख कर देना चाहिए और सूक्ष्म वस्तु के अभिव्यंजन में ऊर्ध्वमुख कर देना चाहिए।

> पुरुषे श्मश्रुदेशस्थस्तथा श्मश्रुप्रसाधने ।।६७।।
> असौ पुरोगतः कार्यश्चित्रताडनयोरथ । 70
> ग्रहणे पार्श्वगामी स्याच्चामरस्यापि धारणे ।।६८।।

पुरुष और दाढ़ी-मूँछों के भाव-दर्शन में **कपित्थ हस्त** को दाढ़ी-मूँछों के पास रखना चाहिए। आश्चर्य और ताड़न के आशय में उसे सामने अवस्थित करना चाहिए। किसी वस्तु को ग्रहण करने और चामर धारण करने में उसे बगल में स्थित होना चाहिए।

> उन्मूलने त्वधो गत्वोद्धृतोऽसौ सम्प्रयुज्यते । 71
> नाभिदेशस्थितावेतौ नीव्याः काञ्च्याश्च बन्धने ।।६९।।

किसी वस्तु को उखाड़ने का भाव प्रदर्शित करना हो तो **कपित्थ हस्त** को नीचे ले जाकर ऊपर उठा देना चाहिए। नीवी (धोती की गाँठ या इजारबन्द) और काँची (मेखला या करधनी) खोलने में दोनों कपित्थ हस्तों को नाभि के पास रखना चाहिए।

> कटिक्षेत्रगतौ कार्यौ खड्गाद्यायुधबन्धने । 72
> अवश्यं सर्वथास्थानेऽवधारणनिरूपणे ।।७०।।

कपित्थौ हस्तकौ स्यातामथ सत्ये वरे तथा । 73
उपपन्नेऽप्येवमर्थे यथौचित्यं स युज्यते ।

तलवार आदि आयुधों के बाँधने के भावाभिव्यंजन में दोनों कपित्थ हस्तों को कमर पर रखना चाहिए । निश्चय करने के आशय में दोनों कपित्थ हस्तों को सर्वथा उपयुक्त स्थान में रखना चाहिए । सत्य, वरदान और समीचीन वस्तु का भाव प्रकट करने में **कपित्थ हस्त** को यथोचित रीति से प्रयोग करना चाहिए ।

शिखरस्यापि कर्माणि योज्यान्यस्मिन्यथोचितम् ॥७१॥ 74

शिखर हस्त के अभिनय में भी **कपित्थ हस्त** का यथोचित रीति से प्रयोग किया जा सकता है ।

**१३. खटकामुख हस्त और उसका विनियोग**

कपित्थस्योत्थिते वक्रे यत्रानामाकनिष्ठिके ॥७२॥
यदा तदासौ खटकामुखः प्रोक्तो मनीषिभिः । 75

यदि **कपित्थ हस्त** की अनामिका और कनिष्ठा उँगलियाँ उठी होकर (अग्रभाग से) मुड़ी हुई हों, तो मनीषियों के मतानुसार उस मुद्रा को '**खटकामुख हस्त**' कहा जाता है ।

असौ शराकर्षणे स्याद्दर्पणग्रहणे तथा ॥७३॥
बालग्रहे स्रगादाने छत्रचामरधारणे । 76
पुष्पावचयने हारे बीटिकादिग्रहेऽपि च ।
पत्रवृन्तच्छेदने च योज्यो धीरैर्यथोचितम् ॥७४॥ 77

**कपित्थ हस्त** का विनियोग बाण-सन्धान करने, शीशे में मुँह देखने, बच्चे को गोद में लेने, माला पहनने, छत्र तथा चामर धारण करने, फूल चुनने, हार तथा ताम्बूल आदि ग्रहण करने और पत्तों के डंठल तोड़ने के अभिनय में होता है ।

च्युतसन्दंश एष स्याद् बन्धनस्थेऽथ पार्श्वगः ।
वक्षोदेशात्प्रयोक्तव्यश्चित्तस्याहरणे बुधैः ॥७५॥ 78

बन्धन में पड़े हुए का भाव प्रदर्शित करने में सँड़सी की भाँति फैलाकर इस हस्त को बगल में रखना चाहिए । बुध जनों का मत है कि चित्तहरण के भाव-दर्शन में इसका प्रयोग वक्ष पर करना चाहिए ।

सयुद्धृतौ त्वधो गत्वोद्धृतोऽथ स भवेत्करः ।
संगमादौ वरस्त्रीणां प्रियेणांशुककर्षणे ॥७६॥ 79

किसी वस्तु को उठाने और उत्तम सुन्दरी स्त्रियों के साथ रति-केलि आदि करने में प्रिय के द्वारा वस्त्र खींचने का भाव प्रदर्शित करने के लिए **खटकामुख हस्त** को नीचे ले जाकर ऊपर की ओर उठा देना चाहिए।

**शीर्षदेशाल्ललाटस्थो वधूनामवगुण्ठने ।**
**मन्थस्याकर्षणे योज्यौ दधतौ तौ गतागतौ ॥७७॥** 80

स्त्रियों का घूंघट काढ़ने का भाव प्रदर्शित करने में दोनों खटकामुख हस्तों को शिर के ऊपर रखना चाहिए और मथानी चलाने के आशय में उन्हें आगे-पीछे की ओर संचालित करना चाहिए।

**ऊर्ध्वगाधोमुखावेतौ बन्धनेऽथांशुकस्य तु ।**
**परिधाने नाभिगतावितरेतरसम्मुखौ ॥७८॥** 81

मलमल या रेशमी वस्त्र बाँधने के भाव में खटकामुख हस्तों को क्रमशः ऊर्ध्वमुख और अधोमुख करना चाहिए। यदि वस्त्र पहनने का भाव दर्शित करना हो तो उन्हें नाभि के निकट आमने-सामने अवस्थित कर देना चाहिए।

**इमौ विच्युतसन्दंशौ निराशे समुदाहृतौ ।**
**पेषणे कुङ्कुमादेस्तु कार्यावितावधस्तलौ ।** 82

निराशा का भाव दिखाने के लिए उन्हें सँड़सी की तरह खोल कर लटका देना चाहिए। यदि केसर आदि के पीसने का आशय प्रकट करना हो तो उन्हें निम्न स्थान पर ले जाना चाहिए।

**यथासम्भवमेतस्मिन्कर्माण्यूह्यानि पण्डितैः ॥७९॥**

उक्त विनियोगों के अतिरिक्त नृत्याचार्यों ने **खटकामुख हस्त** के अन्य भी प्रयोग बताये हैं। उनका भी आवश्यकतानुसार उपयोग करना चाहिए।

**१४. सूचीमुख हस्त और उसका विनियोग**

**ऊर्ध्वप्रसारिता चेत्स्यात् खटकास्यस्य तर्जनी ।** 83
**तदा सूचीमुखः प्रोक्तोऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥८०॥**

यदि **खटकामुख हस्त** मुद्रा की तर्जनी को ऊपर की ओर सीधे फैला दिया या तान दिया जाय तो नृपति अशोकमल के मतानुसार उसे **सूचीमुख** हस्त कहते हैं।

**तर्जन्यस्य भ्रमन्त्यूर्ध्वमुखा चक्रायुधे मता ।** 84
**घटोपकरणे चक्रे भ्रमन्ती स्यादधोमुखी ॥८१॥**

निजपार्श्वे भ्रमन्ती सा रथचक्रनिदर्शने । 85
जनसंघे निजं पार्श्वमायान्ती चान्यपार्श्वतः ॥८२॥
साधुवादे ध्वजेऽप्येषा दोलिता परिकीर्तिता । 86

चक्रायुध के अभिनय में **सूचीमुख हस्त** तर्जनी को घुमाते हुए ऊर्ध्वमुख कर देना चाहिए। घटादि सामग्री से सम्बद्ध चाक के आशय में उसे घुमाते हुए अधोमुख कर देना चाहिए। रथ के पहिए का प्रदर्शन करने में उसे अपने पार्श्व में घुमाना चाहिए। यदि जन-समूह का भाव दिखाना हो तो उसे अन्य पार्श्व से स्वपार्श्व में आते हुए प्रदर्शित करना चाहिए। साधुवाद और ध्वजा का भाव दर्शित करने में उसे कम्पित कर देना चाहिए।

ऋजुरूर्ध्वा तु सैकत्वे श्वासे नासास्थिता मता ।
ईषत्प्रकम्पितायान्ती कर्णान्तं कर्णभूषणे ॥८३॥ 87

एकता का भाव दिखाने के लिए उसे सीधा ऊपर की ओर रखना चाहिए और श्वास के आशय में नासिका पर अवस्थित करना चाहिए। कर्णभूषण का भाव दिखाने में उसे ईषत् कम्पन के साथ कान तक ले जाना चाहिए।

स्तवकेषु समाकुञ्च्य मनाक्कार्या प्रसारिता ॥८४॥

यदि पुष्पादि स्तवकों (गुच्छों) का भाव प्रदर्शित करना हो तो उसे सिकोड़कर कुछ फैला देना चाहिए।

ऊर्ध्वाधः शीघ्रमायान्ती विद्युत्येषा स्मृताबुधैः । 88
कुष्माण्डादिलतासूर्ध्वा भ्रमन्ती मण्डलाकृतिः ॥८५॥

विद्वानों का अभिमत है कि विद्युत् का भाव प्रदर्शित करने के लिए **सूचीमुख हस्त** को ऊपर से शीघ्रतापूर्वक नीचे आते हुए दिखाना चाहिए। यदि कुम्हड़े आदि लताओं का अभिनय करना हो तो उसे मण्डलाकार घुमाते हुए ऊपर की ओर ले जाना चाहिए।

चला किसलये तु स्याद्दीपे चाथोडुदर्शने । 89
ऋजुरूर्ध्वमुखो योज्यो भ्रमन्मण्डलिताकृतिः ॥८६॥

नवपल्लव तथा दीपक का भाव प्रदर्शित करने के लिए **सूचीमुख हस्त** को कम्पित कर देना चाहिए और तारों का भाव दिखाने के लिए उसे सीधे ऊर्ध्वमुख करके मण्डलाकार रूप में घुमा देना चाहिए।

पतनेऽधः पतन्कार्यो दंष्ट्राभिनयने पुनः । 90
मनाक् पार्श्वनतावेतावोष्ठप्रान्तगतौ करौ ॥८७॥

गिरने के भाव में उसे नीचे गिराते हुए प्रदर्शित करना चाहिए और दंष्ट्रा (दाढ़ या हाथी के दाँत) के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को बगल में थोड़ा झुकाकर ओठों के निकट अवस्थित कर देना चाहिए।

**संयोगे त्वस्य तर्जन्यौ कर्तव्ये पार्श्वसंयुते । 91**
**अधस्तले वियोगे तु विधातव्ये वियोजिते ॥८८॥**

यदि संयोग का भाव दिखाना हो तो दोनों सूचीमुख हस्तों की तर्जनियों को पार्श्व भाग से मिला देना चाहिए और यदि वियोग का भाव प्रदर्शित करना हो तो उनको अधः भाग से वियुक्त कर देना चाहिए ।

**कलहे स्वस्तिकाकारे नियोज्ये ते विचक्षणैः । 92**
**धूमे सा मण्डलाकारभ्रान्ताथात्यन्तचञ्चला ॥८९॥**

विद्वानों का मत है कि कलह का भाव दर्शित करने में दोनों सूचीमुख हस्तों को **स्वस्तिकाकार** मुद्रा में प्रयुक्त करना चाहिए । धुएँ का भाव दिखाने के लिए **सूचीमुख** हस्त को **मण्डलाकार** में तीव्रगति से कम्पित कर देना चाहिए ।

**बालसर्पे भवे(? द्)देव्पाक्रे थे(? व्याः केशे)वक्रप्रसारिता । 93**
**कम्पमानाथ कर्तव्या निर्देशे तु रिपोरियम् ॥९०॥**

बाल सर्प और देवी के केशों का भाव प्रदर्शित करने में **सूचीमुख** हस्त को टेढ़ा करके प्रसारित कर देना चाहिए । शत्रु का निर्देश करने के आशय में उसे कम्पित कर देना चाहिए ।

**पार्श्वोत्ताना कुन्तले तु कुण्डलाङ्गदयोस्तथा । 94**
**तत्तदेशगता कार्या कूपावर्ते त्वधोमुखी ॥९१॥**

शिर के बाल, कुण्डल तथा केयूर (भुजबन्द) आदि के भावाभिव्यंजन में **सूचीमुख हस्त** को पार्श्व भाग से ऊर्ध्वमुख करके उन-उन स्थानों पर रखना चाहिए। कुएँ के भँवर के आशय में उसे अधोमुख कर देना चाहिए।

**ऊर्ध्वलोके तु सर्वेषामादिमेऽपि च सोर्ध्वगा । 95**
**जृम्भायां तु मुखाभ्यासे नियोज्या सा मनीषिभिः ॥९२॥**

मनीषी जनों का कहना है कि ऊर्ध्वलोक, सर्वप्रथम, जँभाई और मुखाभ्यास का भाव दिखाने के लिए उसे ऊर्ध्वमुख करना चाहिए ।

श्रोत्रकण्डूयने दुष्टश्रवणे चास्य तर्जनी । 96
कर्णरन्ध्रागता कार्या कुन्तले क्षेपणे पुनः ॥९३॥

**कान खुजलाने**, कटुवाणी सुनने, शिर के बाल और किसी वस्तु को फेंकने के आशय में **सूचीमुख हस्त** की तर्जनी को कान के छिद्र तक ले जाना चाहिए ।

स्वेदापनयनेऽज्ञातपृच्छायां तर्जनेऽपि च । 97
लोकयुत्त्यनुसारेण योज्यैषा नृत्यपण्डितैः ॥९४॥

नृत्याचार्यों का अभिमत है कि पसीना पोंछने, अज्ञात वस्तु के सम्बन्ध में पूछने और डाँटने-धमकाने का भाव प्रकट करने में **सूचीमुख हस्त** का लोक परम्परा के अनुसार विनियोग करना चाहिए ।

अधोमुखी ललाटस्था हराभिनयने मता । 98
इन्द्राभिनयने त्वेषा तिरश्चीना तथोन्नता ॥९५॥
परिवेषेभ्रमन्ती . सा तिर्यग्मण्डलिताकृतिः । 99

शंकर के अभिनय में **सूचीमुख हस्त** को अधोमुख करके ललाट पर रखना चाहिए और इन्द्र के अभिनय में उसे उन्नत तथा तिरछा प्रदर्शित करना चाहिए। (सूर्य आदि के) मण्डल के प्रदर्शन में उसे मण्डलाकार बनाकर तिरछा घुमाना चाहिए ।

इदमर्थेऽधोमुखी साभिहिते मुखदेशगा ॥९६॥

**'यह इस लिए है'** ऐसा भाव प्रदर्शित करने में उसे अधोमुख कर देना चाहिए और कही हुई बात के अभिनय में उसे मुख पर अवस्थित रखना चाहिए ।

ऊर्ध्वाधः पतिता कार्या भ्रमन्ती लोकसर्वयोः । 100
भ्रमन्त्यौ संयुते भ्रान्तौ संयुक्तासु सखीष्वियम् ॥९७॥

लोक तथा समष्टि का भाव दिखाने में इस हाथ को घुमाकर ऊपर से नीचे गिरा देना चाहिए । भ्रान्ति का भाव प्रकट करने में दोनों सूचीमुख हस्तों को घुमाकर सटा देना चाहिए और समवेत सखियों के अभिनय में एक ही **सूचीमुख हस्त** को घुमाना चाहिए ।

अधःपार्श्वगता कार्या संरम्भे स्वस्तिकाकृतिः । 101
अधोमण्डलिता कार्या पल्लवेऽथ मुखास्थिता ॥९८॥

(किसी कार्य को) आरम्भ करने के अभिनय में **सूचीमुख हस्त** को **स्वस्तिक** मुद्रा में नीचे बगल में रखना चाहिए और पल्लव के भाव-प्रदर्शन में उसे नीचे घुमाकर मुख पर रखना चाहिए।

**दूते ते ऊर्ध्वमुख्यौ तु समानाभिनये म(?न) ते ।** 102
**भानौ चन्द्रे च कर्तव्या भ्रमन्ती दक्षिणा बुधैः ॥९९॥**

दूत के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को ऊर्ध्वमुख करके समान रूप से प्रदर्शित करना चाहिए। सूर्य और चन्द्रमा के अभिनय में उसे दाहिनी ओर घुमाना चाहिए, ऐसा विद्वानों का कथन है।

**प्रतिद्वन्द्विनि ते स्यातामूर्ध्वाग्रे प्रमुखे पुनः ।** 103
**ऊर्ध्वाधः पतिता कार्या प्रस्तुतेऽपि बुधैरियम् ॥१००॥**

प्रतिद्वन्द्वी, अग्रगामिता और प्रमुखता के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को ऊर्ध्वमुख करना चाहिए। प्रस्तुत वस्तु के भाव-प्रदर्शन में एक **सूचीमुख हस्त** को ऊपर उठा कर नीचे गिरा देना चाहिए, ऐसा बुद्धिमान् व्यक्तियों का कहना है।

**विभक्ते छेदने चैते योज्येते विच्युते उभे ।** 104

किसी वस्तु को विभक्त करने तथा काटने के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को गिराकर प्रदर्शित करना चाहिए।

**पुरोमुखी सूचिते सा मन्त्रणे मुखदेशगा ॥१०१॥**
**प्रणामेऽधःपतन्ती सा सूर्यास्ते वामपार्श्वगा ।** 105

किसी सूचित वस्तु के अभिनय में **सूचीमुख हस्त** को अग्रमुख करके रखना चाहिए और मंत्रणा के अभिनय में उसे मुख पर अवस्थित करना चाहिए। प्रणाम करने के भाव में उसे नीचे गिराना तथा सूर्यास्त के आशय में बाँयी बगल में रखना चाहिए।

**विश्लिष्टे ते पराङ्मुख्यौ दक्षिणात्पार्श्वतोमते ॥१०२॥**
**पार्श्व व्यत्ययतो योज्ये निशान्ते तद्वदेव ते ।** 106
**संयुक्ता तु सहाये स्यादथ रक्तप्रमोक्षणे ॥१०३॥**

नृत्याचार्यों के मत से वियुक्त करने के अभिनय में दोनों सूचीमुख हस्तों को विमुख करके दाहिनी बगल में रखना चाहिए। रात्रि के अन्तिम भाग के प्रदर्शन में उसी प्रकार वियुक्त करके दाहिनी बगल में रखना चाहिए। मित्र या सहायक तथा रक्त निकालने के आशय में उन्हें संयुक्त करके रखना चाहिए।

अधोमुखो भवेद्वामा कुटिलायां गतौ पुनः । 107
पार्श्वादत्यन्तमसकृदन्यपार्श्वगता भवेत् ।।१०४।।

कुटिल गति के अभिनय में बाँये **सूचीमुख हस्त** को अधोमुख करके एक बगल से दूसरी बगल में बार-बार तीव्र गति से संचालित करना चाहिए ।

गेये शब्देऽपि कर्तव्या कर्णान्तिकगता बुधैः । 108

विद्वानों के अनुसार गायन और शब्द करने के अभिनय में **सूचीमुख हस्त** को कान पर रखना चाहिए ।

भद्रे परस्मिन् प्रथमे विवादेऽपि नियोजने ।।१०५।।
रेखायां च निमित्तेऽपि मथनेऽस्मीति भाषणे । 109
नत्वैकदायतः सद्यस्तावदर्थेऽप्यसौ करः ।
योजनीयो यथोचित्यं हस्ताभिनयपण्डितैः ।।१०६।। 110

कल्याण, दूसरे, प्रथम, विवाद, नियोजन, रेखा, निमित्त, मन्थन, 'मैं हूँ' ऐसे कथन, दण्डवत् प्रणाम और किसी वस्तु की सद्यः प्राप्ति आदि के अभिनय में नाट्याचार्यों के निर्देशानुसार **सूचीमुख हस्त** मुद्रा का यथाविधि विनियोग करना चाहिए।

### १५. त्रिपताक हस्त और उसका विनियोग

अनामिका पताकस्य यदा वक्रा प्रजायते ।
त्रिपताकस्तदा प्रोक्तोऽशोकमल्लेन भूभुजा ।।१०७।। 111

यदि **पताक हस्त** मुद्रा में अनामिका उँगली (के अगले दो पोरों) को झुका दिया जाय तो नृपति अशोकमल्ल के अनुसार उसे **त्रिपताक हस्त** कहा जाता है ।

मङ्गल्यदधिदूर्वादिद्रव्यस्पर्शे द्वयोरपि ।
त्रैगुण्येऽपि स्त्रियां तीरे पादयोश्चाथ शङ्किते ।।१०८।। 112
नतोन्नताङ्गुलिरसौ चन्दने तु ललाटगः ।
पराङ्मुखः परित्राणेऽनुवादे कर्णदेशगः ।।१०९।। 113

दही, दूब आदि मांगलिक द्रव्यों के स्पर्श, दो वस्तुओं, तीन गुणों, स्त्री, तट, चरणों तथा आशंका के अभिनय में **त्रिपताक हस्त** की उँगलियाँ (मूल से) झुकी तथा (अग्रभाग से) उठी हुई होनी चाहिए । चन्दन

के भाव-प्रदर्शन में इस हाथ को ललाट पर रखना चाहिए। परित्राण देने के अर्थ में उसका मुँह मुड़ा हुआ होना चाहिए; और अनुवाद का भाव प्रदर्शित करने में उसे कानों के समीप रखना चाहिए।

**शिरोवेष्टित एष स्याद् भूपालाभिनये करः ।**
**स वैद्ये त्वेकहस्तस्थनाडिकादेशसंश्रितः ॥११०॥** 114

राजा के अभिनय में **त्रिपताक हस्त** को शिर पर घुमा कर रखना चाहिए और वैद्य के अभिनय में उसे एक हाथ की नाड़ी पर रखना चाहिए।

**मुखप्रदेशमागच्छन्नसौ योज्यो जनान्तिके ।**
**चलदङ्गुलिरुत्तानोऽभिव्यक्तेऽथ विसर्जने ॥१११॥** 115

अभिनय के समय (रंगमंच) पर अभिनेता द्वारा दूसरे के सामने कुछ करने का भाव प्रदर्शित करने में **त्रिपताक हस्त** को मुख के पास ले जाना चाहिए। किसी बात को प्रकट करने और विसर्जन के आशय में उसे, उँगलियों को कम्पित करते हुए, उत्तानावस्था में रखना चाहिए।

**पुरोगतस्तिरस्कारेऽतिक्रमे परिवर्तितः ।**
**त्रिपताकं यदा वामनुगच्छेत्परः करः ॥११२॥** 116
**तदानुवृत्ते योज्योऽयं पत्यौ तु शिरशि स्थितः ।**
**अयमन्तःपुरे तु स्यात्स्वास्तिकाकृतितां गतः ॥११३॥** 117

तिरस्कार का भाव प्रदर्शित करने में उसे सामने रखना चाहिए और उल्लंघन के आशय में उसे उलट कर रखना चाहिए। एक के पीछे दूसरे को चलने अथवा अनुकरण करने के अभिनय में दाहिने **त्रिपताक हस्त** को आगे और बाँये **त्रिपताक हस्त** को उसका अनुसरण करते हुए दिखाना चाहिए। पति का भाव दिखाना हो तो उसे शिर पर रखना चाहिए और अन्तःपुर के अभिनय में उसे स्वस्तिकाकार बनाना चाहिए।

**मुखदेशे तु पार्श्वस्थो विविक्ते गदितो बुधैः ।**
**कुञ्चिताधस्तलीभूय नेये स स्यात्प्रसारितः ॥११४॥** 118

विद्वानों का कहना है कि एकान्त के अभिनय में **त्रिपताक हस्त** को मुख के एक बगल में रखना चाहिए और ले जाने के भाव-प्रदर्शन में उसे निम्न भाग से मोड़ कर फैला देना चाहिए।

अहमित्यादिनिर्देशे हृदयाभिमुखो मतः ।
व्यक्तः कुटलकेशेषु मुहुरुद्वेष्टितो बुधैः ॥११५॥ 119

'मैं' इत्यादि के निर्देश के अभिनय में त्रिपताक हस्त को हृदय के सम्मुख रखना चाहिए । विद्वानों का अभिमत है कि घुंघराले बालों के अभिनय में उसे चारों ओर से घिरा या मुड़ा हुआ प्रदर्शित करना चाहिए ।

मुखान्तरित एष स्याद् व्याजेऽथानुप्रवेशने ।
चलाङ्गुलिरथाल्पेऽर्थे व्यावर्तितनतोन्नतः ॥११६॥ 120

छल-कपट तथा प्रवेश करने के अभिनय में उसे मुख के पास रखना चाहिए और अल्पता के अर्थ में उसकी उँगलियों को कम्पित करके उलटें, झुके तथा उठे हुए रूप में प्रस्तुत करना चाहिए ।

कुले त्वयं नियोक्तव्य ऊर्ध्वाधश्चलदङ्गुलिः ।
संशये दधदङ्गुल्यौ क्रमादेष नतोन्नते ॥११७॥ 121

कुल के अभिनय में उसकी उँगली को ऊपर-नीचे कम्पित करते हुए प्रयुक्त करना चाहिए। सन्देह के भाव-प्रदर्शन में उसकी दो उँगलियाँ क्रमशः नत और उन्नत होनी चाहिए ।

अनादरेऽधस्तल स्याद्बहिः क्षिप्ताङ्गुलिद्वयः ।
अलकापनयने स स्याद्भालादलकसंश्रितः ॥११८॥ 122

अनादर के अभिनय में त्रिपताक हस्त की हथेली नीचे की ओर तथा उसकी दो उँगलियाँ नीचे की ओर फेंकी हुई होनी चाहिए और केशों को हटाने के अभिनय में उसे ललाट पर केशों से सटा हुआ होना चाहिए।

–कुञ्चिताङ्गुलि (? को) भ्रमन् ।

उसकी उगलियों को मोड़कर घुमाते हुए [?].... ।

मस्तकाच्चेद्भ्रमत्यूर्ध्वं तदा मुकुटधारणे । 123
तिलके स्यादूर्ध्वमेष भ्रुवोर्मध्याल्ललाटगः ॥११९॥

मुकुट धारण करने के अभिनय में उसे मस्तक के ऊपर घुमाना चाहिए । तिलक धारण करने के भाव-प्रदर्शन में उसे ऊपर भँवों के बीच से ललाट पर रखना चाहिए ।

**विकृते घोषवाग्गन्धे कर्णास्यघ्राणसंवृतिम् ।** 124
**क्रमात्कुर्वन्नङ्गुलिभ्यामथ(?धः)स्यात् कटिदेशतः (?गः) ।।१२०।।**

विकार, शब्द, वाणी तथा गन्ध के भावाभिव्यंजन में दो उँगलियों से क्रमशः कान, मुख तथा नाक को ढकते हुए **त्रिपताक हस्त** को नीचे कमर के हिस्से में रखना चाहिए ।

**क्रमादधस्तिर्यगूर्ध्वं क्षुद्रे स्रोतसि मारुते ।** 125
**तथाविधे खेचरे च दधदेष चलाङ्गुली ।।१२१।।**

छोटे सोते, वायु तथा आकाशचारी जीवों के अभिनय में **त्रिपताक हस्त** की कम्पित उँगलियों को क्रमशः नीचे, तिरछे तथा ऊपर अवस्थित करना चाहिए ।

**विच्युतानामिकाङ्गुष्ठसन्दंशोऽश्रुप्रमार्जने** 126
**आकाशाभिनये तूर्ध्वमुखोऽथाधोमुखो भुवि ।।१२२।।**

आँसू पोंछने के अभिनय में इस हाथ की अनामिका तथा अँगुष्ठ उँगलियों को सँड़सी की तरह मोड़ कर नीचे लटका देना चाहिए । आकाश के अभिनय में इस हस्त को ऊर्ध्वमुख तथा भूमि के अभिनय में अधोमुख रखना चाहिए

**इतस्ततश्चलन्नेष बालसर्पनिरूपणे ।** 127
**बाहुशीर्षसमुत्थोऽयमूर्ध्वप्राप्ताङ्गुलिद्वयः ।।१२३।।**

बालसूर्य के अभिनय में **त्रिपताक हस्त** को इधर-उधर चलाते हुए, दो उँगलियों को ऊपर करके बाँह तथा शिर पर रख देना चाहिए ।

**साग्निधूमे प्रयोक्तव्यो वक्रमार्गेष्वधोमुखः ।** 128
**पुरश्चलन्नुच्चनीचभुव्यूर्ध्वाधोमुखः करः ।।१२४।।**

अग्नि तथा धूम और टेढ़े मार्गों के अभिनय में उसे अधोमुख करके प्रदर्शित करना चाहिए । ऊँची-नीची भूमि के भाव-प्रदर्शन में उसे आगे चलाते हुए ऊपर-नीचे कर देना चाहिए ।

**कुञ्चिताङ्गुलिरेष स्यात्कर्णस्थश्चापकर्षणे ।** 129
**बालेन्दुदर्शने कार्यः प्रसृताङ्गुष्ठसम्मुखः ।।१२५।।**

धनुष को खींचने का भाव प्रदर्शित करने के लिए **त्रिपताक हस्त** को कान पर रखना चाहिए और उँगलियों को मोड़ लेना चाहिए । बालचन्द्र के अभिनय में उसके अंगुष्ठ को फैलाकर सामने रखना चाहिए ।

पराङ्मुखो नृणां याने प्रयोक्तव्यो विचक्षणैः । 130
अधोमुखौ स्वस्तिकौ तौ गुरुपादाभिवन्दने ॥१२६॥

विद्वज्जनों को चाहिए कि मनुष्यों की सवारी के अभिनय में वे त्रिपताक हस्त को पराङमुख (अर्थात् प्रतिकूल दिशा में) करके प्रयुक्त करें। गुरु के चरणस्पर्श के अभिनय में दोनों त्रिपताक हस्तों को **स्वस्तिक** बनाकर अधोमुख कर देना चाहिए।

विवाहदर्शने स्यातां श्लिष्टौ तावितरेतरम् । 131
भूपालदर्शने तौ स्तो विच्युतौ तु ललाटगौ ॥१२७॥

विवाह के अभिनय में दोनों **त्रिपताक हस्त** परस्पर सम्बद्ध करके रखने चाहिएँ और राज-दर्शन के अभिनय में दोनों को अलग करके ललाट पर अवस्थित करना चाहिए।

तौ तिर्यक्स्वस्तिकौ स्यातां सम्बद्धौ वेश्मदर्शने । 132
तपस्विदर्शने स्यातां तावूर्ध्वौ तु पराङ्मुखौ ॥१२८॥

गृह दिखाने में दोनों त्रिपताक हस्तों को स्वस्तिकाकार में संबद्ध करके तिरछा प्रदर्शित करना चाहिए। तपस्वी के दर्शन में उन्हें ऊपर करके पराङमुख (अर्थात् विरुद्ध दिशा में) कर देना चाहिए।

अन्योन्याभिमुखौ तौ तु वियोज्यौ हारदर्शने । 133
मुखाग्रसंश्रितौ कार्यावुत्तानाधोमुखीकृतौ ॥१२९॥

हार के प्रदर्शन के अभिनय में उन दोनों हस्तों को एक-दूसरे के आमने-सामने करके दोनों के मुखाग्र भाग को मिलाकर उर्ध्वमुख तथा अधोमुख कर देना चाहिए।

नक्राणां वडवाग्नेश्च मकराणां च दर्शने । 134
अन्योन्याभिमुखौ द्वारे सहार्थे संयुतौ मतौ ॥१३०॥

घड़ियालों, वड़वाग्नि, मगरों, द्वार तथा साथ के अभिनय में दोनों हाथों को परस्पर सम्मुख करके संयुक्त कर देना चाहिए।

वानरे मुखदेशस्थावुत्तानाभिमुखाविमौ । 135
न जानामीति वाक्यार्थे छादितश्रोत्रसम्पुटौ ॥१३१॥

वानर के प्रदर्शन में दोनों हस्तों को उत्तान एवं आमने-सामने मुख के पास रखना चाहिए। **'मैं नहीं जानता हूँ'** इस कथन के प्रदर्शन में उनसे दोनों कर्ण-विवरों को ढक देना चाहिए।

इमावन्योन्यसंश्लिष्टौ स (?हृ) द्गतावुत्थितौ पुनः । 136
सम्भाविते प्रकर्तव्यौ पूर्वाचार्यैरिमौ करौ ॥१३२॥

पूर्वाचार्यों के मत से सम्भावना के अभिनय में दोनों त्रिपताक हस्तों को एक-दूसरे से मिलाकर पुनः हृदय पर उठाकर रख देना चाहिए।

१६. कर्तरीमुख हस्त और उसका विनियोग

हस्तस्य त्रिपताकस्य यद्यश्लिष्टा तु तर्जनी । 137
मध्यमायां स्थिता पृष्ठे तदासौ कर्तरीमुखः ॥१३३॥

यदि **त्रिपताक** हस्त-मुद्रा की तर्जनी उँगली को अलग करके उसे मध्यमा उँगली के पृष्ठभाग में अवस्थित किया जाय (और मध्यमा को अनामिका के साथ हस्ततल की ओर मोड़ दिया जाय) तो उसे **कर्तरीमुख हस्त** कहते हैं।

क्रमे स्थितौ च क्षेपे (च) तथैवात्मगतेऽप्यसौ । 138
अशून्ये तद्विधेत्यर्थे स भिन्नवलितो भवेत् ॥१३४॥

क्रम, स्थिति, क्षेपण, स्वगत भाषण, अशून्य तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थों के अभिनय में **कर्तरीमुख हस्त** को बिना मोड़े हुए प्रदर्शित करना चाहिए।

ऊर्ध्वास्योऽसौ कपोलादौ पत्रादिरचने मतः । 139
अलक्तकादिचरणरञ्जने मार्गदर्शने ॥१३५॥
असावधोमुखः कार्यो दर्शने कर्णदेशगः । 140
नासाक्षेत्रादथाग्रस्थो भवेदुत्तानिताङ्गुलिः ॥१३६॥

कपोल आदि पर पत्र आदि की रचना करने के प्रदर्शन में इस हाथ का मुख ऊपर को होना चाहिए। महावर आदि से चरणों को रँगने तथा मार्ग दिखाने में उसे अधोमुख कर देना चाहिए। देखने के आशय में उसे कान के समीप ले जाकर फिर नाक के अग्र भाग में, उँगली को उत्तान करके, अवस्थित रखना चाहिए।

लेखप्रवाचनेऽथासौ मरणे पतनेऽपि च । 141
वितर्कितेऽपराधे च परिवर्ते व्यतिक्रमे ॥१३७॥
व्यत्यस्ततर्जनीकः स्यादवाङ्मुखचलाङ्गुलिः । 142
अयं तु पादविन्यासे योज्यस्तद्देशगो बुधैः ॥१३८॥

लेख बाँचने, मरण, पतन, दलील देने, अपराध, परिवर्तन और उल्लंघन के भाव-प्रदर्शन में **कर्तरीमुख हस्त** की तर्जनी को विपरीत दिशा में रखकर शेष उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए।

सौधान्तःपुरयोरेष स्वस्तिकः परिदेवने । 143
मुखदेशस्थितोऽथैकोऽनुगतोऽनुगते करः ॥१३९॥
अपरेण करेणाथ हताशे परिवर्तितः । 144
हृदयस्थोऽथ पार्श्वाच्चेद्दक्षिणाद्वामपार्श्वगः ॥१४०॥

महल तथा अन्तःपुर के भाव-प्रदर्शन में **कर्तरीमुख हस्त** को स्वस्तिकाकार होना चाहिए। विलाप करने के अभिनय में उसे मुख पर और अनुगमन करने के आशय में दोनों हाथों का परस्पर अनुगत कर देना चाहिए (अर्थात् एक हाथ के पीछे दूसरे हाथ को रख देना चाहिए)। हताश के भाव-प्रदर्शन में उसे दाहिनी बगल से बाँयी बगल की ओर परिवर्तित करके हृदय पर अवस्थित करना चाहिए।

तदा दाननिषेधे स प्रकाशे वृष्टिदेशतः । 145
दक्षिणस्तु करो वामं पार्श्वमागत ईरितः ।

दान के निषेध तथा प्रकाश के अभिनय में दाहिने हाथ को क्षेत्रप्रान्त से लाकर वाम पार्श्व में रखना चाहिए।

इमौ शिरःस्थौ कर्तव्यौ शृङ्गाभिनयने करौ ॥१४१॥ 146

सींग के अभिनय में दोनों कर्तरीमुख हाथों को शिर पर रखना चाहिए।

१७. अर्धचन्द्र हस्त और उसका विनियोग

स्थितेऽन्यतोऽङ्गुलीसंघे विततेऽङ्गुष्ठके सति ।
योऽर्धचन्द्राकृतिधरः सोऽर्धचन्द्राभिधः करः ॥१४२॥ 147

यदि चारों उँगलियों को सीधे खड़ी कर दिया जाय और अँगूठे को बाहर की ओर सीधे फैला दिया जाय तो उससे जो अर्धचन्द्राकार मुद्रा बनती है उसी को **अर्धचन्द्र हस्त** कहते हैं।

ऊर्ध्वोत्तानोऽर्धचन्द्रेऽथोत्तानितो मण्डलभ्रमः ।
ग्लानिसंतापयोः शोके नियोज्योऽसौ नियोक्तृभिः ॥१४३॥ 148

अभिनेताओं को चाहिए कि ग्लानि, सन्ताप और शोक के भाव-प्रदर्शन में वे **अर्धचन्द्र हस्त** को ऊपर उत्तान करके मण्डलाकार में घुमायें।

मुखदेशस्थितः पाने वदनेऽपि भवेदसौ ।
पादाङ्करणे त्वेष करस्तद्देशगः स्मृतः ॥१४४॥ 149

पीने तथा बोलने के अभिनय में इस हस्त को मुख पर रखना चाहिए। पैरों के आभूषण प्रकट करने में उसे पैरों के पास ले जाना चाहिए।

**मणिबन्धप्रदेशस्थवलये मण्डलाकृतिः ।**
**पराङ्मुखोऽथ खेदे स कपोलफलकाश्रितः ॥१४५॥** 150

कलाई पर धारित कँकण या चूड़ी के भाव-प्रदर्शन में **अर्धचन्द्र हस्त** को मण्डलाकार बनाना चाहिए और खेद प्रकट करने में उसे उलटा करके कपोल पर रखना चाहिए।

**कर्णान्तिकगतौ कार्यौ कर्णाभरणदर्शने ।** 151
**लोकयुक्त्यनुसारेण बलान्निःकाशने मतः ॥१४६॥**

कानों के आभूषण प्रकट करने में दोनों अर्धचन्द हस्तों को कानों के पास रखना चाहिए। किसी को बलपूर्वक निकालने के आशय में लोक-परम्परा के अनुसार **अर्धचन्द्र हस्त** का उपयोग करना चाहिए।

**कुम्भाभिनयने स्यातां पुरतोऽन्योन्यसम्मुखौ ।**
**मध्यसाम्ये कटिस्थौ द्वावितरेतरसम्मुखौ ॥१४७॥** 152

घट के भाव-प्रदर्शन में दोनों अर्धचन्द्र हस्तों को आमने-सामने (संमुखावस्था में) रखना चाहिए और मध्य का साम्य दिखाने में दोनों को उसी प्रकार परस्पर संमुख करके कटिभाग में रखना चाहिए।

**नियोज्यौ रस(?श)नायां च कर्तव्यौ तावधोमुखौ ।**
**मुखदेशगतावेतौ शङ्खाभिनयने करौ ॥१४८॥** 153

करधनी या रस्सी के भाव-प्रदर्शन में उक्त दोनों हस्तों को अधोमुख करके प्रयुक्त करना चाहिए और शंख के अभिनय में दोनों को मुख पर रखना चाहिए।

**असंयुताविमावूर्ध्वावुत्थितौ निजपार्श्वतः ।**
**प्रयोक्तव्यौ करौ बालपादपाभिनये बुधैः ॥१४९॥** 154

छोट-छोटे पौधों के अभिनय में नाट्यविद् लोग दोनों अर्धचन्द्र हस्तों को ऊपर उठाये हुए, बिना सटाये ही अपने बगल में रखें।

**१८. अराल हस्त और उसका विनियोग**

**तर्जनी चापवद्वक्रा यत्राङ्गुष्ठस्तु कुञ्चितः ।**
**अङ्गुल्याः पूर्वपूर्वस्या अङ्गुली चेत्परा परा ॥१५०॥** 155
**भिन्नोच्चा स्यान्मनाग्वक्रा तदारालः स कीर्तितः ।**

यदि तर्जनी धनुष की तरह टेढ़ी हो, अंगुष्ठ कुछ मुड़ा हो; और पूर्व-पूर्व की उँगली से उत्तर-उत्तर की उँगली भिन्नता धारण किये उन्नत तथा कुछ वक्र हों (अर्थात् कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा क्रमशः उन्नत होती हुई उसी क्रम से कुछ वक्र हों) तो उसे **अराल हस्त** कहते हैं।

एषोऽन्नादावुपस्थाने याचने विजयेऽपि च ॥१५१॥ 156
अर्हादेवतयोश्च स्यादाशीर्वादे हृदि स्थितः ।

अन्न आदि, उपस्थिति या सामीप्य (उपस्थान), याचना, विजय, पूजा, देवता और आशीर्वाद के अभिनय में अराल हस्त को हृदय पर रखना चाहिए।

ऊर्ध्वास्यः शिरसः पश्चान्मयूराभिनये मतः ॥१५२॥ 157

मयूर के अभिनय में उक्त हस्त को शिर के पीछे ऊर्ध्वमुख करके रखना चाहिए।

अङ्कुशाभिनये त्वेष मनागूर्ध्वपराङ्गमुखः ।
देहस्वभावभावेषु हितेष्वेष स्वसम्मुखः ॥१५३॥ 158

अंकुश के अभिनय में उसे थोड़ा ऊपर पराङमुख करके रखना चाहिए और देह, स्वभाव, भाव तथा हित के आशय में उसे अपने सम्मुख रखना चाहिए।

निवारणे बहिःक्षिप्तोऽभिनेतव्योऽभिनेतृभिः ।
पराङ्मुखः परित्राणे मन्त्रिते मुखदेशगः ॥१५४॥ 159

अभिनेताओं को चाहिए कि निवारण (दूर करने या हटाने) के भाव-प्रदर्शन में वे उक्त हस्त को बाहर फेंक कर (अर्थात् झटका देकर) अभिनीत करें। बचाने के अभिनय में उसे पराङमुख करके और मंत्रणा के आशय में मुख पर रखकर प्रयुक्त करना चाहिए।

अखण्डिते महालाभे भाग्यमाहात्म्ययोरपि ।
योग्यतायां च कर्तव्य उत्थितोऽथ बहिर्मुखः ॥१५५॥ 160

अखण्डित वस्तु, महान् लाभ, भाग्य, माहात्म्य और योग्यता के अभिनय में उसे उठाकर बहिर्मुख कर देना चाहिए।

श्राद्धकर्मणि योज्योऽयमथ द्रव्ये सुगन्धिनि ।
नासादेशगतः कार्यस्तथा खल्विति दर्शने ॥१५६॥ 161
तर्जन्याङ्गुष्ठको युक्त्वा वियुक्तो जनने भवेत् ।
मुखदेशाद्विनिर्गच्छन्नुपदेशे मतः सताम् ॥१५७॥ 162

श्राद्धकर्म के अभिनय में अराल हस्त का उपयोग करना चाहिए। सुगन्धित पदार्थ के अभिनय में उसे नासिका के पास रखना चाहिए। 'वैसा निश्चित ही हुआ है' इस प्रकार के भाव-प्रदर्शन में अराल हस्त की तर्जनी

उँगली को अँगुष्ठ से मिला देना चाहिए; किन्तु प्रजनन या उत्पादन के आशय में उसे (तर्जनी को) अलग कर देना चाहिए। सज्जन लोगों का मत है कि उपदेश के भावाभिनय में उसे मुख के पास से निकालते हुए दिखाना चाहिए।

तोषे तूत्तानितः स स्याच्चन्द्रिकासु चलाङ्गुलिः।
केशानां बन्धने स्त्रीणामसो तेषां विकीर्णने ॥१५८॥ 163
द्विस्त्रिर्वा मण्डलाकारोऽथाह्वाने पतदङ्गुलिः।

सन्तोष के अभिनय में उक्त हस्त को उत्तान रखना चाहिए। चन्द्रिका (ज्योत्स्ना) के भाव-दर्शन में उसकी उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए। स्त्रियों के केशों के बाँधने तथा छितराने में उस हस्त को दो या तीन बार मण्डलाकार बनाना चाहिए। किसी को बुलाने के आशय में उसकी उँगलियाँ गिरती हुई प्रदर्शित करनी चाहिएँ।

धृतिस्थैर्यबलोत्साहगर्वगाम्भीर्यदर्शने ॥१५९॥ 164
नाभिक्षेत्रादयं कार्यो धीरैरुर्ध्वं शिरोवधिः।
अधोमुखो लाभ(?भाल)देशस्वेदापनयने भवेत् ॥१६०॥ 165

धैर्य, स्थिरता, बल, उत्साह, गर्व और गंभीरता दिखाने में उसे धीर पुरुष, नाभि के निकट ले जाकर ऊपर शिर तक ले जायँ। ललाट का पसीना पोंछने के आशय में उसे अधोमुख कर देना चाहिए।

भालस्थोऽप्यन्यपार्श्वाच्चेद् भ्रमन्नायाति वर्तुलः।
स्वपार्श्वे जनसंघे स्याद्विवाहे तु करद्वयम् ॥१६१॥ 166
प्रदक्षिणं भ्रमत् कार्यं स्वस्तिकाकारतां गतम्।
अङ्गुल्यग्रस्थितं कार्यं केवलस्तु प्रदक्षिणम् ॥१६२॥ 167

जन-समूह के अभिनय में **अराल हस्त** को ललाट पर रख कर वहाँ से गोलाकार में घुमाते हुए दूसरे के बगल से अपने बगल में ले आना चाहिए। विवाह के अभिनय में दोनों अराल हस्तों को **स्वस्तिक मुद्रा** में प्रदक्षिणा कराते हुए घुमाना चाहिए; किन्तु प्रदक्षिणा केवल उँगलियों के अग्रभाग द्वारा ही होनी चाहिए।

भ्रमन्प्रदक्षिणे सद्भिर्देवानां स नियुज्यते।
कोऽहं कस्त्वं मया सार्धं सम्बन्धः क्वेति भाषणे ॥१६३॥ 168
असंबद्धे बहिःक्षिप्ताङ्गुलिरेष पुनः पुनः।

सज्जनों के मत से देवताओं के प्रदक्षिणा में **अराल हस्त** को घुमाकर प्रदर्शित किया जाना चाहिए। **'मैं कौन हूँ? 'तुम कौन हो?' 'मेरे साथ सम्बन्ध कहाँ?'** इस प्रकार के असम्बद्ध भाषण के अभिनय में **अराल हस्त** की उँगलियों को बार-बार बाहर फेंकना या झटक देना चाहिए।

त्रिपताकोदितेष्वेष कर्मस्वित्याह सिंहनः ॥१६४॥ 169

सिंहन (?) का मत है कि **त्रिपताक हस्त** के कार्यों में भी इस हस्त का विनियोग हो सकता है।

**१९. शुकतुण्ड हस्त और उसका विनियोग**

तर्जन्यनामिके यत्रारालस्यात्यन्तवक्रिते।

तदासौ शुकतुण्डः स्यात् 170

यदि अराल हस्त मुद्रा की तर्जनी और अनामिका उँगलियों को वक्र कर दिया जाय तो उसे **शुकतुण्ड हस्त** (तोते की चोंच जैसा) कहा जाता है।

—पातने द्यूतपाशयोः ॥१६५॥

किसी के गिराने, द्यूत और पासे के भाव-प्रदर्शन में शुकतुण्ड हस्त का विनियोग होता है।

नाहं न त्वं न मे कार्यं त्वयेति कथनेऽपि च। 171

धारणे लेखनस्यापि वीणादेरपि वादने ॥१६६॥

प्रीतिकोपे नवेर्ष्यायामाह्वानेऽथ विसर्जने। 172

आर्द्रापराधके चाथ वञ्चने परिवर्तितः ॥१६७॥

नायिकाप्रार्थनोक्तौ स्याद् धिगित्युक्तौ तु रोषतः। 173

**न मैं', 'न तुम'** और न **'तुमसे मेरा कोई कार्य है'** ऐसे कथन; पत्र-धारण, लेखन, वीणा आदि के वादन, प्रीतिपूर्वक क्रोध, नयी ईर्ष्या, बुलाने, विदा करने, सरस या हास्यापराध के अभिनय में उक्त हस्त का विनियोग होता है। वंचन तथा नायिका की प्रार्थना के भाव-प्रदर्शन में इस हस्त को उलट कर प्रयुक्त करना चाहिए। **'धिक्कार है'** इस कथन के अभिनय में उसे सरोष प्रयुक्त करना चाहिए।

अवज्ञायां बहिःक्षिप्तस्त्रिनेत्र्यां भालसंश्रितः।

अनृतोक्ते यथौचित्यं ग्रहणेऽपि कमण्डलोः ॥१६८॥ 174

तिरस्कार के भाव-प्रदर्शन में उसे बाहर की ओर झटक देना चाहिए। त्रिनेत्र का भाव दर्शाने में उसे भाल पर रखना चाहिए; और मिथ्या भाषण तथा कमण्डलु धारण करने में उसका यथोचित प्रयोग करना चाहिए।

**२०. सन्दंश हस्त और उसका विनियोग**

लग्नाग्रे तु यदाङ्गुष्ठतर्जन्यौ निम्नकं मनाक् ।
तलमध्यमरालस्य तदा सन्दंश ईरितः ॥१६९॥ 175

यदि **अराल हस्त-मुद्रा** की तर्जनी और अंगुष्ठ उँगलियों के अग्रभाग को मिला दिया जाय और हथेली को भीतर की ओर थोड़ा झुका दिया जाय तो उसे **सन्दंश हस्त** (सँडासी) कहते हैं ।

इति त्रेधा भवेत्सोऽयमग्रजो मुखजस्तथा ।
पार्श्वजश्चाथ ते ज्ञेयास्त्रयोऽप्यन्वर्थलक्षणाः ॥१७०॥ 176

इस प्रकार **सन्दंश हस्त** के तीन भेद होते हैं : **अग्रज, मुखज** और **पार्श्वज** । उनके नामार्थ के अनुसार ही उनका प्रयोग भी समझना चाहिए ।

कण्टकोद्धरणे सूक्ष्मपुष्पावचयनेऽपि च ।
केशपर्णतृणादीनां ग्रहणेऽप्यग्रजो मतः ॥१७१॥ 177

काँटा निकालने, सूक्ष्म पुष्पों को चुनने और केश, पत्ते तथा तृण आदि के ग्रहण करने में **अग्रज सन्दंश हस्त** का उपयोग करना चाहिए ।

शल्यावयवनिष्कर्षेऽपकर्षे चाथ कीर्तितः ।
प्रसूनोद्धरणे वृन्ताद्धिगित्युक्तौ च रोषतः ॥१७२॥ 178
वर्त्यञ्जनशलाकादिपूरणे चास्यजस्त्वथ ।

शरीरांगों में बरछा या तीर मारने तथा निकालने, डण्ठल से फूल तोड़ने, **'धिक्कार है'** क्रोध से ऐसा कहने, बत्ती तथा अंजन-शलाका आदि के व्यवहार के अभिनय में **मुखज सन्दंश** का विनियोग करना चाहिए ।

मुक्तादीनां गुणक्षेपे वेधनेऽपि च पार्श्वजः ॥१७३॥ 179

मणि-मुक्तादि के गुण बताने तथा (उनके) वेधन करने के अभिनय में **अग्रज सन्दंश** का विनियोग करना चाहिए ।

सद्वितीयः प्रयोक्तव्यस्तत्त्वस्य च निरूपणे ।
ध्यानाभिनयने चित्रकर्मण्यपि च भाषणे ॥१७४॥ 180
सक्रोधे वामहस्तेन मनागग्रविवर्तनात् ।
निष्पीडने त्वलक्तस्य चायमुक्तो बुधैः करः ॥१७५॥ 181



१२

तत्त्व-निरूपण में **मुखज सन्दंश** का उपयोग करना चाहिए। ध्यान, चित्रकर्म, भाषण और थोड़ा आगे फैला कर बाँयें हाथ से महावर पीसने के अभिनय में इसी हस्त का विनियोग करना चाहिए, ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

**योगे स्तोके निर्धने च गुरुयज्ञोपवीतयोः ।**
**वितर्के पेलवासूयानेत्ररञ्जन (द) र्शने ॥१७६॥** 182
**कद्रौ तत्सुतविद्यायां विद्यातो (ष) विधावपि ।**
**स्मृतौ सम्भावनायां चानयनेऽपि हृदि स्थितः ॥१७७॥** 183

योग, अल्प, निर्धन, गुरु, यज्ञोपवीत, वितर्क, कोमल, असूया, काजल, दर्शन, कद्रु (नागों की माता), सर्पविद्या (**तत्सुतविद्यायां**), विद्या, सन्तुष्ट करने की विधि, स्मरण, संभावना और आनयन के भाव-प्रदर्शन में **मुखज सन्दंश हस्त** को हृदय पर अवस्थित करना चाहिए।

**उद्भिन्ने विच्युतः स स्यान्मोचनीये करावुभौ ।**
**विच्युतावथ नेत्रादिस्फुरणे स्यादसौ करः ॥१७८॥** 184
**तद्देशसंश्रिते लक्ष्ये त्वेष कार्यः पुरःस्थितः ।**

फोड़ कर निकली हुई वस्तु (जैसे सोता) के अभिनय में **सन्दंश हस्त** के सटे हुए अंश को अलग कर देना चाहिए। खोलने योग्य वस्तु के अभिनय में दोनों सन्दंश हस्तों को वैसे ही विच्युत कर देना चाहिए। नेत्र आदि के फड़कने के अभिनय में भी उसी **सन्दंश हस्त** का विनियोग करना चाहिए। नेत्र प्रदेश के लक्ष्य का आशय प्रकट करने में उसे आगे रखना चाहिए।

**पिपीलिकास्वयं योज्यश्चलाधोमुखः करः ॥१७९॥** 185
**क्षुद्रे विवर्तितः किञ्चिद्दोषे तु परिवर्तितः ।**
**परिणामे पार्श्वमुखो ब्राह्मणे वामबाहुतः ॥१८०॥** 186

चींटियों के अभिनय में **सन्दंश हस्त** को कम्पित करके अधोमुख कर देना चाहिए। क्षुद्र वस्तु के अभिनय में उसे घुमाकर और अल्प अपराध के आशय में बदल कर प्रदर्शित करना चाहिए। परिणाम के अभिनय के प्रदर्शन में उसे बगल की ओर झुका होना चाहिए और ब्राह्मण के भाव-निदर्शन में उसे बाँई भुजा की बगल से प्रयुक्त करना चाहिए।

**आगते दक्षिणे पार्श्वे कर्तव्यो दशनेषु तु ।**
**तद्देशस्थो बुधैरुक्तः कर्णस्थः कर्णभूषणे ॥१८१॥** 187

आये हुए व्यक्ति के अभिनय में **सन्दंश हस्त** को दाहिनी बगल में, दाँतों के अभिनय में दाँतों के पास और कर्णाभूषण के अभिनय में कान के पास रखना चाहिए, ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

मुखसंकोचने त्वेष देशीनृत्ये चलग्रहे।
वधूभिर्भालदेशस्थः कार्य श्वश्वादिवञ्चने ॥१८२॥ 188

मुँह छिपाने या सिकोड़ने, देशी नृत्य (ग्राम्य नृत्य), चलग्रह और बहुओं द्वारा सास आदि को ठगने के अभिनय में इस हाथ को ललाट पर रखना चाहिए।

युक्तेऽङ्कुरे तथा स्थाने इत्येवार्थे च युक्तितः।
यथौचित्यं योजनीयो लोकैर्नृत्यविशारदैः ॥१८३॥ 189

समीचीन वस्तु, अंकुर, स्थान, '**ऐसा ही**' इस कथन के अभिनय में नृत्यवेत्ताओं को चाहिए कि वे लोक-परम्पराओं के द्वारा यथोचित रूप में **सन्दंश हस्त** का विनियोग करें।

२१. मुकुल हस्त और उसका विनियोग

लग्नाग्राः संहता ऊर्ध्वाः पञ्चाप्यङ्गुलयो यदा।
तदासौ मुकुलः प्रोक्तोऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥१८४॥ 190

यदि ऊपर उठी हुई पाँचों उँगलियों के अग्रभाग को परस्पर मिला दिया जाय तो, नृपति अशोकमल्ल के मत से, उस मुद्रा को **मुकुल हस्त** कहते हैं।

बलिदाने भोजने च पद्मादिमुकुले तथा।
प्रार्थने देवपूजायां योज्योऽसौ लोकयुक्तितः ॥१८५॥ 191

बलिदान, भोजन, कमल आदि की कली, प्रार्थना और देवपूजा के अभिनय में लोकरीति के अनुसार **मुकुल हस्त** का विनियोग करना चाहिए।

विटकर्तृककान्तादिचुम्बनेऽङ्गीकृतेऽपि सः।
अधोमुखः सद्वर्णेषु विलोलविरलाङ्गुलिः ॥१८६॥ 192

कामुक द्वारा कान्ता आदि के चुम्बन, अंगीकार और उत्तम वर्णों (द्विजाति) के अभिनय में **मुकुल हस्त** को अधोमुख करके उसकी उँगलियों को विरल (विलग) करके कम्पित कर देना चाहिए।

राक्षसेऽधोमुखः कार्यश्चलाङ्गुलिरसौ करः।
ऊर्ध्वविच्युतसन्दंशस्तूत्क्षेपे सीकरेषु च ॥१८७॥ 193

राक्षस के अभिनय में **मुकुल हस्त** को अधोमुख करके उस की उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए। यदि किसी वस्तु को ऊपर फेंकने तथा जल-कणों का भाव प्रदर्शित करना हो तो उसकी ऊर्ध्वमुख सटी हुई उँगलियों को खोल देना चाहिए।

**असौ च सत्वरे दाने विकाश्य प्रकृतिं गतः।**
**मुहुर्मुहुरथ द्रव्यगणनायां प्रकीर्तितः ॥१८८॥** 194
**क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिरसौ पार्श्वात्पार्श्वोत्तरावधि।**

शीघ्रता और दान के अभिनय में **मुकुल हस्त** को विकसित कर (पुनः) यथापूर्व कर देना चाहिए। यदि द्रव्यों की गणना का भाव-प्रदर्शन करना हो तो उसकी उँगलियों को खोलकर उसे एक बगल से दूसरी बगल में करना चाहिए।

**उच्छ्वासे च्युतसन्दंशो मुखक्षेत्रगतो भवेत् ॥१८९॥** 195

उच्छ्वास (ऊर्ध्व स्वास) लेने के आशय में उसे सँड़सी की तरह खोल कर मुख के पास रखना चाहिए।

**पञ्चसंख्यादिनिर्देशे तथाच्छुरितकेऽप्यसौ।**
**यत्कुचादौ कामिनीनां सशब्दं नखलेखनम्।** 196
**अङ्गुलीपञ्चकेन स्यात्तदाच्छुरितकं विदुः ॥१९०॥**

पाँच की संख्या आदि बताने तथा नख-क्षत के अभिनय में **मुकुल हस्त** का प्रयोग करना चाहिए। कामिनियों के कुच आदि पर पाँचों उँगलियों के प्रहार से शब्द के साथ जो नख-क्षत किया जाता है उसी को **आच्छुरितक** कहते हैं।

### २२. पद्मकोश हस्त और उसका विनियोग

**अङ्गुष्ठसहिताङ्गुल्यो विरलाश्चापवत्तताः।** 197
**ऊर्ध्वा यस्मिन्नलग्नाग्राः स करः पद्मकोशकः ॥१९१॥**

यदि अँगुष्ठ सहित पाँचों उँगलियाँ अलग-अलग रहकर धनुष की तरह मुड़कर ऊर्ध्वमुख हों और उनके अग्रभाग एक-दूसरे को स्पर्श न करते हों, तो उस मुद्रा को **पद्मकोश हस्त** कहते हैं।

**असौ देवार्चने स्त्रीणां कुचयोस्तद्ग्रहेऽपि च।** 198
**कबरीग्रहणे स्त्रीणां पुष्पाणां च ग्रहे तथा ॥१९२॥**

देवपूजन, स्त्रियों के कुच और कुचों को पकड़ने, स्त्रियों का जूड़ा पकड़ने और पुष्पों के चुनने के अभिनय में **पद्मकोश हस्त** का विनियोग होता है।

**नान्दीपिण्डप्रदाने तूत्तानः क्षिप्ताङ्गुलिर्मतः ।** 199
**अधोमुखः कुञ्चिताग्रः कपित्थश्रीफलग्रहे ॥१९३॥**

नान्दी श्राद्ध में पिण्डदान करने के आशय में पद्मकोश हस्त को उत्तान करके उसकी उँगलियों को फेंकने की शक्ल में करना चाहिए। कैथ और बेल के ग्रहण में उसे अधोमुख करके, उस की उँगलियों के अग्रभाग को कुंचित कर देना चाहिए।

**भूस्थितार्थग्रहे लोभेऽप्युत्तानो बलिकर्मणि ।** 200
**क्षिप्ताङ्गुलिरथासौ तु पश्चादर्थे चलाङ्गुलिः ॥१९४॥**

भूमि पर या भू-गर्भ में स्थित द्रव्य के आदान, लोभ और बलिकर्म के भाव-प्रदर्शन में उक्त हस्त को उत्तान करके अँगुलियों को क्षिप्त कर देना चाहिए। पश्चात् अर्थ के स्वीकार या निर्देश के अभिनय में उसकी उँगलियों को कम्पित कर देना चाहिए।

**अधोमुखौ यथौचित्यं बीजपूरादिके फले ।** 201
**अंसग्रहे च सिंहाद्यैरथातिविरलाङ्गुली ॥१९५॥**

बिजौरा नींबू आदि फलों के अभिनय में दोनों पद्ममुख हस्तों को यथोचित रूप से अधोमुख करना चाहिए। सिंह आदि के द्वारा कन्धा पकड़ लिये जाने के अभिनय में दोनों पद्ममुख हस्तों की उँगलियाँ अलग करके प्रयुक्त करनी चाहिएँ।

**संश्लिष्टमणिबन्धौ च फुल्लपद्मादिदर्शने ।** 202
**कुचदेशस्थितौ कार्यौ प्रौढायां पद्मकोशकौ ॥१९६॥**

खिले हुए कमल आदि पुष्पों के भावाभिव्यंजन में दोनों पद्मकोश हस्तों की कलाइयों को परस्पर सटा देना चाहिए और प्रौढ़ा नायिका के अभिनय में उन्हें कुचों पर रख देना चाहिए।

**पक्षिणां पञ्जरेष्वेतौ तथा संकीर्णवेश्मनि ।** 203
**विरलाङ्गुलिकौ कार्यावन्योन्यान्तरनिर्गतौ ॥१९७॥**

पक्षियों के पिंजरों तथा संकीर्ण गृह के अभिनय में उक्त दोनों हस्तों को एक-दूसरे के भीतर से निकालते हुए उनकी उँगलियों को विरल कर देना चाहिए।

संध्याकाले पृथक्स्यातां मणिबन्धनताविमौ । 204
कुचयोः सम्मुखावेतौ काठिन्याभिनये करौ ॥१९८॥

संध्याकाल के अभिनय में दोनों पद्ममुख हस्तों की कलाइयों को अलग करके प्रदर्शित करना चाहिए; और कुचों की कठोरता के आशय में उन्हें सम्मुख रखकर दिखाना चाहिए ।

२३. ऊर्णनाभ हस्त और उसका विनियोग

पद्मकोशस्य हस्तस्य पञ्चाङ्गुल्योऽपि कुञ्चिताः । 205
यदा यत्र तदा स स्मादूर्णनाभाभिधः करः ॥१९९॥

यदि **पद्मकोश हस्त** मुद्रा की पाँचों उँगलियाँ मुड़ी हुई हों तो उसे **ऊर्णनाभ हस्त** कहते हैं ।

एष वस्तुग्रहे चौर्यात् पङ्काश्मादिग्रहेऽपि च । 206
कुछ(?ष्ठ) व्याधौ तथा शीर्षकण्डूयायां च कीर्तितः ॥२००॥

चोरी से किसी वस्तु को लेने, कीचड़ तथा लोहा आदि ग्रहण करने, कुष्ठरोग और शिर खुजलाने के अभिनय में **ऊर्णनाभ हस्त** का विनियोग करना चाहिए ।

उद्धृत्याधोमुखः कार्यो मण्डकाभिनये करः । 207

मण्डक (एक प्रकार की रोटी या माँड़; मण्डूक पाठ के अर्थ में मेंढक) के अभिनय में उक्त हस्त को ऊपर उठाकर अधोमुख कर देना चाहिए ।

विधायाधोमुखावेतौ नाभिदेशे प्रसारितौ ॥२०१॥
नीतोर्ध्वतर्जनीकौ चेत्तदान्त्रेषु नियोजितौ । 208
चिबुकस्थाविमौ कार्यौ व्याघ्रसिंहादिदर्शने ॥२०२॥

यदि आँतों का अभिनय प्रदर्शित करना हो तो दोनों ऊर्णनाभ हस्तों की तर्जनियों को ऊर्ध्वमुख करके तथा दोनों हस्तों को अधोमुख करके नाभिदेश में फैला देना चाहिए । बाघ तथा सिंह आदि का भाव प्रकट करने में उनको ठुड्डी पर रखना चाहिए ।

२४. अलपल्लव हस्त और उसका विनियोग

आवर्तिन्यः पार्श्वगता हस्तस्याङ्गुलयः स्थिताः । 209
तले यस्य विकीर्णाश्चेत्तदासावलपल्लवः ॥२०३॥

जिस हाथ की (पाँचों) उँगलियाँ पार्श्वगत होकर वृत्ताकार रूप में मुड़ी हुई और हथेली की ओर फैली हों, उसे **अलपल्लव हस्त** कहते हैं।

**अयमेवालपद्मः स्यादित्यन्येऽत्र बभाषिरे।** 210
**ता एव परिवर्त्तिन्यो भूत्वा व्यवर्त्तिता मताः॥२०४॥**

कुछ पूर्वाचार्यों ने **अलपल्लव** को ही **अलपद्म** नाम से कहा है, जिससे उसकी पार्श्वगत उँगलियाँ परिवर्तित होकर छितराये या अलग-अलग रूप में निर्दशित की गयी हैं।

**अयुक्तानृततुच्छोक्तौ कस्य त्वमिति भाषणे।** 211
**नास्तीत्युक्तौ च नारीभिर्लोकयुक्त्यैष युज्यते॥२०५॥**

असंगत, मिथ्या तथा छोटी बात कहने, '**तुम किसके हो ?**' ऐसा भाषण करने और '**नहीं है**' इस तरह बोलने में **अलपल्लव हस्त** का विनियोग होता है। नारियों को चाहिए कि वे लोकरीति के अनुसार उसका प्रयोग करें।

**सर्वार्प्प(?र्थ)ग्रहणे योज्यो वामहस्तेन पातितः।** 212
**अनुरूपे प्रसन्ने च विश्रान्तौ च गुणोत्तरे॥२०६॥**
**विनष्टे च तथासत्ये शोभासंहर्षयोरपि।** 213
**केवले परितोषे च रसग्रहणयोरपि॥२०७॥**
**मुधा विनार्थे सिंहे चावहिते नवभोगयोः।** 214
**क्रीडायामपि पर्याप्तेऽप्येष धीरैर्नियुज्यते॥२०८॥**

सब प्रकार के अर्थों के ग्रहण में बाँये **अलपल्लव हस्त** को गिरा कर प्रयुक्त करना चाहिए। अनुरूप, प्रसन्न, विश्राम, गुणश्रेष्ठ, विनष्ट, सत्य, शोभा, हर्ष, केवल, परितोष, रस, ग्रहण, व्यर्थ, सिंह, सावधान, नवीन, भोग, क्रीड़ा और पर्याप्त के अभिनय में भी धीर पुरुष इस हस्त का विनियोग करते हैं।

**लोकयुक्त्यनुसारेण साधौ त्वेष चलो मतः।** 215
**तारुणोऽसौ प्रसिद्धे स्याद्वक्षस्थस्त्वात्मदर्शने॥२०९॥**

साधु के अभिनय में उक्त हस्त को कम्पित कर लोकरीति के अनुसार प्रयुक्त करना चाहिए। प्रसिद्ध वस्तु के अभिनय में यह हाथ सर्वथा उपयुक्त है। आत्मदर्शन के भाव-प्रदर्शन में उसे छाती पर रखना चाहिए।

देवेषु दक्षिणो वामबाहुःशीर्ष समुत्थितः । 216
सुखे कर्णगतः कार्यो नवनीते त्वधोलुठन् ॥२१०॥

देवताओं के अभिनय में दाँया **अलपल्लव हस्त** बाम बाहु या शिर पर रखना चाहिए। सुख के अभिनय में उसे कान के पास रखना चाहिए और मक्खन के भाव-प्रदर्शन में नीचे लुढ़का देना चाहिए ।

विशेषे तु चलावेतौ कान्तायां कुचदेशगौ । 217

किसी विशेष वस्तु या बात के अभिनय में दोनों अललपल्लव हस्तों को कम्पित कर प्रयुक्त करना चाहिए और प्रिया के अभिनय में उन्हें कुचों के पास रख देना चाहिए ।

एवमन्ये बुधैरुह्याः शास्त्रलोकानुसारतः ॥२११॥

नृत्तविद्या-विशारदों को चाहिए कि शास्त्र-दृष्टि और लोक-परम्परा के अनुसार वे **अलपल्लव हस्त** का अन्य अभिनयों में भी विनियोग करें ।

चौबीस असंयुत हस्तों का निरूपण समाप्त

●

## संयुत हस्त और उनका विनियोग

**१. अंजलि हस्त और उसका विनियोग**

तलश्लिष्टौ पताकौ चेत्तदा हस्तोऽञ्जलिर्मतः । 218

यदि दोनों पताक हस्तों के तल भाग को परस्पर जोड़ दिया जाय तो उसे **अंजलि हस्त** कहते हैं ।

देवताया द्विजातेश्च गुरोरपि नमस्कृतौ ॥२१२॥
शिरोवक्षोमुखस्थोऽयं क्रमात्पुंभिर्नियुज्यते । 219
कामिनीभिर्यथाकाममिति नृत्यविदां मतम् ॥२१३॥

देवता, ब्राह्मण तथा गुरु को नमस्कार करने में **अंजलि हस्त** को क्रमशः शिर, वक्ष और मुख पर प्रदर्शित करना चाहिए । नृत्याचार्यों का अभिमत है कि पुरुषों और स्त्रियों को उसका यथेच्छा प्रयोग करना चाहिए ।

२. कपोत हस्त और उसका विनियोग

मूलाग्रपार्श्वसंश्लेषाद्विश्लेषात्तलयोरपि । 220
यदा हस्तौ कपोताभौ कपोतो हस्तकस्तदा ॥२१४॥
केचिदेनं करं प्राहुः कूर्मसंज्ञं विचक्षणाः । 221

यदि दोनों हाथों के मूल भाग (कलाई) और अग्र भाग (उँगलियों के छोर) आपस में सटे रहें और तल भाग (हथेली) अलग-अलग रहे, तो उसे **कपोत हस्त** कहते हैं। कुछ विद्वान् इसे **कूर्म हस्त** कहते हैं।

प्राणामे विनये कार्यो गुरुसंभाषणेऽपि च ॥२१५॥

प्रणाम करने, विनय और गुरु से बात-चीत करते समय **कपोत हस्त** का विनियोग होता है।

प्राङ्मुखः कम्पितो वक्षःस्थितः शीते स्त्रियामपि । 222
कातरे स्यादथेयत्तापरिच्छेदे तु विच्युतः ॥२१६॥

शीत और स्त्री के अभिनय में इस हस्त को कम्पित एवं पूर्वमुख रूप में छाती पर रखना चाहिए। कातरता और परिणाम या सीमा-निर्धारण के आशय में उसे विच्युत (अर्थात् सटे हुए अंश को अलग) कर देना चाहिए।

सखेदवचसीदानीमित्यर्थस्य च सूचने । 223
आज्ञाप्रतिज्ञयोर्नाथे प्रसादेऽवहितेऽपि च ॥२१७॥
पक्षपाते पराधीने भक्षणे प्रतिपादने । 224
सेवायामपि योज्योऽसौ लोकयुक्त्यनुसारतः ॥२१८॥

खद के साथ बोलने, '**इस समय**' इस अर्थ को सूचित करने, आज्ञा, प्रतिज्ञा, स्वामी, प्रसन्नता, सावधान, पक्षपात, पराधीन, भक्षण, प्रतिपादन (निरूपण या समर्पण) और सेवा के अभिनय में भी लोक-परम्परा के अनुसार **कपोत हस्त** का प्रदर्शन करना चाहिए।

विच्युतश्लिष्टपार्श्वोऽसौ भिक्षायां करपात्रिणाम् । 225

जिनके हाथ ही पात्र का काम करते हैं, ऐसे भिक्षुओं को भिक्षा देने के अभिनय में **कपोत हस्त** के तल मुख से सटे हुए भाग को अलग कर देना चाहिए।

इतराण्यपि कर्म्माणि बुधैरूह्यानि युक्तितः ॥२१९॥



११

इनके अतिरिक्त अन्य कार्यों एवं भावों के अभिनय में भी विद्वान् नृत्यवेत्ताओं को यथाविधि **कपोत हस्त** का प्रदर्शन करना चाहिए ।

**३. कर्कट हस्त और उसका विनियोग**

करयोरखिलाङ्गुल्योऽन्योन्यमन्तरनिर्गताः । 226
दृश्यन्तेऽन्तर्बहिर्वा चेत्तदा स्यात्कर्कटः करः ॥२२०॥

यदि दोनों हाथों की सभी उँगलियाँ परस्पर बीच से निकल कर या गुँथी होकर भीतर और बाहर दोनों ओर से दिखायी दें, तब उसे **कर्कट हस्त** कहते हैं ।

एष सुप्तोत्थजृम्भायामङ्गानां च प्रसारणे । 227
अग्रे पार्श्वेऽथवोर्ध्वे वा पराङ्मुखतलः करः ॥२२१॥

सोकर उठने के बाद जमुहाई लेने, अंगों के फैलाने, आगे, बगल अथवा ऊपर के भाव प्रदर्शित करने में **कर्कट हस्त** के तल भाग (हथेली) को पराङ्मुख कर देना चाहिए ।

बहिस्स्थिताङ्गुलिस्तु स्यादनङ्गादङ्गमोटने । 228
स्थूलोदरेऽप्यसावेवोदरसंस्थित इष्यते ॥२२२॥

अंगों में कामजन्य पीड़ा का भाव दर्शाने में उक्त हस्त की उँगलियों को बाहर की ओर रखना चाहिए। स्थूल उदर का भाव दिखाने में उसी हस्त को पेट पर रखना चाहिए ।

हनुं बिभ्रदसौ पृष्ठेऽङ्गुलीनां खेदसूचने । 229
अथान्तःस्थाङ्गुलिः कार्यश्चिन्तायां चिबुके स्थितः ॥२२३॥

खेद प्रकाश करने के आशय में **कर्कट हस्त** की उँगलियों पर ठुड्ढी रख देनी चाहिए और चिन्ता के भाव-दर्शन में उसकी उँगलियों को ठुड्डी पर रख देना चाहिए ।

ईषद्वक्रीकृतान्योन्याभिमुखाङ्गुलिरेष तु । 230
शङ्खस्य धारणे योज्यो मुखेऽधः स्नानकर्मणि ॥२२४॥
द्विस्त्रिर्वा मूर्ध्नि संयोज्यो गृहे तु स्यादधस्तलः । 231
हृदयक्षेत्रगः कार्यः किञ्चित्कुञ्चितकूर्परः ॥२२५॥

शंख धारण करने की मुद्रा में उक्त हस्त की उँगलियों को थोड़ा टेढ़ा और एक-दूसरे के आमने-सामने करके मुख पर रखना चाहिए। स्नान करने के अभिनय में उसे नीचे रखना चाहिए; अथवा दो-तीन बार मस्तक

पर रख देना चाहिए। घर का भाव दिखाने में उसके निम्न भाग को नीचे की ओर करके, कुहनी को कुछ मोड़ कर, हृदय पर रखना चाहिए।

अन्तःपुरे वामभागस्थितः कार्योऽथ कार्मुके। 232
पार्श्वोत्थितः प्रयोक्तव्यः पराङ्मुखतलाङ्गुलिः ॥२२६॥

अन्तःपुर के अभिनय में उक्त हस्त को वाम भाग में अवस्थित करना चाहिए और धनुष के अभिनय में उसकी उँगलियों को पीछे की ओर फेरकर बगल से उठाते हुए प्रदर्शित करना चाहिए।

४. गजदन्त हस्त और उसका विनियोग

सर्पशीर्षौ करौ मध्यं स्कन्धकूर्परयोर्मिथः। 233
दधाते चेत्तदा प्रोक्तो गजदन्ताभिधः करः ॥२२७॥

यदि दोनों **सर्पशीर्ष हस्त** परस्पर कन्धे और कोहनी के मध्य भाग को धारण करें तब उस मुद्रा को **गजदन्त हस्त** कहते हैं।

स्कन्धस्थौ सर्पशीर्षौ चेदितरेतरसम्मुखौ। 234
कुञ्चत्कूर्प्परकौ प्राहुर्गजदन्तं तथाऽपरे ॥२२८॥

कुछ आचार्यों का कहना है कि यदि दोनों **सर्पशीर्ष हस्त** कन्धे पर अवस्थित होकर एक-दूसरे के आमने सामने रहें, और उनकी कोहनियाँ मुड़ी रहें, तब उस मुद्रा को **गजदन्त हस्त** कहते हैं।

वरवध्वोर्विवाहार्थं नयने स प्रयुज्यते। 235

वर-वधू को विवाहार्थ ले जाने के अभिनय में **गजदन्त हस्त** का विनियोग होता है।

भारस्योद्वहने स्तम्भग्रहणे च गतागते ॥२२६॥
अधः शैलशिलोत्पाटे करः कार्यो विचक्षणैः। 236

सुधीजनों के अभिमत से बोझा ढोने, खूँटा पकड़ने, आने-जाने और पर्वतशिला के उखाड़ने के अभिनय में उक्त हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

अस्यान्येऽभिनया धीरैर्विज्ञेयाः शास्त्रदृष्टितः ॥२३०॥

**गजदन्त हस्त** के शास्त्रदृष्टि से अन्य अभिनय-प्रयोगों को विद्वानों द्वारा जान लेना चाहिए।

५. निषध हस्त और उसका विनियोग

कपित्थं मुकुलं हस्तं परिवेष्ट्य यदा स्थितः। 237
तदा निषधनामासौ–

यदि एक हाथ को कपित्थ मुद्रा में बना कर उससे दूसरे **मुकुल हस्त** को परिवेष्टित कर अवस्थित किया जाय तो उसे **निषध हस्त** कहते हैं ।

—सम्यक्स्थापितवस्तुनि ॥२३१॥

निष्पेषणे तथा सत्यमिदमित्यपि कीर्त्तने । 238

सम्यक्तया च शास्त्रार्थस्वीकारेऽपि प्रकीर्तितः ॥२३२॥

भली भाँति स्थापित की गयी वस्तु, पीसने, 'यह सत्य है' इस प्रकार के कथन और सम्यक् प्रकार से शास्त्रार्थ स्वीकार करने के अभिनय में **निषध हस्त** का विनियोग होता है ।

पूर्वोक्तं गजदन्तं तु निषधं संजगुः परे । 239

गर्वगाम्भीर्यधैर्यादिष्वसौ शौर्ये च कीर्तितः ॥२३३॥

कुछ आचार्य पूर्वोक्त **गजदन्त हस्त** को ही **निषध हस्त** कहते हैं । गर्व, गाम्भीर्य, धैर्य और वीरता आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**६. पुष्पपुट हस्त और उसका विनियोग**

बाह्यपार्श्वसुसंश्लिष्टौ सर्पशीर्षौ यदा करौ । 240

तदा पुष्पपुटौ हस्तोऽशोकमल्लेन कीर्तितः ॥२३४॥

यदि दोनों सर्पशीर्ष हस्तों के वाह्य पार्श्वों को भली भाँति मिला दिया जाय तो, अशोकमल्ल के मत से, उस मुद्रा को **पुष्पपुट हस्त** कहा जाता है ।

पुष्पधान्यजलादीनामर्पणे ग्रहणेऽपि च । 241

पुष्पाञ्जलौ प्रसादे चोपायनेऽपि स कीर्तितः ॥२३५॥

फूल, धान्य और जल आदि के देने-लेने, पुष्पांजलि, प्रसन्नता तथा उपहार के अभिनय में **पुष्पपुट हस्त** का विनियोग होता है ।

**७. खटकावर्धन हस्त और उसका विनियोग**

अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ खटकामुखसंज्ञितौ । 242

यदा यद्वा स्वस्तिकौ तौ मणिबन्धस्थितौ तथा ॥२३६॥

खटकावर्धमानोऽसौ—

यदि दोनों खटकामुख हस्तों को एक-दूसरे के आमने-सामने कर दिया जाय; अथवा अन्योन्याभिमुख करके दोनों स्वस्तिक हस्तों को परस्पर कलाइयों पर अवस्थित किया जाय, तो उसे **खटकावर्धन हस्त** कहते हैं ।

–प्रणामकरणे मतः । 243
ग्रथने च प्रसूनानां तथ्योक्तौ चादिमे मते ॥२३७॥

प्रणाम करने, फूल गूँथने, सत्य बोलने और आदिम मत के अभिनय में **खटकावर्धन हस्त** का विनियोग होता है।

मतान्तरे कामिनां स पर्णादिग्र(ह)णे करः । 244
तिर्यगास्योऽथ सूर्यस्योदये तूत्तानितो मतः ॥२३८॥
निर्णयाङ्गीकृतौ योज्यो मितेऽपि स युक्तितः । 245

कमियों के मतभेद और पत्ते आदि के ग्रहण के अभिनय में उक्त हस्त को तिरछा करके प्रस्तुत करना चाहिए। सूर्योदय के अभिनय में उसे उत्तान रखना चाहिए। निर्णय को स्वीकार करने और परिमितता का भाव दर्शाने में उसे यथाविधि प्रयुक्त करना चाहिए।

अस्य क्रियान्तराण्येवं सद्भिरूह्यानि शास्त्रतः ॥२३९॥

खटकावर्धन हस्ताभिनय के अन्य प्रयोगों को शास्त्रानुसार जान लेना चाहिए।

८. उत्संग हस्त और उसका विनियोग

स्वस्तिकाकृतिसम्प्राप्तावन्योन्यस्कन्धदेशगौ । 246
अरालौ विततौ स्वाभिमुखौ स्यातां यदा तदा ॥२४०॥
उत्सङ्गं हस्तमाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणीः । 247

यदि दोनों अराल हस्तों को **स्वस्तिक हस्त** मुद्रा में करके संमुखावस्था में एक-दूसरे की बाजुओं के ऊपर रख दिया जाय तो उसे, महाराज अशोकमल्ल ने, **उत्संग हस्त** कहा है।

स्वस्तिकं केचिदत्राहुरार्या दक्षिणदेशगम् ॥२४१॥
अधस्तलत्वमप्याहुरन्ये त्वत्र विचक्षणाः । 248

कुछ विद्वान् उक्त हस्त को **दक्षिणदेशगामी स्वस्तिक** कहते हैं। दूसरे विद्वान् उसे **अधस्तल** भी कहते हैं।

बहुयत्नप्रसाध्येऽर्थे तुषाराश्लेषयोरपि ।
अलङ्कारानुपादाने लज्जादावपि सुभ्रुवाम् ॥२४२॥ 249

बहु यत्न-साध्य वस्तु, तुषार, आलिंगन, आभूषण न पहनने और सुन्दरियों की लज्जा आदि के अभिनय में **उत्संग हस्त** का विनियोग होता है।

**९. स्वस्तिक हस्त और उसका विनियोग**

**खटकास्यौ पताकौ वा यद्वारालौ करौ यदा ।**
**मणिबन्धस्थितौ स्यातामितरेतरपार्श्वगौ ॥२४३॥** 250
**उत्तानौ वामभागस्थौ यद्वा हृदयसंस्थितौ ।**
**तदा करः स्वस्तिकाख्योऽशोकमल्लेन कीर्तितः ॥२४४॥** 251

यदि दोनों खटकामुख हस्तों या पताक हस्तों अथवा अराल हस्तों को एक-दूसरे की बगल में करके उनकी कलाइयों को बाँध कर उत्तान करके बाँयी ओर या हृदय पर रख दिया जाय, तो उस मुद्रा को अशोकमल्ल ने **स्वस्तिक हस्त** के नाम से कहा है।

**विच्युतोऽसौ कामिनीभिरेवमस्त्विति भाषणे ।**
**विस्तीर्णे गगनेऽम्भोधिप्रसृतौ च नियुज्यते ॥२४५॥** 252

कामिनियों के '**अच्छा**' ऐसा कहने, विस्तृत आकाश और समुद्र-विस्तार के अभिनय में **स्वस्तिक हस्त** को फैला कर प्रयुक्त करना चाहिए।

**स्वस्तिकाधोमुखौ रात्रौ विच्युतोत्तानितौ दिने ।**
**मेधप्रच्छादिते तस्मिन् विच्युताधोमुखाविमौ ॥२४६॥** 253

रात्रि के अभिनय में दोनों स्वस्तिक हस्तों को अधोमुख, दिन के अभिनय में फैला कर उत्तान और मेघाच्छन्न दिन के अभिनय में फैलाकर अधोमुख रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

**१०. दोला हस्त और उसका विनियोग**

**विरलाङ्गुली पताकौ चेल्लम्बमानौ श्लथांसकौ ।**
**तदा दोलाभिधो हस्तो**

यदि दोनों **पताक हस्त** लम्बायमान तथा शिथिल या ढीले हों और उनकी उँगलियाँ अलग-अलग हों, तो उसे **दोला हस्त** कहते हैं।

**—विषादे मदमूर्च्छयोः ॥२४७॥** 254

**व्याधौ च सम्भ्रमे गर्वगतावपि स युज्यते ।**
**धीरैः स्तब्धो दोलितो वा पार्श्वयोर्लोकयुक्तितः ॥२४८॥** 255

विषाद, मद, मूर्च्छा, व्याधि, हड़बड़ी तथा गर्वपूर्वक चलने के अभिनय में **दोला हस्त** का विनियोग होता है। धीर पुरुषों को चाहिए कि दोनों पार्श्वों के अभिनय में **दोला हस्त** को लोक-परम्परा के अनुसार निश्चल या चलायमान, जैसा उचित समझें, प्रयुक्त करें।

**११. अवहित्थ हस्त और उसका विनियोग**

**शुकतुण्डाभिधौ हस्तौ हृदयक्षेत्रसम्मुखौ ।**
**अधोमुखौ विधायाधो नीतौ ताववहित्थकः ॥२४९॥** 256

यदि दोनों **शुकतुण्ड हस्त** हृदय के सामने अधोमुख करके नीचे की ओर ले जाये जाँय तो उसे **अवहित्थ हस्त** कहते हैं।

**निःश्वासौत्सुक्यदौर्बल्यकायकार्श्येष्वसौ मतः ।**
**सतृष्णे चानुरक्तेऽपि प्रतापे मण्डलेऽपि च ॥२५०॥** 257

साँस को बाहर निकालने या साँस लेने, उत्सुकता, दुर्बलता, शरीर-क्षीणता, सतृष्ण, अनुरक्त होने, प्रताप और मण्डल के अभिनय में **अवहित्थ हस्त** का विनियोग होता है।

**१२. मकर हस्त और उसका विनियोग**

**यदा पताकौ संश्लिष्टावुपरिस्थौ परस्परम् ।**
**उध्वाङ्गुष्ठावधौवक्त्रौ तदासौ मकरः करः ॥२५१॥** 258

यदि दोनों पताक हस्तों को ऊपर उठा कर तथा उनकी हथेलियों को निम्नमुख करके (अर्थात् एक हथेली की पीठ पर दूसरी हथेली को रख कर) उन्हें परस्पर मिला दिया जाय और दोनों हाथों के अँगुष्ठ ऊपर की या बाहर की ओर निकले हों, तो उसे **मकर हस्त** कहते हैं।

**क्रव्यादे मकरे मीने सिंहे च द्वीपिदर्शने ।**
**नदीपूरे च नक्रेऽपि धीरैरेष प्रयुज्यते ॥२५२॥** 259

राक्षस, मकर, मछली, सिंह, हाथी, नदी-प्रवाह और घड़ियाल के अभिनय में **मकर हस्त** का विनियोग होता है।

१३. वर्धमान हस्त और उसका विनियोग

मृगशीर्षौ हंसपक्षौ करौ वा सर्पशीर्षकौ ।
पराङ्मुखौ स्वस्तिकौ चेद्वर्धमानस्तदा करः ॥२५३॥ 260

यदि दोनों मृगशीर्ष या हंसपक्ष अथवा सपशीर्ष हस्तों को पराङमुख (उलटा) करके स्वस्तिकाकार बना दिया जाय तो उसे **वर्धमान हस्त** कहते हैं ।

कपाटोद्घाटने त्वेष च्युतस्वस्तिक इष्यते ।
तादृगेव भवेदेष वक्षसः प्र(विदारणे) ॥२५४॥ 261

किवाड़ खोलने के अभिनय में इस हाथ की स्वस्तिक मुद्रा को खोल कर प्रयुक्त करना चाहिए । छाती फाड़ने के अभिनय में भी उसे उसी रूप में प्रदर्शित करना चाहिए ।

विना कृतं स्वस्तिकेन केचिदिच्छन्ति तं बुधाः ।
सीमन्ताभिनये योज्यः स्त्रीभिस्तद्देशगः करः ॥२५५॥ 262

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि **वर्धमान हस्त** को स्वस्तिक मुद्रा की सहायता के बिना ही प्रदर्शित करना चाहिए । सिर की माँग (सीमन्त) के अभिनय में स्त्रियों को चाहिए कि **वर्धमान हस्त** को वे सीमन्त पर अवस्थित करें ।

तेरह संयुत हस्तों का निरूपण समाप्त

## नृत्तहस्त और उनका विनियोग

१ चतुरस्र हस्त और उसका विनियोग

समांसकूर्परौ वक्षःस्थलादष्टाङ्गुलान्तरौ ।
स्थितावुरः पुरस्ताच्चेत्प्राङ्मुखौ खटकामुखौ । 263
चतुरस्रो तदा–

यदि दोनों मांसल कुहनियाँ छाती से आठ अँगुल की दूरी पर अवस्थित रहें और दोनों **खटकामुख हस्त** छाती के सामने पूर्वमुख होकर रहें तब उस मुद्रा को **चतुरस्र हस्त** कहते हैं ।

–हारमौलाद्याकर्षणे करौ ॥२५६॥

हार और मुकुट आदि के उतारने में **चतुरस्र हस्त** का विनियोग होता है।

२. उद्वृत्त हस्त और उसका विनियोग

चतुरस्रौ विधायादावथोद्वेष्टितकर्मणा । 264
हंसपक्षावुरोदेशे कृतावेकस्तयोः करः ॥२५७॥
व्यावृत्तिक्रिययोर्ध्वं तु गत्वोत्तानो वृजेदधः । 265
अथान्यः परिवृत्त्याधोमुखो वक्षो वृजेद्यदि ॥२५८॥
तद्वृत्तौ करौ स्यातां–

पहले दोनों हाथों को उद्वेष्टित मुद्रा के द्वारा चतुरस्र बना दिया जाय; तदनन्तर उन्हें हंसपक्ष मुद्रा में करके हृदय पर रख दिया जाय। उनमें से एक को व्यावृत्त क्रिया द्वारा ऊपर ले जाकर उत्तानावस्था में नीचे कर दिया जाय। दूसरे **हंसपक्ष हस्त** को परिवृत्त करके अधोमुख छाती पर रख दिया जाय; तो उस अभिनय मुद्रा को **उद्वृत्त हस्त** कहते हैं।

––तालवृन्तनिदर्शने । 266

पंखे के अभिनय में उद्वृत्त हस्तों का विनियोग होता है।

एतावेव परे प्राहुस्तालवृन्ताभिधौ करौ ॥२५९॥

कुछ नाटचाचार्यों ने उक्त उद्वृत्त हस्तों को **तालवृन्त** नाम से कहा है।

व्यावृत्तपरिवृत्तौ चेत् हंसपक्षौ पुरोमुखौ । 267
तदोद्वृत्तौ जगुः केचित्–

यदि दोनों हंसपक्ष हस्तों को व्यावृत्त तथा परिवृत्त करके पूर्व मुख कर दिया जाय तो, कुछ विद्वानों के मत से, उसे **उद्वृत्त हस्त** कहते हैं।

–जयशब्दनिरूपणे ॥२६०॥

**'जय'** शब्द के उच्चारण में उसका विनियोग होता है।

३. तलमुख हस्त और उसका विनियोग

उद्वृत्तसंज्ञकौ हस्तौ त्र्यस्रो भूत्वा स्वपार्श्वयोः । 268
मिथोऽभिमुखतां यातौ हंसपक्षौ यदा करौ ।

तदा तलमुखौ स्यातां–

जब दोनों हस्त उद्वृत्त में स्थित होकर हंसपक्ष की मुद्रा बनाते हैं और अपने पार्श्वों में तिरछे (त्र्यस्र) होकर आमने-सामने अवस्थित किये जाते हैं, तब उन्हें **तलमुख हस्त** कहते हैं।

–मधुरे मर्द्दलध्वनौ ॥२६१॥ 269

मर्द्दल (मृदंग के समान वाद्ययंत्र) की मधुर ध्वनि के अभिनय में तलमुख हस्तों का विनियोग होता है।

**४. नितम्ब हस्त**

उत्तानोऽधो मुखीभूय क्रमादंसप्रदेशतः।
करौ पताकौ निर्गम्य नितम्बक्षेत्रमागतौ। 270
रेचकं विदधाते च नितम्बौ कथितौ तदा ॥२६२॥

जब पताक की मुद्रा में दोनों हस्त उत्तान तथा अधोमुख होकर क्रमशः दोनों कन्धों से बाहर की ओर निकल कर नितम्ब तक आ जाँय और नितम्ब रेचक में हो, तब उन्हें **नितम्ब हस्त** कहते हैं।

**५. केशबन्ध हस्त**

पताकौ त्रिपताकौ वा केशदेशाद्विनिर्गतौ ॥२६३॥ 271
अस्पृशन्तौ करौ पार्श्वौ पार्श्वदेशसमुत्थितौ।
उत्तानाऽधोमुखौ शश्वन्निक्षिप्योपशिरः स्थितौ। 272
पृथगुत्तानितौ चेत् सः (? तौ) केशबन्धौ तदोदितौ।२६४॥

जब पताक या त्रिपताक मुद्रा में दोनों हस्त पार्श्वदेश से उठकर, दोनों पार्श्वों से विलग होकर, उत्तान एवं अधोमुखावस्था में शिर पर पहुँच जाँय; फिर वहाँ से निकल कर उन्हें अलग-अलग उत्तान करके बार-बार गतिशील करके शिर के समीप अवस्थित किया जाय, तब उन्हें **केशबन्ध हस्त** कहते हैं।

**६. उत्तानवञ्चित हस्त**

अंसभालकपोलानां मध्येऽन्यतमदेशगौ। 273
अन्योन्याभिमुखावीषत्तिर्यञ्चौ कूर्परांसयोः ॥२६५॥
मनाक्कलितयोरूर्ध्वतलौ स्थित्वा क्षणं करौ। 274
त्रिपताकौ प्रचलितौ प्रोक्तावुत्तानवञ्चितौ ॥२६६॥

जब दोनों **त्रिपताक हस्त** कन्धा, ललाट तथा कपोल (गाल) में से किसी एक पर ले जा कर परस्पर आमने-सामने कुछ तिरछे होकर किञ्चिन्मात्र पकड़ी हुई कुहनी तथा कन्धे के ऊपर क्षण भर ठहर कर चलायमान हो जाँय, तब उन्हें **उत्तानवञ्चित हस्त** कहते हैं।

७. लताकर हस्त

**पार्श्वयोर्दोलितौ तिर्यक् प्रसृतौ च यदा करौ । 275**
**पताकौ त्रिपताकौ वा तदा हस्तौ लताकरौ ।।२६७।।**

जब दोनों पताक या त्रिपताक हस्त दोनों पार्श्वों (अगल-बगल) में तिरछे फैले तथा थिरकते रहें, तब उन्हें **लताकर हस्त** कहते हैं।

८. करिहस्त

**दोलितोत्थो लताहस्तः दोलावत्पार्श्वयोर्यदि । 276**
**अन्यः कर्णस्थितो यत्र खटकास्योऽथवा करः ।।२६८।।**
**त्रिपताकस्तदा प्राहुः करिहस्तमिमं बुधाः । 277**
**इहैकवचने मानं मुनेर्वचनमेव हि ।।२६९।।**

जब ऊपर उठा हुआ एक **लता हस्त** दोनों पार्श्वों में झूले की तरह झूले और दूसरा हाथ खटकास्य या त्रिपताक मुद्रा में कान पर रहे, तब बुधजन उसे **करिहस्त** कहते हैं। यहाँ एकवचन (अर्थात् एक ही हस्त के प्रयोग) में भरत मुनि का वचन प्रमाण है।

९. रेचित हस्त

**प्रसारितौ तथौत्तानतलौ हस्तौ तु रेचितौ । 278**
**द्रुतभ्रान्तौ हंसपक्षावथवा रेचितौ मतौ ।।२७०।।**
**यद्वानयोर्मिलित्वामू लक्ष्मणी लक्ष्म सम्मतम् । 279**
**हिरण्यकशिपोर्वक्षो दारणे नृहरेर्मतौ ।।२७१।।**

जब दोनों करतलों को उत्तान कर फैला दिया जाय तो उन्हें **रेचित हस्त** कहते हैं। अथवा हंसपक्ष हस्तों को द्रुत गति से घुमाने पर वे **रेचित हस्त** बन जाते हैं। अथवा इन दोनों हस्तों को मिला कर प्रयोग करने में वे **लक्ष्मण हस्त** कहलाते हैं, जो लक्ष्मण को, और हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने में नृसिंह भगवान् को अभीष्ट थे।

१०. अर्धरेचित हस्त

चतुरस्रस्तयोरेकश्चेत्तदा त्वर्धरेचितौ ॥२७२॥ 280

(उक्त रेचित हस्तों में) एक (बाँया) हाथ चतुरस्र में और दूसरा (दाँया) रेचित मुद्रा में हों तो उन्हें **अर्धरेचित हस्त** कहते हैं।

११. पल्लव हस्त

व्यावृत्त्या तु भुजावूर्ध्वं प्रसार्य परिवृत्तितः ।
अधोमुखौ पताकौ चेत्स्वस्तिकौ पल्लवौ तदा ॥२७३॥ 281

जब दोनों भुजाओं को ऊपर पीछे की ओर घुमाकर फैला दिया जाय और फिर दोनों हस्तों को पताक मुद्रा में घुमाते हुए अधोमुख करके स्वस्तिक बना दिया जाय, तब उन्हें **पल्लव हस्त** कहते हैं।

शिथिलौ मेनिरे केचित् त्रिपताकौ कराविह ।
यदा नतोन्नतौ स्यातां पद्मकोशाभिधौ करौ ॥२७४॥ 282
शिथिलौ मणिबन्धस्थौ पुरो यद्वा स्वपार्श्वयोः ।
तदाहुः पल्लवौ केचित् नृत्तविद्याविशारदाः । 283
पताकौ तु बुधाः प्राहुः स्थाने तौ पद्मकोशयोः ॥२७५॥

कुछ नाट्याचार्यों के मत से यदि त्रिपताक हस्तों को शिथिल कर दिया जाय तो उन्हें **पल्लव हस्त** कहते हैं। कुछ नृत्तविद्याविशारदों का कहना है कि यदि पद्कोश दोनों हस्तों को नतोन्नत कर दिया जाय और वे सामने कलाइयों पर या दोनों पार्श्वों में शिथिल रहें तो वे **पल्लव हस्त** कहलाते हैं। किन्तु कुछ विद्वानों ने पद्मकोश हस्तों के स्थान पर पताक हस्तों को **पल्लव हस्त** कहा है।

१२. ललित हस्त

शिरःक्षेत्रे यदा प्राप्तौ पल्लवौ ललितौ तदा । 284
चतुरस्रक्रियोपेतौ शीर्षस्थावचलौ परे ॥२७६॥
जगुरेतावथान्ये तु करौ तौ खटकामुखौ । 285
शनैर्गत्वा शिरोदेशं लग्नाग्राविति मेनिरे ॥२७७॥

जब दोनों पल्लव हस्तों को शिर पर रख दिया जाय, तब उस मुद्रा को **ललित हस्त** कहते हैं। दूसरे आचार्यों का कहना है कि जब दोनों **चतुरस्र हस्त** निश्चल हो कर शिर पर अवस्थित रहें, तब उन्हें **ललित हस्त** कहा

जाता है। किन्तु अन्य आचार्यों का अभिमत है कि जब दोनों खटकामुख हस्तों को धीरे से ले जाकर उनके अग्रभाग को शिर पर संलग्न कर दिया जाय तब उन्हें **पल्लव हस्त** कहते हैं।

**१३. पक्षवञ्चितक हस्त**

त्रिपताकौ कटीमूर्ध्नि धृताग्रौ पक्षवञ्चितौ ॥२७८॥ 286

जब दोनों हाथ त्रिपताक मुद्रा में, अग्रभाग से एक कमर पर और दूसरा शिर पर रखा हुआ हो, तब उन्हें **पक्षवञ्चितक हस्त** कहते हैं।

**१४. पक्षप्रद्योतक हस्त**

एतावेव परावृत्तौ पक्षप्रद्योतकौ करौ।
उत्तानितौ केचिदिमौ परे तूर्ध्वगताङ्गुली। 287
पराङ्मुखौ च पूर्वाभ्यां प्राहुरेतावनन्तरम् ॥२७९॥

यदि पक्षवञ्चितक हस्तों को उलटा कर दिया जाय तो उन्हें **पक्षप्रद्योतक हस्त** कहते हैं। कुछ आचार्य दोनों पक्षवञ्चित हस्तों को उत्तान कर देने पर **पक्षप्रद्योतक हस्त** कहते हैं। अन्य आचार्यों का मत है कि उक्त पक्षवञ्चितक उत्तान हस्तों के विपरीत यदि उनकी उँगलियों को ऊर्ध्वमुख कर दिया जाय तो उन्हें **पक्षप्रद्योतक हस्त** कहते हैं।

**१५. ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त**

व्यावृत्तिक्रियया वक्षःस्थलात्प्राप्य ललाटकम्। 288
तत्पार्श्वमागतौ हस्तौ विततौ मण्डलभ्रमात् ॥२८०॥
ऊर्ध्वमण्डलिनौ प्रोक्तावथ लक्ष्मापरे जगुः। 289
ललाटप्राप्तिमर्यादमथैतौ नृत्तकोविदाः।
चक्रवर्तिनिकेत्याहुर्लोकशास्त्रानुसारतः ॥२८१॥ 290

जब दोनों हाथों को घुमाते हुए वक्षःस्थल से ललाट पर और फिर बगल में आ जाँय तथा मण्डलकार में घूमते हुए फैल जाँय, तब उन्हें **ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्त** कहा जाता है। दूसरे आचार्यों का कहना है कि उनका ललाट तक पहुँचना ही पर्याप्त है। किन्तु नृत्तविद्याविशारदों का अभिमत है कि लोक और शास्त्र के अनुसार (चक्राकृत होने के कारण) उन्हें **चक्रवर्तिनिका** नाम से भी कहा जाता है।

१६. पार्श्वमण्डलिन् हस्त

पताकीकृत्यतावेव यदा पार्श्वस्थितौ करौ ।
मिथः सम्मुखतां प्राप्तौ पार्श्वमण्डलिनौ तदा ॥२८२॥ 291
केचिदावेष्टिताख्येन कर्मणा निजपार्श्वयोः ।
आविद्धभ्रामितभुजौ पार्श्वमण्डलिनौ जगुः ॥२८३॥ 292

जब दोनों ऊर्ध्वमण्डलिन् हस्तों को पताक मुद्रा में करके उन्हें परस्पर सम्मुख करके पार्श्व में रख दिया जाय, तब उन्हें **पार्श्वमण्डलिन् हस्त** कहा जाता है । कुछ आचार्यों का मत है कि यदि वेष्टित क्रिया के द्वारा दोनों भुजाओं को कुटिल गति से घुमाया (आविद्धभ्रमित) जाय, तब उन्हें **पार्श्वमण्डलिन् हस्त** कहते हैं ।

१७. उरोमण्डलिन् हस्त

उद्वेष्टितं विधायापवेष्टितं चैकदा करौ ।
स्वपार्श्वे वक्षसो जातौ क्रमान्मण्डलवद् भ्रमात् ॥२८४॥ 293
व्युत्क्रमाच्चेदुरः प्राप्तावुरोमण्डलिनौ तदा ।
एतयोर्भ्रमणं वक्षःस्थयोः केचन मन्वते ॥२८५॥ 294
उरोवर्त्तनिकात्वेन प्रसिद्धौ नृत्तधीमताम् ।
पताकौ हंसपक्षौ वा ज्ञेयौ मण्डलिषु त्रिषु ॥२८६॥ 295

जब एक हाथ उद्वेष्टित और दूसरा अपवेष्टित हो; उन्हें अपने पार्श्व में वक्ष पर क्रमशः मण्डलाकार में घुमाते हुए फिर वक्ष पर रख दिया जाय तब उन्हें **उरोमण्डलिन् हस्त** कहा जाता है । कुछ आचार्यों का कहना है कि दोनों हाथों को छाती पर ही घुमाया जाय । किन्तु नृत्तविदों का अभिमत है कि तीनों प्रकार के उरोमण्डलिन् हस्तों में पताक या हंसपक्ष हस्त **उरोवर्त्तनिका** रूप में प्रसिद्ध है ।

१८. उरःपार्श्वार्धमण्डल हस्त

पार्श्वे प्रसारितस्त्वेको वक्षस्युत्तानितोऽपरः ।
व्यावृत्योरःस्थलायातः स्वपार्श्वमलपल्लवः ॥२८७॥ 296
एवं यदा तदैवान्यः क्रिययावेष्ठिताख्यया ।
संप्राप्यारालतां याति वक्षस्येवं परः करः । 297
अभ्यासात्कथितावेवमुरःपार्श्वार्धमण्डलः ॥२८८॥

जब एक हाथ पार्श्व में फैला दिया जाय और दूसरा उत्तान करके छाती पर रख दिया जाय; फिर **अलपल्लव हस्त** को व्यावृत करके छाती से अपने पार्श्व में ले आया जाय; इस प्रकार जब एक हाथ आवेष्टित क्रिया द्वारा अराल मुद्रा धारण कर वक्ष पर और दूसरा भी आवृत्ति द्वारा इसी स्थिति में पहुँच जाय; तब उन्हें **उरः पार्श्वार्धमण्डल हस्त** कहा जाता है। (इसमें एक हाथ अलपल्लव में छाती पर और दूसरा अराल में पार्श्व पर अवस्थित होता है)।

**१९. नलिनीपद्मकोश हस्त**

व्यावृत्तिक्रियया यत्र पद्मकोशौ करौ यदा । 298
अश्लिष्टस्वस्तिकीभूय मिथः स्यातां पराङ्मुखौ ॥२८९॥
तदा स्तो नलिनीपद्मकोशावथ परेऽन्यथा । 299
पद्मकोशाभिधौ हस्तावितरेतरसम्मुखौ ॥२९०॥
मणिबन्धसमायुक्तौ भूत्वा प्राप्तौ पृथग्यदा । 300
व्यावृत्तौ परिवृत्तौ च तदैताविति मेनिरे ॥२९१॥
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां करौ चेत्पद्मकोशकौ । 301
जानुनोर्निकटं प्राप्ताविमौ केचित्तदा जगुः ॥२९२॥
अंसयोः कुचयोर्वापि निकटस्थौ विवर्त्तितौ । 302
इमौ कीर्तिधरः प्राह पद्मवर्तनिकामपि ॥२९३॥

जब दोनों **पद्मकोश हस्त** व्यावृत्ति क्रिया द्वारा स्वस्तिक मुद्रा में परस्पर पृथक् होकर विमुख स्थिति में रहें तब उन्हें **नलिनीपद्मकोश हस्त** कहा जाता है। अन्य आचार्यों का कहना मे कि जब दोनों **पद्मकोश हस्त** पृथक्-पृथक् एक-दूसरे के आमने-सामने रहें और मणिबन्ध से युक्त होकर व्यावृत्त तथा परिवृत्त हों, तब उन्हें **नलिनीपद्मकोश** कहा जाता है। कुछ विद्वानों का अभिमत है किजब दोनों **पद्मकोश हस्त** व्यावृत्त तथा परिवृत्त क्रिया द्वारा घुटनों के निकट पहुँच जाँय, तब उन्हें **नलिनीपद्मकोश** कहा जाता है। आचार्य कीर्तिधर का कहना है कि जब दोनों पद्मकोश हस्तों को कन्धों और कुचों के समीस्थ करके घुमाया जाता है, तब उन्हें **पद्मवर्तनिका** भी कहा जाता है।

**२०. मुष्टिस्वस्तिक हस्त**

अरालवर्तनापूर्वं करमेकं तदापरम् । 303
कृत्वालपल्लवं शश्वद् बिभृतः स्वस्तिकाकृतिम् ॥२९४॥

खटकास्यौ यदा हस्तौ मुष्टिकस्वस्तिकौ तदा । 304
कपित्थावथवा मुष्टिशिखरौ स्वस्तिकाकृती ॥२९५॥
यदा स्यातां तदा प्रोक्तौ मुष्टिकस्वस्तिकौ करौ । 305
कुञ्चितौ मुष्टिरेकश्चेत् खटकास्यः परोऽञ्चितः ॥२९६॥
मुष्टिकस्वस्तिकावेवं प्राह कीर्तिधरस्तदा । 306
खड्गवर्तनिकेत्याहुरनयोर्नाम पण्डिताः ॥२९७॥

एक हाथ को अराल मुद्रा में और दूसरे को अलपल्लव मुद्रा में बनाकर जब दोनों स्वस्तिक का आकार धारण करें, तब वे दोनों हस्त **मुष्टिस्वस्तिक** कहलाते हैं । अथवा जब दोनों कपित्थ हस्तों को मुष्टि तथा शिखर मुद्राओं में करके स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तब उन्हें **मुष्टिस्वस्तिक** कहा जाता है । आचार्य कीर्तिधर का कहना है कि जब एक **मुष्टि हस्त** कुञ्चित और दूसरा **खटकास्य हस्त** अंचित हो, तब उन्हें **मुष्टिस्वस्तिक** कहा जाता है । कुछ विद्वानों ने **मुष्टिस्वस्तिक हस्त** को **खड्गवर्तनिका हस्त** नाम से कहा है ।

**२१. वलित हस्त**

कूर्परस्वस्तिकाकारौ लताख्यौ वलितौ करौ । 307
परे तौ विधुतौ मूर्ध्नि मुष्टिकस्वस्तिकौ जगुः ॥२९८॥
केचिदन्योन्यलग्नाग्रौ पृष्ठतो नम्रकूर्परौ । 308
ऊर्ध्वाग्रौ खटकास्यौ च तदाहुर्वलितौ करौ ॥२९९॥

जब दोनों हाथों से कुहनी पर स्वस्तिक से युक्त लता हस्तों का प्रयोग किया जाय, तब उन्हें **वलित हस्त** कहा जाता है । दूसरे आचार्यों का मत है कि जब दोनों वलित हस्तों को शिर पर कम्पित कर दिया जाय तब उन्हें **मुष्टिस्वस्तिक** कहा जाता है । कुछ आचार्यों का कहना है कि जब दोनों खटकास्य हस्तों के अग्रभाग एक-दूसरे से सट जाँय और कुहनियाँ पीछे की ओर झुकी रहें तथा अग्रभाग ऊर्ध्वमुख रहें, तब उन्हें **वलित हस्त** कहा जाता है ।

**२२. दण्डपक्ष हस्त**

यदैको हंसपक्षस्तु व्यावृत्त्या संश्रयेदुरः । 309
बाहुः प्रसारितस्तिर्यक् तदान्यः परिवर्त्तितः ॥३००॥

तद्वदङ्गान्तरेणापि दण्डपक्षौ करौ मतौ । 310
परे प्रसारणं बाह्वोर्युगपत्प्रतिपेदिरे ॥३०१॥

जब एक **हंसपक्ष हस्त** को व्यावृत्त करके वक्षस्थल पर रख दिया जाय, बाहु को तिरछा करके फैला दिया जाय और दूसरे हाथ को भी इसी मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तब उन्हें **दण्डपक्ष हस्त** कहते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि **दण्डपक्ष** हस्त मुद्रा में दोनों भुजाओं को एक साथ फैलाना चाहिए।

**२३. गरुडपक्षक हस्त**

कटीदेशे करौ न्यस्तौ पताकौ चेदधोमुखौ । 311
तिर्यञ्चावुत्पतन्तौ द्रागतौ गरुडपक्षकौ ॥३०२॥

जब दोनों पताक हस्तों को अधोमुख करके काटि पर रख दिया जाय और फिर वे तिरछे होकर तेजी से ऊपर की ओर उड़े या उठें, तब उन्हें **गरुडपक्षक हस्त** कहा जाता है।

**२४. अलपद्म हस्त**

कर्मणोद्वेष्टिताख्येन वक्षःस्थावलपल्लवौ । 312
अंसान्तिकं ततो गत्वा प्रसृतावलपद्मकौ ॥३०३॥

जब दोनों अलपल्लव हस्तों को उद्वेष्टित क्रिया द्वारा वक्षःस्थल पर रख दिया जाय; फिर कन्धे के पास जाकर उन्हें फैला दिया जाय, तब वे **अलपद्म हस्त** कहे जाते हैं।

**२५. उल्वण हस्त**

वक्षसः स्कन्धयोरूर्ध्वं प्रसार्य स्कन्धसम्मुखौ । 313
विलोलाङ्गुलिकावेतौ कथिताबुल्वणौ करौ ॥३०४॥

जब दोनों हाथों को छाती और कन्धों के ऊपर फैलाकर कन्धों के सम्मुख उनकी उँगलियों को कम्पित कर दिया जाय, तो उन्हें **उल्वण हस्त** कहते हैं।

**२६. स्वस्तिक हस्त**

अश्लिष्टस्वस्तिकौ हंसपक्षौ चेत्स्वस्तिकौ तदा ॥३०५॥ 314

आश्लष्ट (पृथक्) होकर जब दोनों **स्वस्तिक हस्त** हंसपक्ष मुद्रा में अवस्थित हों, तब उन्हें कर **स्वस्तिक हस्त** कहते हैं।

**२७. विप्रकीर्ण हस्त**

विच्युतौ स्वस्तिकावेतौ विप्रकीर्णौ करौ मतौ ।

नताग्रावथवोच्चाग्रौ कुचयोरग्रतो गतौ । 315
विप्रकीर्णौ केचिदाहुर्हंसपक्षौ पराङ्मुखौ ॥३०६॥

उक्त स्वस्तिक हस्तों को जब विच्युत (गिरा दिया) किया जाय, तब उन्हें **विप्रकीर्ण हस्त** कहा जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि जब हंसपक्ष दोनों हाथों के अग्रभाग नत या उन्नत हों, और पराङ्मुख होकर कुचों के अग्रभाग में स्थित हों, तब उन्हें **विप्रकीर्ण हस्त** कहा जाता है।

**२८. आविद्धवक्र हस्त**

भुजांसकूर्पराग्रेषु सविलासौ पताककौ । 316
कृत्वा व्यावर्तने स्यातां त्वरितं चेदधोमुखौ ।
तदा त्वाविद्धवक्राख्यौ विक्षेपवलने करौ ॥३०७॥ 317

जब भुजा, कन्धा और कुहनी के अग्रभाग में दोनों **पताक हस्त** हाव-भाव-पूर्वक व्यावर्त्तित होकर (मुड़ कर) शीघ्र अधोमुख हो जाँय, तब, वक्रगति वाले उन दोनों हाथों को **आविद्धवक्र** कहा जाता है।

**२९. सूच्यास्य हस्त**

संलग्नमध्यमांगुष्ठौ चतुरस्राकृती क्रमात् ।
तिर्यक्प्रसारितौ सर्पशीर्षौ चेत्तर्जनीं बहिः ॥३०८॥ 318
प्रसारितां दधानौ यौ सूच्यास्यौ तौ तदा मतौ ।
विधायादौ पताकौ द्वौ व्यावृत्तिपरिवृत्तितः ॥३०९॥ 319
भ्रान्त्वा प्रसारणं केचिद् विशेषमिह मन्वते ।
परे सर्पशिरोहस्तौ स्वस्तिकाकारतां गतौ । 320
मध्यप्रसारिताङ्गुष्ठौ जगुः सूच्यास्यलक्षणम् ॥३१०॥

जब दोनों सर्पशीर्ष हस्तों की मध्यमा और अंगुष्ठ उँगलियाँ सटी रहें, तर्जनी बाहर की ओर फैली रहे और दोनों हाथ चतुष्कोण के आकार में क्रमशः तिरछे फैले रहें, तब उन्हें **सूच्यास्य** कहा जाता है। कुछ आचार्यों का कहना है कि पहले दोनों हाथों की पताक मुद्रा बना कर जब उन्हें व्यावृत्त तथा परिवृत्त क्रिया से घुमाकर विशेष रूप से फैला दिया जाय, तब उन्हें **सूच्यास्य** कहा जाता है। दूसरे आचार्यों का मत है कि जब दोनों सर्पशीर्ष हस्तों को स्वस्तिक मुद्रा में बनाकर उनके दोनों अँगूठे को बीच से फैला दिया जाय, तब वे **सूच्यास्य हस्त** कहलाते हैं।

३०. अरालखटकामुख हस्त

पताकौ स्वस्तिकीकृत्य व्यावृत्तपरिवर्त्तितौ । 321
अलपद्मावथे(? ग्रवदे)वाथ पद्मकोशौ करावुभौ ॥३११॥
ऊर्ध्वमुखौ क्रमात् कृत्वा व्यावृत्तपरिवर्त्तितौ । 322
अथारालं करं वाममुत्तानं रचयेत्ततः ॥३१२॥
यदान्यं खटकावक्रं चतुरस्रमधोमुखम् । 323
कुर्यादेवं तदा हस्तावरालखटकामुखौ ॥३१३॥
अथवा स्वस्तिकाकारावरालखटकामुखौ । 324
विधायादावरालौ चेद्रेचितौ खटकामुखौ ॥३१४॥
तदा वा भवतो हस्तावरालखटकामुखो । 325
वितर्के सविवादानां वणिजामेष युज्यते ॥३१५॥
वक्षोग्रस्थः पुरोवक्रः खटकास्याभिधः करः । 326
उन्नताग्रः परोऽरालः तिर्यक्किञ्चित्प्रसारितः ॥३१६॥
पार्श्वव्यत्यासतो यद्वा निजे पार्श्वे करौ यदा । 327
तालान्तरौ स्थितौ स्यातां तदैतावपरे जगुः ॥३१७॥

पहले दोनों पताक हस्तों को स्वस्तिकाकार बना कर पीछे की ओर मोड़ दिया जाय तथा घुमा दिया जाय। फिर दोनों पद्मकोश हस्तों को अलपद्म की तरह ऊर्ध्वमुख करके उन्हें व्यावृत्त तथा परिवर्त्त कर दिया जाय। तदनन्तर बाँये **अराल हस्त** को उत्तान और दाँये **खटकामुख हस्त** को चतुरस्र तथा अधोमुख कर दिया जाय। इस प्रकार की अभिनय-मुद्रा को **अराल खटकामुख** कहते हैं। अथवा दोनों स्वस्तिक हस्तों को पहले अराल तथा खटकामुख बना दिया जाय; या पहले दोनों को अराल बना कर रेचित किया जाय, अथवा पहले खटकामुख बना कर रेचित किया जाय, तो वे **अरालखटकामुख** कहलाते हैं। विवाद करते हुए बनियों के आशय में इन हाथों का प्रयोग होता है।

अन्य आचार्यों का अभिमत है कि जब एक **खटकामुख हस्त** छाती के अग्रभाग में स्थित हो; वह वक्र होकर पूर्वाभिमुख हो; उसका अग्रभाग उन्नत हो; और दूसरा **अराल हस्त** तिरछा करके कुछ फैला हो; अथवा

पार्श्व-परिवर्तन के द्वारा दोनों हाथों को अपने पार्श्व में ताल-मात्रा के अन्तर पर अवस्थित किया जाय, तो उन्हें **अरालखटकामुख** कहते हैं ।

तीस नृत्तहस्तों का निरूपण समाप्त

●

## हस्ताभिनय का उपसंहार

**हस्ताभिनय विधान**

**स्थानादिन्यासभेदेन सम्भवन्तोऽप्यनेकधा ।** 328
**कियन्तोऽपि मया प्रोक्ताः करा विस्तरभीरुणा ॥३१८॥**

अशोकमल्ल का कहना है कि स्थानादिकृत (स्थान, समय, अवसर, व्यक्ति तथा वस्तु आदि) भेद से हस्ताभिनयों के अनेक प्रकार हो सकते हैं; किन्तु विस्तार-भय से यहाँ मैंने उनमें से कुछ ही निरूपित किये हैं ।

**दृष्टिभ्रूमुखरागाद्यैरुपाङ्गैरपि पोषिताः ।** 329
**प्रत्यङ्गैश्च करा योज्या रसभावप्रकाशकाः ॥३१९॥**

(अभिनेताओं को चाहिए कि वे) दृष्टि, भ्रू और मुख आदि उपांगों और (वक्ष, पार्श्व, हाथ आदि) प्रत्यंगों से पोषित तथा रसों और भावों के प्रकाशक हाथों का प्रयोग करें ।

**अभिनयेषूत्तमेषु भालस्था मध्यमेषु तु[1] ।** 330

उत्तम अभिनयों में हाथ भाल पर, मध्यम अभिनयों में (संभवतः हृदय पर) अवस्थित होना चाहिए ।

**उत्तमे निकटस्थाः स्युर्मध्यस्थाः मध्यमेषु च ॥३२०॥**
**मध्यमे सात्त्विके प्रोक्तो मध्यमोऽथाल्पसात्त्विके ।** 331
**प्रचुरः स बुधैरेवं प्रचारस्त्रिविधस्मृतः ॥३२१॥**

महापुरुषों का अभिनय करने में हाथों को निकटवर्ती और मध्यम पुरुषों के अभिनय में मध्य में होना चाहिए । मध्यम सात्त्विक भावों के प्रदर्शन में हाथों का मध्यम प्रकार से प्रयोग करना चाहिए । अल्प सात्त्विक

---

१. यहाँ कुछ चरण छूट गये प्रतीत होते हैं । देखिए—संगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक २४९-९२ ।

(अर्थात् अधम लोगों) के अभिनय में हस्त-प्रचार के विभिन्न रूपों का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार विद्वानों ने हस्ताभिनय के तीन प्रकार (उत्तम, मध्यम और अधम) बताये हैं।

**नियोज्यास्तूत्तमैः पात्रैः प्रत्यङ्गाद्युपबृंहिताः ।** 332
**ससौष्ठवाः सुलक्ष्माणः करास्तैर्मध्यमैः पुनः ॥३२२॥**
**सुव्यक्तलक्षणाः कार्याः सौष्ठवाधिष्ठितास्तथा ।** 333
**नीचैस्तैस्ते प्रयोक्तव्याः लोकवृत्तसमाश्रयाः ॥३२३॥**

श्रेष्ठ अभिनेताओं को प्रत्यंग आदि से परिपुष्ट, सुन्दर तथा सुलक्षण युक्त हस्तों का प्रयोग करना चाहिए। मध्यम अभिनेताओं को सुलक्षण तथा सुन्दर हस्तों का उपयोग करना चाहिए। इसी प्रकार निकृष्ट अभिनेताओं को लोक-प्रचलित (सामान्य) हस्तों का प्रयोग करना चाहिए।

**मूर्च्छिते तन्द्रिते भीते व्याकुले च जुगुप्सिते ।** 334
**ग्लाने जरार्दिते सुप्ते ज्वरिते शोकपीडिते ॥३२४॥**
**शीतार्ते व्याधिते मत्ते विषण्णोन्मत्तयोरपि ।** 335
**चिन्तान्विते प्रमत्तेऽपि निश्चेष्टे तापसेऽपि च ॥३२५॥**
**न कराभिनयः कार्यं इत्युक्तं पूर्वसूरिभिः ।** 336

पूर्वाचार्यों का अभिमत है कि मूर्छित, तन्द्रित, भयभीत, व्याकुल ,निन्द्रित, ग्लानि से युक्त, बृद्धावस्था-पीड़ित, सुप्त, ज्वरग्रस्त, शोकान्वित, शीत-पीड़ित, रोगग्रस्त, मत्त, दुःखी, मदोन्मत्त, चिन्तातुर, पागल, निश्चेष्ट और तपस्वी आदि के भावाभिव्यंजन में हस्ताभिनय नहीं करना चाहिए (अपितु सात्विक भावों द्वारा ही उनका प्रदर्शन करना चाहिए )।

**ये करास्त्वान्तरं भावं सूचयन्तीह ते मताः ।**
**मूर्च्छितादिष्वपि प्रायः कराः कर्कटकादयः ॥३२६॥** 337

जो हस्त आन्तरिक भावों को प्रकट करें वे अभीष्ट एवं उचित होते हैं। प्रायः कर्कट आदि हस्त मूर्च्छित आदि के भावाभिव्यंजन के लिए उपयुक्त समझे जाते हैं।

हस्ताभिनय प्रकरण समाप्त

# अंग प्रत्यंग प्रकरण / दो

# अङ्गाभिनय और उनका विनियोग

## पाँच प्रकार का वक्षाभिनय

**वक्षाभिनय के भेद**

समं निर्भुग्नमाभुग्न तथा वक्षः प्रकम्पितम् ।
उद्वाहिताभिधं चेति वक्षः पञ्चविधं स्मृतम् ॥३२७॥ 338

वक्ष पाँच प्रकार का कहा गया है : १ सम, २. निर्भुग्न, ३. आभुग्न, ४. प्रकम्पित और ५. उद्वाहित ।

**१. सम और उसका विनियोग**

यद्वक्षः सौष्ठवोपेतं चतुरस्राङ्गसंयुतम् ।
स्वभावस्थं समं प्रोक्तं स्वभावस्य निरूपणे ॥३२८॥ 339

जो वक्ष सुन्दर, सुडौल, सब अंगों के विन्यास से युक्त और स्वाभाविक या सहज हो, उसे **सम** कहा जाता है । स्वभाव के निरूपण में उसका विनियोग होता है ।

**२. निर्भुग्न और उसका विनियोग**

यदुन्नतं पुरःस्तब्धमुरो निर्भुग्नमीरितम् ।
सत्योक्तिस्तम्भमानेषु तथा विस्मयदर्शने । 340
गर्वोत्सेके भाषणे च प्रहर्षादिदमिष्यते ॥३२९॥

जो पीठ स्तब्ध और वक्ष उन्नत हो, उसे **निर्भुग्न** कहा जाता है । सत्यवचन, स्तम्भन, मान, विस्मय, गर्व और दर्पोक्ति के अभिनय में इस वक्ष का अत्यन्त हर्ष से विनियोग होता है ।

**३. आभुग्न और उसका विनियोग**

यन्निम्नं शिथिलं वक्षस्तदाभुग्नमुदीरितम् । 341
शोकहृच्छल्ययोः शीतमूर्च्छयोर्गर्वहर्षयोः ॥३३०॥
व्याधिभीतिविषादेषु लज्जासम्भ्रमयोरपि । 342

जो वक्ष निम्न और शिथिल हो उसे **आभुग्न** कहते हैं । शोक, हृदय में शल्य के समान चुभने वाली बात,

शीत, मूर्च्छा, गर्व, हर्ष, व्याधि, भय, विषाद, लज्जा और ससंभ्रम (उत्तावली) के भाव-प्रदर्शन में इस वक्ष का विनियोग होता है।

**४. प्रकम्पित और उसका विनियोग**

निरन्तरोत्क्षेपणैर्यत्कम्पितं तत्प्रकम्पितम् ।
भीतिकासश्रमश्वासहिक्काहासेषु रोदने ॥३३१॥ 343

जो वक्ष बार-बार ऊपर उठाकर प्रकम्पित किया जाय, उसे **प्रकम्पित** कहते हैं। भय, खाँसी, श्रम, साँस, हिचकी, हँसी और रोने के अभिनय में इस वक्ष का नियोग होता है।

**५. उद्वाहित और उसका विनियोग**

यन्निष्कम्पमृजूत्क्षिप्तं तदुद्वाहितमीरितम् ।
जृम्भोच्चवीक्षणे दीर्घोच्छ्वासाभिनयने च तत् ॥३३२॥ 344

जो वक्ष कम्पन-रहित हो तथा धीरे से चालित किया जाय, उसे **उद्वाहित** कहते हैं। जम्हाई लेने, ऊपर देखने और लम्बी साँस खींचने के अभिनय में इस वक्ष का विनियोग होता है।

## पाँच प्रकार का पार्श्वाभिनय

**पार्श्वाभिनय के भेद**

विवर्तिताभिधमथापसृतं च प्रसारितम् ।
नतं चोन्नतमेवेति पार्श्वं पञ्चविधं भवेत् । 345

पार्श्व के पाँच भेद हैं : १. विवर्तित, २. अपसृत, ३. प्रसारित, ४. नत और ५. उन्नत ।

**१. विवर्तित और उसका विनियोग**

विवर्त्तितं परावृत्तौ भवेत् त्रिकविवर्तनात् ॥३३३॥

यदि कटिदेश को घुमा दिया जाय, तो उसे **विवर्तित पार्श्व** कहते हैं। पीछे की ओर मुड़ने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**२. अपसृत और उसका विनियोग**

अपसृतं तन्निवृत्त्या स्यात्पार्श्वस्य विवर्त्तने ॥३३४॥ 346

यदि कटिदेश की निवृत्ति (अर्थात् उसको विवर्तित में घुमाकर जहाँ ले जाया गया हो, वहाँ से लौटाने में) की जाय तो उसे **अपसृत पार्श्व** कहते हैं। पार्श्व को घुमाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. प्रसारित और उसका विनियोग

**प्रसारितं मुदादौ तत्पार्श्वयोर्यत्प्रसारणात् ॥३३५॥**

यदि दोनों पार्श्वों को फैला दिया जाय, तो उसे **प्रसारित पार्श्व** कहते हैं। हर्ष आदि अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४. नत और उसका विनियोग

**नतं तु न्यञ्चितस्कन्धनितम्बमुपसर्पणे ॥३३६॥** 347

यदि कन्धा और नितम्ब को झुका दिया जाय तो उसे **नत पार्श्व** कहते हैं। किसी के पास ( कुछ वस्तु ) ले जाने के अभिनय में इस पार्श्व का विनियोग होता है।

५. उन्नत और उसका विनियोग

**उन्नतं तद्विपर्यासात्कथितं त्वपसर्पणे ॥३३७॥**

नत के विपरीत यदि कन्धा और नितम्ब को ऊपर उठा दिया जाय तो उसे **उन्नत पार्श्व** कहते हैं। भागने के अभिनय में इस पार्श्व का विनियोग होता है।

## पाँच प्रकार का कटि अभिनय

कटि अभिनय के भेद

**कम्पितोद्वाहिता छिन्ना विवृत्ता रेचतापि च।** 348
**कटिः पञ्चविधा ज्ञेया वीरसिंहसुतोदिता ॥३३८॥**

अशोकमल्ल ने कटि के पाँच प्रकार बताये हैं १. कम्पिता, २. उद्वाहिता, ३. छिन्ना, ४. विवृत्ता और ५. रेचिता।

१. कम्पिता और उसका विनियोग

**पार्श्वे गतागते शीघ्रं दधती कम्पिता कटिः।** 349
**कुब्जादिगमनप्रोक्ताऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥३३९॥**

यदि कटि को शीघ्रता से एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व में ऊपर-नीचे कर दिया जाय, तो उसे **कम्पिता** कहते हैं। कुबड़े, बौने आदि की गति के अभिनय में इस कटि का विनियोग होता है।

२. उद्वाहिता और उसका विनियोग

**पार्श्वद्वयेन या किञ्चिच्चलता तूपलक्षिता।** 350
**सोद्वाहिता कटी लीलागतेषु गदिता स्त्रियाः ॥३४०॥**

दोनों पार्श्वों से किंचित् चलते हुए लक्षित होने वाली कटि को उद्वाहिता कहते हैं। स्त्री की लीला-गति (विलासपूर्वक चलने) के अभिनय में इस कटि का विनियोग होता है।

**३. छिन्ना और उसका विनियोग**

**मध्यस्य वलनाच्छिन्ना पात्रे तिर्यङ्मुखे मता ।** 351
**व्यावृत्तप्रेक्षणादौ स्याद् व्यायामे सम्भ्रमेऽपि च ॥३४१॥**

मध्य भाग से मुड़ी या घूमी हुई कटि को **छिन्ना** कहते हैं। तिरछे मुख वाले अभिनेता, घूमकर देखने आदि, व्यायाम और उत्तावलीपन के अभिनय में इस कटि का विनियोग होता है।

**४. विवृत्ता और उसका विनियोग**

**परागास्येन पात्रेण सम्मुखं या विवर्तिता ।** 352
**सा विवृत्ता कटी धीरैः प्रयुक्ता विनिवर्त्तने ॥३४२॥**

उलटा मुँह किये हुए पात्र द्वारा जो सामने की ओर घुमायी जाय उस कटि को **विवृत्ता** कहते हैं। धीर पुरुष लौटने के अभिनय में इस कटि का विनियोग करते हैं।

**५. रेचिता और उसका विनियोग**

**सर्वदिक्भ्रमणात्प्रोक्ता रेचिता भ्रमणे कटिः ॥३४३॥** 353

चारों ओर घूमने वाली कटि को **रेचिता** कहते हैं। भ्रमण के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

## तेरह प्रकार का पदाभिनय

**पादाभिनय के भेद**

**समाश्चितौ कुञ्चिताख्यः सूच्यग्रतलसञ्चरौ ।**
**उद्घट्टितस्तथा पादः षड्विधो मुनिना मतः ॥३४४॥** 354

भरत मुनि ने पादाभिनय के छह प्रकार बताये हैं, जिनके नाम हैं: १. **सम**, २. **अञ्चित** ३. **कुञ्चित**, ४. **सूची**, ५. **अग्रतलसंचर** और ६. **उद्घट्टित**।

**त्रोटितोद्घटितोत्सेको घट्टितो मर्दिताग्रगौ ।**
**पार्ष्णिगः पार्श्वगोऽप्येवं पादोऽन्यैः सप्तधोदितः ॥३४५॥** 355

अन्य आचार्यों ने पादाभिनय के सात भेद बताये हैं: १. **त्रोटित**, २. **उद्घटितोत्सेक**, ३. **घट्टित**, ४. **मर्दित**, ५. **अग्रग**, ६. **पार्ष्णिग** और ७. **पार्श्वग**।

**अथो तेषां लक्षणानि क्रमेणाहं ब्रुवेऽधुना ।**

अब मैं क्रमशः उनके लक्षण बताता हूँ ।

**१. सम पाद और उसका विनियोग**

**स्थितौ स्थितस्वभावेन समः पादः प्रकीर्तितः ।** 356
**स्थिरः स्वभावाभिनये रेचकेऽसौ चलो मतः ।।३४६।।**

प्रकृत रूप से भूमि पर अवस्थित पैरों को **सम पाद** कहा गया है । उसे स्वाभाविक अभिनय में स्थिर और रेचक अभिनय में चलायमान होना चाहिए ।

**२. अञ्चित पाद और उसका विनियोग**

**यो भूमिस्थितपार्ष्णिः सन्नुत्क्षिप्ताग्रतलस्ततः ।** 357
**प्रसृताङ्गुलिकः पादः सोऽञ्चितोऽभिहितस्तदा ।**
**पादाहतौ तथा नानाभ्रमणादिषु कीर्तितः ।।३४७।।** 358

जिस पैर की एड़ी (पार्ष्णि) भूमि में हो, अग्रभाग उत्क्षिप्त हों और उँगुलियाँ फैली रहें, उसे **अञ्चित** कहते हैं । पैरों से मारने और अनेक प्रकार की भ्रमरी आदि के अभिनय में इस पाद का विनियोग होता है ।

**३. कुञ्चित पाद और उसका विनियोग**

**उत्क्षिप्तपार्ष्णिराकुञ्चन् मध्यो यः कुञ्चिताङ्गुलिः ।**
**कुञ्चितोऽसावतिक्रान्तक्रमे तुङ्गग्रहेऽपि च ।।३४८।।** 359

जिस पैर की एड़ी (पार्ष्णि) ऊपर को उठी हो और मध्य भाग तथा उँगलियाँ सिकुड़ी ( कुञ्चित ) हों, वह **कुञ्चित पाद** कहलाता है । अतिक्रान्त क्रम और उच्च ग्रह के अभिनय में इस पाद का विनियोग होता है ।

**४. सूची पाद और उसका विनियोग**

**स्वाभाविको यदा वामोऽपरोऽङ्गुष्ठाग्रभूस्थितः ।**
**समुत्क्षिप्तान्यभागोऽसौ सूची नूपुरबन्धने ।।३४९।।** 360

जब बाँया पैर भूमि पर स्वाभाविक स्थिति में हो और दाहिना पैर अँगूठे के अग्रभाग में स्थित हो तथा उसका अन्य भाग ऊपर उठा हो, तब उसे **सूची पाद** कहते हैं । नूपुर बाँधने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

५. अग्रतलसंचर पाद और उसका विनियोग

उत्क्षिप्तपार्ष्णिः प्रसृताङ्गुष्ठको न्यञ्चिताङ्गुलिः ।
यः पादोऽसावग्रतलसञ्चरः प्रेरणे भवेत् ॥३५०॥ 361
पीडने कुट्टने स्थाने भ्रमणे रेचके मदे ।
भूस्थापसारणे भूमिताडनेऽपि मतः सताम् ॥३५१॥ 362

जब पार्ष्णि उठी हो, अँगुष्ठ फैला हो और उँगलियाँ सिकुड़ी ( न्यञ्चित ) हों, तब उसे **अग्रतलसञ्चर पाद** कहते हैं । प्रेरणा, पीड़न (पीड़ा देना), कूटने, स्थान, भ्रमण, रेचक प्राणायाम, मद, भूमि पर से किसी वस्तु को हटाने और भूमि रौंदने के अभिनय में सज्जनों ने इस पाद का विनियोग बताया है ।

६. उद्घट्टित पाद

स्थित्वा पादतलाग्रेण स्थितौ पार्ष्णिर्निपात्यते ।
असकृद्वा सकृद्वापि तदोद्घट्टित ईरितः ॥३५२॥ 363

जब एक बार या बार-बार पैर के अग्रभाग के बल खड़ा होकर एड़ी को नीचे गिरा दिया जाता है, तब उस पाद को **उद्घट्टित** कहते हैं ।

७. त्रोटित पाद और उसका विनियोग

अवष्टभ्य भुवं पार्ष्ण्या यः पादोऽग्रेण हन्ति ताम् ।
स त्रोटिताभिधो योज्यो गर्वे रोषेऽपि सूरिभिः ॥३५३॥ 364

जो पैर एड़ी से भूमि का सहारा लेकर अग्रभाग से भूमि को आहत करता रहता है, तो वह **त्रोटित** कहलाता है । गर्व और क्रोध के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

८. घट्टितोत्सेध पाद और उसका विनियोग

क्रमाद्यो घट्टयत्यग्रपार्ष्णिभ्यामसकृद् भुवम् ।
स पादो घट्टितोत्सेधस्ताण्डवे सद्भिरीरितः ॥३५४॥ 365

जो पैर अग्रभाग तथा एड़ी से बार-बार भूमि को आहत करता है, वह **घट्टितोत्सेध** कहलाता है । सज्जनों के कथनानुसार ताण्डवनृत्य में उसका विनियोग होता है ।

९. घट्टित पाद और उसका विनियोग

घट्टितो घट्टयन्पार्ष्णिर्भुवं प्रोक्तोऽल्पनोदने ॥३५५॥

जब (केवल) एड़ी से भूमि को आहत क्रिया जाता है, तब उस पाद को **घट्टित** कहते हैं। थोड़ा हटाने या ठेलने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**१०. मर्दित पाद**

**तिर्यक् तलेन मृद्नाति भुवं यः स हि मर्दितः ॥३५६॥** 366

जो पैर अपने तिर्यक् तल भाग से भूमि का मर्दन करता है उसे **मर्दित** कहा जाता है।

**११. अग्रग पाद और उसका विनियोग**

**चरणोऽग्रे द्रुतं गच्छन् सोऽग्रगः पिच्छिलक्षितौ ॥३५७॥**

जो पैर अपने अग्र भाग के बल शीघ्रता से संचालित हो, उसे **अग्रग** कहा जाता है। चिकनी भूमि पर चलने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**१२. पार्ष्णिग पाद**

**पृष्ठतो याति यः पार्ष्ण्या स पादः पार्ष्णिगो भवेत् ॥३५८॥** 367

जो पैर एड़ी के सहारे पीछे की ओर चले उसे **पार्ष्णिग** कहा जाता है।

**१३. पार्श्वग पाद**

**पार्श्वं गच्छन् पार्श्वगः स्याद्यद्वा पार्श्वे स्थितो मतः ॥३५९॥**

जो पैर बगल के सहारे चले या स्थित हो, उसे **पार्श्वग** कहते हैं।

सात प्रकार के अंगों का निरूपण समाप्त

●

## प्रत्यंगाभिनय और उनका विनियोग

### नौ प्रकार का ग्रीवाभिनय

**ग्रीवा के भेद**

**समा नतोन्नता त्र्यस्रा वलिता कुञ्चिता[श्चिता] ।** 368
**निवृत्ता रेचिता चेति ग्रीवा नवविधा मता ॥३६०॥**

ग्रीवा के नौ भेद कहे गये हैं, जिनके नाम हैं : १. **समा**, २. **नता**, ३. **उन्नता**, ४. **त्र्यस्रा**, ५. **वलिता**, ६. **कुञ्चिता**, ७. **अञ्चिता**, ८. **निवृत्ता** और ९. **रेचिता** ।

**१. समा और उसका विनियोग**

**स्वाभाविकी समोक्ता सा जपे ध्यानस्वभावयोः ॥३६१॥** 369

स्वाभाविक रूप में समस्थिति में अवस्थित ग्रीवा **समा** कहलाती है । जप, ध्यान और स्वभाव का भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग होता है ।

**२. नता और उसका विनियोग**

**नम्रा ग्रीवा नता प्रोक्ता धीरैः कण्ठावलम्बने ।**
**हारादिबन्धने चैषा कामिनीभिर्नियुज्यते ॥३६२॥** 370

नीचे की ओर झुकी हुई ग्रीवा को **नता** कहते हैं । धीर पुरुषों के मत से गले का सहारा लेने या गले लगाने और रमणियों द्वारा हार आदि धारण करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**३. उन्नता और उसका विनियोग**

**ऊर्ध्वगा तून्नता ग्रीवा भवेदूर्ध्वावलोकने ।**
**नियोज्या सा बुधैस्तद्वत्कण्ठालंकारदर्शने ॥३६३॥** 371

ऊपर की ओर उठी हुई ग्रीवा को **उन्नता** कहा जाता है । ऊपर ताकने और गले का आभूषण देखने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**४. त्र्यस्रा और उसका विनियोग**

**पार्श्वनम्रा भवेत् त्र्यस्रा खेदे पार्श्वावलोकने ॥३६४॥**

बगल की ओर झुकी हुई ग्रीवा **त्र्यस्रा** कहलाती है । खेद तथा अगल-बगल ताकने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**५. वलिता और उसका विनियोग**

**ग्रीवा पार्श्वोन्मुखी या तु सा सद्भिर्वलिता मता ।** 372
**ग्रीवाभङ्गे तथा भर्तुः प्रेक्षायां गुरुसन्निधौ ॥३६५॥**

जो ग्रीवा पार्श्व की ओर उन्मुख हो, उसे विद्वानों ने **वलिता** कहा है । गर्दन के टूटने, स्वामी को देखने और गुरु के समीप (बैठने) के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

६. कुञ्चिता और उसका विनियोग

श्रनम्रा कुञ्चिता ग्रीवा शिरोभारे स्वगोपने ।।३६६।। 373

थोड़ी-सी झुकी हुई ग्रीवा **कुञ्चिता** कहलाती है। शिर पर बोझा ढोने और अपने को छिपाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

७. अञ्चिता और उसका विनियोग

चञ्चला प्रसृता यासावञ्चिताऽधोनिरीक्षणे ।
केशपाशाकर्षणेऽपि विनियुक्ता नियोक्तृभिः ।।३६७।। 374

जो ग्रीवा कम्पित तथा फैली हुई हो वह **अञ्चिता** कहलाती है। प्रयोक्ताओं को नीचे देखने, और केशों को खींचने के अभिनय में उसका उपयोग करना चाहिए।

८. निवृत्ता और उसका विनियोग

यदा याभिमुखीभूय विनिवर्त्तेत्तदा तु सा ।
निवृत्ता कथिता स्कन्धभारे सा चकितेक्षणे ।।३६८।। 375

यदि सम्मुख होकर ग्रीवा घूम जाय या लौट जाय तो उसे **निवृत्ता** कहते हैं। कन्धे पर बोझा ढोने तथा चकित होकर देखने में उसका विनियोग होता है।

९. रेचिता और उसका विनियोग

या ग्रीवा विधुतभ्रान्ता सा मता रेचिताभिधा ।
वर्तुले मथनेऽप्येषा नियुक्ता नृत्यपण्डितैः ।।३६९।। 376

जो ग्रीवा काँपती तथा घूमती हो,वह **रेचिता** कही जाती है। नृत्यविशारदों ने गोलाकार वस्तु और मन्थन का भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग कहा है।

## सोलह प्रकार का बाहु अभिनय

बाहु के भेद

प्रसारितोऽधोमुखाख्य ऊर्ध्वस्थोद्वेष्टिताञ्चिताः ।
स्वस्तिको मण्डलगतिस्तिर्यक्पृष्ठानुसारिणौ ।।३७०।। 377
श्रपविद्धस्तथेत्युक्तो बाहुर्दशविधो बुधैः ।



१७

विद्वानों ने बाहु के दस भेद बताये हैं, जिनके नाम हैं : १. प्रसारित, २. अधोमुख, ३. ऊर्ध्वस्थ, ४. उद्वेष्टित, ५. अञ्चित, ६. स्वस्तिक, ७. मण्डलगति ८. तिर्यक्, ९. पृष्ठानुसारी और १० अपविद्ध ।

कुञ्चितः सरलो नम्रो दोलितोत्सारितावपि । 378
आविद्धश्चेति षड् बाहूनन्यानन्ये जगुर्बुधाः ॥३७१॥

दूसरे विद्वानों ने बाहु के छह अन्य भेद बताये हैं । उनके नाम हैं : १. कुञ्चित, २. सरल, ३. नम्र, ४. दोलित, ५. उत्सारित और ६. आविद्ध ।

**१. प्रसारित और उसका विनियोग**

प्रसरत्यग्रदेशे यो बाहुः स स्यात् प्रसारितः । 379
आदानेऽसौ फलादीनां याचनेऽपि नियुज्यते ॥३७२॥

जो बाहु आगे की ओर फैली रहती है वह **प्रसारित** कहलाती है । फल आदि के लेने और माँगने के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

**२. अधोमुख**

आलिङ्गस्तु धरां बाहुरधोमुख उदीरितः ॥३७३॥ 380

पृथ्वी का आलिंगन करती हुई बाहु **अधोमुख** कहलाती है ।

**३. ऊर्ध्वस्त और उसका विनियोग**

शिरोदेशाद् व्रजन्नूर्ध्वमूर्ध्वगस्तुङ्गदर्शने ॥३७४॥

शिर से ऊपर को जाती हुई बाहु **ऊर्ध्वस्थ** कहलाती है । ऊँची चीज को देखने का भाव प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है ।

**४. उद्वेष्टित और उसका विनियोग**

निर्गम्य मणिबन्धाद्यो व्यावृत्ति पुनराश्रितः । 381
उद्वेष्टितो भुजोऽसौ स्यादभिमाना [दना] दरे ॥३७५॥

जो बाहु कलाई से फैल कर पुनः पीछे की ओर मुड़ कर मणिबन्ध पर ही अवस्थित हो, वह **उद्वेष्टित** कहलाती है । अभिमान से (किसी का) अनादर करने का भाव दर्शाने में उसका विनियोग होता है ।

**५. अञ्चित और उसका विनियोग**

उरसः प्राप्य शीर्षं यो वक्षः पुनरुपाश्रितः । 382
स बाहुरञ्चितः खेदे नियोज्यो नृत्यपण्डितैः ॥३७६॥

जो बाहु छाती से शिर पर जाकर पुनः छाती पर ही आकर अवस्थित हो जाय, वह **अञ्चित** कहलाती है। नृत्ताचार्यों ने खेद के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

६. स्वस्तिक और उसका विनियोग

पार्श्वव्यत्यासतो लग्नौ बाहू स्वस्तिक ईरितः । 383
रवेर्भवेदुपस्थाने प्रणामे परिरम्भणे ॥३७७॥

यदि दोनों बाहुओं को दोनों विपरीत पार्श्वों ( अगल-बगल ) में सटा दिया या अवस्थित किया जाय तो उसे **स्वस्तिक बाहु** कहते हैं। सूर्योपस्थान, प्रणाम तथा आलिंगन का भाव प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है।

७. मण्डलगति और उसका विनियोग

सर्वतो भ्रमणाद् यः स्यात् स मण्डलगतिर्भुजः । 384
भ्रमणे तु गदाखड्गाद्यायुधानां प्रकीर्तितः ॥३७८॥

यदि बाहु को ( वृत्ताकार ) चारों ओर घुमाया जाय तो उसे **मण्डलगति** कहते हैं। गदा तथा तलवार आदि आयुधों को भाँजने (घुमाने) का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

८. तिर्यक् (और उसका विनियोग )

पार्श्वापगमनाद्बाहुस्तिर्यगाख्यो बुधैर्मतः ॥३७९॥ 385

विद्वानों का अभिमत है कि यदि बाहु को पार्श्व भाग से हटा या अलग कर दिया जाय तो उसे **तिर्यक्** कहते हैं। (दूर हट जाने या अलग हो जाने के भाव को प्रदर्शित करने के लिए उसका विनियोग होता है)।

९. पृष्ठानुसारी और उसका विनियोग

पृष्ठतः सरणात्पृष्ठानुसारी बाहुरीरितः ।
वीटिका ग्रहणे त्वेष तूणाद्बाणग्रहे तथा ॥३८०॥ 386

यदि बाहु को पीठ की ओर ले जाया जाय तो उसे **पृष्ठानुसारी** कहते हैं। पान का बीड़ा लेने ( या चोलि की ग्रन्थि बाँधने) और तूणीर (तरकश) से बाण निकालने का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

१०. अपविद्ध और उसका विनियोग

उरसो मण्डलाकारभ्रान्त्या यो निःसृतो भुजः ।
सोऽपविद्धो गदाखड्गयुद्धादिषु नियुज्यते ॥३८१॥ 387

यदि बाहु को वक्षःस्थल के आगे मण्डलाकार में चारों ओर घुमाया जाय, तो उसे **अपविद्ध** कहते हैं। युद्ध आदि में गदा, खड्ग (तलवार) आदि का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है।

**११. कुञ्चित और उसका विनियोग**

**सूचीं कुर्वन् कूर्परस्तु वक्रितः कुञ्चितो भवेत् ।**
**पानभोजनयोरेष प्रहारे खड्गधारणे ॥३८२॥** 388

यदि कुहनी को सूची के आकार में (नोकीली) बनाते हुए टेढ़ा कर दिया जाय तो उस बाहु को **कुञ्चित** कहा जाता है। पीने, भोजन करने, प्रहार करने और खड्ग धारण करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**१२. सरल और उसका विनियोग**

**प्रसारितः पार्श्वयोश्चेद्बाहुरूर्ध्वमधोऽपि यः ।**
**सरलोऽसौ तदा पूर्वः पक्षानुकरणेऽपरः ।** 389
**माने भवेत्तृतीयस्त भूस्थापौरुषो गतिः(? षयोर्मतः) ॥३८३॥**

यदि बाहु को दोनों पार्श्वों, ऊपर तथा नीचे फैला दिया जाय तो उसे **सरल** कहा जाता है। पार्श्व में फैलायी जाने वाली बाहु के पक्ष का अनुकरण करने में ; ऊपर फैलायी जाने वाली बाहु का मान करने में; और नीचे फैलायी जाने वाली बाहु का भूमि पर स्थित वस्तु तथा अपौरुषेय वस्तु का भाव दर्शाने में उसका विनियोग होता है।

**१३. नम्र और उसका विनियोग**

**मनाग्वक्रीकृतो नम्रः स्तोत्रे माल्यादिधारणे ॥३८४॥** 390

यदि बाहु को थोड़ा झुका दिया जाय तो उसे **नम्र** कहा जाता है। स्तोत्रपाठ तथा माल्यादि धारण करने में उसका विनियोग होता है।

**१४. आन्दोलित और उसका विनियोग**

**बाहुरान्दोलितोऽन्वर्थः सविलासगतादिषु ॥३८५॥**

अर्थ का अनुसरण करने वाली ( अर्थात् इधर-उधर, ऊपर-नीचे चलायी जाने वाली ) बाहु **आन्दोलित** कहलाती है। हाव-भाव के साथ संचालित होने आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**१५. उत्सारित और उसका विनियोग**

**निजं पार्श्वं सरन्नन्यपार्श्वादुत्सारितो भुजः ।** 391
**जनतोत्सारणे प्रोक्ता नियोगोऽस्य मनीषिभिः ॥३८६॥**

यदि बाहु को दूसरे के पार्श्व से हटाकर अपने पार्श्व में लाया जाय तो उसे **उत्सारित** कहते हैं। विद्वानों ने जन-समूह को दूर हटाने के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

**१६. आविद्ध**

**बाहुरभ्यन्तराक्षेपाद् बुधैराविद्ध ईरितः ॥३८७॥** 392

भीतर की ओर चलायी जाने वाली बाहु को विद्वानों ने **आविद्ध** कहा है।

चार प्रकार का उदराभिनय

**उदर के भेद**

**क्षामं खल्लं तथा पूर्णं रिक्तपूर्णमिति क्रमात् ।**
**चतुर्धोदरमाख्यातमेतल्लक्ष्माधुना ब्रुवे ॥३८८॥** 393

उर के चार प्रकार बताये गये हैं : १. **क्षाम**, २. **खल्ल**, ३. **पूर्ण** और ४. **रिक्तपूर्ण** ।

**१. क्षाम और उसका विनियोग**

**नमनादुदरं क्षामं वीरसिंहसुतोदितम् ।**
**[भवेत् तज्] जृम्भणे हास्ये निःश्वस्य रुदिते तथा ॥३८९॥** 394

अशोकमल्ल ने पिचके या दबे उदर को **क्षाम** कहा है। जम्हाई लेने, हँसने, लम्बी साँस लेने और रुदन के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**२. खल्ल और उसका विनियोग**

**निम्नं खल्लं समाख्यातमातुरे श्रमकर्षिते ।**
**वेतालभृङ्गिरिट्यादिधारणे च क्षुधादिते ॥३९०॥** 395

धँसे हुए पेट को **खल्ल** कहा जाता है। रोगी, थके-माँदे, पिशाच ( वेताल ), शिव का गण (भृंगी तथा रिटि) आदि का रूप धारण करने और प्यास के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**३. पूर्ण और उसका विनियोग**

**आध्मातमुदरं पूर्णं भवेदत्यशिते त्विदम् ।**
**जलोदराभिधे व्याधौ तुन्दिलाभिनयेऽपि च ॥३९१॥** 396

फूला हुआ पेट **पूर्ण** कहलाता है। अधिक भोजन करने, जलोदर नामक रोग तथा तोंद वाले व्यक्ति के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**४. रिक्तपूर्ण और उसका विनियोग**

**स्यादन्वर्थं रिक्तपूर्णं श्वासरोगे प्रकीर्तितम् ॥३९२॥**

अर्थ का अनुसरण करने वाला उदर ( अर्थात् ऐसा उदर, जो खाली रहने पर भी भरा मालूम हो रिक्तपूर्ण कहलाता है। श्वास रोग के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

चार प्रकार का पृष्ठाभिनय

**क्रियाभिरुदरोक्ताभिर्यतः पृष्ठं विकारवत् ।** 397
**ततः पृथग्मया नास्य लक्षणं प्रतिपादितम् ।।३९३।।**

उदराभिनय के जो लक्षण-विनियोग बताये गये हैं, उन्हीं से ( स्वभावतः ) पृष्ठ का भी व्यत्यय हो जाता है। अतः पृष्ठाभिनय का पृथक् रूप से निरूपण नहीं किया गया। (अर्थात् उदाराभिनय से ही पृष्ठाभिनय की क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिएँ) ।

पाँच प्रकार का उरु अभिनय

**उरु ( जाँघ ) अभिनय के भेद**

**स्तब्धस्ततः कम्पितश्च वलितोद्वर्तितावपि ।** 398
**निवर्त्तितस्तथेत्यूरोः पञ्चधा लक्षणं मतम् ।**

उरु के पाँच भेद कहे गये हैं : १. **स्तब्ध**, २. **कम्पित**, ३. **वलित**, ४. **उद्वर्तित** और ५. **विवर्तित** ।

**१. स्तब्ध और उसका विनियोग**

**यो भवेन्निष्क्रियः स्तब्धः स साध्वसविषादयोः ।।३९४।।** 399

जो उरु निष्क्रिय या निश्चेष्ट हो, वह **स्तब्ध** कहलाता है। भय और विषाद के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**२. कम्पित और उसका विनियोग**

**नतोन्नतौ मुहुः स्यातां पार्श्वौ यस्य स कम्पितः ।**
**अधमानां गतौ प्रोक्तो विनियोगोऽस्य सूरिभिः ।।३९५।।** 400

जिस उरु में दोनों पार्श्व बार-बार झुकें और उठें, वह **कम्पित** कहलाता है। विद्वानों ने कहा है कि अधम व्यक्तियों की गति को अभिव्यक्त करने में उसका विनियोग होता है।

**३. वलित और उसका विनियोग**

**जानुन्यन्तर्गतो यः स्यादूरुः स वलिताभिधः ।**
**योषितां स्वैरगमने मुनिना स नियोजितः ।।३९६।।** 401

जो उरु घुटने के अन्तर्गत हो वह **वलित** कहलाता है। भरत मुनि ने स्त्रियों की स्वच्छन्द गति का भाव प्रकट करने में उसका विनियोग बताया है।

**४. उद्वर्तित और उसका विनियोग**

**मुहुरन्तर्बहिःक्षेपात् पार्ष्णेरग्रतलस्य च।**
**उद्वर्तितस्ताण्डवेऽसौ व्यायामाभिनये तथा ॥३९७॥** 402

यदि एड़ी (पार्ष्णि) के अग्रभाग को बार-बार भीतर और बाहर चलाया जाय तो वह उरु **उद्वर्तित** कहलाता है। ताण्डव तथा नृत्य व्यायाम के प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

**५. निर्वर्तित और उसका विनियोग**

**यो मध्यगतया पार्ष्ण्या भवेत् स तु निर्वर्तितः।**
**शमसम्भवयोरुक्तो वीरसिंह सुसूनुना ॥३९८॥** 403

जिस उरु के मध्यभाग में एड़ी को रख दिया जाय वह **निर्वर्तित** कहलाता है। अशोकमल्ल ने शान्ति तथा संभव वस्तु या उत्पत्ति के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग बताया है।

## दस प्रकार का जंघाभिनय

**जंघा के भेद**

**क्षिप्ता नतोद्वाहिताख्यावर्तितता परिवर्तिता।**
**जङ्घैवं पञ्चधा प्रोक्ताऽशोकमल्लेन भूभुजा ॥३९९॥** 404
**बहिर्गता तिरश्चीना निःसृता कम्पिता तथा।**
**परावृत्ताभिधा [चासौ] प्रोक्ता पञ्चविधापरैः।** 405

अशोकमल्ल ने जंघा अभिनय के पाँच भेद बताये हैं, जिनके नाम हैं : १. क्षिप्ता, २. नता, ३. उद्वाहिता, ४. आवर्तितता और ५. परिवर्तितता। दूसरे आचार्यों के मत से उसके पाँच भेद और होते हैं : १. बहिर्गता २. तिरश्चीना, ३. निःसृता, ४. कम्पिता और ५, परावृत्ता।

**१. क्षिप्ता और उसका विनियोग**

**बहिःक्षेपाद् भवेत् क्षिप्ता व्यायामे ताण्डवेऽपि च ॥४००॥**

यदि जंघा को बाहर की ओर चलाया जाय तो वह **क्षिप्ता** कहलाती है। व्यायाम और ताण्डव नृत्य के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२. नता और उसका विनियोग

नमज्जानुस्तु या जङ्घा सा नता परिकीर्तिता । 406
गतस्थानासनेष्वेषा वीरसिंहसुतोदिता ॥४०१॥

यदि घुटने को मोड़ दिया जाय तो वह **नता** जंघा कहलाती है । अशोकमल्ल ने गमन, स्थान और आसन के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

३. उद्वाहिता और उसका विनियोग

उर्ध्वं गतोद्वाहिता स्यादाविष्टगमनादिषु ॥४०२॥ 407

यदि जंघा को ऊपर की ओर उठाया जाय तो वह **उद्वाहिता** कहलाती है । आवेश तथा गमन (या भूत आदि से आविष्ट व्यक्ति) आदि के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

४. आवर्तिता और उसका विनियोग

दक्षिणे वामतः पादे वामे दक्षिणतो मुहुः ।
कृते योज्यावर्तिताख्या विदूषकपरिक्रमे ॥४०३॥ 408

यदि दाहिना पैर बाँयी ओर और बाँया पैर दाहिनी ओर बार-बार चलाया जाय तो उसे **आवर्तिता** जंघा कहते हैं । विदूषक के चक्कर काटने में उसका विनियोग होता है ।

५. परिवर्तिता और उसका विनियोग

प्रतीपं यायिनी जङ्घा कथिता परिवर्तिता ।
ताण्डवेऽशोकमल्लेन नृपाग्रण्या मनीषिणा ॥४०४॥ 409

उक्त **आवर्तिता** जंघा के विपरीत क्रिया वाली जंघा को **परिवर्तिता** कहते हैं । मनीषी महाराज अशोकमल्ल ने ताण्डव नृत्य के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

६. बहिर्गता

पार्श्वप्रसारिता नृत्ये सद्भिरुक्ता बहिर्गता ॥४०५॥

यदि नृत्य में जंघा को बगल की ओर फैलाया जाय तो सज्जनों ने उसे **बहिर्गता** कहा है ।

७. कम्पिता और उसका विनियोग

कम्पिता कम्पनादुक्ता भये घर्घरिकाध्वनौ ॥४०६॥ 410

काँपती हुई जंघा को **कम्पिता** कहा जाता है । भय और घर्घर ध्वनि का भाव प्रकट करने में उसका विनियोग होता है ।

८. तिरश्चीना और उसका विनियोग

क्षितिश्लिष्टबहिःपार्श्वा तिरश्चीना मतासने ॥४०७॥

जिस जंघा का बाह्य पार्श्व भाग भूमि से सटा हो, उसे **तिरश्चीना** कहते हैं । आसन के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

९. परावृत्ता और उसका विनियोग

पश्चात्प्राप्ता परावृत्ता धराश्लिष्टेन जानुना । 411
वामेन पितृकार्येऽथ देवकार्येऽपरेण सा ॥४०८॥

यदि घुटने को भूमि से सटा कर (या टिका कर) जंघा को पीछे की ओर मोड़ दिया जाय तो उसे **परावृत्ता** कहते हैं । पितृ-कार्य का भाव दर्शाने में **परावृत्ता** के बाँयें घुटने को भूमिश्लिष्ट करके और देव-कार्य का भाव दर्शाना हो तो दाहने घुटने को भूमिश्लिष्ट करके उसका विनियोग करना चाहिए ।

१०. निःसृता

याग्रे प्रसारिता जङ्घा सा मता निःसृताभिधा ॥४०९॥ 412

जो जंघा आगे की ओर फैला दी जाय उसे **निःसृता** कहते हैं ।

सात प्रकार के जानु अभिनय

जानु (घुटने) के भेद

नतोन्नते संहतं च विवृतं कुञ्चितं समम् ।
ततोऽर्धकुञ्चितं चेति जानूक्तं सप्तधा बुधैः । 413

विद्वानों ने जानु के सात भेद बताये हैं : **१. नत, २. उन्नत, ३. संहत, ४. विवृत्त, ५. सम, ६. अर्धकुञ्चित** और **७ कुञ्चित** ।

१. नत और उसका विनियोग

भूमिप्राप्तं जानु नतं प्रोक्तं पातेऽभिवादने ॥४१०॥

भूमि पर अवस्थित जानु को **नत** कहते हैं । किसी चीज को गिराने और अभिवादन करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

२. उन्नत और उसका विनियोग

कुचदेशागतं जानून्नतमुच्चाधिरोहणे ॥४११॥ 414

यदि जानु को कुच देश तक उठा लिया जाय तो, वह **उन्नत** कहलाता है । ऊपर उठने या ऊँची चीज पर चढ़ने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३. संहत और उसका विनियोग

लग्नान्तर्जानु यज्जानु संहतं तद् बुधैर्मतम् ।
तदीर्ष्याकोपलज्जादिरतिभावेषु योषिताम् ॥४१२॥ 415

यदि एक जानु को दूसरे जानु के नीचे सटा कर रख दिया जाय तो विद्वानों के कथनानुसार उसे **संहत** जानु कहा जाता है । ईर्ष्या, कोप, लज्जा और स्त्रियों के रति-भावों (कामकेलियों) के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

४. विवृत और उसका विनियोग

जानुद्वयं बहिर्भूतं विवृतं जानु सम्मतम् ।
नियुज्यते वाजिगजारोहणादिषु सूरिभिः ॥४१३॥ 416

यदि दोनों जानुओं को बाहर की ओर फैला दिया जाय तो उसे **विवृत्त** कहते हैं । हाथी और घोड़े आदि पर चढ़ने आदि के अभिनय में विद्वानों ने उसका विनियोग बताया है ।

५. सम और उसका विनियोग

स्वभाविकं समं जानु स्वभावावस्थितौ मतम् ॥४१४॥

यदि जानु को स्वाभाविक रूप में रखा जाय तो उसे **सम** कहते हैं । स्वाभाविक अवस्था का भाव व्यक्त करने में उसका विनियोग होता है ।

६. अर्धकुञ्चित

नमनात्तु नितम्बस्य प्रोक्तं जान्वर्धकुञ्चितम् ॥४१५॥ 417

यदि नितम्ब को झुका दिया जाय तो उसे **कुञ्चित** जानु कहते हैं ।

७. कुञ्चित और उसका विनियोग

श्लिष्टोरुजङ्घे जानूक्तं कुञ्चितं सद्भिरासने ॥४१६॥

यदि (घुटने को मोड़ कर) उरु और जंघा को सटा दिया जाय तो उस जानु को **कुञ्चित** कहते हैं । सज्जनों ने आसन के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

पाँच प्रकार का मणिबन्ध अभिनय

मणिबन्ध (कलाई) के भेद

निकुञ्चाकुञ्चितौ स्यातां चलश्च भ्रमितः समः । 418
एवं पञ्चविधो धीरैर्मणिबन्धः प्रकीर्तितः ॥४१७॥

धीर पुरुषों ने मणिबन्ध के पाँच भेद बताये हैं : १. **निकुञ्च**, २. **आकुञ्चित**, ३. **चल**, ४. **भ्रमित** और ५. **सम** ।

**१. निकुञ्च और उसका विनियोग**

बहिर्यो निम्नतां प्राप्तो निकुञ्चोऽसौ मतः सताम् । 419
दाने त्वभयदानेऽपि मुनिना संप्रदर्शितः ॥४१८॥

जो कलाई बाहर की ओर झुकी हो उसे सज्जनों ने **निकुञ्च** कहा है । भरत मुनि ने दान तथा अभयदान के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

**२. आकुञ्चित और उसका विनियोग**

अन्तर्निम्नः समाख्यातो धीरैराकुञ्चिताभिधः । 420
प्रायः प्रयुज्यते धीरैरेष वस्त्वपसारणे ॥४१९॥

भीतर की ओर झुके हुए मणिबन्ध को धीर पुरुषों ने **आकुञ्चित** कहा है। धीरों के मत से वस्तु के हटाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**३. चल और उसका विनियोग**

अभ्यासाद् रचितौ चेत् स्तो निकुञ्चाकुञ्चिताविमौ । 421
चलस्तदा नियोगोऽस्यावाहने सद्भिरीरितः ॥४२०॥

यदि दोनों मणिबन्धों की निकुञ्च और आकुञ्चित में रचना की जाय तो, वह **चल** कहलाता है । सज्जनों ने आह्वान करने के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

**४. भ्रमित और उसका विनियोग**

भ्रमणाद् भ्रमितः खड्गच्छुरिकाभ्रमणादिषु ॥४२१॥ 422

यदि मणिबन्ध को घुमाया जाय तो वह **भ्रमित** कहलाता है । तलवार और छुरे आदि के घुमाने में उसका विनियोग होता है ।

**५. सम और उसका विनियोग**

ऋजुः समे धारणे तु पुस्तकस्य प्रतिग्रहे ॥४२२॥

यदि मणिबन्ध को (स्वाभाविक रूप में) सीधा रखा जाय तो वह **सम** कहलाता है । पुस्तक के धारण करने तथा दान लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

### प्रत्यंग भूषणों का निरूपण

**भूष्यन्तेऽङ्गानि यैस्तानि भूषणानि प्रचक्षते । 433**
**प्रत्यङ्गत्वं कथं तेषां तन्मतेऽप्युपपद्यते ।।४२३।।**
**मणिबन्धौ जानुनी च प्रत्यङ्गे स्तो यथाकथम् । 424**

आभूषण से अंग सुशोभित (विभूषित) होते हैं । इसलिए उन्हें भूषण कहा गया है । किन्तु जो यथाकथञ्चित् मणिबन्धों और जानुओं को प्रत्यंग मानते हैं उनके मत में भी आभूषणों में प्रत्यंगत्व कैसे सिद्ध होता है ?

**अत्र प्राह समाधानमशोको विदुषां वरः ।।४२४।।**
**शक्त्या यदपि बाधःस्याद् दृश्यतेऽत्र तथापि हि । 425**
**वृत्त्या लक्षणया तेषां तदङ्कृतिहेतुता ।**
**प्रत्यङ्गत्वं भवेदेवमिति सर्वं समञ्जसम् ।।४२५।। 426**

इस समस्या का समाधान विद्वद्वर अशोकमल्ल ने इस प्रकार किया है कि यद्यपि भूषण का प्रत्यंगत्व अभिध शक्ति से सिद्ध नहीं होता, तथापि लक्षणा वृत्ति से सिद्ध हो जाता है; क्योंकि वे (मणिबन्ध तथा जानु) शोभा के कारण हैं । इसलिए प्रत्यंग हैं । इस प्रकार उनका सामंजस्य हो जाता है ।

नौ प्रकार के प्रत्यंगों का निरूपण समाप्त

● ●

# दृष्टि प्रकरण / तीन

## दृष्टि अभिनय और उनका विनियोग

[अशोकमल्ल ने दृष्टि अभिनय के छत्तीस प्रकार बताये हैं, जिनमें रसजा दृष्टि के आठ, स्थायी भावजा दृष्टि के आठ और संचारी भावजा दृष्टि के बीस भेद होते हैं।]

**रसजा दृष्टि के भेद**

कान्ता हास्या च करुणा रौद्रा वीरा भयानका ।
बीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टौ विज्ञेया रसदृष्टयः ॥४२६॥ 427

रसजा दृष्टि के आठ भेद होते हैं : १. कान्ता, २. हास्या, ३. करुणा, ४. रौद्रा, ५. वीरा, ६. भयानका, ७. बीभत्सा और ८. अद्भुता।

**स्थायी भावजा दृष्टि के भेद**

स्निग्धा हृष्टा तथा दीना क्रुद्धा दी(?दृ)प्ता भयान्विता ।
जुगुप्सिता विस्मितेति दृशौऽष्टौ स्थायिभावजाः ॥४२७॥ 428

स्थायी भावों से उत्पन्न दृष्टि के आठ भेद होते हैं: १. स्निग्धा, २. हृष्टा, ३. दीना, ४. क्रुद्धा, ५. दृप्ता, ६. भयान्विता, ७. जुगुप्सिता और ८. विस्मिता।

**संचारी भावजा दृष्टि के भेद**

शून्या च मलिना श्रान्ता तथान्या लज्जिताभिधा ।
ग्लाना तथा शङ्किता च विषण्णा मुकुला ततः ॥४२८॥ 429
कुञ्चिता चाभितप्ता च जिह्मा च ललिता तथा ।
वितर्किता ततोऽप्यर्धमुकुलाकेकरा परा ॥४२९॥ 430
विभ्रान्ता विप्लुता त्रस्ता विशोका(?कोशा)मदिरा तथा ।
विंशतिर्व्यभिचारिण्यो दृष्टयो मुनिनोदिताः ॥४३०॥ 431

भरत मुनि के मतानुसार संचारी भावों या व्यभिचारी भावों से उत्पन्न दृष्टि के बीस भेदों के नाम इस प्रकार हैं : १. शून्या, २. मलिना, ३. श्रान्ता, ४. लज्जिता, ५. ग्लाना, ६. शंकिता, ७. विषण्णा, ८. मुकुला, ९. कुञ्चिता, १०. अभितप्ता, ११. जिह्मा, १२. ललिता, १३. वितर्किता, १४. अर्धमुकुला, १५. आकेकरा, १६. विभ्रान्ता, १७. विलुप्ता, १८. त्रस्ता, १९. विकोशा और २०. मदिरा।

**दृष्टयो मिलिताः सर्वा षट्त्रिंशत् परिकीर्तिताः ।**

इस प्रकार दृष्टियों के सभी भेदों को मिलाकर कुल छत्तीस दृष्टियाँ होती हैं।

आठ रसजा दृष्टियाँ (१)

१. कान्ता

**या दृश्यमापिबन्तीव भृशं स्वच्छा विकाशिनी ॥४३१॥** 432
**सभ्रूक्षेपकाटाक्षा सा कान्तानङ्गविवर्धिनी ।**
**यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्तनम् ।** 433
**तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते ॥४३२॥**

जो दृष्टि मानो दृश्य पदार्थ को पी रही हो, अन्यन्त स्वच्छ एवं विकसित हो, भ्रूभंग (टेढ़ी भवों वाली) तथा कटाक्ष से युक्त हो और कामोत्पादक (या कामिनियों के शरीर की शोभा का उत्कर्ष बताने वाली) हो, हो, वह कान्ता कहलाती है।

२. हास्या और उसका विनियोग

**या कुञ्चितपुटा तीव्रमध्यमन्दतया क्रमात् ।** 434
**मनागभ्यन्तराविष्टा चित्रभ्रान्तकनीनिका ।**
**हास्या दृष्टिरसावुक्ता सद्भिर्विस्मापने मता ॥४३३॥** 435

यदि सिकुड़ी हुई पलकों वाली दृष्टि क्रमशः तीव्र, मध्य और मन्द गति से कुछ भीतर की ओर चली जाय और पुतलियां आश्चर्यजनक रूप में घूमती हों, तो वह हास्या कहलाती है। नाट्याचार्यों के मत से आश्चर्यचकित करने वाले भावों के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. करुणा और उसका विनियोग

**या स्रस्तोर्ध्वपुटा सास्रा नासिकाग्रानुगामिनी ।**
**शोकमन्थरतारा सा करुणा करुणे मता ॥४३४॥** 436

जो दृष्टि नीचे गिरी हो, पलक ऊपर उठी हो, आँसू बहा रही हो, नाक के अग्रभाग पर जमी हो और शोक के कारण जिसकी पुतली शिथिल पड़ गयी हो, वह **करुणा** कहलाती है। करुण रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**४. रौद्री और उसका विनियोग**

रूक्षा क्रूरा स्तब्धतारा चकितोभपुटारुणा।
उग्रा भ्रुकुटिभीष्मा या सा रौद्री दृष्टिरीरिता ॥४३५॥ 437

जो दृष्टि रूक्ष, क्रूर, स्थिर पलकों वाली, चकित, उग्र पलकों वाली, अरुण, तीक्ष्ण और भयानक भृकुटि वाली हो, वह **रौद्री** कहलाती है। रौद्र रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**५. वीरा और उसका विनियोग**

अक्षुब्धा समतारा या गम्भीरोत्फुल्लमध्यभाक्।
दीप्ता विकासिता दृष्टिर्वीरा सा वीरगोचरा ॥४३६॥ 438
माधुर्यधैर्यगाम्भीर्यौदार्याणि तु विवृण्वती।
शोभातेजोविशेषादीन् सत्त्वभेदांश्च सा किल ॥४३७॥ 439

जो दृष्टि क्षोभरहित, सम तारों वाली, गंभीर, उत्फुल्ल मध्य भाग वाली, दीप्त, विकसित और वीरोचित हो, वह **वीरा** कहलाती है। मधुरता, धीरता, गंभीरता, उदारता, शोभा, विशेष तेज और अनेक प्रकार के पराक्रमों की अभिव्यक्ति में उसका विनियोग होता है।

**६. भयानका और उसका विनियोग**

विलोलोद्वृत्ततारा या स्तब्धोद्वृत्तपुटोभया।
दृश्यात्पलायमानेव सोक्ता दृष्टिर्भयानका ॥४३८॥ 440

चंचल, फड़कते हुए तारों वाली, स्तब्ध एवं खुले हुए पलकों वाली और देखने से मानो पलायन कर देने वाली दृष्टि **भयानका** कहलाती है। भयानक रस के भावों के अभिव्यंजन में उसका विनियोग होता है।

**७. बीभत्सा और उसका विनियोग**

घृणयोद्वेगमापन्ना दृश्याद् या लोलतारका।
निकुञ्चितपुटापाङ्गा संश्लिष्टचलपक्ष्मभाक्। 441
बीभत्सा दृष्टिरुक्ता सा बीभत्सरससंश्रया ॥४३९॥

घृणा के भावों को उद्दीप्त करने वाली, दृश्य से चंचल तारों वाली, सिकुड़ी हुए पलकों के कोरों वाली, सटी हुई और घूमते हुए पलकों वाली दृष्टि **बीभत्सा** कहलाती है। बीभत्स रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**८. अद्भुता और उसका विनियोग**

किञ्चित्कुञ्चितपक्ष्माग्रा याश्चर्योद्वृत्ततारका । 442
सौम्यापाङ्गविकासाढ्याऽद्भुता सा दृष्टिरद्भुते ॥४४०॥

ईषत् सिकुड़ी हुई बरौनियों के अग्रभाग वाली, अश्चर्य के साथ घूमती हुई पुतली वाली, सौम्य तथा खि ले हुए कोरों (अपांगों) से सम्पन्न दृष्टि **अद्भुता** कहलाती है। अद्भुत रस के अभिनय में उसका **विनियोग** होता है ।

आठ स्थायिभावजा दृष्टियाँ (२)

**१. स्निग्धा**

स्मिततारा साभिलाषोत्क्षिप्तभ्रूर्या विकाशिनी । 443
कटाक्षिणी सहर्षा सा दृष्टिः स्निग्धोदिता बुधैः ।
उत्क्षेपं केचिदुभयोर्भ्रुवोराहुर्मनीषिणः ॥४४१॥ 444

मुस्कराती हुई पुतली वाली, चाहभरी, ऊपर फेंकी हुई भवों वाली, खिली हुई, कटाक्ष करने वाली और हर्षित दृष्टि **स्निग्धा** कहलाती हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि उसमें दोनों भवों को ऊपर फेंकना चाहिए ।

**२. हृष्टा और उसका विनियोग**

स्मिताकृतिर्विशत्तारा फुल्लगल्लयुगा चला ।
मनागाकुञ्चितप्रान्ता दृष्टिर्या च निमेषिणी । 445
सा हृष्टा दृष्टिरादिष्टा हासे नृत्तविचक्षणैः ॥४४२॥

हास्ययुक्त आकृति वाली, विशद तारों वाली, दोनों कपोलों को उत्फुल्ल करने वाली, चंचल, कुछ सिकुड़ी हुई कोरों वाली निमेष दृष्टि **हृष्टा** कहलाती है। नाट्यशास्त्रियों ने हास्य रस के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

**३. दीना**

मनाक्स्रस्तोर्ध्वपुटा किञ्चिदावृत्ततारका । 446
बाष्पाविलाल्पसञ्चारा दृष्टिर्दीनोदिता बुधैः ॥४४३॥

गिरी हुई, ऊपर उठे हुए पलकों वाली, कुछ खुली हुई पुतलियों वाली, आँसुओं से भरी और मन्द-मन्द संचरण करने वाली दृष्टि को विद्वानों ने **दीना** कहा है।

४. क्रुद्धा और उसका विनियोग

कुटिल भ्रुकुटी रूक्षा [किञ्चित्तरलतारका]। 447
स्तब्धोद्वृत्तपुटा दृष्टिः क्रुद्धा क्रोधे निरूपिता ॥४४॥

टेढ़ी भवों वाली, रूखी, कुछ चंचल तारों वाली स्थिर और उठे हुए पलकों वाली दृष्टि **क्रुद्धा** कहलाती है। क्रोध के भावों को व्यक्त करने के लिए उसका विनियोग होता है।

५. दृप्ता और उसका विनियोग

उद्गिरन्तीव या धैर्यं स्थिरा चोत्साहिनी तथा। 448
दृष्टिर्दृप्ताभिधोत्साहे सा योज्या नृत्तकोविदैः ॥४५॥

धैर्य को उगलति हुई-सी स्थिर तथा उत्साहयुक्त दृष्टि को नाटयाचार्यों ने **दृप्ता** कहा है। उत्साह के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

६. भयान्विता

त्रासान्निष्क्रान्तमध्येव विस्तारितपुटोभया। 449
विलोलतारका भीत्या दृष्टिस्त्रस्ता भयान्विता ॥४६॥

मानो भय से बाहर निकली मध्यभाग वाली, दोनों खुली हुई पलकों वाली, भय से काँपती हुई तारों वाली भयग्रस्त दृष्टि **भयान्विता** कहलाती है।

७. जुगुप्सिता

योद्विग्ना दृश्यमालोक्य संकुचत्पुटतारका। 450
अव्यक्तालोकिनी धीरैरसावुक्ता जुगुप्सिता ॥४७॥

दृश्य को देखकर उद्विग्न (व्याकुल) हुई, संकुचित पलकों एवं पुतलियों वाली और साफ न दिखायी देने वाली दृष्टि को धीर पुरुषों ने **जुगुप्सिता** कहा है।

८. विस्मिता और उसका विनियोग

विस्तारितपुटद्वन्द्वातिशयोद्भ्रान्ततारका। 451
विकाशिनी समा दृष्टिर्विस्मिता विस्मयोद्भवा।

फैली हुई, दोनों पलकों वाली, अत्यन्त घूमने वाले तारों वाली, खिली हुई और सम दृष्टि को **विस्मिता** कहते हैं। विस्मय के भावों के अभिव्यंजन में उसका विनियोग होता है।

**दृशोऽनुक्ताभिनयना ज्ञेयाः स्वस्वरसाश्रयाः ॥४४८॥** 452

जिन दृष्टियों के यहाँ अभिनय-विनियोग नहीं बताये गये हैं, अपने-अपने रसों के अभिनय में उनका विनियोग समझना चाहिए।

संचारी भावजा दृष्टियाँ (३)

**१. शून्या और उसका विनियोग**

**निष्कम्पा समतारा या मलिना शून्यदर्शना ।**
**तथा समपुटा बाह्यविषयेषु गतस्पृहा ।** 453
**सा दृष्टिः कथिता शून्या धीरैश्चिन्तानिरूपणे ॥४४९॥**

कम्पनरहित, सम तारों वाली, मलिन, शून्य दिखायी पड़ने वाली, सम पलकों वाली और वाह्य विषय को ग्रहण करने में निस्पृह दृष्टि **शून्या** कहलाती है। विद्वानों ने चिन्ता का भाव प्रकट करने में उसका विनियोग बताया है।

**२. मलिना और उसका विनियोग**

**किञ्चित्कुञ्चत्पुटा लक्ष्याद्व्यावर्तितकनीनिका ।** 454
**प्रस्पन्दमानपक्ष्माग्रा मलिनान्ता च या भवेत् ॥४५०॥**
**सा दृष्टिर्मलिना प्रोक्ता वैवर्ण्ये विहृते स्त्रियाः ।** 455
**प्रियेण यदसंलापः कालेऽपि विहृतं हि तत् ॥४५१॥**

कुछ सिकुड़े हुए पलकों वाली, लक्ष्य को ग्रहण करने में असमर्थ पुतलियों वाली, बरोनियों के अग्रभाग से कम्पित और अन्तिम भाग से मलिन (धुँधली) दृष्टि **मलिना** कहलाती है। मालिन्य तथा स्त्रियों के प्रेम-प्रदर्शन और उचित अवसर पर ही प्रिय के साथ वार्तालाप करने ( विहृत-स्त्रियों के दस हावों में एक ) में उसका विनियोग होता है।

**३. श्रान्ता और उसका विनियोग**

**श्रमम्लानपुटा सन्ना किञ्चित्कुञ्चदपाङ्गिका ।** 456
**पतत्कनीनिका श्रान्ता दृष्टिः सद्भिः श्रमे मता ॥४५२॥**

श्रम से म्लान पलकों वाली, स्तब्ध, कुछ सिकुड़ी हुई कोरों वाली और नीचे गिरती हुई तारों वाली दृष्टि **श्रान्ता** कहलाती है। श्रम के अभिनय में विद्वानों ने उसका विनियोग बताया है।

४. लज्जिता और उसका विनियोग

मनागञ्चितपक्ष्माग्रा त्रपात्रस्तकनीनिका । 457
संत्रस्तोर्ध्वपुटा दृष्टिर्लज्जिता लज्जिते स्त्रियाः ।।४५३।।

बरौनियों से कुछ सिकुड़ी हुई अग्रभाग वाली, लज्जा से गिरी हुई पुतलियों वाली, बहुत डरी हुई और ऊपर उठी हुई पलकों वाली दृष्टि **लज्जिता** कहलाती है। स्त्रियों की लज्जा का भाव प्रकट करने में उसका विनियोग होता है।

५. ग्लाना और उसका विनियोग

श्लथपक्ष्मपुटा भ्रूर्या मलिना मग्नतारका । 458
अल्पसञ्चारिणी दृष्टिः ग्लानौ [ग्लाना] निरूपिता ।।४५४।।

शिथिल पलकों, मलिन भवों, डूबी हुई बरौनियों वाली और मन्द-मन्द चलने वाली दृष्टि **ग्लाना** कहलाती है। ग्लानि के भावों के अभिव्यंजन में उसका विनियोग होता है।

६. शंकिता और उसका विनियोग

दृश्याद् द्रुतनिवृत्ता च मुहुर्लोलस्थिरोन्नता । 459
तिरश्चीना यथा गूढा तथा चकिततारका ।
सा दृष्टिः शङ्किता प्रोक्ता शङ्कायां पूर्वसूरिभिः ।।४५५।। 460

दृश्य पदार्थ से तुरन्त लौट आने वाली, बार-बार चंचल, स्थिर, ऊपर उठी हुई, तिरछी, गूढ़ और चकित तारों वाली दृष्टि **शंकिता** कहलाती है। पूर्वाचार्यों ने शंका (द्विविधा, आशंका) के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

७. विषण्णा और उसका विनियोग

त्रस्तापाङ्गा स्तब्धतारा विस्फारितपुटोभया ।
निमेषिणी या सा दृष्टिर्विषण्णोक्ता विषादिनी ।।४५६।। 461

गिरी हुई पलकों वाली, निश्चल पुतली वाली, फैली हुई दोनों पलकों वाली और पलक भाँजने वाली दृष्टि **विषण्णा** कहलाती है। विषाद का भाव व्यक्त करने में उसका विनियोग होता है।

८. मुकुला और उसका विनियोग

योल्लसल्लग्नपक्ष्माग्रा सुखामीलत्कनीनिका ।
सा दृष्टिर्मुकुलानन्दे मञ्जुलस्पर्शगन्धयोः ।।४५७।। 462

जिसमें बरौनियों के अग्रभाग खिले हुए तथा मिले हुए हों और पुतलियों सुख के कारण उन्मीलित हों वह दृष्टि **मुकुला** कहलाती है। आनन्द, सुन्दर, स्पर्श तथा गंन्ध के भावों को अभिव्यक्त करने में उसका विनियोग होता है।

९. कुञ्चिता और उसका विनियोग

**आकुञ्चत्पुटपक्ष्माग्रा सम्यक्कुञ्चत्कनीनिका ।**
**या दृष्टिः कुञ्चिता सोक्ता तेजोदुष्प्रेक्षव[स्तु]नि ।** 463
**असूयिते तथानिष्टे नेत्रसंव्यथनेऽपि च ॥४५८॥**

यदि पलक और बरौनियों के अग्रभाग सिकुड़े हुए हों और तारे भी अच्छी तरह सिकुड़े हुए हों, तो उसे **कुञ्चिता** दृष्टि कहते हैं। तेज, कठिनाई से दिखायी देने वाली वस्तु को देखने, ईर्ष्या, अनिष्ट और नेत्र-पीड़ा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१०. अभितप्ता और उसका विनियोग

**निरीक्षणालसे तारे व्यथया चलितौ पुटौ ।** 464
**यत्र सन्तापलग्नान्ता साभितप्ता दृगीरिता ।**
**उपतापेऽभिघातेऽपि निर्वेदाभिनये तथा ॥४५९॥** 465

जिसकी पुतलियाँ देखने में आलस्ययुक्त हों, व्यथा के कारण दोनों पलकें चलायमान हों और कोरें सन्ताप में डूबी हुई हों, वह दृष्टि **अभितप्ता** कहलाती है। रोग, चोट और अवसाद के अभिनय में उसका निवियोग होता है।

११. जिह्मा

**निगूढस्रस्ततारा या शनैस्तिर्यग्निरीक्षणा ।**
**आकूणितपुटा गूढा जिह्मा दृष्टिरुदीरिता ॥४६०॥** 466

जिसकी पुतलियाँ छिपी एवं गिरी या लटकी हुई हों, धीरे-धीरे तिरछी चितवन डालती हों, जिसकी पलकें कुछ संकुचित हों और जो गूढ़ हों, वह दृष्टि **जिह्मा** कहलाती है।

१२. ललिता और उसका विनियोग

**सस्मिता कुञ्चितप्रान्ता मधुरा भ्रूविकारयुक् ।**
**विकाशिता मनोजन्मविस्तारसहिता च या ।** 467
**सा दृष्टिर्ललिता धीरैर्ललिते सम्प्रयुज्यते ॥४६१॥**

मुसकुराती हुई, सिकुड़ी हुई कोरों वाली, मधुर, भ्रू-भंगिमा से युक्त, विकसित, कामभाव प्रकट करने वाली और लम्बी दृष्टि **ललिता** कहलाती है। ललित भावों के अभिव्यंजन में वीर पुरुषों ने उसका विनियोग बताया है।

**१३. वितर्किता और उसका विनियोग**

> **तर्केऽद्भुते पुटद्वन्द्वा या विकाशिततारका ।** 468
> **अधस्तात्सञ्चरन्ती सा दृष्टिरुक्ता वितर्किता ॥४६२॥**

अद्भुत तर्क में लगी हुई दोनों पलकों वाली, खिले हुए तारों वाली और नीचे की ओर संचरण करने वाली दृष्टि **वितर्किता** कहलाती है। (अद्भुत रस को उपस्थित करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है)।

**१४. अर्धमुकुला और उसका विनियोग**

> **स्तोकोन्मीलिततारारख्या मानाकुञ्चत्पुटद्वया ।** 469
> **किञ्चिदुत्फुल्लपक्ष्माग्रा दृक् सार्धमुकुला सुखे ॥४६३॥**

अर्ध मुकुलित तारों वाली, कुछ कुञ्चित हुई दोनों पलकों वाली और ईषत् खिली हुई बरौनियों के अग्रभाग वाली दृष्टि **अर्धमुकुला** कहलाती है। सुख के भावों के अभिव्यंजन में उसका विनियोग होता है।

**१५. आकेकरा और उसका विनियोग**

> **आकुणितपुटापाङ्गा मुहुस्तरलतारका ।** 470
> **तिर्यग्विवेशिता यार्धनिमेषसहिता च दृक् ॥४६४॥**
> **साकेकरा दुर्निरीक्ष्ये विच्छेदप्रेक्षितेऽपि च ।** 471
> **स्नेहविच्छेदतः कान्ते सापराधे यदीक्षणम् ।**
> **वीरसिंहसुतेनोक्तं विच्छेदप्रेक्षितं हि तत् ॥४६५॥** 472

जिसकी पलकें तथा कोरें कुछ सिकुड़ी हुई हों, पुतलियाँ बार-बार घूमती हों, जो तिरछी चितवन से युक्त हो और आधी खुली हुई हो, वह दृष्टि **आकेकरा** कहलाती है। कठिनाई से देखने और स्नेहभंगपूर्वक दृष्टिपात करने में उसका विनियोग होता है। प्रिय के अपराधी होने पर स्नेहविच्छेदपूर्वक जो दृष्टि उस पर डाली जाती है, उसको अशोकमल्ल ने **विच्छेदप्रेक्षित** कहा है।

**१६. विभ्रान्ता और उसका विनियोग**

> **या विश्रान्तिं क्वचिन्नैति लोलोत्फुल्लकनीनिका ।**

विस्तीर्णा च बुधैः सोक्ता दृष्टिर्विभ्रान्तसंज्ञिका । 473
विभ्रमे सा तथा वेगे विरामेऽपि नियुज्यते ॥४६६॥

जो कहीं विश्राम नहीं पाती तथा चंचल रहती है, जिसघी पुतलियाँ खिली हुई हों और जो फैली हुई हो, उसे विद्वानों ने **विभ्रान्ता** दृष्टि कहा है । भ्रान्ति (बेचैनी), आवेग और विराम के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

१७. विलुप्ता और उसका विनियोग

स्फुरितौ या पुटौ स्तब्धौ पतितावपि चेत्क्रमात् । 474
धत्ते सा विप्लुता दृष्टिर्गदिता चापले बुधैः ।
उन्मादे च तथार्त्तौ च दुःखादावपि युज्यते ॥४६७॥ 475

जो दृष्टि क्रमशः क्षुब्ध, स्थिर तथा गिरी हुई दोनों पलकों को धारण करती है (अर्थात् इन स्थितियों में वर्तमान रहती है) उसे **विलुप्ता** कहते हैं । चपलता, उन्माद, पीड़ा तथा दुःख आदि के अभिनय में विद्वानों ने उसका विनियोग बताया है ।

१८. त्रस्ता और उसका विनियोग

त्रासोद्भ्रमत्पुटद्वन्द्वा या कम्पितकनीनिका ।
उत्फुल्लमध्यमा त्रस्ता सा दृष्टिस्त्रासगोचरा ॥४६८॥ 476

जिसकी दोनों पलकें भय से घूमती हों, पुतलियाँ कांपती हों और जिसका मध्य भाग विकसित हो उसे त्रस्ता दृष्टि कहा जाता है । त्रास के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

१९. विकोशा और उसका विनियोग

उत्फुल्लपुटयुग्माग्रा यानवस्थिततारका ।
निर्निमेषा समुत्फुल्ला विकोशा सा दृगीरिता । 477
उग्रदर्शनविज्ञानक्रोधेषु ज्ञानगर्वयोः ॥४६९॥

जिसकी दोनों पलकों के अग्रभाग खिले हों, पुतलियाँ घूमती हों, पलकें निर्निमेष (अपलक) हों और जो अत्यन्त विकसित हो, वह दृष्टि **विकोशा** कहलाती है । भयंकर दर्शन, विज्ञान, क्रोध, पाण्डित्य और गर्व के भावों के अभिव्यंजन में उसका विनियोग होता है ।

२०. त्रिविधा मदिरा और उसका विनियोग

श्राघूर्णितान्तरा क्षामा किञ्चिदञ्चिततारका । 478
विकाशिता चला दृष्टिर्मदिरा तरुणे मदे [१] ॥४७०॥
मनाक्स्रस्तपुटा दृष्टिर्या किञ्चिद्भ्रान्ततारका । 479
श्रनवस्थितसंचारा मुहुः पक्ष्माग्रपीडिता ॥४७१॥
मदिरा सा मदे धीरैर्मध्यमे परिकीर्तिता [२] । 480
श्रधस्तात्सञ्चरन्ती या किञ्चिल्लक्षिततारका ।
सनिमेषा च सा धीरैर्मदिरोक्ताऽधमे मदे [३] ॥४७२॥ 481

**मदिरा** दृष्टि के तीन भेद कहे गये हैं, जिनका लक्षण-विनियोग इस प्रकार है : (१) जिस दृष्टि का भीतरी भाग घूमता हो, जो क्षीण हो, जिसकी पुतली कुछ झुकी हो और जो खिली हुई तथा चंचल हो, उसे **मदिरा** कहते हैं। पूर्ण मद के अभिनय में उसका विनियोग होता है। (१) जिस दृष्टि की पलक कुछ गिरी हुई हो, पुतली कुछ घूम रही हो, गति अस्थिर हो और जो बरौनी के अग्रभाग से बार-बार पीड़ित हो, उसे भी **मदिरा** कहते हैं। धीर पुरुषों ने मध्यम मद के अभिव्यंजन में उसका विनियोग बताया है। (३) जो दृष्टि नीचे की ओर संचरण करती हो, जिसकी पुतली कम दिखायी पड़ती हो और जो पलक मारती हो, उसे भी **मदिरा** कहते हैं। धीर पुरुषों ने अधम मद के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

दृष्टि के अनन्त भेद

षट्त्रिंशद् दृष्टयस्त्वेता दिङ्मात्रेण मयोदिताः ।
श्रनन्ता भ्रूपुटादीनां सन्दर्भात् सन्ति दृष्टयः ॥४७३॥ 482
स्फुटयन्त्यो रसादीन् याः करैरपि निवेदिताः ।
चतुर्मुखोऽपि ता वक्तुं समर्थो नेतरः कथम् ॥४७४॥ 483

उक्त छत्तीस प्रकार की दृष्टियाँ मैंने केवल दिग्दर्शन के लिए बतायी हैं। भवों तथा पलकों आदि के संयोग से उनके अनन्त भेद हो जाते हैं। विभिन्न रसों के अनुसार उनका अभिव्यंजन होता है, जो कि हस्ताभिनयों के सन्दर्भ में यथास्थान निरूपित की गयी हैं। स्वयं ब्रह्मा भी उन समस्त भेदों का वर्णन करने में असमर्थ हैं; फिर दूसरे की बात का तो कहना ही क्या ?

छत्तीस प्रकार की दृष्टियों का निरूपण समाप्त

## सात प्रकार की भ्रू (भौं) का अभिनय

**भ्रू के भेद**

सहजा रेचितोत्क्षिप्ता कुञ्चिता पतिता तथा ।
चतुरा भ्रुकुटी चेति सद्भिर्भ्रूः सप्तधोदिता । 484

सज्जनों ने भौं के सात भेद बताये हैं : १. सहजा, २. रेचिता, ३. उत्क्षिप्ता, ४. कुञ्चिता, ५. पतिता, ६. चतुरा और ७. भ्रुकुटी ।

**१. सहजा और उसका विनियोग**

सहजा तु स्वभावस्था भावेषु सहजेषु सा ॥४७५॥

स्वाभाविक स्थिति में रहने वाली भौं **सहजा** कहलाती है । सहज भावों के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**२. रेचिता और उसका विनियोग**

भ्रूरेका ललितोत्क्षिप्ता रेचिता नृत्तसंश्रया ॥४७६॥ 485

एक ही भौं को सुन्दरता के साथ ऊपर उठाने को **रचिता** कहते हैं । ललित भावों के अभिव्यंजन में उसका विनियोग होता है ।

**३. उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग**

अन्वर्थलक्षणोत्क्षिप्ता क्रमाद्वाथान्यया सह ।
कोपे स्त्रीणां वितर्के च श्रवणे दर्शने निजे । 486
लीलादावपि हेलायां नियोज्यैषा मनीषिभिः ॥४७७॥

यदि भौवों को क्रमशः अथवा एक के साथ दूसरी को (अर्थात् एक साथ) ऊपर उठाया जाय तो उसे **उत्क्षिप्ता** कहा जाता है । स्त्रियों के कोप, तर्क-वितर्क, श्रवण, आत्मदर्शन, लीला और अवज्ञा के भावों के अभिव्यंजन में मनीषियों ने उसका विनियोग बताया है ।

**४. कुञ्चिता और उसका विनियोग**

मृदुभङ्गा तु यैकाभ्रूर्यद्वा सार्धद्वितीयया । 487
भ्रुवा सा कुञ्चिता प्रोक्ता विलासे किलकिञ्चिते ।
मोट्टायिते कुट्टमिते नियुक्ता सा प्रयोक्तृभिः ॥४७८॥ 488

यदि एक या दोनों भौहों को मृदुता के साथ टेढ़ा कर दिया जाय या झुका दिया जाय तो उसे **कुञ्चिता भौं** कहते हैं। विलास (क्रीड़ा-खेल-मनोरंजन) किलकिंजित, मोट्टायित और कुट्टमित के अभिनय में नाटचाचार्यों ने उसका विनियोग बताया है। (किलकिंजित एक हाव है, जिसमें नायिका एक साथ कई भाव प्रकट करती है। मोट्टायित भी एक हाव है, जिसमें नायिका का अनुराग छिपाने की चेष्टा करने पर भी प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार कुट्टमित भी एक हाव है, जिसमें नायिका सुखानुभव के समय बनावटी दुःखचेष्टा प्रकट करती है)।

**५. पतिता और उसका विनियोग**

**पतिता भ्रूरधः प्राप्ता सद्वितीया क्रमेण वा।**
**हासे घ्राणे विस्मये च रोषे हर्षजुगुप्सयोः।** 489
**असूयोत्क्षेपयोश्चोभे पतिते गदिते भ्रुवौ ॥४७६॥**

यदि दोनों भौं एक साथ या क्रमशः एक-एक करके नीचे झुका दी जायँ तो उन्हें **पतिता** कहा जाता है। हास, घ्राण, विस्मय, क्रोध, हर्ष और घृणा के अभिनय में उसका विनियोग होता है। ईर्ष्या और फेंकने के भावों के अभिव्यंजन में दोनों **पतिता** भौहों का प्रयोग करना चाहिए।

**६. चतुरा और उसका विनियोग**

**स्तोकस्पन्दाऽलसा या भ्रूरायता स्याद् द्वितीयया।** 490
**चतुरा सा भवेत्सौम्यसंस्पर्शे ललितेऽपि च।**
**शृङ्गाराभिनयेऽप्येवं ज्ञेया अभिनयाः परे ॥४८०॥** 491

जो भौं किञ्चित् चलती हो, आलस्ययुक्त हो और दूसरी भौं के साथ फैली हुई हो उसे **चतुरा** कहते हैं। कोमल स्पर्श, ललित वस्तु और शृंगारिक अभिनय में उसका विनियोग होता है। अन्य अभिनयों में भी इसी प्रकार उसका विनियोग समझ लेना चाहिए।

**७. भृकुटि और उसका विनियोग**

**द्वितीयया सहामूलोत्क्षिप्ता भ्रूकुटिना(? भ्रूभ्रूकुटी)रुषि ॥४८१॥**

यदि एक भौं दूसरी भौं के साथ जड़ के ऊपर उठा दी जाय (अर्थात खूब तान दी जाय) तो उसे **भ्रूकुटी** कहते हैं। क्रोध के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

## नौ प्रकार की पलकों का अभिनय

**पलकों के भेद**

**समौ विवर्तितौ स्यातां प्रसृतौ कुञ्चितौ तथा।** 492

पिहितौ स्फुरितौ स्यातामुन्मेषितनिमेषितौ ।।४८२।।
वितालिताभिधौ चैवं नवधेति पुटौ मतौ । 493

पलकों के नौ भेद बताये गये हैं : १. सम, २. विवर्तित, ३. प्रसृत, ४. कुञ्चित, ५. पिहित, ६. स्फुरित, ७. उन्मेषित, ८. निमेषित और ९. वितालित ।

**१. सम और उसका विनियोग**

पुटौ साहजिकौ स्यातां समौ सहजगोचरौ ।।४८३।।

स्वाभाविक स्थिति में विद्यमान पलकें **सम** कही जाती हैं । स्वाभाविक स्थिति के प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

**२. विर्वातत और उसका विनियोग**

विवर्तितौ समुद्भ्रान्तौ क्रोधे प्रोक्तौ मनीषिभिः ।।४८४।। 494

भ्रमित या अस्तव्यस्त पलकें **विवर्तित** कहलाती हैं । क्रोध के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

**३. प्रसृत और उसका विनियोग**

प्रसृतौ त्वायतावुक्तौ विस्मये हर्षवीरयोः ।।४८५।।

फैली या लम्बायमान पलकें **प्रसृत** कहलाती है । विस्मय, हर्ष, तथा वीरता के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

**४. कुञ्चित और उसका विनियोग**

अन्वर्थौ कुञ्चितौ स्यातामनिष्टे प्रेक्षणे रसे । 495
गन्धे स्पर्शे तथा प्रोक्तौ वीरसिंहसुसूनुना ।।४८६।।

सिकुड़ी हुई पलकें **कुञ्चित** कहलाती हैं । अनिष्ट, निरीक्षण, रस, गन्ध तथा स्पर्श के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

**५. पिहित और उसका विनियोग**

अन्वर्थौ पिहितौ प्रोक्तौ सुप्तेऽक्षिव्यथनेऽपि च । 496
मूर्च्छातिवर्षयोरुष्णवातधूमाञ्चनार्तिषु ।।४८७।।

बन्द की हुई दोनों पलकें **पिहित** कहलाती हैं । शमन, नेत्रपीड़ा, मूर्च्छा, अतिवृष्टि, उष्णवात (लू), धुआँ, आँजन और पीड़ा के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

६. स्फुरित और उसका विनियोग

अन्वर्थौ स्फुरितौ ज्ञेयौ धीरैरीर्ष्यास्विमौ मतौ ॥४८८॥ 497

फड़कने वाली दोनों पलकें स्फुरित कहलाती हैं। ईर्ष्या के अभिनय में धीर पुरुषों ने उनका विनियोग बताया है।

७. उन्मेषित और ८ निमेषित तथा उनका विनियोग

उन्मेषितावलग्नौ स्तः संलग्नौ तु निमेषितौ।
इमावुभावपि ज्ञेयौ क्रोधाभिनयने बुधैः ॥४८९॥ 498

यदि दोनों पलकों को खोल दिया जाय तो वे **उन्मेषित** और बन्द कर दिया जाय तो **निमेषित** कहलाती हैं। विद्वानों ने क्रोध के अभिनय में इन दोनों पलकों का विनियोग बताया है।

९. विताल्लित और उसका विनियोग

विताल्लितावुत्तरेण पुटेनाधःस्थिताहतेः।
प्राहुः परे त्वलक्ष्ये तावतिविस्तारितौ पुटौ ॥४९०॥ 499

यदि ऊपर की पलक से नीचे की पलक पर चोट की जाय तो वे **विताल्लित** कहलाती हैं। दूसरे आचार्यों के मत से अत्यन्त फैली हुई पलकें **विताल्लित** कहलाती हैं। अदृश्य वस्तु के अभिनय में उनका विनियोग होता है।

तारों (आँखों की पुतलियों) का निरूपण

**तारों के भेद**

ब्रुवेऽहं तानि कर्माणि ताराभेदा भवन्ति ये।
द्विधा तान्यात्मनिष्ठानि विषयाभिमुखानि च ॥४९१॥ 500

अब तारा भेदों तथा उनके कार्यों का निरूपण किया जा रहा है। उनके कार्य दो प्रकार के होते हैं: एक आत्मनिष्ठ और दूसरे विषयाभिमुख।

आत्मनिष्ठ ताराकर्म (१)

प्राकृतं भ्रमणं पातो वलनं चलनं तथा।
प्रवेशनं समुद्वृत्तं निष्क्रामश्च विवर्तनम् ॥४९२॥ 501
नवोक्तान्यात्मनिष्ठानि ताराकर्माणि कोविदैः।

विद्वानों ने आत्मनिष्ठ ताराकार्यों के नौ भेद बताये हैं: **१. प्राकृत, २. भ्रमण, ३. पात, ४. वलन, ५. चलन, ६. प्रवेशन, ७. समुद्वृत्त, ८. निष्क्राम** और **९. विवर्तन**।

१. प्राकृत

तारयोः समवस्थानं प्रकृत्या प्राकृतं मतम् ।।४६३।। 502

तारों (पुतलियों) की समवस्थित स्वाभाविक स्थिति **प्राकृत** कहलाती है ।

२. भ्रमण

पुटान्तर्मण्डलावृत्तिस्तारयोर्भ्रमणं मतम् ।।४६४।।

पलकों के भीतर तारों को मण्डलाकार में घुमाना **भ्रमण** कर्म कहलाता है ।

३. पात

पातोऽधोगमनम्–

तारों का नीचे गिराना **पात** कहलाता है ।

४. वलन

–तिर्यग्गमनं वलनं मतम् । 503

तारों का तिरछा घुमाना **वलन** कहलाता है ।

५. चलन

कम्पनं चलनं ज्ञेयम्–

तारों का काँपना **चलन** कहलाता है ।

६. प्रवेशन

–अथ तत् स्यात् प्रवेशनम् ।।४६५।।

पुटान्तरे प्रवेशो यः–

तारों का पलकों के भीतर प्रवेश करना **प्रवेशन** कहलाता है ।

७. समुद्वृत्त

–समुद्वृतं समुन्नतम् । 504

तारों को ऊपर की ओर घुमाना या उन्नत करना **समुद्वृत्त** कहलाता है ।

८. निष्क्राम

निष्क्रामो निर्गमः प्रोक्तः–

तारों का बाहर निकलना **निष्क्राम** कर्म कहलाता है ।

९. विवर्तन

–कटाक्षः स्याद् विवर्तनम् ।।४६६।।

तारों का कटाक्ष करना **विवर्तन** कहलाता है ।

**प्राकृतं समभावेषु भ्रमणं वीररौद्रयोः ।** 505
**पातस्तु करुणे योज्यो वलनं वीररौद्रयोः ॥४९७॥**

**प्राकृत** ताराकर्म का समभाव में, **भ्रमण** का वीर तथा रौद्र रस में, **पात** का करुण रस में और **वलन** का वीर तथा रौद्र रस के अभिनय में प्रयोग होता है ।

**भयानके तु चलनं युज्यते तु प्रवेशनम् ।** 506
**हास्यबीभत्सयोर्धीरैः समुद्वृतं सतां मतम् ॥४९८॥**

भयानक रस के अभिनय में **चलन** तथा **प्रवेशन** ताराकर्मो का विनियोग होता है । धीर पुरुषों का कहना है कि हास्य तथा बीभत्स रस के अभिनय में **समुद्वृत्त** ताराकर्म का विनियोग करना चाहिए ।

**वीरे रौद्रेऽथ निष्क्रामो वीरे रौद्रे भयानके ।** 507
**अद्भुतेऽप्यथ कर्तव्यं श्रृङ्गारे तु विवर्तनम् ॥४९९॥**

वीर तथा रौद्र रस के अभिनय में **निष्क्राम** का और वीर, रौद्र, अद्भुत तथा श्रृंगार रस के अभिनय में **विवर्तन** तारा कर्म का विनियोग होता है ।

विषयाभिमुख ताराकर्म (२)

**समं साच्यनुवृत्तं चावलोकितविलोकिते ।** 508
**आलोकितोल्लोकिते च प्रविलोकितमित्यपि ॥५००॥**
**विषयाभिमुखान्याहुर्दर्शनानीति सूरयः ।** 509

विद्वानों ने तारों (पुतलियों) के विषयाभिमुखदर्शनों के आठ भेद बताये हैं : **१. सम, २. साचि, ३. अनुवृत्त, ४. अवलोकित, ५. विलोकित, ६. आलोकित, ७. उल्लोकित** और **८. प्रविलोकित** ।

**१. सम**

**मध्यस्थतारकं सौम्यं दर्शनं सममीरितम् ॥५०१॥**

यदि तारों को बीच में अवस्थित करके सौम्य दृष्टि से देखा जाय तो उसे **सम** कहते हैं ।

**२. साचि**

**तत् साचि यत् तिरश्चीनं पक्ष्मप्राप्तकनीनिकम् ॥५०२॥** 510

यदि बरौनियों की ओर तारों को घुमाकर तिरछी चितवन से देखा जाय तो उसे **साचि** कहते हैं ।

**३. अनुवृत्त**

**कार्त्स्न्यादन्तश्चिरस्था या दिदृक्षा सा बुधैर्मता ।**
**निर्वर्णना तया युक्तमनुवृत्तमुदीरितम् ॥५०३॥** 511

विद्वानों का मत है कि सम्पूर्ण रूप से चिरकाल तक रहकर भीतर देखने की जो इच्छा होती है वह निर्वर्णना कहलाती है और उस (निर्वर्णना) से युक्त दर्शन अनुवृत्त कहलाता है।

४. अवलोकित

**अधस्ताद्दर्शनं यत् स्यादवलोकितमीरितम् ॥५०४॥**

नीचे पृथिवी की ओर तारना अवलोकित कहलाता है।

५. विलोकित

**तद् विलोकितमाख्यातं पृष्ठतो यन्निरीक्षणम् ॥५०५॥** 512

पृष्ठभाग से निरीक्षण करना या तारों को घुमाकर पीछे देखना विलोकित कहलाता है।

६. आलोकित

**यदीक्षणं स्वभावस्थमुक्तमालोकितं हि तत् ॥५०६॥**

स्वाभाविक स्थिति में रहकर दृष्टिपात करना आलोकित कहलाता है।

७. उल्लोकित

**यदूर्ध्वं दर्शनं सद्भिस्तदुल्लोकितमीरितम् ॥५०७॥** 513

ऊपर की ओर जो दृष्टिपात किया जाता है, सज्जनों ने उसे उल्लोकित कहा है।

८. प्रविलोकित

**पार्श्वतः प्रेक्षणं धीरैर्गदितं प्रविलोकितम् ॥५०८॥**

पार्श्व देश से दृष्टिपात करने को विद्वानों ने प्रविलोकित कहा है।

विनियोग

**रसभावेषु तान्याहुः साधारण्येन सूरयः ॥५०९॥** 514

विद्वानों ने सामान्यतः रस-भावों के प्रदर्शन में विषयाभिमुखदर्शनों का विनियोग बताया है।

दृष्टि निरूपण समाप्त

## उपांग प्रकरण / चार

## उपांगाभिनय और उनका विनियोग

### छह प्रकार का नासाभिनय

अशोकमल्ल ने नासाभिनय के छह भेदों का उल्लेख किया है। उनके नाम हैं: १. **स्वाभाविकी**, २. **विकृष्टा**, ३. **सोच्छ्वासा**, ४. **विकूणिता**, ५. **नता** और ६. **मन्दा**।

**१. स्वाभाविकी और उसका विनियोग**

**स्वाभाविकी स्वभावस्था स्वाभावाभिनये मता ॥५१०॥**

स्वाभाविक रूप में अवस्थित नासिका को **स्वाभाविकी** कहते हैं। स्वभाव के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**२. विकृष्टा और उसका विनियोग**

**अत्युत्फुल्लपुटा नासा विकृष्टा भीतिरोषयोः।** 515
**आर्तौ तथोर्ध्वश्वासे च तीव्रगन्धेऽप्युदाहृता ॥५११॥**

यदि नासिका के नथुनों को अत्यधिक रूप से फुला दिया जाय, तो उसे **विकृष्टा** कहते हैं। भय, रोष, पीड़ा, ऊर्ध्वश्वास और तीव्र गन्ध के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**३. सोच्छ्वासा और उसका विनियोग**

**योत्कृष्टमारुता नासा सा सोच्छ्वासोदिता बुधैः।** 516
**उच्छ्वासे सौरभेऽप्येषा दीर्घोच्छ्वासविधायिषु।**
**निर्वेदादिष्वपि च या भावेषु विनियुज्यते ॥५१२॥** 517

विद्वानों का कहना है कि यथेष्ट वायु से भरी (अर्थात् तेजी से ऊपर साँस खिंचती) हुई नासिका **सोच्छ्वासा** कहलाती है। साँस को ऊपर खींचने, सुगन्ध ग्रहण करने, उच्छ्वास लेने और वैराग्य या दुःख आदि के भावों को अभिव्यंजित करने में उसका विनियोग होता है।

४. विकूणिता और उसका विनियोग

नासा संकुचिता या स्यात् सोक्ता धीरैर्विकूणिता ।
आर्तौ हास्ये जुगुप्सायामसूयायामपि सा स्मृता ।।५१३।। 518

जिस नासिका के नथुने सिकोड़ लिये जायँ उसे **विकूणिता** कहते हैं। विद्वानों ने पीड़ा, हास्य, जुगुप्सा और असूया के भावों में उसका विनियोग बताया है।

५. नता और उसका विनियोग

मुहुर्लग्नपुटा या तु सा नता सद्भिरीरिता ।
विच्छिन्नमन्दरुदिते सोच्छ्वासे सा निरूपिता ।।५१४।। 519

यदि नथुनों को बार-बार सटाया या हिलाया जाय तो, विद्वानों ने उस नासिका को **नता** कहा है। सिसकने और साँस को ऊपर खींचने में उसका विनियोग होता है।

६. मन्दा और उसका विनियोग

ईषच्छ्वासोच्छ्वासयुक्ता नासा मन्दोदिता बुधैः ।
चिन्तानिर्वेदयोः शोके तथौत्सुक्ये नियुज्यते ।।५१५।। 520

मन्द श्वास एवं उच्छ्वास से युक्त नासिका को विद्वानों ने **मन्दा** कहा है। चिन्ता, निर्वेद (वैराग्य), शोक और उत्सुकता का भाव प्रदर्शित करने में उसका विनियोग होता है।

उन्नीस प्रकार का वायु अभिनय

वायु के भेद (ऊर्ध्वश्वास अधःश्वास)

स्वस्थौ चलौ विमुक्तश्च प्रवृद्धोल्लासितौ तथा ।
निरस्तस्खलितौ श्वासः प्रसृतो विस्मितस्तथा ।।५१६।। 521
नवधोच्छ्वासनिःश्वासावेवं कोहलकीर्त्तितौ ।

आचार्य कोहल के मत से उच्छ्वास (साँस खींचने) और निःश्वास (साँस छोड़ने) के नौ भेद होते हैं। **१. स्वस्थ २. चल, ३. विमुक्त, ४. प्रबृद्ध, ५. उल्लासित, ६. निरस्त, ७. स्खलित, ८. प्रसृत** और **९. विस्मित**।

समो भ्रान्तः कम्पितश्च विलीनान्दोलितौ नतः ।।५१७।। 522
स्तम्भितश्च तथोच्छ्वासनिःश्वासौ सूत्कृतं तथा ।
सीत्कृतं चेति स प्रोक्तो दशधा लक्ष्मवेदिभिः ।।५१८।। 523

शास्त्रकारों ने वायु के दस भेदों का उल्लेख किया है, जिनके नाम हैं : **१. सम २. भ्रान्त, ३. कम्पित, ४. बिलीन, ५. आन्दोलित, ६. स्तम्भित, ७. उच्छ्वास, ८. निःश्वास, ९. सूत्कृत** और **१०. सीत्कृत** ।

**१. स्वस्थ और उसका विनियोग**

**स्वभावजौ यावुच्छ्वासनिःश्वासाख्यौ तु मारुतौ ।**
**तौ स्वस्थौ स्वस्वकार्येषु विनियुक्तौ नियोक्तृभिः ॥५१९॥** 524

उच्छ्वास और निःश्वास नामक स्वाभाविक रूप से गृहीत एवं निःसृत वायु **स्वस्थ** कहलाता है । नृत्ताचार्यों ने सामान्यतः सभी अभिनयों के भावों में उसका विनियोग बताया है ।

**२. चल और उसका विनियोग**

**उष्णावुच्छ्वासनिःश्वासौ सशब्दौ वक्त्रनिर्गतौ ।**
**यौ तौ चलौ शोकचिन्तासमौत्सुक्येषु कीर्तितौ ॥५२०॥** 525

जो उच्छ्वास तथा निःश्वास गर्म, शब्दयुक्त तथा मुख से निकले वे **चल** कहलाते हैं । शोक, चिन्ता तथा तत्सम उत्सुकता के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**३. विमुक्त और उसका विनियोग**

**चिरं निरुध्य यो मुक्तो विमुक्तः सोऽनिलो मतः ।**
**ध्याने योगे सद्भिरेष प्राणायामे च युज्यते ॥५२१॥** 526

जिस वायु को चिरकाल तक रोक कर छोड़ दिया जाय उसे **विमुक्त** कहा जाता है । सज्जनों ने ध्यान, योग तथा प्राणायाम के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

**४. प्रबृद्ध और उसका नियोग**

**यो निःश्वासः प्रवृद्धः सन् सशब्दः स्याद् विनिर्गतः ।**
**प्रवृद्धनामासौ वायुः क्षयव्याध्यादिसंश्रयः ॥५२२॥** 527

जो निःश्वास-वायु बहुत बढ़ कर या (अवरुद्ध होकर) शब्द के साथ बाहर निकलता है, उसे **प्रबृद्ध** कहते हैं । क्षय रोग आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**५. उल्लासित और उसका विनियोग**

**यो नासया शनैः पीतश्चिरादुल्लासितस्तु सः ।**
**हृद्यगन्धे च सन्दिग्धे नियुक्तः पूर्वसूरिभिः ॥५२३॥** 528

जिस वायु को चिरकाल तक धीरे-धीरे नासिका द्वारा पिया (अर्थात् खींचा) जाय, उसे **उल्लासित** कहा जाता है। सुगन्ध और सन्दिग्ध वस्तु के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

६. निरस्त और उसका विनियोग

क्षिप्तः सकृत् सशब्दो यो निरस्तः सोऽभिधीयते ।
स रोगे दुःखसंयुक्ते श्रान्तेऽप्येष नियुज्यते ॥५२४॥ 529

जिस वायु को एक ही बार शब्द के साथ छोड़ दिया जाय, वह **निरस्त** कहलाता है। रोग, दुःख, संतप्त और थके हुए के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

७. स्खलित और उसका विनियोग

यो निष्क्रान्तोऽतिदुःखेन स वायुः स्खलिताभिधः ।
दशायामन्तिमायां स व्याधिस्खलितयोरपि ॥५२५॥ 530

जो वायु अत्यन्त कष्ट से बाहर निकलता है, उसे **स्खलित** कहा जाता है। अन्तिम दशा, व्याधि तथा पतन के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

८. प्रसृत और उसका विनियोग

मुखाद् यो निर्गतो दीर्घः सशब्दः प्रसृतस्तु सः ।
प्रसुप्ताभिनये प्रोक्तोऽशोकमल्लेन धीमता ॥५२६॥ 531

जो दीर्घ श्वास शब्द के साथ मुख से निकलता है, वह **प्रसृत** कहा जाता है। धीमान् अशोकमल्ल ने सोये हुए के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

९. विस्मित और उसका विनियोग

प्रयत्नेन विना यः स्याच्चित्तस्यान्यप्रसक्तितः ।
स विस्मितोऽद्भुते कार्यश्चिन्ताविस्मययोरपि ॥५२७॥ 532

अन्यमनस्कावस्था में, बिना प्रयत्न के (स्वभावतः) जो वायु मुख से निकलता है वह **विस्मित** कहा जाता है। आश्चर्य, चिन्ता और विस्मय के अभिनय में उसका विनियोग करना चाहिए।

दसविध वायु के विनियोग

दश त्वन्वर्थलक्ष्माणो विज्ञातव्याः समादयः ।

(श्लोक ५१७ और ५१८ में) वायु के **सम** आदि जो दस भेद बताये गये हैं उनके लक्षणों के अनुरूप ही विनियोग भी समझने चाहिएँ।

समः सहजकार्येषु भ्रान्तो वल्लभसंगमे ।।५२८।। 533
प्रथमेऽथ बुधैरुक्तः कम्पितः सुरतेऽनिलः ।
मूर्च्छिते तु विलीनोऽथ मरुदान्दोलितो भवेत् ।।५२९।। 534
पर्वतारोहणेऽथ स्यात् स्तम्भितः शस्त्रमोक्षणे ।
आघ्राणे कुसुमादीनामुच्छ्वासः परिकीर्तितः ।।५३०।। 535
पश्चात्तापादिषु प्रोक्तो निःश्वासो नृत्तपण्डितैः ।
वेदनादौ सूत्कृतं स्याच्छीतदुःखे तु सीत्कृतम् ।।५३१।। 536
नखक्षते कामिनीनां निर्दयाधरपीडने ।

नृत्तविद्या-विशारदों का कहना है कि **सम** वायु का विनियोग स्वाभाविक कार्यों में होता है । इसी प्रकार अभिनय में **भ्रान्त** वायु का प्रिय-समागम में, **कम्पित** वायु का प्रथम रति-प्रसंग में, **विलीन** वायु का मूर्च्छा में, **आन्दोलित** वायु का पर्वत पर चढ़ने में, **स्तम्भित** वायु का शस्त्र-संचालन में, **उच्छ्वास** वायु का पुष्प आदि सूँघने में, **निःश्वास** वायु का पश्चाताप आदि में, **सूत्कृत** वायु का वेदना में, और **सीत्कृत** वायु का शीत, पीड़ा, नखक्षत्रत तथा कामिनियों के अधरों का कसकर दन्तक्षत करने में विनियोग होता है ।

एवं लोकाद् बुधैरूह्या नियोगा इतरेऽपि च ।।५३२।। 537
नासानिलप्रसङ्गेन मुखवातोऽपि लक्षितः ।।५३३।।

इसी प्रकार विज्ञ अभिनेताओं को चाहिए कि लोक-परम्परा के द्वारा वे अन्य वायु-भेदों तथा उनके विनियोगों को जान लें । यहाँ नासा-वायु से मुख-वायु को भी ग्रहण कर लेना चाहिए ।

दस प्रकार के अधरों का अभिनय

**अधर के भेद**

विवर्तितो विसृष्टश्च कम्पितो विनिगूहितः । 538
सन्दष्टकः समुद्गाख्योऽधरः षोढेति दर्शितः ।।५३४।।

अधरों (नीचे के ओठ) के छह भेद होते हैं, जिनके नाम हैं: १. **विवर्तित**, २. **विसृष्ट**, ३. **कम्पित**, ४. **विनिगूहित**, ५. **सन्दष्टक** और ६. **समुद्गक** ।

विकासिरेचितोद्वृत्तायतानन्यान् परे विदुः । 539

दूसरे आचार्यों ने अधरों के चार भेद और बताये हैं १. **विकासी**, २. **रेचित**, ३. **उद्वृत्त** और ४. **आयत** ।

१. विवर्त्तित और उसका विनियोग

तिर्यक्संकुचितो यः स्यादधरः स विवर्तितः । 540
असूयावज्ञयोर्हास्यवेदनादिषु कीर्तितः ॥५३५॥

जो अधर (घृणा से) तिरछा होकर सिकुड़ जाय वह **विवर्त्तित** कहलाता है। असूया, अवज्ञा (अनादर), हास्य और वेदना आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२. विसृष्ट और उसका विनियोग

विनिष्क्रान्तो विसृष्टः स्याद् द्रव्येणालक्तकादिना ।
रञ्जने सविलासेऽपि बिब्बोकेऽपि च सुभ्रुवाम् ॥५३६॥ 541

जो अधर आगे निकला हो वह **विसृष्ट** कहलाता है। सुन्दरियों द्वारा विलासपूर्वक महावर आदि से अधरों को रंगने और रूपादि के गर्व से प्रिय की उपेक्षा करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. कम्पित और उसका विनियोग

अन्वर्थः कम्पितः शीतरुड्भीपीडाजपादिषु ॥५३७॥

काँपता हुआ अधर **कम्पित** कहलाता है। शीत, रोग, पीड़ा, और जप आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४. विनिगूहित और उसका विनियोग

वदनान्तःप्रवेशेनायासे स्याद् विनिगूहितः । 542
स ईर्ष्यारोषयोः स्त्रीणां हठाच्चुम्बति च प्रिये ॥५३८॥

जिस अधर को मुख के भीतर छिपा लेने से कष्ट (आयास) हुआ हो (अर्थात् जिस अधर को आयासपूर्वक मुख के भीतर छिपा लिया जाय), वह **विनिगूहित** कहलाता है। स्त्रियों की ईर्ष्या तथा कोप और उनका वलात् चुम्बन लेते हुए प्रिय के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

५. सन्दष्टक और उसका विनियोग

योऽधरो दशनैर्दष्टः क्रोधे सन्दष्टकस्तु सः ॥५३९॥ 543

जिस अधर को दाँतों से काटा (या चबाया) जाय, वह **सन्दष्टक** कहलाता है। क्रोध के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

६. समुद्गक और उसका विनियोग

यो दधात्युन्नतावोष्ठसम्पुटौ स समुद्गकः ।
चुम्बनेष्वनुकम्पायां फूत्कारेऽप्यभिनन्दने ॥५४०॥ 544

जिसके दोनों ओष्ठपुट उन्नत हों (अर्थात् जो ओष्ठ अपनी स्वाभाविक स्थिति में हों ) वह अधर **समुद्गक** कहलाता है। चुम्बन आदि, कृपा, फूकने और अभिनन्दन करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

७. उद्वृत्त और उसका विनियोग

**उद्वृत्तो वदनोत्क्षेपात् सोऽवज्ञापरिहासयोः ॥५४१॥**

जिस अधर को मुँह की ओर उठाया गया हो, वह **उद्वृत्त** कहलाता है। अनादर और परिहास के अभिनय में में उसका विनियोग होता है।

८. विकासी और उसका विनियोग

**किञ्चिल्लक्ष्योर्ध्वदन्तो यः स विकासी स्मिते मतः ॥५४२॥** 545

जिस अधर के ऊपर दाँत कुछ दिखायी पड़ें, वह **विकासी** कहलाता है। ईषत् हास्य (मुसकुराहट) के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

९. रेचित और उसका विनियोग

**रेचितोन्वर्थलक्ष्मा स्याद् विलासे स नियुज्यते ॥५४३॥**

साफ किया गया अधर **रेचित** कहलाता है। विलास के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

१०. आयत और उसका विनियोग

**ततः सहोत्तरोष्ठेनायतः स्यात् सोऽद्भुते रसे ॥५४४॥** 546

ऊपर के ओठ के साथ फैला हुआ अधर **आयत** कहलाता है। अद्भुत रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

## छह प्रकार का जिह्वा अभिनय

जिह्वा के भेद

**ऋज्वी लोला लेहिनी च वक्रा सृक्कानुगोन्नता ।**
**षोढेति रसनां प्राहाऽशोकमल्लो नृपाग्रणीः ॥५४५॥** 547

महाराज अशोकमल्ल ने जिह्वा के छह भेद बताये हैं, जिनके नाम हैं: १. **ऋज्वी**, २. **लोला**, ३. **लेहनी**, ४. **वक्रा**, ५. **सृक्कानुगा** और ६. **उन्नता**।

१. ऋज्वी और उसका विनियोग

**ऋज्वी सा व्यात्तवक्त्रे या रसना स्यात् प्रसारिता ।**
**एषा श्रमे श्वापदानां पिपासायामपि स्मृता ॥५४६॥** 548

खोले हुए मुँह में फैलायी गयी जिह्वा को ऋज्वी कहते हैं। श्रम और हिंस्र पशुओं की प्यास के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२. लोला और उसका विनियोग

**व्यात्तास्ये या चला लोला सा वेतालनिरूपणे ।।५४७।।**

खोले हुए मुँह में लपलपाती जिह्वा को लोला कहते हैं। वेताल के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. लेहनी

**या जिह्वा लेढि दन्तोष्ठं सा सद्भिर्लेहिनी मता ।।५४८।।** 549

जो जिह्वा दाँत और ओष्ठ को चाटती हो, सज्जनों ने उसे लेहनी कहा है।

४. वक्रा और उसका विनियोग

**प्रसृतास्यान्नताग्रे या सा वक्रा नृहरौ मता ।।५४९।।**

जो आगे फैली हुई जिह्वा अग्र भाग से झुकी हो, वह वक्रा कहलाती है। नृसिंह के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

५. सृक्कानुगा और उसका विनियोग

**या जिह्वा लीढसृक्का सा प्रोक्ता सृक्कानुगा रुषि ।** 550

**स्वादुभक्ष्ये चैवमन्ये ज्ञेया अभिनया अपि ।।५५०।।**

जो जिह्वा ओष्ठ के प्रान्त भाग को चाटती हो. वह सृक्कानुगा कहलाती है। क्रोध तथा स्वादिष्ट भोजन के अभिनय में उसका विनियोग होता है। इसी प्रकार अन्य अभिनयों में भी उसका विनियोग समझ लेना चाहिए।

६. उन्नता और उसका विनियोग

**प्रसारितमुखे या वोन्नता जिह्वोन्नता मता ।** 551

**सा वक्त्रान्तःस्थवीक्षायां जृम्भाभिनयनेऽपि च ।।५५१।।**

फैलाये हुए मुँह में जो जिह्वा ऊपर की ओर उठी हो, वह उन्नता कहलाती है। मुँह के भीतर देखने तथा जम्हाई लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

आठ प्रकार के दन्तकर्म का निरूपण

दाँतों के भेद

**भिद्यन्ते दशना यैस्तु तानि कर्माण्यहं ब्रुवे ।** 552

**समं छिन्नं खण्डनं च चुक्कितं कुट्टनं तथा ।।५५२।।**

दष्टनिष्कर्षणे तद्वद् ग्रहणं चेति सञ्जगुः । 453
अष्टौ दशनकर्माणि लक्ष्मलक्ष्यविशारदाः ।

जिनसे दाँतों के भेद अवगत होते हैं, उन कार्यों का मैं यहाँ निरूपण कर रहा हूँ । लक्षण और लक्ष्य के ज्ञाताओं ने दन्तकर्म के आठ भेद बताये हैं । उनके नाम हैं : १. **सम**, २. **छिन्न**, ३. **खण्डन**, ४. **चुक्कित**, ५. **कुट्टन**, ६. **दष्ट**, ७. **निष्कर्षण** और ८. **ग्रहण** ।

**१. सम और उसका विनियोग**

सममुक्तं मनाक् श्लेषस्तत् स्यात् सहजकर्मणि ॥५५३॥ 554

जिन दाँतों को किञ्चित् मिला लिया जाय उन्हें **समकर्म** कहते हैं । सामान्यतः सभी प्रकार के अभिनयों में उसका विनियोग होता है ।

**२. छिन्न और उसका विनियोग**

छिन्नं तु दृढसंश्लेषो रोदने व्याधिशीतयोः ।
वीटिकाछेदने भीतौ व्यायामादिष्वपि स्मृतम् ॥५५४॥ 555

दाँतों को दृढ़ता से मिलाना **छिन्न कर्म** कहलाता है । रुदन, व्याधि, शीत, कपड़े की गाँठ काटने, भय और व्यायाम आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**३. खण्डन और उसका विनियोग**

मुहुर्दशनसंश्लेषविश्लेषः खण्डनं मतम् ।
संलापेऽध्ययने तत् स्याज्जपभक्षणयोरपि ॥५५५॥ 556

दाँतों को बार-बार मिलाना और अलग करना **खण्डन कर्म** कहलाता है । वार्तालाप, अध्ययन, जप और भक्षण आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**४. चुक्कित और उसका विनियोग**

दूरे स्थितिर्दन्तपङ्क्त्योः चुक्कितं तच्च जृम्भणे ॥५५६॥

दोनों दन्त-पंक्तियों को दूरी में रखना **चुक्कित कर्म** कहलाता है । जम्हाई लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**५. कुट्टन और उसका विनियोग**

कुट्टनं दन्तसंघर्षः शीते भीरुग्जरास्विदम् ॥५५७॥ 557

दाँतों को रगड़ना या किटकिटाना **कुट्टन कर्म** कहलाता है । ठंडक, भय, रोग और बुढ़ापे के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**६. दष्ट और उसका विनियोग**

**अधरे दशनैर्दंशो दष्टं क्रोधे निरूपितम् ॥५५८॥**

दाँतों से अधर (नीचे का ओंठ) को काटना **दष्ट कर्म** कहलाता है। क्रोध के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**७. निष्कर्षण और उसका विनियोग**

**निष्कर्षणं स्यान्निष्कासो मतं मर्कटरोदने ॥५५९॥** 558

दाँतों को बाहर निकालना **निष्कर्षण कर्म** कहलाता है। बन्दर के चिचियाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**८. ग्रहण और उसका विनियोग**

**तृणादेर्धारणं दन्तैर्ग्रहणं परिकीर्तितम् ।**
**लेहनं जिह्वया लेहस्तल्लौल्याभिनये मतम् ।** 559
**इत्याह ग्रहणस्थाने भरतो मुनिसत्तमः ॥५६०॥**

दान्तों से तृण आदि पकड़ना **ग्रहण कर्म** कहलाता है। मुनिश्रेष्ठ भरत ने ग्रहण कर्म के स्थान पर **लेहन कर्म** बताया है और जिह्वा से चाटने को **लेहन कर्म** कहा है। चंचलता या लोभ के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

## छह प्रकार के कपोलों का अभिनय

**कपोलों के भेद**

**समौ क्षामौ कम्पितौ च फुल्लाख्यौ कुञ्चितावपि ।** 560
**पूर्णौ कपोलौ षोढेति तल्लक्ष्माद्यधुना ब्रुवे ।**

दोनों कपोलों के छह भेदों के नाम हैं: १. **सम**, २. **क्षाम**, ३. **कम्पित**, ४. **फुल्ल**, ५. **कुञ्चित** और ६. **पूर्ण**। अब उनके लक्षणों का निरूपण किया जाता है।

**समादि और उनका विनियोग**

**अन्वर्थलक्षणाः पञ्च ज्ञेयास्तत्र समादयः ॥५६१॥** 561

सम आदि पाँच भेदों के लक्षण (अपने-अपने) अर्थ के अनुरूप समझने चाहिएँ। (अर्थात् जो कपोल स्वाभाविक सम स्थिति में हों उन्हें **सम**; जो क्षीण या पिचके हुए हों वे **क्षाम**; जो कम्पनयुक्त हों वे **कम्पित**; जो प्रफुल्लित हों उन्हें **फुल्ल**; और जो सिकुड़े हुए हों उन्हें **कुञ्चित** कहते है)।

**पूर्ण**

**यावुन्नतौ कपोलौ तौ पूर्णौ धीरैरुदीरितौ ॥५६२॥**

जो कपोल उन्नत हों, उन्हें धीर पुरुषों ने पूर्ण कहा है ।

**समौ सहजभावेषु क्षामौ दुःखे निरूपितौ ।** 562
**कम्पितौ रोमहर्षेषु फुल्लौ प्रीतौ बुधैर्मतौ ॥५६३॥**
**कुञ्चितौ साध्वसे स्पर्शे शीते रोमाञ्चितेऽपि च ।** 563
**पूर्णाविशोकमल्लेन प्रोक्तावुत्साहगर्वयोः ॥५६४॥**

विद्वानों का कहना है कि स्वाभाविक भावों के अभिनय में **सम** कपोलों का, दुःख के अभिनय में **क्षाम** कपोलों का, रोमांच के अभिनय में **कम्पित** कपोलों का, प्रीति के अभिनय में **फुल्ल** कपोलों का और भय, स्पर्श, शीत तथा रोमांच के अभिनय में **कुञ्चित** कपोलों का विनियोग होता है। अशोकमल्ल का कहना है कि उत्साह तथा गर्व के अभिनय में **पूर्ण** कपोलों का प्रदर्शन करना चाहिए ।

## आठ प्रकार के चिबुक का अभिनय

**चिबुक (ठोढ़ी) के भेद**

**चिबुकं लक्षितप्रायं यद्यप्योष्ठादिकर्मणा ।** 564
**तथाप्यहं सुबोधाय तल्लक्ष्म व्याहरेऽधुना ॥५६५॥**

यद्यपि ओष्ठ आदि के लक्षण-विनियोग से चिबुक के अभिनय का भी बोध हो जाता है ; फिर भी (उनकी) सहज जानकारी (स्पष्टीकरण) के लिए यहाँ (पृथक् रूप से) उनका निरूपण किया जा रहा है।

**व्यादीर्णं चलितं लोलं श्वसितं चलसंहतम् ।** 565
**संहतं स्फुरितं वक्रं चैवं चिबुकमष्टधा ॥**

चिबुक के आठ भेदों के नाम इस प्रकार है : १. **व्यादीर्ण**, २. **चलित**, ३. **लोल**, ४. **श्वसित**, ५. **चलसंहत**, ६. **संहत**, ७. **स्फुरित** और ८. **वक्र** ।

**१. व्यादीर्ण और उसका विनियोग**

**चिबुकं दूरनिष्क्रान्तं व्यादीर्णं जृम्भणादिषु ॥५६६॥** 566

दूर तक बाहर निकला हुआ चिबुक **व्यादीर्ण** कहलाता है। जम्हाई लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**२. चलित और उसका विनियोग**

**चलितं श्लेषविश्लेषे क्षोभवावस्तम्भयो रुषि ॥५६७॥**

चिबुक को संयुक्त-वियुक्त करना **चलित** कहलाता है। क्षोभ, वाणी के स्तम्भन और क्रोध के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. लोलित और उसका विनियोग

**तिर्यग्गतागते विभ्रल्लोलं चर्वितचर्वणे ॥५६८॥** 567

तिरछे गमनागमन को धारण करने वाला चिबुक **लोल** कहलाता है। चबाये हुए को चबाने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४. श्वसित और उसका विनियोग

**एकाङ्गुलादधःपाति श्वसितं प्रेक्षितेऽद्भुते ॥५६९॥**

एक अँगुल नीचे गिरने वाला चिबुक **श्वसित** कहलाता है। आश्चर्यजनक वस्तु के देखने के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

५. चलसंहत और उसका विनियोग

**चलसंहतमन्वर्थं कामिनीचुम्बने मतम् ॥५७०॥** 568

अपने अर्थ के अनुरूप (अर्थात् चंचल और संयुवत) चिबुक **चलसंहत** कहलाता है। कामिनियों के चुम्बन के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है।

६. संहत और उसका विनियोग

**निश्चलं मीलितास्यं यत् तन्मौने संहतं मतम् ॥५७१॥**

जो चिबुक निश्चल तथा संकुचित मुख वाला हो, उसे **संहत** कहा जाता है। मौन के भावाभिव्यंजन में उसका विनियोग होता है।

७. स्फुरित और उसका विनियोग

**स्फुरितं कम्पनादुक्तं शीते शीतज्वरेऽपि च ॥५७२॥** 569

जो चिबुक काँपता हो उसे **स्फुरित** कहते हैं। शीत तथा शीतज्वर के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

८. वक्र और उसका विनियोग

**तिर्यग्गतं यत् तद् वक्रं ग्रहावेशादिषु स्मृतम् ॥५७३॥**

जो चिबुक तिरछा चलाया जाय, वह **वक्र** कहलाता है। ग्रहों के आवेश आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

## छह प्रकार का मुख का अभिनय

**मुख के भेद**

**भुग्नमुद्वाहि विवृतं विधुतं विनिवृत्तकम् ।** 570
**व्याभुग्नं चेति षोढोक्तं मुखं तल्लक्ष्म चोच्यते ।**

मुख के छह भेद होते हैं ; १. भुग्न, २. उद्वाहि, ३. विवृत, ४. विधुत, ५. विनिवृत्त और ६. व्याभुग्न। अब उनके लक्षण बताये जाते हैं ।

**१. भुग्न और उसका विनियोग**

**तद्भुग्नं यदधोवक्त्रं यतिप्रकृतिलज्जयोः ॥५७४॥** 571

नीचे झुका या लटका हुआ मुख **भुग्न** कहलाता है । यतियों के स्वभाव और लज्जा का भाव प्रकट करने के लिए उसका विनियोग होता है ।

**२. उद्वाहि और उसका विनियोग**

**उत्क्षिप्तमास्यमुद्वाहि लीलानादरयानयोः ॥५७५॥**

ऊपर को खुले या उठे हुए मुख को **उद्वाहि** कहते हैं । स्त्रियों की लीला, अनादर और वाहन के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**३. विवृत और उसका विनियोग**

**विवृतं त्वोष्ठविश्लेऽपि शोके हास्ये भयादिषु ॥५७६॥** 572

अलग-अलग ओठों से युक्त खुले हुए मुख को **विवृत** कहा जाता है । शोक, हास्य और भय आदि के भाव-प्रदर्शन में उसका विनियोग होता है ।

**४. विधुत और उसका विनियोग**

**विधुतं तिर्यगायामि नैवमित्यादिवारणे ॥५७७॥**

तिरछे फैलाये हुए मुख को **विधुत** कहते हैं । **'ऐसा नहीं'** इस प्रकार रोकने या मना करने के भाव में उसका विनियोग होता है ।

**५. विनिवृत्त और उसका विनियोग**

**व्यावृत्तं विनिवृत्तं तद् रुषीर्ष्यासूययोरपि ।** 573
**विहृतावज्ञया चैतत् कामिनीनामपि स्मृतम् ॥५७८॥**

खुले हुए मुख को **विनिवृत्त** कहते हैं। क्रोध, ईर्ष्या, असूया, विहृत (भावविशेष) और कामिनियों की अवज्ञा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

६. व्याभुग्न और उसका विनियोग

यन्मनागायतं वक्त्रं तद् व्याभुग्नमितीरितम् । 574
औत्सुक्यचिन्तानिर्वेदगम्भीरालोकनादिषु ॥५७६॥

(दोनों पार्श्वों में) किञ्चित् फैले हुए मुख को **व्याभुग्न** कहते हैं। उत्सुकता, चिन्ता, विरक्ति और गंभीरतापूर्वक अवलोकन आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

## चार प्रकार के मुखराग का निरूपण

मुखराग (मुख के भाव)

येनाभिव्यज्यते चित्तवृत्तिर्धीरै रसात्मिका । 575
रसाभिव्यक्तिहेतुत्वात् मुखरागः स उच्यते ॥५८०॥

जिस (भाव) के द्वारा धीर पुरुष रसात्मक चित्तवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं, वह (भाव) रसाभिव्यक्ति का हेतु होने से **मुखराग** कहलाता है।

मुखराग के भेद

स्वाभाविकः प्रसन्नश्च रक्तः श्यामो बुधैरिति । 576
मुखरागश्चतुर्धोक्तस्तल्लक्षणमथोच्यते ॥५८१॥

विद्वानों ने उसके चार भेद बताये हैं: १. स्वाभाविक, २. प्रसन्न, ३. रक्त और ४. श्याम। अब उनके लक्षणों का निरूपण किया जाता है।

१. स्वाभाविक और उसका विनियोग

तत्र स्वाभाविकोऽन्वर्थः स्वभावाभिनये मतः । 577

स्वाभाविक रूप से किये जाने वाले मुखराग को **स्वाभाविक** कहते है। स्वाभाविक अभिनय में उसका विनियोग होता है।

२. प्रसन्न और उसका विनियोग

स्वच्छः प्रसन्नः शृङ्गारेऽद्भुते हास्येऽपि जायते ॥५८२॥

स्वच्छ (सुन्दर-निर्मल) मुखराग **प्रसन्न** कहलाता है। शृंगार, अद्भुत तथा हास्य रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. रक्त और उसका विनियोग

रक्तोऽन्वर्थोऽद्भुते वीरे रौद्रे च करुणे तथा ।।५८३।। 578

लाल मुखराग रक्त कहलाता है। अद्भुत, वीर, रौद्र और करुण रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४. श्याम और उसका विनियोग

भयानके सबीभत्से श्यामोऽन्वर्थो निरूपितः ।।५८४।।

काला मुखराग श्याम कहलाता है। भयानक तथा वीभत्स रस के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

एवमेव विशेषज्ञैर्यथाभावं यथारसम् । 579
मुखरागो नियुक्तोऽसौ रसभावप्रकाशकः ।।५८५।।

इस प्रकार नाटचाचार्यों ने निर्देश किया है कि भाव और रस के अनुरूप, रस तथा भाव के प्रकाशक मुखराग का प्रयोग करना चाहिए।

कृतोऽप्यभिनयस्तावच्छाखाङ्गोपाङ्गसंयुतः । 580
न भाति यावन्नोपैति मुखरागं यथारसम् ।।५८६।।

(भरत आदि नाटचाचार्यों का यह भी कहना है कि) शाखा, अंग और उपांग के सहित किया गया अभिनय तब तक शोभा नहीं देता, जब तक वह रस के अनुरूप मुखराग से समन्वित नहीं होता।

आङ्गिकाभिनयोऽल्पोऽपि मुखरागेण संयुतः । 581
शोभां द्विगुणितां धत्ते शशाङ्केनेव शर्वरी ।।५८७।।

थोड़ा भी आंगिक चेष्ठाओं द्वारा किया गया अभिनय मुखराग से समन्वित होने पर उसी प्रकार द्विगुणित शोभा को धारण करता है, जैसे चन्द्रमा से युक्त होने पर रात्रि।

रसभावसमाकीर्णदृष्टिभ्रूवदनान्वितम् । 582
प्रतिक्षणं तथा नेत्रमन्यदन्यत् प्रवर्तते ।।५८८।।
तथोचितं प्रकुर्वीत मुखरागं प्रयोगवित् । 583
यथारसं यथाभावमिति नृत्यविदां मतम् ।।५८९।।

नाटचाचार्यों का अभिमत है कि रस तथा भाव से समाकीर्ण दृष्टि और भ्रू तथा मुख से संयुक्त होकर प्रतिक्षण जैसे-जैसे नेत्रों का अन्यान्य रूप में प्रसार हो, प्रयोगवेत्ताओं (अभिनेताओं) को चाहिए कि, उसी प्रकार रस तथा भाव के अनुरूप मुखराग का भी उचित रीति से प्रयोग करें।

## बीस प्रकार के पार्ष्णि, गुल्फ और हस्तांगुलि निरूपण

**पार्ष्णि (एड़ी) के भेद**

बहिर्गता मिथोयुक्ता वियुक्ताङ्गुलिसङ्गता । 584
उत्क्षिप्ता पतितोत्क्षिप्ता पतितान्तर्गता तथा ।
पार्ष्णिरष्टविधा ज्ञेया नाम्नैव व्यक्तलक्षणा ॥५६०॥ 585

एड़ी (पार्ष्णि) के आठ भेद होते हैं : १. **बहिर्गता** (बाहर की ओर निकली हुई), २. **मिथोयुक्ता** (परस्पर मिली हुई), ३. **वियुक्ता** (अलग-अलग हुई), ४. **अंगुलिसंगता** (उँगलियों से मिली हुई), ५. **उत्क्षिप्ता** (ऊपर को उठी हुई), ६. **पतितोक्षिप्ता** (गिर कर उठी हुई), ७. **पतिता** (गिरी हुई) और ८. **अन्तर्गता** (भीतर की ओर गयी हुई) । इन आठों भेदों के लक्षण उनके नामों से ही स्पष्ट हैं ।

**गुल्फ (टखनों या घुट्टी) के भेद**

मिथोयुक्तौ वियुक्तौ च श्लिष्टाङ्गुष्ठौ बहिर्गतौ ।
अन्तर्यातौ चेति गुल्फौ स्थानकादिषु पञ्चधा ॥५६१॥ 586

टखनों (गुल्फ) के पाँच भेद होते हैं : १. **मिथोयुक्त** (परस्पर सटे हुए), २. **वियुक्त** (अलग हुए), ३. **श्लिष्टांगुष्ठ** (सटे हुए अंगूठों वाले), ४. **बहिर्गत** (बाहर किये हुए) और ५. **अन्तर्यात** (भीतर किये हुए) । बाण साधते समय शरीर की मुद्रा आदि के अभिनय में उनका विनियोग होता है ।

**कराङ्गुलि (हाथ की उँगलियों) के भेद**

वियुक्ताः संहता वक्राः पतिता वलितास्तथा ।
प्रसृताश्च तथा कुञ्चन्मूलाः सप्तविधा मताः । 587
कराङ्गुल्यो बुधैरुक्ता नामतो ज्ञातलक्षणाः ॥५६२॥

विद्वानों ने हाथ की उँगलियों के सात भेद बताये हैं : १. **वियुक्ता** (अलग हुई), २. **संहता** (मिली हुई), ३. **वक्रा** (टेढ़ी), ४. **पतिता** (गिरी हुई), ५. **वलिता** (मुड़ी हुई), ६. **प्रसृता** (फैली हुई) और ७. **कुञ्चन्मूला** (सिकुड़े हुए मूलभाग वाली) । इनके लक्षण उनके नामों से ही स्पष्ट हैं ।

## पाँच प्रकार की चरणांगुलि निरूपण

**चरणांगुलि (पैरों की उँगलियों के) भेद**

प्रसारिता अधःक्षिप्ता उत्क्षिप्ता कुञ्चितास्तथा । 588
संलग्नाश्चेति पदयोरङ्गुल्यः पञ्चधा क्रमात् ॥५६३॥

पैरों की उँगलियों के पाँच भेद होते हैं। १. प्रसारिता, २. अधःक्षिप्ता ३. उत्क्षिप्ता, ४. कुञ्चिता और ५. संलग्ना।

१. प्रसारिता और उसका विनियोग

अङ्गुल्यः सरलाःस्तब्धा यास्ता उक्ताः प्रसारिताः। 589
नियुज्यन्ते बुधैरेताः स्वापे स्तम्भेऽङ्गमोटने ॥५९४॥

जो उँगलियाँ सीधी (स्वाभाविक स्थिति में) तथा स्थिर हों वे प्रसारित कहलाती हैं। विद्वानों ने निद्रा, स्तम्भन और अंगों को फोड़ने या चटकाने के अभिनय में उनका विनियोग बताया है।

२. अधःक्षिप्ता और उसका विनियोग

अधः क्षिप्ता मुहुः पाताद् बिब्बोकादिषु ता मताः ॥५९५॥ 590

जिन उँगलियों को बार-बार गिराया जाय, उन्हें अधःक्षिप्ता कहते हैं। रूपादि के गर्व से प्रिय की उपेक्षा (बिब्बोक) आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

३. उत्क्षिप्ता और उसका विनियोग

उच्चैर्या मुहुरुत्क्षिप्ता नवोढायास्त्रपाभरैः ॥५९६॥

जो उँगलियाँ बार-बार ऊपर की ओर चलायी या फेंकी जाँय, उन्हें उत्क्षिप्ता कहते हैं। नव विवाहिता की लज्जा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

४. कुञ्चिता और उसका विनियोग

अन्वर्थाः कुञ्चितास्त्रासमूर्छाशीतग्रहार्दिते ॥५९७॥ 591

सिकुड़ी हुई उँगलियाँ कुञ्चिता कहलाती हैं। त्रास, मूर्च्छा, ठंडक और ग्रहपीड़ा के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

५. संलग्ना और उसका विनियोग

मिथःश्लिष्टास्तु साङ्गुष्ठाः संलग्नाः कर्षणे मताः ॥५९८॥

अंगुष्ठ सहित परस्पर सटी हुई उँगलियाँ संलग्ना कहलाती हैं। खींचने के अभिनय में उनका विनियोग होता है।

**अंगुष्ठ के लक्षण-विनियोग**

अङ्गुष्ठस्यापि भेदाः स्युरेत एवोक्तलक्षणाः । 592

उक्त उँगलि-भेदों के ही अनुरूप अंगुष्ठ के भी लक्षण-विनियोग होते हैं।

## छह प्रकार के पादतल का निरूपण

**तल (पादतल) के भेद**

कुञ्चन्मध्यं तिरश्चीनं पतिताग्रमधोगतम् ।
उद्वृत्ताग्रं भूमिलग्नं षोढान्वर्थं तलं मतम् ॥५६६॥ 593

अर्थ के अनुरूप पादतल के छह भेद होते है : १. **कुञ्चिन्मध्य** (सिकुड़े हुए मध्य भाग वाला), २. **तिरश्चीन** (तिरछा), ३. **पतिताग्र** (गिरे हुए अग्रभाग वाला), ४. **अधोगत** (नीचे की ओर गया हुआ), ५. **उद्वृत्ताग्र** (उठे हुए अग्रभाग वाला) और ६. **भूमिलग्न** (भूमि से सटा हुआ)।

उपांग निरूपण समाप्त

● ●

# हस्तप्रचार प्रकरण / पाँच

## पन्द्रह हस्तप्रचार का निरूपण

**हस्तप्रचार (संचालन) के भेद**

उत्तानोऽधोमुखः पार्श्वगत एवं त्रिधोदितः ।
करप्रचारोऽशोकेनापरे तं पञ्चधा जगुः ॥६००॥ 594

अग्रगोऽधस्तलश्चेति द्वौ त्रयः प्रथमोदिताः ।
प्राहोत्तानोऽग्रगं भट्टोऽधोमुखोऽधस्तलं यतः ॥६०१॥ 595

अन्तर्भूतं ततस्त्रित्वं सङ्गतं प्रथमे मते ।
ऊत्तानोऽधस्तलः पार्श्वमुखोऽप्यग्रतलस्तथा ॥६०२॥ 596

स्वसम्मुखतलः पार्श्वतलः पार्श्वगतोऽग्रगः ।
ऊर्ध्वगोऽधोगतश्चाथ सम्मुखः सम्मुखागतः ॥६०३॥ 597

ऊर्ध्वमुखस्तथा चाधोवदनोऽथ पराङ्मुखः ।
एवं पञ्चदश प्राहुः प्रचारान् केऽपि सूरयः ॥६०४॥ 598

अशोकमल्ल ने हस्तप्रचार (हस्त-संचालन) के तीन भेद बताये है : **१. उत्तान २. अधोमुख** और **३. पार्श्वगत।** दूसरे विद्वानों ने उसके पाँच भेदों का उल्लेख किया है : **१. अग्रग, २. अधस्तल, ३, उत्तान, ४. अधोमुख** और **५. पार्श्वगत।** आचार्य भट्ट का कहना है कि **अग्रग** और **उत्तान** तथा **अधोमुख** और **अधस्तल** अभिन्न हैं। इसलिए प्रथम मत में ही दूसरे मत का अन्तर्भाव हो जाता है। कुछ विद्वानों ने उसके पन्द्रह भेद बताये हैं : उनके नाम हैं : **१. उत्तान, २. अधस्तल, ३. पार्श्वमुख, ४. अग्रतल, ५. स्वसम्मुखतल, ६. पार्श्वतल, ७. पार्श्वगत, ८. अग्रग, ९. ऊर्ध्वग, १०. अधोगत, ११. सम्मुख, १२. सम्मुखागत, १३. ऊर्ध्वमुख, १४. अधोमुख** और **१५. पराङ्मुख ।**

## तेरह हस्तक्षेत्र का निरूपण

**हस्तक्षेत्र (हाथों के स्थानों) के भेद**

**शिरो ललाटं श्रवणं स्कन्धोरः कटिशीर्षकम् ।**
**नाभी पार्श्वद्वयं पश्चादूर्ध्वं चाधः पुरस्ततः ।** 599
**ऊरुद्वयं च हस्तानां क्षेत्राणीति त्रयोदश ॥६०५॥**

हाथों के तेरह स्थान (क्षेत्र) बताये गये हैं, जिनके नाम हैं : १. **शिर**, २. **ललाट**, ३. **कान**, ४. **कन्धा**, ५. **वक्षःस्थल**, ६. **कमर**, ७. **नाभि**, ८. **दोनों पार्श्व**, ९. **पीछे**, १०. **ऊपर**, ११. **नीचे**, १२. **सामने** और १३. **दोनों जँघाएँ** ।

## बीस करकर्मों का निरूपण

**करकर्म (हाथों के कार्यों) के भेद**

**मोक्षणं रक्षणं क्षेपो निग्रहश्च परिग्रहः ।** 600
**धूननं स्फोटनं श्लेषो विश्लेषो मोटनं तथा ॥६०६॥**
**तोलनं ताडनं छेदोत्कृष्टचाकृष्टिविकृष्टयः ।** 601
**विसर्जनं तथाह्वानं तर्जनं भेद इत्यपि ।**
**संज्ञया ज्ञातलक्ष्माणि करकर्माणि विंशतिः ॥६०७॥** 602

संकेत या इशारे से निष्पादित होने वाले हस्त-कार्यों के बीस भेदों का अर्थ-ग्रहण उनके लक्षणों से ही कर लेना चाहिए । उनके नाम है : १. **मोक्षण** (छुड़ाना), २. **रक्षण** (रक्षा करना), ३. **क्षेप** (फेंकना), ४. **निग्रह**, (रोकना), ५. **परिग्रह** (लेना), ६. **धूनन** (कंपाना), ७. **स्फोटन** (फोड़ना), ८. **श्लेष** (मिलाना), ९. **विश्लेष** (अलग करना), १०. **मोटन** (चूर्ण करना), ११. **तोलन** (तौलना), १२. **ताडन** (पीटना), १३. **छेद** (काटना), १४. **उत्कृष्टि** (ऊपर उठाना), १५. **आकृष्टि** (खींचना), १६. **विकृष्टि** (हटाना), १७. **विसर्जन** (समाप्ति या विदा करना), १८. **आह्वान** (बुलाना), १९. **तर्जन** (मारना) और २०. **भेद** (फोड़ना) ।

## चार हस्तकरणों का निरूपण

**हस्तकरण (हस्त चेष्टाएँ)**

**यथालक्ष्मविनिष्पन्नहस्तस्याभिनयाय या ।**
**कृतिः क्रियाविशेषस्य तद्धस्तकरणं भवेत् ॥६०८॥** 603

शास्त्रीय विधि से निष्पन्न हस्ताभिनय के लिए ज़ो हस्तमुद्रा विशेष रूप से प्रयुक्त होती है उसे **हस्तकरण** कहा जाता है।

**हस्तकरण के भेद**

आवेष्टिताभिधं पूर्वमुद्वेष्टितमतः परम् ।
व्यावर्तितं तथा ज्ञेयं परिवर्तितमित्यपि ॥६०९॥ 604
चतुर्धैवं तदाख्यातं तल्लक्ष्म व्याहरे क्रमात् ।

**हस्तकरण** के चार भेद होते है: १. आवेष्टित, २. उद्वेष्टित ३. व्यावर्तित और ४. परिवर्तित। उनके लक्षण क्रमशः निरूपित किये जा रहे हैं।

**१. आवेष्टित**

तर्जन्याद्या यदाङ्गुल्यः कुर्वन्त्यावेष्टनं क्रमात् ॥६१०॥ 605
तलसम्मुखमावक्ष एति हस्तोऽपि पार्श्वतः ।
आवेष्टितं तदा प्रोक्तं करणं नृत्यकोविदैः ॥६११॥ 606

जब (अँगूठे को छोड़कर) शेष चारों उँगलियाँ क्रमशः मोड़ ली जाती हैं और हथेली को सम्मुख करके हाथ को भी बगल से छाती तक पहुँचा दिया जाता है, तब नृत्यविशारदों ने उसको **आवेष्टित करण** कहा है।

**२. उद्वेष्टित**

तर्जन्याद्यङ्गुलीनां चेन्निर्यातं स्यात् तलाद्बहिः ।
क्रमात् पाणेश्च बक्षस्तस्तदोद्वेष्टितमीरितम् ॥६१२॥ 607

जब (आवेष्टित में हथेली की ओर झुकी हुई) उंगलियाँ उसी प्रकार क्रमशः हथेली से खोलकर बाहर निकाली जाँय और हाथ को छाती से अलग किया जाय, तब उसे **उद्वेष्टित करण** कहते हैं।

३. व्यावर्तित

व्यावर्तन्ते कनिष्ठाद्या यत्राङ्गुल्यः क्रमाद्यदि ।
अभ्यन्तरेण तत् प्रोक्तं सद्भिर्व्यावर्तितं तदा ॥६१३॥ 608

जब हाथ की उँगलियाँ कनिष्ठिका से लेकर तर्जनी तक क्रमशः हथेली की ओर झुकायी जाती हैं, तब विद्वानों ने उसे **व्यावर्तित करण** कहा है ।

४. परिवर्तित

कनिष्ठाद्यङ्गुलीनां चेन्निष्क्रमो बाह्यतः क्रमात् ।
तदा तत् करणं धीरैः परिवर्तितमीरितम् ॥६१४॥ 609

जब कनिष्ठा से लेकर तर्जनी तक की सब उँगलियाँ क्रमशः बारी-बारी करके बाहर की ओर खुलती हैं, तब विद्वानों के मत से, उसे **परिवर्तित करण** कहते हैं ।

हस्त प्रचार निरूपण समाप्त

● ●

# विचित्राभिनय प्रकरण/ छह

## विचित्राभिनय निरूपण

### भावाभिनय (१)

**नाटचोपयोगिनः प्रायो विचित्राभिनया मया ।**
**ते लिख्यन्तेऽभिनेयार्थं व्यञ्जयन्तीव ये स्फुटम् ॥६१५॥** 610

जो मानो अभिनय योग्य वस्तु के भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ नाटचोपयोगी विचित्र अभिनय हैं, (नृत्य-जिज्ञासुओं के) अभिनय के लिए मैं प्रायः उन (सब का) यहाँ निरूपण कर रहा हूँ।

**सन्निकर्षं विना यस्य न वेत्यर्थं कथञ्चन ।**
**तस्योक्तो मनसो भावस्त्रिधा यत्प्रतिकोविदैः ।** 611
**इष्टोऽनिष्टस्तथा मध्यस्तस्याभिनयनं यथा ॥६१६॥**

जिसके संयोग या सामीप्य के बिना पदार्थ को किसी भी प्रकार नहीं समझा जा सकता है, उस मन के भाव को विद्वानों ने तीन प्रकार का बताया है : १. **इष्ट**, २. **अनिष्ट** और ३. **मध्य**। उस त्रिधा विभक्त भाव का अभिनय जिस प्रकार किया जाता है, उसे बताया जा रहा है।

**मुखस्यातिविकाशेन शरीराल्हादनेऽपि(?नेन) च ।** 912
**तथोल्लुकसितेनेष्टं दर्शयेन्नटाचकोविदः ॥६१७॥**
**अप्रदानेन नेत्रस्य संकोचादक्षिनासयोः ।** 613
**परावृत्ताख्यशीर्षेणाप्यनिष्टं सम्प्रदर्शयेत् ॥६१८॥**
**जुगुप्सया न चात्यन्तं मनसा नातिहर्षिणा ।** 614
**मध्यभावेन मध्यस्थं भावं धीमान् निरूपयेत् ॥६१९॥**

नाटचवेत्ता को चाहिए कि वह मुख को अति विकसित करके तथा शरीर को आह्लादित करके स्वच्छता (स्पष्टता) से **इष्ट भाव** का प्रदर्शन करे। फिर दृष्टिपात किये बिना आँख और नाक को संकुचित करके

परावृत्त शीर्ष मुद्रा से **अनिष्ट भाव** को प्रदर्शित करे । बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि वह न अत्यन्त घृणा से और न अत्यन्त प्रसन्न मन से, अपितु मध्य भाव से **मध्यस्थ भाव** को अभिव्यक्त करे ।

इन्द्रियाभिनय (२)

**कर्णदेशस्थतर्जन्या तथा तिर्यग्निरीक्षणात् ।** 615
**पार्श्वानतेन शिरसा सुधीः शब्दं प्रदर्शयेत् ॥६२०॥**

सुधीजनों के चाहिए कि कान के पास तर्जनी उँगली को रखकर तिरछी चितवन डालते हुए बगल में झुके हुए शिर से वे **शब्द** के भाव को प्रदर्शित करें ।

**सभ्रूक्षेपेण नेत्रेण मनागाकुञ्चितेन च ।** 616
**तथा गण्डमुखस्पर्शैः स्पर्शो धीरैर्निरूपितः ॥६२१॥**

धीर पुरुषों को चाहिए कि भ्रू-भंगिमा से युक्त तथा कुछ आकुंचित नेत्र से और कपोल तथा मुख के स्पर्श से वे **स्पर्श** के भाव को प्रदर्शित करें ।

**शिरस्थितौ पताकौ द्वौ कृत्वेषद्वलिताननः ।** 617
**दृष्टया निर्वर्णयन्त्यापि रूपमेवं विनिर्दिशेत् ॥६२२॥**

दोनों पताक हस्तों को शिर पर रखकर और मुख को किञ्चित् झुकाकर गौर से देखते हुए **रूप** के भाव का द्यौतन करना चाहिए ।

**नयने किञ्चिदाकुञ्च्य फुल्लां कृत्वा च नासिकाम् ।** 618
**एकोच्छ्वासेन च प्राज्ञो रसगन्धौ प्रदर्शयेत् ॥६२३॥**

नेत्रों को कुछ आकुंचित करके, नासिका को फुलाकर और एक ही साँस खींचकर पण्डित जन को **रस और गन्ध** के भाव का प्रदर्शन करना चाहिए ।

**नृत्याय देवरङ्गयाः (?) शब्दाद्यभिनयो मया ।** 619
**निरूपितस्तथा ज्ञेया इन्द्रियाभिनया बुधैः ॥६२४॥**

नर्तकी (?) के अभिनय के लिए मैंने **शब्द** आदि (इन्द्रिय विषयों) के अभिनय का निरूपण किया है । किन्तु विद्वानों को चाहिए कि इसी प्रकार वे कर्ण, त्वक्, अक्षि, जिह्वा और घ्राण आदि इन्द्रियों का अभिनय भी जान लें ।

विचित्राभिनय (३)

विधायोत्तानितौ हस्तौ पताकौ स्वस्तिकच्युतौ । 620
शिरसोद्वाहिताख्येन तथोर्ध्वप्रेक्षणेन च ॥६२५॥
प्रदोषं दिवसं रात्रिं प्रभातं गगनं घनान् । 621
जलाशयान् वनान्तांश्च नक्षत्राणि ग्रहान् दिशः ।
नानादृष्टियुतं धीरोऽभिनयेन्नाट्यनृत्ययोः ॥६२६॥ 622

धीर पुरुष को नाटच तथा नृत्य के अवसर पर दोनों पताक हस्तों को उत्तान तथा स्वस्तिक मुद्रा में च्युत करके उद्वाहित शिर से ऊपर ताकने या देखने के द्वारा प्रदोष, दिन, रात, प्रातःकाल, आकाश, मेघ, तालाब, बनभूमि, नक्षत्र, ग्रह और दिशाओं का अनेक दृष्टियों से समन्वित होकर अभिनय करना चाहिए ।

[एता]भ्यामेव हस्ताभ्यां तेनैव शिरसा तथा ।
अधस्तात्प्रेक्षणेनापि भूमिस्थं सम्प्रदर्शयेत् ॥६२७॥ 623

हाथ की इन्हीं मुद्राओं और शिर की इसी मुद्रा से नीचे ताकते हुए भूमि पर रखी हुई वस्तु या (बने हुए स्थानों) का प्रदर्शन करना चाहिए ।

दृष्टचा मुकुल [या] किञ्चिन्नतेन शिरसापि च ।
हृदि सन्देशहस्तेन सव्येनैकमना नटः । 624
वितर्कितं तथा ध्यानं निर्दिशेन्नाट्यनृत्ययोः ॥६२८॥

नाटच और नृत्य के समय नट को चाहिए कि वह सावधान होकर मुकला दृष्टि से और किञ्चित् झुके हुए शिर तथा हृदय पर रखे हुए दाहिने सन्दंश हस्त से सन्देह तथा ध्यान का अभिनय करे ।

विधायोद्वाहितं शीर्षं तथोर्ध्वं हंसपक्षकम् । 625
दीर्घं मानं तथोच्चत्वं प्रासादस्य प्रदर्शयेत् ॥६२९॥

उद्वाहित शिर और ऊपर हस्तपक्ष हस्त बनाकर महल की लम्बाई तथा ऊँचाई का प्रदर्शन करना चाहिए ।

अरालेन तथा वामभागोद्वाहितशीर्षतः । 626
नतध्वस्तनिमित्तानि श्रान्तं वाक्यं च दर्शयेत् ॥६३०॥

अराल हस्त तथा वाम भाग में उद्वाहित शिर से झुके हुए, नष्ट हुए, निमित्त, श्रान्त और वाक्य का अभिनय करना चाहिए ।

परितो गतया दृष्ट्या तर्जन्या भ्रमणेन च । 627
सर्वार्थग्रहणं देश्यं सुधीभिर्नाट्यनृत्ययोः ॥६३१॥

नाट्य-नृत्य के समय सुधीजनों को चारों ओर दृष्टिपात करके तथा तर्जनी उँगली को घुमाकर समस्त पदार्थों के ग्रहण करने का भाव प्रदर्शित करना चाहिए ।

उत्तानितौ पताकौ द्वौ कृत्वा स्वस्तिकविच्युतौ । 628
तथोद्वाहितशीर्षेण चित्रवागवलोकनैः ॥६३२॥

दोनों पताक हस्तों को उत्तान तथा स्वस्तिक मुद्रा में विच्युत करके और उद्वाहित शिर से चित्र, वाणी तथा अवलोकन का भाव प्रदर्शित करना चाहिए ।

प्रसन्नास्यस्तथा स्वस्थसर्वेन्द्रियसमन्वितः । 629
शरदं निर्दिशेन्नाट्ये पुष्पैरपि तदुद्भवैः ॥६३३॥

नाट्य में प्रसन्नमुख तथा स्वस्थ इन्द्रियों से युक्त होकर शरद् ऋतु तथा उस ऋतु में उत्पन्न होने वाले पुष्पों का अभिनय करना चाहिए ।

कायसंकोचनाद् वह्नेरीक्षयोर्ध्वनिरीक्षणात् । 630
आभ्यामेव कराभ्यां च पूर्वोक्तशिरसा तथा ।
हेमन्तर्तुर्विनिर्देश्यो मानवैर्मध्यमोत्तमैः ॥६३४॥ 631

शरीर को संकुचित करके तथा ऊपर दृष्टिपात करके अग्नि का अभिनय करना चाहिए । मध्यम तथा उत्तम कोटि के मानवों को चाहिए कि उक्त दोनों पताक हस्तों और उद्वाहित शिर से वे हेमन्त ऋतु का भाव प्रकट करें ।

दन्तोष्ठशिरसः कम्पाद् गात्रसंकोचनादपि ।
अधमोऽभिनयेच्छीतं क्रन्दितैरपि सीत्कृतैः ॥६३५॥ 632

अधम पुरुष को चाहिए कि वह दाँत, ओठ और शिर को कम्पित करके तथा शरीर को संकुचित करके शीत का अभिनय करे । रोकर तथा सिसक कर भी वह इसका अभिनय कर सकता है ।

उत्तमोऽपि कदाप्येवमवस्थान्तरसंयुतः ।
शीताभिनयनं त्वेवं विदध्याद् व्यसनोद्भवम् ॥६३६॥ 633

उत्तम पुरुष भी कदाचित् अन्य अवस्था (अर्थात् अधम अवस्था) को प्राप्त होने पर, विपत्ति-जनित इस शीत ऋतु का (उक्त विधि से) अभिनय करे ।

गन्धघ्राणैः प्रसूनानामृतुजानां तथा बुधः ।
संस्पर्शाद् रूक्षवातस्य शिशिरं सुनिरूपयेत् ॥६३७॥ 634

विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह ऋतुजनित पुष्पों की गन्ध को सूंघ कर तथा रूक्ष वायु के स्पर्श से शिशिर ऋतु का अभिनय करे ।

सहर्षोत्पादकारम्भैरुपभोगैर्विचित्रितैः ।
अभिनेयो वसन्तस्तु नानापुष्पप्रदर्शनात् ॥६३८॥ 635

हर्षोत्पादक कार्यों सहित विचित्र प्रकार के उपभोगों और नाना प्रकार के पुष्पों के प्रदर्शन से वसन्त ऋतु का अभिनय करना चाहिए ।

सुवीजनैर्भूमितापैस्तथा स्वेदापमार्जनात् ।
संस्पर्शाच्चोष्णवातस्य धीरो ग्रीष्मं विनिर्दिशेत् ॥६३९॥ 636

अच्छी तरह पंखा झेल कर, भूमि का ताप दिखा कर, पसीना पोंछ कर और गर्म वायु का स्पर्श करके धीर पुरुष ग्रीष्म ऋतु का भाव प्रदर्शित करें ।

हस्तौ सिरस्तथा दृष्टिं शरदीव विनिर्दिशेत् ।
शिशिरर्तौ वसन्ते च ग्रीष्मेऽपि निपुणो नटः ॥६४०॥ 637

निपुण अभिनेता को, शरद् ऋतु की तरह, दोनों हाथों, शिर और दृष्टि को शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुओं में भी प्रयुक्त करना चाहिए ।

शिखिनां रम्यवाणीभिरिन्द्रगोपैः सशाद्वलैः ।
अधोमुखपताकाभ्यां शिरसोद्वाहितेन च । 638
तथोर्ध्वप्रेक्षणादेवं प्रावृषं सन्निरूपयेत् ॥६४१॥

मयूरों की रमणीय वाणी, हरितभूमि सहित बीरबहूटी (इन्द्रगोप) और अधोमुख दोनों पताक हस्तों, उद्वाहित शिर तथा ऊपर निरीक्षण द्वारा वर्षा ऋतु का भाव प्रकट करना चाहिए ।

चिह्नं यद्यच्च रूपं च कर्म वा वेष एव च । 639
निर्दिशेत् तमृतुं तेन यथेष्टानिष्टदर्शनात् ॥६४२॥

इष्ट और अनिष्ट का भाव (जहाँ जो उचित हो) दिखाते हुए जिस ऋतु के लिए जो चिह्न या लक्षण, जो रूप, जो कार्य या जो वेष उचित हो, उसी से उस ऋतु का भाव प्रकट करना चाहिए ।

ऋतूनिमानर्थवशात् प्रयुञ्जीत यथारसम् । 640
सुखितः सुखितेष्वेव दुःखितो दुःखितेषु च ॥६४३॥

इन ऋतुओं को (उनके) प्रयोजनवश रस के अनुरूप प्रकट करना चाहिए। सुखी होकर सुखित वस्तुओं का और दुःखी होकर दुःखित वस्तुओं का भाव अभिव्यक्त करना चाहिए।

आविष्टो येन भावेन यः सुखेनापरेण वा । 641
स तज्जनितसंस्कारस्तन्मयं वीक्षतेऽखिलम् ॥६४४॥

जो व्यक्ति जिस भाव से, चाहे दुःख से या सुख से आविष्ट रहता है, उसमें उसका संस्कार निहित रहता है। अतः वह सब वस्तुओं को उसी रूप में देखता है।

प्रह्लादनेन गात्रस्य स्पर्शस्य ग्रहणात् तथा । 642
सुखं गन्धं रसं वायुं चन्द्रं ज्योत्स्नां निरूपयेत् ॥६४५॥

शरीर के आह्लादन और स्पर्श-ग्रहण से सुख, गन्ध, रस, वायु, चन्द्रमा तथा चाँदनी का अभिनय करना चाहिए।

वासोवगुण्ठनाद् भानुं धूलिं धूमधनञ्जयौ । 643
उष्णं च भूमिसन्तापं दिशेच्छायाभिवाञ्छया ॥६४६॥

वस्त्र का घूँघट काढ़कर या ओट लगाकर सूर्य, धूल, धूम, अग्नि, गर्मी, भूमि-ताप तथा छाया का प्रदर्शन करना चाहिए।

दृष्ट्योर्ध्वयाकेकरया मध्याह्ने दर्शयेद् रविम् ॥६४७॥ 644

आकेकरा दृष्टि को ऊपर की ओर करके दोपहर-सूर्य का भाव प्रदर्शित करना चाहिए।

सौम्यानि यानि वस्तूनि सुखभावोद्भवान्यपि ।
निर्दिशेत् तानि रोमाञ्चैर्गात्रस्पर्शैश्च नाट्यवित् ॥६४८॥ 645

जो वस्तुएँ सुखपूर्ण तथा अच्छे भावों से उत्पन्न हों उन्हें नाट्यवेत्ता को रोमांच तथा शरीर-स्पर्श से प्रकट करना चाहिए।

उद्वेगैरास्यसंकोचैरसंस्पर्शैश्च नाट्यवित् ।
दर्शयेत् तीक्ष्णरूपाणि वस्त्वयोग्यकृतानि च ॥६४९॥ 646

नाट्यवेत्ता को अयोग्य व्यक्ति द्वारा निर्मित तीक्ष्ण रूपवाली वस्तुओं का अभिनय विना स्पर्श किये, उद्वेग के साथ तथा मुख सिकोड़ कर करना चाहिए।

ससौष्ठवैः साभिमानैर्गात्रैराटोपसंयुतैः ।
गम्भीरार्थानुदात्तार्थान् नाट्यज्ञः सन्निदर्शयेत् ॥६५०॥ 647

नाटचवेत्ता को सुन्दरता, गर्व तथा सौष्ठव से युक्त अंगों को फैलाकर गम्भीर तथा उदात्त भावों वाली वस्तुओं का अभिनय करना चाहिए ।

ध्वजच्छत्रपताकादीन् दर्शयेद् दण्डधारणैः ।
प्रहारान् विविधांश्चैव नानाशस्त्रग्रहैर्दिशेत् ॥६५१॥ 648

दण्ड-धारण द्वारा ध्वज, छत्र तथा पताका का और अनेक शस्त्रों के ग्रहण द्वारा विभिन्न प्रकार के आयुधों का प्रदर्शन करना चाहिए ।

विस्फुलिङ्गान् घनरवान् विद्युदुल्कार्चिषस्तथा ।
स्रस्तैरङ्गैस्तद्वदक्षिनिमेषैर्निर्दिशेद् बुधः ॥६५२॥ 649

विद्वान् व्यक्ति को शरीर कम्पाकर और उसी प्रकार आँख मींच कर आग की चिनगारियों, मेघ गर्जनों, बिजली, उल्का और लपटों का अभिनय करना चाहिए ।

उद्वेष्टितौ परावृत्तौ कृत्वा हस्तौ शिरो नतम् ।
जिह्मदृष्ट्याङ्गसंकोचादास्यप्रच्छादनेन च ॥६५३॥ 650
अलिरेणुपतङ्गानां तोयस्य च निवारणम् ।
नभस्तेजोऽनिलं चोष्णं नाट्यज्ञः सन्निरूपयेत् ॥६५४॥ 651

दोनों हाथों को उद्वेष्टित और परावृत्त में करके, शिर झुकाकर, कुटिल दृष्टि से, अंगों को सिकोड़ कर और मुख को ढक कर नाटचवेत्ता को भ्रमर, धूल, पतंग, जल-निवारण, आकाश, तेज तथा गर्म वायु (लू) का अभिनय करना चाहिए ।

अथ पुंसां तथा स्त्रीणामखिलाभिनयं पृथक् ।
भावानुभावसंयुक्तं कथयाम्यधुना क्रमात् ॥६५५॥ 652

अब पुरुषों तथा स्त्रियों के भावों तथा अनुभावों से युक्त समस्त अभिनय को पृथक्-पृथक् रूप में क्रमशः निरूपित किया जा रहा है ।

**हर्ष**

आश्लेषणाच्छरीराणां सस्मितान्नयनादपि ।
तथोल्लुकसनेनापि पुमान् हर्षं विनिर्दिशेत् ॥६५६॥ 653

शरीर के आलिंगन और मुस्कराहट भरे नेत्र तथा उलूक गति (उद्विकसन) से पुरुष **हर्ष** का अभिनय करें।

शीघ्रमुत्पन्नरोमाञ्चबाष्पसंरुद्धलोचना ।
भावं विनिर्दिशेत् त्वेवं नर्तकी स्मितसंयुता ॥६५७॥ 654

तत्काल उत्पन्न हुए रोमांच, (हर्ष के) आँसुओं से अवरुद्ध दृष्टि और मुसकराहट द्वारा नर्तकी **हर्ष** के भाव को प्रकट करे।

**क्रोध**

निःश्वासेनाङ्गकम्पेन दशनेनाधरस्य च ।
क्रोधं निरूपयेद् धीमानुद्वृत्तारुणलोचनः ॥६५८॥ 655

उठे हुए लाल नेत्रों से, लम्बी साँस लेते हुए, शरीर को थर-थर कम्पाते हुए, दाँतों से अधरों को चबाते हुए, पुरुष **क्रोध** का अभिनय करे।

चिबुकोष्ठप्रकम्पेन बाष्पपूर्णेक्षणेन च ।
शीर्षस्य कम्पनेनापि भ्रुकुटीरचनेन च ॥६५९॥ 656
अङ्गुलिस्फोटनान्मौनात् स्रगालङ्कारवर्जनात् ।
आयतस्थानकस्था च रोषेर्ष्ये निर्दिशेत् स्त्रियाः ॥६६०॥ 657

ठोड़ी तथा ओठों को कम्पाते हुए, आखों को आँसू से भरकर, शिर को कम्पाते हुए, भौं सिकोड़ते हुए, उँगलियों को चटकाते हुए, मौन होकर, माला और आभूषण उतार कर, आयतस्थानक मुद्रा धारण कर स्त्रियाँ **क्रोध** तथा **ईर्ष्या** का अभिनय करें।

**दुःख**

अधिकोछ्वासनिःश्वसैरधोमुखविलोकनैः ।
विहायःप्रेक्षणाच्चापि नृणां दुःखं निदर्शयेत् ॥६६१॥ 658

अत्यधिक निःश्वास और उच्छ्वास से युक्त मुख नीचा करके देखने और आकाश की ओर ताकने से पुरुष **दुःख** का भाव प्रकट करे।

शिरोभिघातात् सध्वानै रौदनैरभिपाततः ।
भूमिघातादपि स्त्रीणां दुःखं धीमान् नियोजयेत् ॥६६२॥ 659

सिर पीटने, चिल्लाकर रोने, धरती पर गिरने और भूमि पर चोट करने से धीमान् पुरुष स्त्रियों के **दुःख** को प्रकट करें।

**भय**

उद्वेगसम्भ्रमैः शस्त्रसम्पातेनापि साध्वसम् ।
पुंसामभिनयेद् धीमान् धैर्योद्वेगादिभिस्तथा ॥६६३॥ 660

उद्वेगजन्य हड़बड़ी, शस्त्रपात, धैर्य और उद्वेग आदि से बुद्धिमान् पुरुष को पुरुषों का **भय** प्रदर्शित करना चाहिए ।

लोलतारकनेत्राभ्यामङ्गस्फुरितकम्पितैः ।
पार्श्वावलोकनैश्चित्रशब्दादाक्रन्दितेन च । 661
आलिङ्गनेन पुंसोऽपि स्त्रिया भीतिं प्रदर्शयेत् ॥६६४॥

आँखों के तारे चलाने, अंग-स्फुरण, शरीर को कम्पाने, बगल की ओर देखने, हाय-हाय करके चिल्लाने और आलिंगन के द्वारा पुरुषों को स्त्रियों का **भय** प्रदर्शित करना चाहिए ।

पुंस्कृतः स्त्रीकृतो भावो द्विधेत्यभिनयं प्रति । 662
तत्राद्यो धैर्यमाधुर्यसपन्नौ ललितोऽपरः ॥६६५॥

अभिनय-योजना में पुरुष तथा स्त्री द्वारा प्रकट किया जाने वाला भाव दो प्रकार का होता है। पुरुषों के अभिनय में धैर्य तथा माधुर्य से संयुक्त भावों और स्त्रियों के अभिनय में लालित्यपूर्ण भावों का प्रदर्शन करना चाहिए।

**शब्द**

कम्पनेन शरीरस्य घूर्णनान्नेत्रयोरपि । 663
आकाशवीक्षणात् पादस्खलितैःकौमलैस्तथा ।
विलोमवचनैर्धीमान् नादं स्त्रीणां विनिर्दिशेत् ॥६६६॥ 664

शरीर के कम्पन, नेत्रों के घूमने, आकाश की ओर ताकने, पैरों के लड़खड़ाने और कोमल तथा विपरीत वचनों द्वारा धीमान् पुरुष स्त्रियों के **शब्द** का अभिनय करे ।

उक्ता येऽभिनयास्तेऽमी प्रायः स्त्रीनीचसंश्रयाः ॥६६७॥

ऊपर जो अभिनय बताये गये हैं, वे प्रायः स्त्रियों और निकृष्ट पुरुषों के लिए हैं ।

**पक्षियों का अभिनय (५)**

सारसान् केकिहंसौ च स्थूलानन्यांश्च पक्षिणः । 665
रेचकैरङ्गहारैश्च निर्दिशेन्नाटचकोविदः ॥६६८॥

नाटचवेत्ता को रेचिकों तथा अंगहारों के द्वारा सारस, मोर, हंस तथा अन्य बड़े पक्षियों का अभिनय करना चाहिए।

अश्वेभोष्ट्रखरव्याघ्रसिहांश्च महिषादिकान् । 666
अङ्गैर्गतिप्रकारैश्चाभिनयेन्निपुणो नटः ॥६६६॥

निपुण अभिनेता को घोड़ा, हाथी, ऊँट, गधा, वाघ, सिंह तथा भैंसा आदि का अभिनय गति-प्रचार के अंगों से करना चाहिए ।

यक्षों तथा देवताओं आदि का अभिनय (६)

ये यक्षा राक्षसा दैत्याः पिशाचाद्यास्तथापरे । 667
परोक्षास्तेऽभिनेतव्या अङ्गहारैः प्रयोक्तृभिः ॥६७०॥
प्रत्यक्षा येऽभिनेयास्ते भयोद्वेगैः सविस्मयैः ॥६७१॥ 668

अभिनेताओं को यक्षों, राक्षसों, दैत्यों, पिशाचों और परोक्ष प्राणियों या वस्तुओं को अंगहारों द्वारा अभिनीत करना चाहिए। प्रत्यक्ष यक्ष आदियों का अभिनय भय, उद्वेग तथा आश्चर्य के भावों द्वारा करना चाहिए।

सभावैश्चेष्टितैर्देवाः प्रणामकरणादिभिः ।
अप्रत्यक्षा विनिर्देश्याः प्रयोगनिपुणैर्नटैः ॥६७२॥ 669
प्रत्यक्षाः देवताः साक्षात्पूजोपकरणादिभिः ॥६७३॥

नाटच-प्रयोग में निपुण अभिनेताओं को भावपूर्ण चेष्ठाओं और प्रणाम आदि के द्वारा अप्रत्यक्ष देवताओं का अभिनय करना चाहिए। किन्तु प्रत्यक्ष देवताओं का अभिनय साक्षात् पूजन-सामग्री आदि के द्वारा करना चाहिए।

निर्दिशेदथ वृक्षादीनचलांश्च समुच्छ्रितान् । 670
ऊर्ध्वप्रसारणाद् बाह्वोर्दर्शयेल्लोकयुक्तितः ॥६७४॥

ऊँचे वृक्षों और पर्वतों का भाव बाहुओं को ऊपर फैला कर लोक-रीति के अनुसार प्रदर्शित करना चाहिए।

मञ्जुलैरुज्ज्वलैर्वेषैर्निनिमेषैः सुलोचनैः । 671
मुदितेनापि मनसा दर्शयेद् दिव्ययोषितः ॥६७५॥

सुन्दर तथा उज्ज्वल वेशों, अपलक नेत्रों और प्रसन्न मन से दिव्य स्त्रियों (देवांगनाओं तथा अप्सराओं) का अभिनय करना चाहिए।

चमूं समूहमम्भोधिं विस्तीर्णं वनमेव च । 672
विक्षिप्ताभ्यां पता[का]भ्यांनिर्दिशेन्नाटचनृत्तयोः ।।६७६।।

नाटच तथा नृत्त के समय सेना, समूह, समुद्र तथा विस्तृत वन का भाव दोनों पताक हस्तों को फैला कर प्रदर्शित करना चाहिए ।

कामेन ग्रहपाशाभ्यां ज्वरेणापि च येऽर्दिताः । 673
तेषामभिनयं कुर्याच्छिथिलाङ्गविचेष्टितैः ।।६७७।।

जो काम, ग्रह, बन्धन तथा ज्वर से पीड़ित हों, उनका अभिनय शिथिल अंग-चेष्टाओं द्वारा करना चाहिए ।

अङ्गैर्लीनैरिवाङ्गेषु तथा वासोवगुण्ठनात् । 674
दृष्टचाधोगतया धीरैर्निर्देश्या कुलजाङ्गना ।।६७८।।

अंगों को मानों अंगों में लीन करके, वस्त्र का घूंघट काढ़ कर और दृष्टि को नीचे करके धीर पुरुषों को कुलीन स्त्री का अभिनय करना चाहिए ।

नानालंकृतिचिन्नाङ्गैः समदैर्बहुचेष्टितैः । 675
निःशङ्कगमनेनापि नटो वेश्यां प्रदर्शयेत् ।।६७९।।

नाना अलंकारों से सज्जित अंगों, मदयुक्त चेष्टाओं और निःशंक गमन के द्वारा अभिनेता को वेश्या का भाव प्रदर्शित करना चाहिए ।

खेदनिःश्वासचिन्ताभिस्तथा हृदयतापतः । 676
सम्प्रलापैस्तथालीनामात्मावस्थानिदर्शनैः ।।६८०।।

खेद, निःश्वास, चिन्ता, हृदय-ताप, प्रलाप तथा व्याकुल चित्त वालों का अभिनय तदनुसार आंगिक अभिनय द्वारा करना चाहिए ।

ग्लान्यश्रुपातदैन्यैश्च सरोषवदनैरपि । 677
अङ्गैर्निर्भूषणैर्दुःखै रोदनैरपि नाटचवित् ।।६८१।।
विप्रलब्धाः खण्डिताश्च कलहान्तरिता अपि । 678
इत्थं प्रदर्शयेन्नाटचे तथा प्रोषितभर्तृकाः ।।६८२।।

नाटचनिपुण अभिनेता को, **विप्रलब्धा** (संकेत-स्थल में प्रिय के न मिलने से दुःखी नायिका), **खण्डिता** (नायक में अन्य स्त्री के संयोग-चिह्न देखकर कुपित हुई नायिका ), **कलहान्तरिता** (पति या नायक का अपमान कर पीछे पछताने वाली नायिका) और **प्रोषितभर्तृका** (वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो ) नायिकाओं का भाव (क्रमशः) ग्लानि, अश्रुपात, दीनता, क्रोधयुक्त मुख, आभूषणरहित अंग, दुःख और रोदन के द्वारा प्रदर्शित करना चाहिए ।

**विचित्रमण्डनैर्हर्षैर्वेषैर्नानाविधैरपि । 679**
**तथातिशयशोभाभिर्दिशेत् स्वाधीनभर्तृकाः ।।६८३।।**

**स्वाधीनभर्तृका** (पति को अपने वश में रखने वाली) नायिकाओं का विचित्र प्रकार के आभूषण, नाना प्रकार के वेश तथा प्रचुर अंगराग-प्रसाधनों द्वारा अभिनय करना चाहिए ।

**एवं वासकसज्जापि निर्देश्या नाटचकोविदैः ।।६८४।। 680**

इसी प्रकार नाटचनिपुण अभिनेताओं को **वासकसज्जा** (शृंगार करके नायक की प्रतीक्षा करने वाली) नायिका का भी अभिनय करना चाहिए ।

**नियुज्यन्ते बुधैरेतेऽभिनया भावसंयुताः ।।६८५।।**

विद्वानों को चाहिए कि उक्त अभिनयों को वे भावसंयुक्त होकर सम्पन्न करें ।

**अभिनेताओं को नाट्य-निर्देश**

**या यस्य नियता लीला गतिश्च स्थितिरेव च । 681**
**तस्य रङ्गप्रविष्टस्तां नटस्तावद् निनिर्दिशेत् ।**
**यावन्न निर्गतो रङ्गादिति सामान्यतो विधिः ।।६८६।। 682**

रंगमंच पर प्रवेश करने वाले अभिनेता को चाहिए कि जिस अभिनेय वस्तु की जो लीला, गति तथा स्थिति निश्चित हो, उसको तब तक प्रदर्शित करे, जब तक वह रंगमंच पर अवस्थित रहे, यह सामान्य विधान है ।

**दक्षिणेनालपद्मेन वामेन चतुरेण च ।**
**परिमण्डलितेनाथ मयूरललितेन च ।।६८७।। 683**
**वीराख्यया तथा दृष्ट्या शिरसोद्वाहितेन च ।**
**एवं विनिर्दिशेत् षड्जं कोविद्रो नाटचनृत्ययोः ।।६८८।। 684**

नाटच तथा नृत्य में निपुण अभिनेता को चाहिए कि रंगमंच पर वह दक्षिण अलपद्म हस्त, बाम चतुर हस्त, परिमण्डल हस्त, मयूरललित हस्त, वीरा दृष्टि और उद्वाहित शिर से **षड्ज स्वर** (संगीत के सात स्वरों में प्रथम) का अभिनय प्रस्तुत करें।

**हंसास्याभिधहस्तेन दक्षिणेनेतरेण तु ।**
**कटिस्थेनार्धचन्द्रेण समेन शिरसा तथा ।** 685
**ब्राह्माख्यस्थानकेनापि धीमानृषभमादिशेत् ।।६८९।।**

बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि दक्षिण हंसास्य हस्त, कटि पर अवस्थित बाम अर्धचन्द्र हस्त, सम शिर और ब्राह्म नामक स्थानक के द्वारा वह **ऋषभ स्वर** (संगीत के सात स्वरों में द्वितीय) का अभिनय प्रस्तुत करे।

**शुकतुण्डेन हस्तेन दृष्टचा करुणया तथा ।** 686
**अधोमुखेन शीर्षेणाश्वक्रान्तस्थानकेन च ।**
**चार्याप्यञ्चितया धीमान् गान्धारं स्वरमादिशेत् ।।६९०।।** 687

धीमान् अभिनेता को चाहिए कि शुकतुण्ड हस्त, करुणा दृष्टि, अधोमुख शिर, अश्वक्रान्त स्थानक और अंचिता चारी की रचना द्वारा वह **गान्धार स्वर** (संगीत के सात स्वरों में तृतीय) का अभिनय प्रस्तुत करे।

**पताकौ स्वस्तिकौ कृत्वा शिरसा विधुतेन च ।**
**शैवाख्यस्थानकेनापि कटीच्छिन्नेन वा पुनः ।** 688
**दृष्टचा सहास्यया धीरोऽभिनयेन्मध्यगं स्वरम् ।।६९१।।**

नाटचनृतज्ञ अभिनेता को चाहिए कि दोनों पताक हस्तों को स्वस्तिकाकार करके; विधुत शिर, शैव स्थानक या कटिच्छिन्न स्थानक और हास्ययुक्त दृष्टि की रचना द्वारा वह **मध्यम स्वर** (संगीत के सात स्वरों में चतुर्थ) का अभिनय प्रस्तुत करे।

**कृत्वालपल्लवौ हस्तौ धुतेन शिरसा तथा ।** 689
**बैष्णवस्थानकेनापि दृष्टचा कान्ताख्यया तथा ।**
**एवं विनिर्दिशेद् धीमान् स्वरं पञ्चमसंज्ञितम् ।।६९२।।** 690

बुद्धिमान् अभिनेता को चाहिए कि दोनों अलपल्लव हस्तों, धुत शिर, वैष्णव स्थानक और कान्ता दृष्टि की रचना करके वह **पंचम स्वर** का अभिनय प्रस्तुत करे।

काङ्गू[ल]हस्तकौ कृत्वा दृष्टचा बीभत्सया तथा ।
परावृत्ताख्यमूर्ध्ना च प्रत्यालीढाभिधेन च । 691
स्थानकेन विनिर्देश्यो धैवतौ निपुणैर्नटैः ।।६९३।।

निपुण अभिताओं को चाहिए कि दोनों कांगूल हस्तों, बीमत्सा दृष्टि, परावृत्त शिर और प्रत्यालीढ स्थानक की रचना करके वे **धैवत स्वर** का अभिनय प्रस्तुत करें ।

हस्तेन करिहस्तेन करिहस्तेन दीनया । 692
दृष्टचावधूतशिरसा निषादं सन्निरूपयेत् ।।६९४।।

(अभिनेता को चाहिए कि) करिहस्त, दीना दृष्टि और अवधूत शिर की रचना करके वह **निषाद स्वर** का अभिनय प्रस्तुत करे ।

सुधाब्धिमतामाश्रित्याशोकमल्लेन भूभुजा । 693
अभिनीताः स्वराः सप्त षड्जाद्याः नाटचवेदिना ।।६९५।।

नाटचशास्त्रवेत्ता राजा अशोकमल्ल ने सुधाब्धि (? संभवतः भरत) के मत का अनुसरण करके **षड्ज** आदि सात स्वरों के अभिनय का निरूपण किया है ।

**विभिन्न अभिनय प्रयोग**

तं निर्दिशेत् पताकेन धिकारं चतुरेण च । 694
तों(?थों) शब्दं त्वर्धचन्द्रेण तथा टें त्रिपताकतः ।।६९६।।

पताक हस्त मुद्रा से **तं** शब्द का, चतुर हस्त मुदा से **धिकार** शब्द का, अर्धचन्द हस्त मुद्रा से, (? **थों**) शब्द का और त्रिपताक हस्त मुद्रा से **टें** शब्द का अभिनय करना चाहिए ।

कर्तर्योऽस्य ततं(?ते) पञ्च वर्णा वाद्योद्भवा मया । 695
अभिनीता यथौचित्यमभिनेयाः परे बुधैः ।।६९७।।

कर्तरीमुख हस्त मुद्रा से वाद्य के पाँचों वर्णों का अभिनय करना चाहिए । अन्य वर्णों के अभिनय के लिए विद्वान् जैसा उचित समझें, वैसा करें ।

ब्राह्मस्थः शुकतुण्डेन वामेनान्येन पाणिना । 696
तिर्यक् स्थितेनोपलाभं सूच्यास्येन विनिर्दिशेत् ।।६९८।।

ध्यानस्थ होकर वाम शुकतुण्ड हस्त तथा तिर्यक स्थित दक्षिण सूचीमुख हस्त से पकड़ने का अभिनय करना चाहिए ।

तेन शब्दं सुधीरेवमन्यं च विरुतादिकम् । 697
यथौचित्यं हस्तकाद्यै रम्यैरभिनयेदिति ॥६२६॥

इसी प्रकार निपुण अभिनेता उक्त (वाम शुकतुण्ड तथा तिर्यक् स्थित दक्षिण सूचास्य) हस्त से शब्द का और अन्य हस्तमुद्रा से गुंजन का भाव प्रकट करें। उन्हें चाहिए कि अन्यान्य के भावों के प्रदर्शन के लिए वे यथोचित रीति से रमणीय हस्तमुद्राओं का प्रयोग करें।

प्रसारितभुजो मुष्टिर्वामोऽन्यः खटकामुखः । 698
कर्णस्थो धनुराकर्षे नियुक्तो नृत्यपण्डितैः ॥७००॥

नृत्यवेत्ता लोगों को फैली हुई भुजा वाले वाम मुष्टि हस्त तथा कान पर स्थित दक्षिण खटकामुख हस्त को धनुष खींचने के अभिनय में प्रयुक्त करना चाहिए।

खटकास्यकरस्थाने करः सूचीमुखो यदा । 699
तदासौ बाणसन्धाने विद्वद्भिः परिकीर्तितः ॥७०१॥

जब उक्त मुद्रा में खटकास्य हस्त के स्थान पर सूचीमुख हस्त को प्रयुक्त किया जाता है, तब विद्वानों ने वाण-सन्धान के अभिनय में उसका विनियोग बताया है।

श्रव्यं श्रवणयोगेन मुखयोगेन वाचिकम् । 700
स्पृश्यमङ्गादियोगेन चक्षुर्योगेन चाक्षुषम् ॥७०२॥
गन्धं घ्राणस्य योगेन स्वादं जिह्वाभियोगतः । 701
एवं योग्येन हस्तेनाभिनयेन्नृत्यकोविदः ॥७०३॥

इस प्रकार नृत्यनिपुण अभिनेता को चाहिए कि वह कान के योग से सुनने योग्य विषय का, मुख के योग से वाचिक विषय का ,अंग आदि के योग से स्पर्श करने योग्य विषय का, नेत्र के योग से चाक्षुष विषय का, नाक के योग से गन्ध विषय का और जिह्वा के योग से स्वाद विषय का अभिनय करे।

मयैवमेते सम्प्रोक्ता भावा अभिनयं प्रति । 702
सम्प्रोक्ता ये न ते ज्ञेयाः प्रायशो लोकतो बुधैः ॥७०४॥

इस प्रकार मैंने विभिन्न अभिनयों से सम्बद्ध भावों का निरूपण कर दिया है; किन्तु जिनके सम्बन्ध में नहीं कहा गया है, विज्ञ अभिनेताओं को चाहिए उन्हें लोक-व्यवहार द्वारा अवगत या ग्रहण करें।

लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् । 703
तस्मान्नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते ।
इत्युक्तं मुनिना सर्वदर्शिना भरतेन हि ॥७०५॥ 704

सर्वदर्शी भरत मुनि ने तीन प्रकार के प्रमाण बताये है : लोक, वेद और अध्यात्म (धर्म)। इसलिए नाटच-प्रयोग में लोक-प्रमाण को मानना चाहिए ।

स्वस्वचेष्टासमुद्भूतै रसभावैः पृथक् पृथक् ।
ज्येष्ठमध्यमनीचेषु नाटचं प्रीतिकरं भवेत् ॥७०६॥ 705

उत्तम मध्यम और अधम वस्तुओं या व्यक्तियों के अभिनय उनकी चेष्ठाओं (प्रकृति) से उत्पन्न रस-भावों द्वारा पथक्-पथक् रूप में प्रदर्शित नाटच-प्रयोग हृदयग्राही होता है ।

संग्रामधीरधुर्येण नृपाग्रण्या मनीषिणा ।
अशोकेन समादिष्टा विचित्राभिनया इमे ॥७०७॥ 706

संग्राम में धैर्य धारण करने वाले पुरुषों में श्रेष्ठ, भूपतियों में अग्रणी और मनीषी (बुद्धिमान्) राजा अशोकमल्ल ने उक्त विचित्र अभिनयों का निरूपण किया ।

विचित्राभिनय निरूपण समाप्त

• •

# वर्तना प्रकरण / सात

## वर्तना (हस्तविन्यास) का निरूपण

**कराभिनयशोभां या विचित्रां रचयन्ति हि ।**
**ततो मयेह लिख्यन्ते वर्तनास्ता मनोहराः ॥७०८॥** 707

विचित्र प्रकार की मनोहर वर्तनाएँ हस्ताभिनय की शोभा में चारुता उत्पन्न करती हैं । इसलिए यहाँ उनका निरूपण किया जा रहा है ।

**वर्तना के भेद**

**वर्तनाद्या पताकाख्यालपद्मारालयोः परे ।**
**वर्तने शुकतुण्डाख्याबहित्थाख्ये च वर्तने ॥७०९॥** 708
**मकराख्या ततो ज्ञेया खटकामुखवर्तना ।**
**अन्योर्ध्ववर्तना तद्वद् रेचिताभिधवर्तना ॥७१०॥** 709
**आविद्धवर्तना केशबन्धाख्या वर्तना ततः ।**
**भालवर्तनिकोरःस्थवर्तना कक्षवर्तना ॥७११॥** 710
**खड्गवर्तनिका दण्डवर्तना पद्मवर्तना ।**
**नितम्बपल्लवाख्ये द्वे तथा ललितवर्तना ॥७१२॥** 711
**अर्धमण्डलपूर्वा च वर्तना वलिताभिधा ।**
**घातवर्तनिका गात्रवर्तना प्रतिवर्तना ॥७१३॥** 712
**पञ्चविंशतिरित्युक्ता वर्तना वायुसूनुना ॥७१४॥**

हनुमान जी ने पच्चीस प्रकार की वर्तनाएँ बतायी है । उनके नाम हैं : १. **पताकवर्तना, २. अलपद्मवर्तना, ३. अरालवर्तना, ४. शुकतुण्डवर्तना, ५. अबहित्थवर्तना, ५. मकरवर्तना ७. खटकामुखवर्तना, ८. ऊर्ध्ववर्तना,**

९. रेचितवर्तना, १०. आविद्धवर्तना, ११. केशबन्धवर्तना, १२. भालवर्तना, १३. उरःस्थवर्तना, १४. कक्षवर्तना, १५. खड्गवर्तना, १६. दण्डवर्तना, १७. पद्मवर्तना, १८. नितम्बवर्तना, १९. पल्लवर्तना, २०. ललित-वर्तना, २१. अर्धमण्डलवर्तना, २२. वलितवर्तना, २३. घातवर्तना, २४. गात्रवर्तना और २५. प्रतिवर्तना।

१. पताकवर्तना

मणिबन्धावधिभ्रान्तिः पताकस्य मुहुर्भवेत् । 713
सव्यापसव्यतो यत्र सा पताकाख्यवर्तना ॥७१५॥

यदि पताक हस्त को दायें-बायें क्रम से बार-बार मणिबन्ध (कलाई) तक घुमाया जाय तो वह **पताकवर्तना** कहलाती है।

२. अलपद्मवर्तना

अलपद्मकरे यत्र व्यावृत्तिक्रियया यदा । 714
वर्तितः सालपद्माख्या वर्तना गदिता बुधैः ॥७१६॥

यदि दोनों अलपद्म हस्तों को घुमा कर रख दिया जाय तो विद्वानों ने उसे **अलपद्मवर्तना** कहा है।

३. अरालवर्तना

कर्मणा वेष्टिताख्येन रचयित्वा यदा करः । 715
अरालो वर्तितः पश्चाद् यत्रोद्वेष्टितकर्मणा ।
प्रत्यपादि तदा धीरैररालकरवर्तना ॥७१७॥ 716

यदि पहले वेष्टित (घेरने) क्रिया के द्वारा अराल हस्त की रचना करके तत्पश्चात् उद्वेष्टित (चारों ओर घरने की) क्रिया द्वारा उसे अवस्थित किया जाय, तो विद्वानों ने उसे **अरालहस्तवर्तना** कहा है।

४. शुकतुण्डवर्तना

आविद्धाधोमुखो यत्र वक्षसः शुकतुण्डकः ।
वर्तितश्चोरुपृष्ठे सा शुकतुण्डाख्यवर्तना ॥७१८॥ 717

यदि शुकतुण्ड हस्त को छाती के सामने टेढ़ा तथा अधोमुख करके जाँघ पर रख दिया जाय तो उसे **शुकतुण्डवर्तना** कहते हैं।

५. अवहित्थवर्तना

करावेवमुभौ यत्र सावहित्थाख्यवर्तना ॥७१९॥

यदि दोनों शुकतुण्ड हस्तों को शुकतुण्डवर्तना में अवस्थित किया जाय तो उसे **अवहित्थवर्तना** कहते हैं।

६. मकरवर्तना

करो मकरनामा चेत् पुरतः पार्श्वयोस्तथा । 718
व्यावर्तितो बहिश्चान्तस्तदा मकरवर्तना ॥७२०॥

यदि मकर हस्त को सामने तथा दोनों पार्श्वों में बाहर और भीतर व्यावर्तित ( घुमा ) दिया जाय तो उसे **मकरवर्तना** कहते हैं ।

७. खटकामुखवर्तना

सव्यापसव्यतो नाभिदेशे या खटकास्ययोः । 719
भ्रान्तिरामणिबन्धं सा खटकामुखवर्तना ॥७२१॥

यदि दोनों खटकामुख हस्तों को नाभि के पास बाँये-दाँये क्रम से कलाई तक घुमाया जाय तो उसे **खटकामुखवर्तना** कहते हैं ।

८. ऊर्ध्ववर्तना

वर्त्तितावूर्ध्वदेशे चेदुद्‌वृत्ताभिधहस्तकौ । 720
तदोर्ध्ववर्तना प्रोक्ता कोहलेन मनीषिणा ॥७२२॥

यदि उदवृत्त दोनों हस्तों को ऊपर उठा कर अवस्थित किया जाय तो आचार्य कोहल ने उसे **ऊर्ध्ववर्तना** कहा है ।

९. रेचितवर्तना

हंसपक्षौ स्वस्तिकाच्चेद्विच्युतौ त्वरितभ्रमौ । 721
रच्येते रेचितौ यत्र सोक्ता रेचितवर्तना ॥७२३॥

यदि हंसपक्ष दोनों हस्तों को स्वस्तिक मुद्रा से हटाकर शीघ्रतापूर्वक घुमाया जाय और फिर रेचित हस्तों की रचना की जाय, तो उसे **रेचितवर्तना** कहते हैं ।

१०. आविद्धवर्तना

आविद्धवक्रयोर्यत्र बाहू व्यावर्तितौ क्रमात् । 722
आविद्धौ चेत् तदा सोक्ता धीरैराविद्धवर्तना ॥७२४॥

यदि आविद्धवक्र दोनों हाथों की बाँहों को क्रमशः घुमाकर मोड़ लिया जाय तो धीर पुरुषों ने उसे **आविद्धवर्तना** कहा है ।

११. केशबन्धवर्तना

केशबन्धाभिधौ हस्तौ निर्गतौ केशदेशतः । 723

विचित्रवर्तनायोगादेकदाथ क्रमाहतौ ।
वर्तितौ यत्र तत्रासौ केशबन्धाख्यवर्तना ॥७२५॥ 724

यदि केशबन्ध दोनों हस्तों को केशों के पास से निकाल कर विचित्रवर्तना के योग से एक-एक बार क्रमशः दोनों को आहत किया जाय तो उसे **केशबन्धवर्तना** कहा जाता है।

**१२. भालवर्तना**

उर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ वर्तितौ भालवर्तना ।
चक्रवर्तनिकेत्यस्या नामान्तरमुदीरितम् ॥७२६॥ 725

यदि दोनों ऊर्ध्वमण्डली हस्तों की रचना की जाय तो उसे भालवर्तना कहते है। उसका अपर नाम **चक्रवर्तनिका** भी कहा गया है।

**१३. उरःस्थवर्तना**

उरःस्थवर्तनां विद्यादुरोमण्डलिनोः क्रियाम् ॥७२७॥

दोनों उरोमण्डली हस्तों की रचना को ही उरःस्थवर्तना कहा जाता है।

**१४. कक्षवर्तनिका**

पार्श्वमण्डलिनोः स्वस्वपार्श्वयोर्भ्रमणं यदा । 726
युगपत् क्रमतो वा स्यात् कक्षवर्तनिका तदा ॥७२८॥

यदि दोनों पार्श्वमण्डली हस्तों को अपने-अपने पार्श्वों में एक साथ या क्रमशः एक-एक करके घुमाया जाय तो उसे **कक्षवर्तनिका** कहते हैं।

**१५. खड्गवर्तना**

कुञ्चितो मुष्टिरेकोऽन्योऽञ्चितः स्यात् खटकामुखः । 727
इमौ कीर्त्तिधरः प्राह खड्गवर्तनिकाख्यया ॥७२९॥

यदि एक मुष्टि हस्त कुञ्चित (सिकुड़ा हुआ) और दूसरा खटकामुख हस्त अञ्चित (झुका हुआ) हो, तो उसे **खड्गवर्तना** कहते हैं।

**१६. दण्डवर्तना**

वर्तितौ दण्डपक्षौ चेत् तदा स्याद् दण्डवर्तना ॥७३०॥ 728

यदि दोनों हाथों की दण्डपक्ष मुद्रा में रचना की जाय तो उसे **दण्डवर्तना** कहते हैं।

१७. पद्मवर्तना

नलिनीपद्मकोशौ चेत् सविलासं लुठन्ति तौ ।
पूर्वसूरिभिरादिष्टा पद्मवर्तनिका तदा ।।७३१।। 729

यदि नलिनीपद्मकोश नामक दोनों हस्त हाव-भाव के साथ लुढ़कें तो पूर्वाचार्यों ने उसे **पद्मवर्तना** कहा है ।

१८. नितम्बवर्तना

नितम्बौ तु यदा हस्तौ विश्लिष्टाङ्गुलिपल्लवौ ।
मणिबन्धावधि भ्रान्तौ वर्तित्वा स्कन्धदेशयोः ।।७३२।। 730
पुर्नानितम्बदेशस्थौ वर्तितौ क्रमशस्तदा ।
नितम्बवर्तना सोक्ता लक्ष्यलक्ष्मविशारदैः ।।७३३।। 731

यदि नितम्ब मुद्रा में दोनों हाथों को, जिनकी उँगलियाँ अलग-अलग रहें, कलाई तक घुमाते हुए कन्धे तक ले जाया जाय और फिर क्रमशः लाकर नितम्बों पर रख दिया जाय तो अभिनेताओं और नाटयाचार्यों ने उसे **नितम्बवर्तना** कहा है ।

१९. पल्लववर्तना

पल्लवौ वर्तितौ चेत् सा सविलासमनोहरौ ।
निरवादि तदा धीरैः पल्लवाभिधवर्तना ।।७३४।। 732

यदि दोनों पल्लव हस्तों को हाव-भाव तथा सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया जाय तो उसे धीर पुरुषों ने **पल्लववर्तना** कहा है ।

२०. ललितवर्तना

लीलया ललितौ हस्तौ वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।
यदा स्यातां तदा प्रोक्ता ललिताभिधवर्तना ।।७३५।। 733

यदि दोनों ललित हस्तों को लीलापूर्वक हाव-भाव तथा सुन्दरता के साथ अवस्थित किया जाय तो उसे **ललितवर्तना** कहते हैं ।

२१. अर्धमण्डलवर्तना

सविलासं यदा स्यातामुरःपार्श्वार्धमण्डलौ ।
वर्तितौ स्वोक्तरीत्यैव त्वर्धमण्डलवर्तना ।।७३६।। 734

यदि उरःपार्श्वार्धमण्डल दोनों हस्तों को हाव-भाव के साथ अपने उक्त प्रकार से ही अवस्थित या प्रस्तुत किया जाय तो उसे **अर्धमण्डलवर्तना** कहते हैं ।

२२. वलितवर्तना

वलिताभिधहस्तौ चेद्वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।
सौष्ठवेन तदा सोक्ता धीरैर्वलितवर्तना ॥७३७॥ 735

यदि दोनों वलित हस्त चारुतापूर्वक अपने उक्त प्रकार से प्रस्तुत किये जाँय तो धीर पुरुषों ने उसे **वलितवर्तना** कहा है ।

२३. घातवर्तना

उल्वणौ वर्तितौ स्वोक्तरीत्योक्ता घातवर्तना ॥७३८॥

यदि दोनों उल्बण हस्तों को अपने उक्त प्रकार से प्रस्तुत किया जाय तो उसे **घातवर्तना** कहते हैं ।

२४. गात्रवर्तना

अलपल्लवहस्तोऽन्तर्गात्रं व्यावर्तितो यदि । 736
परागास्योऽपविद्धः स्यात् तदोक्ता गात्रवर्तना ॥७३९॥

यदि अलपल्लव हस्त को अन्दर शरीर की ओर घुमाकर पराङ्मुख (उलटा) करके अपविद्ध किया जाय तो उसे **गात्रवर्तना** कहते हैं ।

२५. प्रतिवर्तना

प्रातिलोम्येन गात्रस्य हस्त आक्षिप्य वर्तितः । 737
अलपल्लवनामा चेत् तदोक्ता प्रतिवर्तना ॥७४०॥

यदि अलपल्लव हस्त को शरीर के विपरीत भाव से (बाहर की ओर) आक्षिप्त करके अवस्थित या प्रस्तुत किया जाय तो उसे **प्रतिवर्तना** कहते हैं ।

वर्तना के अन्य भेद

वर्तना चतुरस्राख्यापरा तलमुखाह्वया । 738
वर्तना स्वस्तिकाख्यान्या विप्रकीर्णाभिधा परा ॥७४१॥
तथा पुष्पपुटाख्यान्या त्रिपताकाह्वया परा । 739
कर्तर्यास्याभिधा मुष्टिवर्तना (ख्या ततः) परा ॥७४२॥

शिखराख्या कपित्थाख्या तथा सूचीमुखाह्वया । 740
एवमेकादश ज्ञेया वर्तनाश्च मतान्तरे ॥७४३॥

अन्य आचार्यों के मत से वर्तना के ग्यारह भेद बताये गये हैं, जिनके नाम हैं : १.चतुरस्रवर्तना, २. तुलमुखवर्तना, ३. स्वास्तिकवर्तना, ४. विप्रकीर्णवर्तना, ५. पुष्पपुटवर्तना, ६. त्रिपताकवर्तना, ७. कर्तरीमुखवर्तना, ८. मष्टि-वर्तना, ९. शिखरवर्तना, १०. कपित्थवर्तना और ११. सूचीमुखवर्तना ।

१. चतुरस्रवर्तना

चतुरस्रौ यदा हस्तौ चलितौ सांसकूर्परौ । 741
उद्वेष्टितक्रियापूर्वौ पश्चाद् वक्षः समाश्रितौ ।
तदा धीरैः समादिष्टा चतुरस्राख्यवर्तना ॥७४४॥ 742

यदि दोनों चतुरस्र हस्तों को कन्धे तथा कुहनी सहित चलाया जाय और उद्वेष्टित (चारों ओर से घेरने की) क्रिया करने के अनन्तर उन्हें छाती पर अवस्थित किया जाय, तो धीर पुरुषों ने उसे **चतुरस्रवर्तना** कहा है ।

२. तलमुखवर्तना

यदा तलमुखौ हस्तौ वर्तितौ स्वोक्तरीतितः ।
सौष्ठवेन तदा धीरैरुक्ता तलमुखाह्वया ॥७४५॥ 743

यदि दोनों तलमुख हस्तों को अपने उक्त प्रकार से सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया जाय तो धीर पुरुषों ने उसे **तलमुखवर्तना** कहा है ।

३. स्वस्तिकवर्तना

व्यावर्तनक्रियापूर्वं क्रियेते स्वस्तिकौ यदा ।
तदा सद्भिः समादिष्टा वर्तना स्वस्तिकाभिधा ॥७४६॥ 744

यदि दोनों स्वस्तिक हस्तों को व्यावर्तन क्रिया के द्वारा प्रस्तुत किया जाय तो सज्जनों ने उसे **स्वस्तिकवर्तना** कहा है ।

४. विप्रकीर्णवर्तना

उद्वेष्टितक्रियापूर्वं भ्रमन्तौ विच्युताविमौ ।
स्वस्वपार्श्वगतौ प्रोक्ता विप्रकीर्णाख्यवर्तना ॥७४७॥ 745

यदि उक्त स्वस्तिक हस्तों को चारों ओर घेरते तथा घुमाते हुए अलग-अलग करके अपने-अपने पार्श्व में अवस्थित कर दिया जाय तो उसे **विप्रकीर्णवर्तना** कहते हैं ।

**५. पुष्पपुटवर्तना**

**परिवृत्त्या पुष्पपुटः करः पार्श्वे व्रजेद् यदि ।** 746
**ततो वक्षःस्थलं प्राप्तो व्यावृत्त्या नेत्रसुन्दरः ।**
**तदा धीरैः पुष्पपुटवर्तना समुदाहृता ॥७४८॥** 747

यदि पुष्पपुट हस्त को घुमाते हुए पार्श्व में ले जाया जाय और फिर, नेत्रों को अच्छा लगने वाले, उस हस्त को वहाँ से वक्षःस्थल पर पहुँचा दिया जाय तो धीर पुरुषों ने उसे **पुष्पपुटवर्तना** कहा है ।

**६. त्रिपताकवर्तना**

**सव्यापसव्यतो भ्रान्तौ त्रिपताकौ मुहुः करौ ।**
**मणिबन्धावधि प्रोक्ता त्रिपताकाख्यवर्तना ॥७४९॥** 748

यदि दोनों त्रिपताक हस्तों को बार-बार बाँये-दाँये क्रम से कलाई तक घुमाया जाय तो उसे **त्रिपताकवर्तना** कहते हैं ।

**७. कर्तरीमुखवर्तना**

**त्रिपताकोक्तरीत्यैव कर्तरीमुखवर्तना ॥७५०॥**

यदि दोनों कर्तरीमुख हस्तों को उक्त **त्रिपताक** हस्तों की तरह प्रस्तुत किया जाय तो उसे **कर्तरीमुखवर्तना** कहते हैं ।

**८. मुष्टिवर्तना**

**व्यावृत्तिक्रियया मुष्टिं कृत्वा चेद् भ्रामयेन्मुहुः ।** 749
**सव्यापसव्यतो मुष्टिवर्तना सद्भिरीरिता ॥७५१॥**

यदि मुष्टि हस्त को व्यावृत्ति (चक्कर काटने की) क्रिया द्वारा बाँये-दाँये क्रम से बार-बार घुमाया जाय तो उसे सज्जनों ने **मुष्टिवर्तना** कहा है ।

९. शिखरवर्तना, १०. कपित्त्थवर्तना, ११. सूचीमुखवर्तना

**शिखरस्य कपित्त्थस्य तथा सूचीमुखस्य च । 750**
**भवन्ति वर्तना मुष्टिवर्तनोक्तप्रकारतः ।।७५२।।**

शिखर, कपित्त्थ और सूचीमुख हस्तों की वर्तनाएँ उक्त **मुष्टिवर्तना** में निर्दिष्ट क्रिया के अनुरूप सम्पन्न होती हैं।

**कराणामेवमन्येषामनन्ता वर्तना मताः । 751**
**अभिनेयवशाद् धीरैस्तत्तन्नाम्नोपलक्षिताः ।।७५३।।**

इसी प्रकार अन्य हाथों की अनन्त वर्तनाएँ कही गयी हैं । अभिनय योग्य उन वर्तनाओं को विद्वानों ने अभिनय के अनुरूप उन-उन नामों से अभिहित किया है ।

छत्तीस प्रकार की वर्तना का निरूपण समाप्त

● ●

## चालन प्रकरण / आठ

## हस्त संचालन क्रियाओं का निरूपण

नृत्यज्ञैर्यदि रेच्यन्ते बाहवो बहुभङ्गिभिः । 752
बहुधा चालनानि स्युस्तदा तान्यधुना ब्रुवे ॥७५४॥

जब निपुण अभिनेता अनेकानेक भाव-भंगिमाओं से बाहुओं को गतिशील करते हैं, तब बहुधा नाना प्रकार की संचालन-क्रियाएँ बनती या उत्पन्न होती हैं। यहाँ उनका निरूपण किया जा रहा है।

विश्लिष्टवर्तितं त्वाद्यं वेपथुव्यञ्जकं परम् । 753
अपविद्धं ततो ज्ञेयं लहरीचक्रसुन्दरम् ॥७५५॥
वर्तनास्वस्तिकाख्यं च सम्मुखीनरथाङ्गकम् । 754
पुरोदण्डभ्रमाख्यं च त्रिभङ्गीवर्णसारकम् ।
दोलं नीराजिताख्यं च स्वस्तिकाश्लेषचालनम् ॥७५६॥ 755
वामदक्षतिरश्चीनं वर्तनाभरणं तथा ।
मिथोंसवीक्षाबाह्याख्यं मौलिरेचितकं ततः ॥७५७॥ 756
मणिबन्धासिकर्षाख्यमंसवर्तनिकं तथा ।
आदिकूर्मावताराख्यं कलविङ्कविनोदकम् ॥७५८॥ 757
मण्डलाग्रं ततः पश्चाच्चतुष्पत्राब्जसंज्ञितम् ।
बालव्यजनकं चान्यत् ततो विरुडिबन्धनम् ॥७५९॥ 758
विशृङ्गाटकबन्धाख्यं तथा कुण्डलिचारकम् ।
धनुराकर्षणाख्यं च हारदामविलासकम् ॥७६०॥ 759
समप्रकोष्ठबलनं मुरजाडम्बरं ततः ।
तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रं ततो देवोपहारकम् ॥७६१॥ 760

अलातचक्रकाख्यं च ततः साधारणाभिधम् ।
तथोरभ्रकसम्बाधं मणिबन्धगतागतम् ॥७६२॥ 761
तार्क्ष्यपक्षविनोदाख्यं धनुर्वल्लीविनामकम् ।
तिर्यक्ताण्डवचाराख्यं व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तकम् ॥७६३॥ 762
कररेचितरत्नं च मण्डलाभरणं तथा ।
अष्टबन्धविहाराख्यं शरसन्धाननामकम् ॥७६४॥ 763
पर्यायगजदन्ताख्यमंसपर्यायनिर्गतम् ।
स्यात् स्वस्तिकं त्रिकोणं च रथनेमिसमं तथा ॥७६५॥ 764
लतावेष्टितकाख्यं च कर्णयुग्मप्रकीर्णकम् ।
नवरत्नमुखं चेति पञ्चाशच्चालकाः स्मृताः ॥७६६॥ 765

चालकों के पचास भेद कहे गये हैं—१. विश्लिष्टवर्तित, २. वेपथुव्यञ्जक, ३. अपविद्ध ४. लहचक्रसुन्दर, ५. वर्तनास्वस्तिक, ६. संमुखीनरथाङ्ग, ७. पुरोदण्डभ्रम, ८. त्रिभंगीवर्णसारक, ९. देल, १०. नीराजित, ११. स्वस्तिकाश्लेष, १२. वामदक्षतिरश्चीन, १३. वर्तनाभरण, १४. भिथोंसवीक्षाबाह्य, १५. मौलिरेचितक, १६. मणिबन्धासिकर्ष, १७. अंसवतुनिक, १८. आदिकूर्मावतार, १९. कलविङ्कविनोद, २०. मण्डलाग, २१. चतुष्पत्राब्ज, २२. बालव्यञ्जन चालन, २३. विरुडिबन्धन, २४. विशृगाटकबन्धन, २५. कुण्डलिचारक, २६. धनराकर्षण, २७. हारदामविलासक, २८. सनप्रकोष्ठचलन, २९. मुरजाडम्बर, ३०. तिर्यग्यतस्वस्तिकाग्र, ३१. देवोपहारक, ३२. अलातचक्र, ३३. साधारण, ३४. उरभ्रकसंबाध, ३५. मणिबन्धगतागत, ३६. ताध्र्यपक्षविनोदक ३७. धनुर्वल्लीवितामक, ३८. तिर्यकताण्डव, ३९. व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक ४०. कररेचितरत्न ४१. मण्डलाभरण, ४२. अष्टबन्धविहार, ४३. शरसन्धान, ४४. पर्यायगजदन्तक, ४५. अंसपर्यामनिर्गत, ४६. त्रिकोणस्वस्तिक, ४७. रथनेमिसम ४८. लतावेष्टित, ४९. कर्णयुग्मप्रकीर्णक और ५०. नवरत्नमुख ।

१. विश्लिष्टवर्तित

विधाय स्वस्तिकौ यत्र तिर्यगेको विलोडितः ।
अपरः पार्श्वयोर्यत्राशीर्षमूर्ध्वमधस्तथा । 766
लोडितः स्यात् तदाख्यातं सद्भिर्विश्लिष्टवर्तितम् ॥७६७॥

यदि दोनों हाथों को स्वस्तिक में बनाकर एक को तिरछा करके हिलाया जाय और दूसरे को दोनों पार्श्वों में शिर तक नीचे-ऊपर हिलाया जाय तो सज्जनों ने उसे **विश्लिष्टवर्तित** कहा है।

**२. वेपथुव्यंजक**

लुठत्येककरे तिर्यङ् नाभिदेशगते सति । 767
ततोऽन्यदेशचलनं यन्मञ्जुलरसोज्ज्वलम् ।
हस्तयोस्तत् समाख्यातं वेपथुव्यञ्जकं तदा ॥७६८॥ 768

यदि एक हाथ नाभिदेश में जाकर तिरछा होकर लौटे और फिर वहाँ से अन्य स्थानों में सुन्दरतापूर्वक उज्ज्वल होकर संचलित हो, तो दोनों हाथों की उस क्रिया को **वेपथुव्यंजक** कहते हैं।

**३. अपविद्ध**

लुठनं मण्डलाकारं नाभिकण्ठप्रदेशयोः ।
वामदक्षिणतो यत् स्यादपविद्धमितीरितम् ॥७६९॥ 769

यदि नाभि और कण्ठ के पास बाँये-दाँये क्रम से हाथों को लोटाया जाय तो उसे **अपविद्ध** चलन कहते हैं।

**४. लहरीचक्रसुन्दर**

एकस्मिन्नाभिदेशस्थे तिर्यग्लुठति हस्तके ।
ततो वामं सपर्यन्तं परं प्राप्य पराङ्मुखम् ॥७७०॥ 770
कर्मणान्दोलनेनाथ प्रसार्यामुं बहिर्यदा ।
क्षिप्रमन्तरमाक्षिप्य शिरसः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७७१॥ 771
विलोड्यपार्श्वयोः स्तोकं यद्विलासेन जायते ।
तदवादि तदा सद्भिर्लहरीचक्रसुन्दरम् ॥७७२॥ 772

पहले एक हाथ को नाभिदेश में रखकर तिरछा लोटा दिया जाय; फिर बायें हाथ को हिलाते-डुलाते हुए किनारे सहित उलटा कर शिर के दोनों बगल में किञ्चित् हाव-भाव के साथ चलायमान किया जाय, उसी को सज्जनों ने **लहरीचक्रसुन्दर** चालन कहा है।

**५. वर्तनास्वस्तिक**

एकस्य वलने पार्श्वे विद्युदाकृतिधारिणः ।
अन्वक्षरेण हस्तेन योगश्चेच्च्युतिपूर्वकः ॥७७३॥ 773

असकृद् यत्र तत् प्रोक्तं वर्तनास्वस्तिकं तदा ।
अथवेदं त्रिखण्डोक्तवर्तनाभिर्भवेदिति ॥७७४॥ 774

यदि एक हाथ बिजली की आकृति धारण करके, अर्थात् विद्युल्लता के समान, बगल में चक्कर लगाये और दूसरा हाथ उसका अनुगमन करते हुए बार-बार उससे जुट जाय तथा हट भी जाय, तो उसे **वर्तनास्वस्तिक** चालन कहते हैं । उसे त्रिखण्डोक्तवर्तनाओं द्वारा सम्पन्न किया जाय ।

**६. संमुखीनरथांग**

परस्परमुखीभूय तिर्यग्विततरेचितौ ।
विधाय पार्श्वयोरन्तरावृत्ती तीक्ष्णकूर्परौ ॥७७५॥ 775
रेचितौ पूर्ववद् यत्र हस्तौ मञ्जुलतान्वितौ ।
सम्मुखीनरथाङ्गं तच्चालनं परिकीर्तितम् ॥७७६॥ 776

जहाँ दोनों रेचित हस्तों को सुन्दर ढंग से एक-दूसरे के आमने-सामने फैलाकर दोनों पार्श्वों में दोनों नोकीली कोहनियों को चलाया जाय, वहाँ उसे **संमुखीनरथांग** कहा जाता है ।

**७. पुरोदण्डभ्रम**

तिर्यङ्मुष्टिं विधायैकं पश्चादस्यैव चेद्बहिः ।
अन्तश्च लीलयान्यस्मिन् लुठिते सति हस्तयोः ॥७७७॥ 777
पुरस्तान्निसृतिर्यत्र पर्यायेण तदीरितम् ।
पुरोदण्डभ्रमाख्यं तच्चालनं प्राच्यसूरिभिः ॥७७८॥ 778

जहाँ दोनों हाथों में से एक को मुष्टि हस्त बना कर पश्चात् उसी के बाहर या भीतर लीलापूर्वक दूसरे हाथ को लोटा दिया जाय और अनुक्रम से आगे निकाल दिया जाय, तो पूर्वाचार्यों ने उसे **पुरोदण्डभ्रम** चालन कहा है ।

**८. त्रिभंगीवर्णसारक**

पूर्वे पार्श्वे ततः पश्चाद् विदिश्यपि पदक्रिया ।
करयोर्जायते यत्र युगपत् क्रमतोऽथवा । 779
त्रिभङ्गीवर्णसारकं चालनं तदुदीरितम् ॥७७९॥

जहाँ दोनों हाथों का संचालन पूरब में, अगल-बगल में तथा दो दिशाओं के अन्तराल में एक साथ या क्रमशः किया जाता है, वहाँ वह **त्रिभंगीवर्णसारक** चालन कहलाता है ।

९. दोल

यत्रोर्ध्वोऽधोमुखस्त्र्यस्रं लीयया लुठितः क्रमात् । 780
करस्तद्दोलमादिष्टं चालनं प्राक्तनैर्बुधैः ॥७८०॥

जहाँ एक हस्त क्रमशः ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख होकर त्रिकोण में लोटता है, वहाँ उसको पूर्वाचार्यों ने **दोल** चालन कहा है ।

१०. नीराजित

स्वस्तिकीभूय चेद्धस्तौ बहिरेव विनिर्गतौ । 781
अन्तस्तिर्यक् चक्रभावान्मूर्ध्नि सव्यापसव्ययोः ।
युगपल्लुठतो यत्र तन्नीराजितचालनम् ॥७८१॥ 782

यदि दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में रच कर बाहर की ओर निकाला जाय और फिर भीतर तिरछा करके चक्राकार में बाँये-दाँये क्रम से एक साथ मस्तक पर लोटा दिया जाय तो वह **नीराजित** चालन कहलाता है ।

११. स्वस्तिकाश्लेष

बिभ्रतोः स्वस्तिकाकारं करयोः स्कन्धदेशतः ।
वलनं चेत् तदा प्रोक्तं स्वस्तिकाश्लेषचालनम् ॥७८२॥ 783

यदि स्वस्तिकाकृति धारण किये हुए दोनों हाथों को कन्धे के पास से घुमाया जाय, तो उसे **स्वस्तिकाश्लेष** चालन कहा जाता है ।

१२. वामदक्षतिरश्चीन

वामदक्षिणयोस्तिर्यग्लुठनं करयोर्यदा ।
स्वस्तिकाकारयोर्यत्र तत् तदा तण्डुना मतम् । 784
वामदक्षतिरश्चीनं तदप्यन्वर्थनामकम् ॥७८३॥

जब दोनों स्वस्तिकाकार हस्त बाँये-दाँये क्रम से तिरछे लोटा दिये जायं, तब उसे आचार्य तण्डु के मत से **वामदक्षतिरश्चीन** चालन कहते हैं । यह उसकी अन्वर्थसंज्ञा (अर्थानुरूप नाम) है ।

१३. वर्तनाभरण

एकः करो यदा कर्णदेशगोऽन्यस्तु वर्तितः । 785
उत्सार्योद्वेष्टितेन स्याद् वर्तनाभरणं तदा ॥७८४॥

जब एक हाथ कान के पास रहे और दूसरे हाथ को हटाकर चारों ओर से घेर दिया जाय तब उसे **वर्तनाभरण** चालन कहते हैं।

१४. **मिथोंसवीक्षाबाह्य**

एकः करश्चेदन्यस्य स्कन्धदेशमृजुर्गतः। 786
निवृत्तः सन् निजे पार्श्वे क्रमाद् विहितमण्डलः।
मिथोंसवीक्षाबाह्यं तत्कथ्यते चालनं तदा ॥७८५॥ 787

यदि एक हाथ दूसरे के कन्धे पर सीधे चला जाय और फिर क्रमशः मण्डल बना कर पार्श्व में लौट आये, तो उसे **मिथोंसवीक्षाबाह्य** कहते हैं।

१५. **मौलिरेचितक**

कटिदेशगतस्त्वेकोऽपरस्तु पुरतो गतः।
अथैतो केशपर्यन्तं लीलया लुठितौ यदि। 788
तदात्र सद्भिराख्यातं मौलिरेचितकं तदा ॥७८६॥

यदि एक हाथ को कमर पर और दूसरे को सामने रखा जाय तथा दोनों को केश पर्यन्त लीलापूर्वक लोटाया जाय तो सज्जन लोग उसे **मौलिरेचितक** चालन कहते हैं।

१६. **मणिबन्धासिकर्ष**

हस्तावुद्यम्य युगपत् क्रमाद् वा स्कन्धयोर्यदि। 789
विलोडनं विधायाथ कूर्परस्वस्तिकात्मना ॥७८७॥
तत्रैव लोडयित्वाथ बहिरन्तश्च मुष्टितः। 790
द्रुतं निविश्य लुठनाच्चक्राकृतिविडम्बिनः ॥७८८॥
तदन्यस्मिन् क्रमाद्धस्ते पार्श्वयोर्वलनं गते। 791
परस्य लीलया यत्र समुत्क्षेपो विधीयते।
मणिबन्धासिकर्षाख्यं तदा सद्भिर्निरूपितम् ॥७८९॥ 792

दोनों हाथों को एक साथ या क्रम से उठाकर दोनों कन्धों पर हिलाया जाय; फिर कुहनियों को स्वस्तिकाकार बनाकर हाथों को वहीं पर हिलाया जाय, अनन्तर बाहर और भीतर शीघ्र मुष्टि हस्त का प्रयोग करके चक्राकार हाथ को लोटाया जाय; पश्चात् एक हाथ को दोनों पार्श्वों में टेढ़ा करके दूसरे हाथ को लीलापूर्वक ऊपर उठाया जाय; ऐसा करने पर सज्जनों ने उसे **मणिबन्धासिकर्ष** चालन कहा है।

१७. अंसवर्तनिक

मणिबन्धप्रकोष्ठांसवर्तनाच्चलितोद्धृतैः । 793
किञ्चित्साचिनतं शीर्षं विधायोपरिलोडनैः ॥७९०॥
परागधोमुखत्वेन लुठितैरुरसः पुरः । 794
ततश्चेच्चलितैः पाण्योः कुटिलैः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७९१॥
युगपत् क्रमतो यद्वा भूयते यत्र तत् तदा । 795
अंसवर्तनिकं प्रोक्तं तल्लक्षणविशारदैः ॥७९२॥

कलाई से लेकर कुहनी तक के भाग को चलाया जाय और सिर को कुछ तिरछा करके उसके ऊपर हाथों को हिलाया जाय; फिर ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख होकर वक्षःस्थल के समक्ष हाथों को लोटाया जाय; पश्चात् दोनों पार्श्वों में हाथों को कुटिल करके एक साथ या क्रमशः चलायमान किया जाय। ऐसी क्रिया को लक्षण के विशेषज्ञों ने **अंसवर्तनिक** चालन कहा है।

१८. आदिकूर्मावतार

वामदक्षिणयोर्मूर्ध्नो युगपत् क्रमतोऽथवा । 796
ऊर्ध्वाधोमण्डलभ्रान्तौ करौ स्वस्तिकतां गतौ ॥७९३॥
वर्तनास्वस्तिकौ पार्श्वयुग्मे मण्डलघूर्णितौ । 797
बृहन्मण्डलपूर्णौ चेत् पुरो विलुठतस्तदा ।
आदिकूर्मावताराख्यं भणितं पूर्वसूरिभिः ॥७९४॥ 798

मस्तक के वाम तथा दक्षिण भाग में एक साथ या क्रमशः स्वस्तिकाकार हाथों को ऊपर-नीचे मण्डलाकार में घुमाया जाय; फिर **वर्तनास्वस्तिक** नामक चालन वाले हाथों को दोनों पार्श्वों में मण्डल बनाकर घुमा दिया जाय; इस प्रकार बृहत् मण्डल से पूर्ण हाथ जब सामने लोटने लगते हैं, तब पूर्वाचार्यों ने उसे **आदिकूर्मावतार** चालन कहा है।

१९. कलविंकविनोद

मूर्ध[1] देशोपरि करौ यद् मध्याकाशमेकदा ।
विलोड्य मण्डलाकारमथ चेत् पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७९५॥ 799

---

१. देखिए : भरतकोश, पृ० ८१० ।



२९

करयोः क्रियते यत्र पतनोत्पतनात्मिका ।
पुनः[पुनः] क्रिया या स्यात् द्रुतमानेन लीलया । 800
कलविङ्कविनोदाख्यं चालनं तत् तदेरितम् ॥७९६॥

मस्तक के ऊपर दोनों हाथों को मध्य आकाश में एक बार हिलाकर दोनों पार्श्वों में मण्डलाकार घुमाया जाय; फिर बार-बार तेजी से दोनों हाथों को लीलापूर्वक गिरा दिया जाय और उठा दिया जाय। ऐसी क्रिया को **कलविङ्कविनोद** चालन कहते हैं ।

२०. **मण्डलाग्र**

मुष्टिर्विलुठित[1]स्त्वेकस्तदूर्ध्वं यात्य[था]परः । 801
गतागतः पार्श्वयोः स पश्चात्तु पुरतो गतः ॥७९७॥
एवं सति पुनर्यत्र व्यत्यासात् करयोः क्रियाः । 802
चालनज्ञैः समाख्यातं मण्डलाग्रमिदं तदा ॥७९८॥

एक मुष्टि हस्त लोटता रहे और दूसरा ऊपर को जाय; फिर वह हाथ दोनों बगलों में जाय; पश्चात् आगे जाय; इस प्रकार बदल-बदल कर दोनों हाथों की क्रियाएँ जहाँ हों, वहाँ चालन के विशेषज्ञों ने उसे **मण्डलाग्र** चालन कहा है ।

२१. **चतुष्पत्राब्ज**

ऊर्ध्वं विलुठितः पूर्वं पश्चान्मण्डलवद्भ्रमः । 803
विलासेन चतुर्दिक्षु हस्तो यत्र प्रवर्तते ॥७९९॥
नाभिदेशसमीपस्थे लुठत्यन्यकरे सति । 804
पर्यायाच्चेत् तत् तदोक्तं चतुष्पत्राब्जचालनम् ॥८००॥

जहाँ एक हाथ पहले ऊपर में लोटे पश्चात् चारों दिशाओं में हाव-भाव के साथ मण्डलाकार में घूमे और दूसरा हाथ नाभि के समीप बारी-बारी से लोटे, तो उसको **चतुष्पत्राब्ज** चालन कहते हैं ।

२२. **बालव्यंजन**

पर्यायेणोत्प्रकोष्ठं चेत् स्कन्धदेशान्तरं गतौ । 805
करौ विलुठितौ भूत्वाधोगतौ चक्रभावतः ।
यत्र स्तस्तत् तदादिष्टं बालव्यजनचालनम् ॥८०१॥ 806

१. देखिए : 'स्वंक' भरतकोश, पृ० ८१५ ।

जहाँ दोनों हाथ बारी-बारी से कलाई से कुहनी तक के भाग को छोड़कर कन्धों पर पहुँच कर लौटने लगें और फिर चक्राकार धारण कर नीचे चले जायँ, तो उसको **बालव्यंजन चालन** कहते हैं।

२३. विरुडिबन्धन

**अनुसृत्य त्रिकोणत्वं करो यत्र विलोड्यते ।**
**पुरतः पार्श्वयोस्तद्वद् यदा मण्डलवृत्तितः ।** 807
**चालकज्ञास्तदा प्राहुरिदं विरुडिबन्धनम् ॥८०२॥**

जब हाथ त्रिकोण बनाकर हिलाया जाता है और उसी तरह मण्डलाकार में आगे तथा दोनों पार्श्वों में चलाया जाता है, तब चालन के विशेषज्ञ लोग उसे **विरुडिबन्धन** चालन कहते हैं।

२४. विश्रृंगाटकबन्ध

**प्रतिलोमानुलोमाभ्यां भवेदेतस्य या क्रिया ।** 808
**विशृङ्गाटकबन्धाख्यं तद्विदस्तदवादिषुः ॥८०३॥**

इसी विरुडिबन्धन नामक चालन क्रिया को यदि अनुलोम-विलोम-भाव से सम्पन्न किया जाय, तो चालनज्ञों ने उसे **विश्रृंगाटकबन्ध** चालन कहा है।

२५. कुण्डलिचारक

**विलोड्यते यत्र करो वामदक्षिणयोर्यदि ।** 809
**गतागते दधद् दिक्षु तिर्यग्व्यावर्तिता पुनः ।**
**सद्भिरेतत् समादिष्टं तदा कुण्डलिचारकम् ॥८०४॥** 810

यदि बायें-दायें क्रम से हाथ को चलाया जाय और दिशाओं में यातायात करते हुए उस हाथ को तिरछा घुमाया जाय तो सज्जन लोग उसे **कुण्डलिचारक** चालन कहते हैं।

२६. धनुराकर्षण

**स्वस्तिकीकृतयोः पाण्योर्वेगात् तिर्यक् प्रसर्पतोः ।**
**पार्श्वेऽथैककरोऽकस्मान्निवृत्त्य यदि कर्णगः ।** 811
**धनुराकर्षणं प्रोक्तं तदा त्वन्वर्थनामकम् ॥८०५॥**

स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित दोनों हाथों को पार्श्व में तिरछा करके चालाया जाय और फिर एक हाथ को अकस्मात् लौटाकर कान पर ले जाया जाय, तो उसे अर्थानुरूप नाम वाला **धनुराकर्षण** चालन कहते हैं।

२७. हारदामविलासक

भुजावंसान्तरं गत्वा युगपत् पार्श्वयोर्द्वयोः । 812
पतेतां यत्र तत् प्रोक्तं हारदामविलासकम् ॥८०६॥

जब दोनों भुजाएँ कन्धों के बीच में जाकर एक साथ दोनों पार्श्वों में गिरते हैं, तब उसे **हारदामविलासक** चालन कहते हैं ।

२८. समप्रकोष्ठ

समप्रकोष्ठचलनमन्वर्थं सद्भिरीरितम् ॥८०७॥ 813

सज्जनों ने **समप्रकोष्ठ चालन** नामक चालन को अन्वर्थ बताया है; अर्थात् समप्रकोष्ठ (कलाई से कुहनी तक के भाग) पर हाथ के चलने को **समप्रकोष्ठ** चालन कहते हैं ।

२९. मुरजाडम्बर

गत्वा विदिशि तत्रैव भवेदादत्तमण्डलः ।
सव्यापसव्यतो यत्र पार्श्वयोर्बर्तनान्वितः ॥८०८॥ 814
दक्षिणस्तु ततो वामस्कन्धदेशमुपाश्रितः ।
क्षिप्रं विदिशि यात्वाथ लुठितः सव्यपार्श्वके ॥८०९॥ 815
ततोऽन्यस्मिन् करे तिर्यक् नाभिदेशसमीपगे ।
लुठत्येतत् समादिष्टं मुरजाडम्बरं बुधैः ॥८१०॥ 816

दो दिशाओं के बीच (कोण) में जाकर वहीं मण्डल बना लिया जाय; फिर बायें-दायें क्रम से पार्श्वों में वर्तना से युक्त दाहिने हाथ को बायें कन्धे पर रख दिया जाय; अनन्तर शीघ्रतापूर्वक बायें पार्श्व में दाहिने हाथ को लोटा दिया जाय; तत्पश्चात् बायें हाथ को नाभिदेश में तिरछा करके लोटा दिया जाय । इसी क्रिया को बुधगण **मुरजाडम्बर** चालन कहते हैं ।

३०. तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र

प्रसृतौ पार्श्वयोः पूर्वं हस्तकौ तदनन्तरम् ।
मिथोऽभिमुखतां प्राप्य जातस्वस्तिकबन्धनौ ॥८११॥ 817
पुरतो धावतो यस्मिन् सविलासं यदा तदा ।
तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रं तत् सुमन्तुरभाषत ॥८१२॥ 818

पहले दोनों हाथों को पार्श्वों में फैला दिया जाय; तदनन्तर एक-दूसरे के आमने-सामने करके दोनों को स्वस्तिक मुद्रा में बाँध कर आगे की ओर हाव-भाव के साथ चलाया जाय; इस क्रिया को आचार्य समन्तु ने **तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र** चालन कहा है।

**३१. देवोपहारक**

अरालकपरावृत्तेरुभयोः पार्श्वयोरपि ।
सरलप्रसृतस्याग्रे करस्य लुठति स्वयम् ॥८१३॥ 819
सम्प्राप्य कूर्परक्षेत्रं परो लुठति यत्र तत् ।
देवोपहारकं प्रोक्तं तदा नृत्तविचक्षणैः ॥८१४॥ 820

दोनों पार्श्वों में अराल हस्त को परिवर्तित करके एक हाथ को सीधा फैलाकर स्वयं लोटा दिया जाय; फिर कुहनी के आस-पास दूसरे हाथ को लोटा दिया जाय। इस क्रिया को नृत्य के विद्वानों ने **देवोपहारक** चालन कहा है।

**३२. अलातचक्र**

कश्चिदन्तर्बहिश्चक्रचरो हस्तः पराङ्मुखः ।
अन्यो विडम्बनां धत्तेऽलातचक्रस्य चेद् तदा । 821
अलातचक्रमाख्यातं सद्भिरन्वर्थनामकम् ॥८१५॥

बाहर भीतर चक्र के समान चलने वाला एक हाथ किसी ओर से मुँह मोड़ ले और दूसरा हाथ अलातचक्र का अनुकरण करे, तो सज्जन लोग उसका अन्वर्थ (अर्थानिरूप) नाम **अलातचक्र** बताते हैं।

**३३. साधारण**

कटिदेशगतौ हस्तौ तिर्यग्यदि विलोडितौ । 822
ततोऽन्तर्मण्डलभ्रान्तावथवा बहिरेकदा ।
यत्र साधारणमदश्चालनं कथितं तदा ॥८१६॥ 823

यदि दोनों हाथ कमर पर तिरछे चलाये जायँ और उसके बाद भीतर अथवा बाहर एक बार मण्डलाकार में घुमाये जायँ, तो उसको **साधारण** चालन कहते हैं।

**३४. उरभ्रकसम्बाध**

स्वस्तिकाकृतितां नीत्वा निष्क्रान्तौ बहिरेव चेत् ।

करो निवृत्तौ वेगेन मिथः सांमुख्यधारिणौ । 824
यत्रोरभ्रकसम्बाधचालनं तत् तदेरितम् ॥८१७॥

यदि दोनों हाथों को स्वस्तिकाकार बनाकर बाहर ही निकाला जाय और फिर एक-दूसरे के आमने-सामने करके वेग से हटा दिया जाय, तो उसको **उरभ्रकसम्बाध** चालन कहते हैं ।

३५. **मणिबन्धगतागत**

मणिबन्धे यदैकस्य करो विलुठितोऽपरः । 825
बहिर्मण्डलगः स्थित्वा तथान्तर्मण्डलैस्तदा ।
यस्मिन् प्रवर्तते तत् स्यान् मणिबन्धगतागतम् ॥८१८॥ 826

जब एक हाथ की कलाई पर दूसरा हाथ लोटा दिया जाता है और फिर उसको बाहर के गोल घेरे में रखकर भीतर के गोल घेरे में कर दिया जाता है, तब उसे **मणिबन्धगतागत** चालन कहते हैं ।

३६. **तार्क्ष्यपक्षविनोदक**

वर्तनास्वस्तिकीभूय विधुतौ युगपत् करौ ।
पार्श्वयोर्लोडितौ प्रोक्तौ तार्क्ष्यपक्षविनोदकम् ॥८१९॥ 827

यदि दोनों हाथों को वर्तनास्वस्तिक चालन बनाकर एक साथ कम्पित किया जाय और फिर दोनों पार्श्वों में संचालित किया जाय, तो उसे **तार्क्ष्यपक्षविनोदक** चालन कहते हैं ।

३७. **धनुर्वल्लीविनामक**

कृत्वोर्ध्वाधोमुखौ हस्तौ विलासात् क्रमतो यदि ।
मण्डलाकृतिसम्भ्रान्तौ ततस्तावेव पूर्ववत् ॥८२०॥ 828
शीर्षदेशे कटीदेशे पार्श्वयोर्नतिसंयुतौ ।
स्यातां यत्र तदा तत् स्याद् धनुर्वल्लीविनामकम् ॥८२१॥ 829

यदि दोनों हाथों को हाव-भावपूर्वक क्रमशः ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख करके मण्डलाकार में घुमाया जाय और फिर उन्हीं को पूर्ववत् सिर पर, कमर पर तथा पार्श्वों में झुकाकर अवस्थित किया जाय, तो उसे **धनुर्वल्लीविनामक** चालन कहते हैं ।

३८. **तिर्यक्ताण्डव**

पूर्वमूर्ध्वं विधायैकं तिर्यग् नाभिप्रदेशगम् ।

अपरं करमारच्य तिर्यक् पार्श्वान्तरं गतम् । 830
जायते या क्रिया तत् स्यात् तिर्यक्ताण्डवचालनम् ॥८२२॥

पहले एक हाथ को नाभिप्रदेश में तिरछा करके ऊर्ध्वमुख किया जाय; फिर दूसरे हाथ को दूसरे पार्श्व में तिरछा किया जाय, तो ऐसी क्रिया को तिर्यक्ताण्डव चालन कहते हैं ।

३९. व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक

यत्र पार्श्वमुखौ पूर्वं निःसृतौ त्वरया करौ । 831
तीक्ष्णकूर्परकौ स्यातां श्लिष्टपूर्वमुखौ ततः ।
धराभिमुखता तत् स्याद् व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तकम् ॥८२३॥ 832

जहाँ दोनों हाथ पार्श्व की ओर मुँह करके शीघ्रता से निकलें; फिर तीक्ष्ण कुहनी वाले दोनों के मुख सट जाँय; पश्चात् वे पृथ्वी की ओर अभिमुख हों; तो ऐसी क्रिया को व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक चालन कहते हैं ।

४०. कररेचितरत्न

पार्श्वयोः प्रथमं यात्वा विदिश्यपि ततोऽनु च ।
संयतस्वस्तिकौ स्यातां कटिमूर्ध्वंगतौ मिथः ॥८२४॥ 833
बालव्यजनचालाख्यक्रियां प्राग्वत्समाश्रितौ ।
वर्तनास्वस्तिकं कृत्वा ततो भूतलसम्मुखौ ॥८२५॥ 834
उद्गतौ मण्डलाकारं स्वस्तिकौ पतितावधः ।
विधायैकं नितम्बाख्यमपरं रथचक्रवत् ॥८२६॥ 835
भ्रामयित्वा विलासेन कर्मणान्दोलनेन च ।
सरलोत्सारितोद्वेष्टप्रसारितविनम्रकैः ॥८२७॥ 836
अंसान्ते लुठितौ स्वैरमेकैकं मण्डलोर्ध्वगौ ।
निर्गताभिमुखौ स्यातां भुजौ पर्यायतो यदि ॥८२८॥ 837
पतितोत्पतितौ शीर्षात् कटिक्षेत्रावसानकम् ।
पश्चात् स्वस्तिकबन्धेन रमणीयेषु केष्वपि ॥८२९॥ 838
द्रुतं तत्र प्रदेशेषु वामदक्षिणघूर्णितौ ।
अन्तर्बहिश्चक्रचरौ सविलासौ ततः परम् ॥८३०॥ 839

कूर्परस्वस्तिकेन स्तः पराङ्मुखविलोडितौ ।
अथवा द्रुतमानेन केवलं सरलत्वतः ॥८३१॥ 840
वामदक्षिणयोः पश्चात्त्रिकावधि विलोडितौ ।
एकैकमथवा नेत्रसुखदौ स्वस्तिकौ करौ ॥८३२॥ 841
यत्रोर्ध्वाधोमुखौ तिर्यग्गतौ तत्कथितं तदा ।
कररेचितरत्नाख्यं लक्ष्मलक्षणवेदिभिः ॥८३३॥ 842

पहले दोनों हाथ पाँजरों पर जायँ; उसके बाद दो दिशाओं के बीच में स्वस्तिक मुद्रा में बद्ध हों; फिर परस्पर ऊपर को जाकर कटि का आश्रय ग्रहण करें; अनन्तर **बालव्यंजन** नामक चालन क्रिया का पूर्ववत् आश्रय लें; फिर **वर्तनास्वस्तिक** नामक चालन-क्रिया करके भूमि के संमुख होकर मण्डलाकार में ऊपर उठें और स्वस्तिकाकार में नीचे गिरें; तत्पश्चात् एक हाथ को नितम्ब हस्त बनाया जाय और दूसरे को रथ के पहिये की तरह घुमाकर हाव-भाव के साथ आन्दोलित किया जाय; सीधा रखे, हटा दे, घेर दे, फैला दे, और झुका दे; उसके बाद दोनों हाथों को अथवा एक-एक को कन्धे के अन्त में लोटाया जाय; फिर दोनों भुजाओं को मण्डलाकार में ऊपर उठा कर एक-दूसरे के आमने-सामने करके सिर से कटिक्षेत्र के अन्त तक बारी-बारी से गिराया जाय, और उठाया जाय; पश्चात् स्वस्तिक मुद्रा में बाँधकर रमणीय प्रदेशों में बायें-दायें क्रम से शीघ्रता के साथ घुमाया जाय; उसके बाद हाव-भाव के साथ भीतर-बाहर चक्र के समान चलाते हुए दोनों को स्वस्तिकाकार कुहनी से पराङमुख तथा आन्दोलित किया जाय; अथवा केवल द्रतगति से सरलतापर्वक बायें-दायें क्रम से तीन बार तक उन्हें आन्दोलित किया जाय; फिर एक-एक अथवा दोनों नेत्रसुखदायी स्वस्तिकाकार हाथों को ऊर्ध्वमुख, अधोमुख तथा तिरछा करके अवस्थित किया जाय । इन्हीं उपर्युक्त क्रियाओं को लक्ष्य-लक्षण के विशेषज्ञों ने **कररेचितरत्न** चालन कहा है ।

रमणीयमिदं यत्र प्रायेण ज्ञैः प्रयुज्यते ।
तत्र सिद्धास्तथासिद्धा देवाश्च मुनिभिः सह ॥८३४॥ 843
सदा तिष्ठन्ति सुप्रीतास्तथा विद्याधरादयः ।
ग्रन्थविस्तरतो नातिविस्तरः कथितो मया ॥८३५॥ 844

जहाँ विज्ञ पुरुषों द्वारा इस समणीय चालन का प्रयोग किया जाता है वहाँ सिद्ध, असिद्ध, देवता, मुनि तथा विद्याधर आदि सदा प्रेमपूर्वक उपस्थित रहते हैं। ग्रन्थ-विस्तार के भय से मैंने इसको अधिक विस्तार से नहीं बताया ।

४१. मण्डलाभरण

अभ्यन्तरप्रवेशेन परिभ्राम्य तु चक्रवत् ।
पश्चाद् विलोड्य दोलावत् क्रियया पार्श्वयोर्यदा । 845
प्रातिलोम्येन यद्वेदं मण्डलाकरणं तदा ॥८३६॥

जब दोनों हाथ भीतर प्रवेश के साथ चक्र की तरह घूमकर दोनों पार्श्वों में डोले की तरह झूलें अथवा विपरीत भाव से उक्त क्रियाएँ हों, तो उसे **मण्डलाभरण** चालन कहते हैं ।

४२. अष्टबन्धविहार

बामदक्षिणपाश्चात्य [पु] रोदेशेषु सर्वतः । 846
मण्डलस्वस्तिकौ यात्वा क्रमेण सविलासकौ ॥८३७॥
दिशास्वष्टासु चेद्धस्तौ लुठितौ यत्र तत्तदा । 847
अष्टबन्धविहाराख्यमादिष्टं नृत्तकोविदैः ॥८३८॥

जब मण्डल और स्वस्तिक का आकार धारण किये हुए दोनों हाथ क्रमशः विलासपूर्वक बायें, दायें, पीछे और आगे सब ओर आठों दिशाओं में जाकर लोटते हैं, तब नृत्य के विद्वानों ने उसे **अष्टबन्धविहार** चालन कहा है ।

४३. शरसन्धानक

पराङ्मुखे लुठत्येककरे सति विलासतः । 848
परः करो मूर्धदेशपर्यन्तं चेद् गतागतः ॥८३९॥
पुनस्तन्मुख एव स्याच्छरसन्धानकं तदा ॥८४०॥ 849

जब एक हाथ पराङ्मुख होकर हाव-भाव के साथ लोटता है और दूसरा हाथ सिर तक जाता-आता हुआ पुनः उसी के सम्मुख रहता है, तब उसे **शरसन्धानक** चालन कहते हैं ।

४४. पर्यायगजदन्तक

लुठत्येककरो तिर्यगथान्यस्तु प्रसारितः ।
पर्यायाद् यत्र तत् प्रोक्तं पर्यायगजदन्तकम् ॥८४१॥ 850

जहाँ बारी-बारी से एक हाथ तिरछा होकर लोटता है और दूसरा फैलता है, वहाँ उसे **पर्यायगजदन्तक** चालन कहते हैं ।

४५. अंसपर्यायनिर्गत

बध्वा तु स्वस्तिकं पूर्वं कलाससमये यदा ।
निर्गतावंसदेशाच्च पर्यायात् कटिदेशगौ । 851
करौ यत्र तदोक्तं तदंसपर्यायनिर्गतम् ॥८४२॥

जब कलास नामक बाजा के बजने के समय दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में बाँधकर कन्धे के प्रदेश से निकाल कर बारी-बारी से कमर के प्रदेश में पहुँचा दिया जाता है, तब उसे **अंसपर्यायनिर्गत** चालन कहते हैं ।

४६. स्वस्तिकत्रिकोण

विधाय स्वस्तिकौ पाश्चादाकुञ्च्य पुनरूर्ध्वगौ । 852
वामांसक्षेत्रपर्यन्तं करौ यदि गतौ तदा ।
तत् स्वस्तिकत्रिकोणाख्यमवदन् पूर्वसूरयः ॥८४३॥ 853

जब दोनों हाथों को स्वस्तिकाकार बनाकर पश्चात् सिकोड़ कर पुनः कन्धे के क्षेत्र तक ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है, तब पूर्वाचार्यों ने उसे **स्वस्तिकत्रिकोण** चालन कहा है ।

४७. रथनेमिसम

आदिमध्यावसानेषु दधतौ स्वस्तिकाकृती ।
रथचक्रकृती तिर्यगेकदा क्रमतोऽथवा । 854
हस्तौ विलुठितौ यत्र रथनेमिसमं विदुः ॥८४४॥

जब दोनों हाथ आदि, मध्य और अवसान में एक साथ या क्रमशः स्वस्तिक का आकार तथा रथ के पहिए का आकार धारण करके लोटते हैं, तब उसे **रथनेमिसम** चालन कहते हैं ।

४८. लतावेष्टित

अन्तर्बहिः करावूर्ध्वं वलित्वोद्वेष्टितौ यदि । 855
पार्श्वयोः क्रमतस्तत्र तिर्यग् लुठति चैकके ।
लुठितोऽन्यः करो यत्र तल्लतावेष्टितं तदा ॥८४५॥ 856

जब दोनों हाथ भीतर, बाहर तथा ऊपर वक्र गति से जाकर चारों ओर से घिर जायँ और दोनों पार्श्वों में दोनों हाथ लोटने लगें, तो उसे **लतावेष्टित** चालन कहते हैं ।

४९. कर्णयुग्मप्रकीर्ण

उपकर्णं यदा तिर्यग्लुठितौ क्रमतः करौ ।
निजे पार्श्वे पुरोदेशपर्यन्तं यत्र तत्तदा । 857
कर्णयुग्मप्रकीर्णाख्यं चालकं कथितं बुधैः ॥८४६॥

जब दोनों हाथ तिरछे होकर कानों के समीप, अपने पार्श्व में और अग्रभाग में क्रमशः लोटते हैं, तब विद्वानों ने उसे **कर्णयुग्मप्रकीर्ण** चालन कहा है ।

५०. नवरत्नमुख

विश्लिष्ट[1] वर्तिताद्यैश्च नवभिर्दशभिश्च वा । 858
उक्तैः संसर्गरूपेण रचितैश्चालकैर्यदि ॥८४७॥
आकेशबन्धमुत्क्षिप्तैः पश्चात्स्वस्तिकतां गतैः । 859
ततोऽन्याङ्गपरावृत्तौ धरासम्मुखतां गतौ ॥८४८॥
मण्डलाकारसम्प्राप्तौ तिरश्चीनौ ततः परम् । 860
आविद्धावपविद्धौ च युगपत् क्रमतोऽथवा ॥३४६॥
तत्कालार्हक्रियायोग्यौ तदान्दोलनसंयुतौ । 861
करावेवं यत्र तत् स्यान्नवरत्नमुखं तदा ॥८५०॥

उक्त नौ या दस अलग-अलग वर्तनाओं के सम्पर्क से बनाये हुए, जूड़े तक उछाले हुए और पश्चात् स्वस्तिक मुद्रा को प्राप्त किये हुए चालनों से दोनों हाथों को अन्य अंगों पर घुमाकर पृथ्वी के सम्मुख किया जाय; फिर तिरछा करके मोड़ दिया जाय और दूर फेंक दिया जाय; अनन्तर एक साथ या क्रमशः तत्कालोचित क्रिया के योग्य आन्दोलन से युक्त किया जाय; अर्थात् हिलाया-डुलाया जाय । ऐसी क्रिया को **नवरत्नमुख** चालन कहते हैं ।

मतान्तर से अन्य भेद

दिग्वर्षाख्यमनङ्गाङ्गमोटनं तोरणाभिधम् । 862
अनङ्गोद्दीपनं चाथ तथा मुरजकर्तरी ।
पञ्चेति चालकानि स्युरधिकानि मतान्तरे ॥८५१॥ 863

१. देखिए : 'वर्णिता' भरतकोश, पृ० ८६४.

दूसरे मत से चालनों के पाँच भेद और अधिक हैं : १. दिग्वर्ष, २. अनंगांगमोटन, ३. तोरण, ४. अनंगोद्दीपन और ५. मुरजकर्तरी ।

१. दिग्वर्ष

पुरस्तात्पार्श्वयोस्तिर्यगूर्ध्वं पश्चाच्च लोडितः ।
करो यत्र तदुद्दिष्टं दिग्वर्षाभिधचालनम् ॥८५२॥ 864

जहाँ आगे, दोनों पार्श्वों में, तिरछे, ऊपर और पीछे हाथ चलाया जाता है, वहाँ **दिग्वर्ष** नामक चालन होता है।

२. अनंगांगमोटन

यदा मण्डलतो हस्तौ लुठित्वा स्कन्धदेशयोः ।
तद्वद् यत्र शिरःक्षेत्रे नयनानन्ददायकैः । 865
लोडितौ तदनङ्गाङ्गमोटनं कीर्तितं तदा ॥८५३॥

जब दोनों हाथ मण्डल बनाकर दोनों कन्धों पर लोटें और उसी तरह नेत्रानन्ददायक हाव-भावों से वे शिर पर लौटें तो उसे **अनंगांगमोटन** चालन कहते हैं ।

३. तोरण

पुरस्तात्स्वस्तिकौ भूत्वा ततो विच्युतितां गतौ । 866
पार्श्वयोर्लोडनैः प्राप्य पुनः स्वस्तिकबन्धनौ ॥८५४॥
स्थित्वा शीर्षोपरि करौ ततस्तौ वियुतौ पुरः । 867
लोडितौ यत्र तत् प्रोक्तं चालकं तोरणाभिधम् ॥८५५॥

पहले दोनों हाथों को स्वस्तिकाकार बनाया जाय; तदनन्तर अलग-अलग करके दोनों पार्श्वों में हिलाया-डुलाया जाय; फिर स्वस्तिक मुद्रा में बाँधकर सिर के ऊपर रख दिया जाय; तत्पश्चात् अलग-अलग करके चलाया जाय। इसी को **तोरण** नामक चालक (चालन) कहते हैं ।

४. अनंगोद्दीपन

विलोड्योरःस्थले हस्तौ क्रमादादत्तमण्डलौ । 868
विलासेनांसपर्यन्तं गत्वाभ्यन्तरमागतौ ॥८५६॥
उद्वेष्टितक्रियापूर्वं यत्राधोवदनौ यदा । 869
विद्वद्भिस्तत्समादिष्टमनङ्गोद्दीपनं तदा ॥८५७॥

वक्षःस्थल पर दोनों हाथों को क्रमशः हिलाकर मण्डलाकार बना दिया जाय; फिर हाव-भावपूर्वक उन्हें कन्धे तक ले जाकर भीतर कर लिया जाय; अनन्तर चारों ओर से घुमाकर उन्हें अधोमुख किया जाय। इस क्रिया को विद्वानों ने **अनंगोद्दीपन** चालन कहा है।

५. मुरजकर्तरी

**अंसावधि स्तनक्षेत्राद् भ्रान्त्वा मण्डलवृत्तितः ।** 870
**ततो वक्षःस्थलं प्राप्तौ मुहुर्निक्षिप्य पार्श्वतः ।।८५८।।**
**अधस्तत्र व्रजत्येको द्वितीयो मण्डलभ्रमः ।** 871
**विलोडितो यदा पश्चादुभौ हस्तौ कटिस्थितौ ।**
**अन्योन्याभिमुखौ भ्रान्तौ तदा मुरजकर्तरी ।।८५९।।** 872

दोनों हाथों को स्तनप्रदेश से लेकर कन्धे तक मण्डलाकार में घुमाकर वक्षःस्थल पर ले आया जाय; उनमें से एक हाथ को बगल से बार-बार फेंक कर नीचे किया जाय और दूसरे को मण्डलाकार में घुमाकर कम्पित किया जाय; पश्चात् दोनों हाथों को कटि पर रखकर एक-दूसरे के सामने-सामने कर दिया जाय। ऐसी क्रिया को **मुरजकर्तरी** चालन कहते हैं।

**अमी नृत्तस्य तु प्राणाश्चालकाः सुमनोहराः ।**
**प्रायो वाद्यप्रबन्धेषु प्रयुज्यन्ते विचक्षणैः ।।८६०।।** 873

वे सुन्दर चालक ( चालन ) नृत्य के प्राण हैं। विद्वान् लोग बहुधा वाद्य-प्रबन्धों में (अर्थात् वाद्यों के साथ) इनका प्रयोग करते हैं।

**भूरिनिर्भुजचेष्टाभिः सम्भवन्तोऽप्यनेकशः ।**
**अमी केचित् समासेन दृष्टान्तार्थं मयोदिताः ।।८६१।।** 874
**अनयैव दिशा ज्ञेयाः सद्भिरन्येऽपि चालकाः ।**
**ग्रन्थविस्तारसंत्रासान्नातिविस्तर ईरितः ।।८६२।।** 875

बिना भुजा की अनेक चेष्टाओं द्वारा अनेकानेक चालनों की संभावना होने पर भी मैंने संक्षेप में कुछ चालन बताये हैं। इसी रीति से सज्जन लोग अन्य चालनों का भी ज्ञान कर लें। ग्रन्थ-विस्तार के भय से बहुत विस्तार में चालनों पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

समवेत रूप में पचपन चालकों का निरूपण समाप्त

# स्थानक प्रकरण / नौ

# स्थानकों का निरूपण

**स्थानक (खड़े होने का ढंग)**

रङ्गं प्रविश्य यैः स्थित्वा चार्यादी रचयेत्क्रियाः ।
नर्तको यत्नतस्तावत्स्थानान्येतान्यहं ब्रुवे ।।८६३।। 876

नर्तक या अभिनेता रंगमंच पर प्रवेश कर जिनके द्वारा चारी (पाद-चेष्ठा-विशेष) आदि क्रियाओं को सम्पन्न करे उन स्थानों का निरूपण किया जा हा है ।

भावार्थे तिष्ठतेर्धातोरायाते प्रत्यये ल्युटि ।
स्थाने सिद्धे ततः पश्चात् स्वार्थे कप्रत्यये सति । 877
स्थानकं साधितं तस्य लक्षणं प्रतिपादये ।।८६४।।

**स्था** धातु से भाव अर्थ में **ल्युट्** प्रत्यय होने पर **स्थान** शब्द निष्पन्न होता है । फिर उससे स्वार्थ में **क** प्रत्यय होने पर **स्थानक** शब्द की सिद्धि होती है । अब उसका (स्थानक का) निरूपण किया जाता है ।

निश्चलात्माङ्गविन्यासविशेषात् स्थानकं मतम् ।।८६५।। 878

अंगों को निश्चल करके अवस्थित होने की क्रियाविशेष से स्थानक की रचना होती है ।

**पुरुष स्थानक के भेद**

वैष्णवं समपादं च तथा वैशाखमण्डले ।
आलीढं च तथा प्रत्यालीढं स्थानानि पुंसि षट् ।।८६६।। 879

पुरुष के छह स्थानक होते हैं : १. वैष्णव, २. समपाद, ३. वैशाख, ४. मण्डल, ५. आलीढ़ और ६. प्रत्यालीढ़ ।

**स्त्रियों के स्थानक के भेद**

आयताख्यावहित्थाख्ये तथाश्वक्रान्तसंज्ञकम् ।
स्त्रीणां त्रीणि स्युरेतानि स्थानानीति मुनेर्मतम् ।।८६७।। 880

भरत मुनि के मत से स्त्रियों के तीन स्थानक होते हैं : १. आयत, २. अवहित्थ और ३. अश्वक्रान्त ।

अन्य स्थानक के भेद

अथापि चेति स्वग्रन्थे भणन्नन्यान्यसूचयत् ।
मुनिस्तु यानि चत्वारि तानि स्थानान्यहं ब्रुवे । 881
गतागतं च बलितं मोटितं विनिर्वर्तितम् ॥८६८॥
अत्रैव केचिदिच्छन्ति पञ्चमं प्रोन्नताभिधम् ॥८६९॥ 882

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में जिन अन्य चार स्थानकों की सूचना दी है, उनको-भी यहाँ बताया जा रहा है। उनके नाम हैं : १. गतागत, २. बलित, ३. मोटित और ४. विनिर्वर्तित । किसी के मत से ५. प्रोन्नत पाँचवाँ स्थानक होता है ।

देशी स्थानक के भेद

त्रयोविंशतिमाचक्षे देशीस्थस्थानकान्यहम् ।
समपादं स्वस्तिकं च संहतं वर्धमानकम् ॥८७०॥ 883
नन्द्यावर्तं चैकपादं चतुरस्राभिधं तथा ।
पृष्ठोत्तानतलं पार्ष्णिविद्धं सूचि समाद्यपि ॥८७१॥ 884
विषमादि च खण्डाद्यं पर्ष्णिपार्श्वगतं तथा ।
एकपार्श्वगताख्यं च परावृत्ताभिधं तथा ॥८७२॥ 885
एकजानु[नताख्यं च ब्राह्मं वैष्ण]वमित्यपि ।
कूर्मासनं गारुडं च वृषभासनमित्यपि ॥८७३॥ 886
नागबन्धम्–

देशीस्थ स्थानकों के तेईस भेदों के नाम इस प्रकार है : १. समपाद, २. स्वस्तिक, ३. संहत, ४. वर्धमानक, ५. नन्द्यावर्त, ६. एकपाद, ७. चतुरस्र, ८. पृष्ठोत्तानतल, ९. पार्ष्णिविद्ध, १०. समसूचि, ११. विषमसूचि, १२. खण्डसूचि, १३. पार्ष्णिपार्श्वगत, १४. एकपार्श्वगत, १५. परावृत्त, १६. एकजानुनत, १७. ब्राह्म, १८. वैष्णव. १९. शैव, २०. कूर्मासन, २१. गारुड, २२. वृषभासन और २३. नागबन्ध ।

उपविष्ट स्थानक के भेद

–अथ स्वस्थं स्थानमन्यन्मदालसम् ।
विष्कम्भं च तथा क्रान्त[मुत्कटं] मुक्तजानु च ॥८७४॥ 887

विमुक्तकं जानुगतमथ स्वस्थालसाभिधम् ।
नवोप [विष्टस्था]नानि प्राहेति भरतो मुनिः ॥८७५॥ 888

भरत मुनि ने बैठने के नौ स्थान बताये हैं : १. स्वस्थ, २. मदालस, ३. विष्कम्भ, ४. क्रान्त, ५. उत्कट, ६. मुक्तजानु, ७. विमुक्तक, ८. जानुगत और ९. स्वस्थालस ।

सुप्त स्थानक

समं नताकुञ्चिते च प्रसारितविवर्तिते ।
[उद्वा]हित तथा सुप्तस्थानकानि भवन्ति षट् ॥८७६॥ 889

सुप्त स्नानकों के छह भेद होते हैं : १. सम, २. नत, ३. आकुञ्चित, ४. प्रसारित, ५. विवर्तित और ६. उद्वाहित ।

स्थानकों की सम्पूर्ण संख्या

अथ स्थानानि षट् पुंसामष्टान्यान्यपि योषिताम् ।
त्रयोविंशतिरन्यानि देशीस्थान्यासने नव ॥८७७॥ 890
स्थानान्यथ तथा सुप्तस्थानान्येतानि षट्विधा ।
द्वापञ्चाशदिमानीति मिलितान्येव तान्यपि । 891

पुरुषों के छह स्थानक हैं; स्त्रियों के स्थानक आठ; देशी स्थानक तेईस; आसन स्थानक नौ और सुप्तस्थानक छह हैं । ये सब कुल मिलाकर बावन होते हैं ।

विनियोग

अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म सर्वेषां ब्रूमहेऽधुना ॥८७८॥

अब क्रमशः उन सबके लक्षण-विनियोग बताये जा रहे हैं ।

छह पुरुष स्थानक (१)

१. वैष्णव और उसका विनियोग

समस्थितोऽङ्घ्रिरेकोऽन्यस्त्र्यस्त्रः पक्षस्थितोऽथ वा । 892
तालौ द्वावर्धतालश्च तयोरन्तरमीरितम् ॥८७९॥
जङ्घा मनाग् नता तु स्यात्सौष्ठवं यत्र तत्तदा । 893
वैष्णवं स्थानकं प्रोक्तं विष्णुरस्याधिदैवतम् ॥८८०॥

जब एक पैर समभाव में (सीधा) स्थित और दूसरा त्र्यस्र या पक्षस्थित हो; दोनों में ढाई ताल का अन्तर हो; और जंघा सौष्ठवता के साथ कुछ झुकी हो, तो उसे **वैष्णव स्थानक** कहते हैं। इस स्थान के अधिष्ठाता देवता विष्णु हैं।

नानाकार्यान्तिरोपेतं संलापे तु स्वभावजे । 894
पुम्भिर्नियुज्यतेत्वेतदुत्तमैर्मध्यमैरपि ।
इत्याह मुनिरन्ये तु विष्णुवेषानुकारिणा ॥८८१॥ 895
नटेनेत्यवदन्नृत्ये नाचस्थितिविधायिना ।
[सू]त्रधारादिनेत्याहुः —

भरत मुनि का कहना है कि स्वाभाविक बातचीत और उत्तम तथा मध्यम पुरुषों द्वारा नाना प्रकार के कार्यों का भाव प्रकट करने में **वैष्णव स्थानक** का विनियोग होता है। अन्य आचार्यों का कहना है कि विष्णु का स्वरूप बनाये हुए नट को इसका प्रयोग करना चाहिए। दूसरे आचार्यों का अभिमत है कि अभिनय में नाट्य की स्थिति का विधान करने वाले सूत्रधार आदि को इसका उपयोग करना चाहिए।

—अथ पक्षस्थितस्त्वसौ ॥८८२॥ 896
यो भवेच्चरणः पार्श्वमुखाङ्गुल्या[भिमुख्य]भाक् ।
स एव चेत्पुरोदेशे गतोऽभिमुखतां तदा ॥८८३॥ 897
त्र्यस्रः स्यादथ हस्तस्याङ्गुल्यावङ्गुष्ठमध्यमे ।
प्रसारिते तु ये स्यातामन्तरालं तदग्रयोः ॥८८४॥ 898
तालमत्र समाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणी ।

**पक्षस्थित चरण** वह कहलाता है, जिसके सम्मुख बगल की ओर उँगलियाँ उन्मुख हों। वही चरण यदि अग्रभाग में सम्मुख होने का भाव प्रकट करे, तो वह **त्र्यस्र** कहलाता है। हाथ की उँगलियों में से अँगुष्ठ और मध्यमा उँगलियों को फैलाने पर उन दोनों के अग्र भागों की जो दूरी होती है, उसे महाराज अशोकमल्ल ने **ताल** कहा है।

शिरोंसकूर्परं तुल्यं यत्र जानुसमा कटी ॥८८५॥ 899
समुन्नतमुरः सन्नमङ्गं तत्सौष्ठवं मतम् ।
स्वस्थाननिर्गतं सन्नं निषण्णं निश्चलं स्थितम् ॥८८६॥ 900

जहाँ सिर, कन्धे और कुहनी बराबर (समभाव में स्थित) हों; कटि उन के समान (समभाव में स्थित) हो;

वक्षःस्थल उन्नत हो; और अन्य अंग सन्न हों, उसे **सौष्ठव** कहते हैं। अपने स्थान से (स्वाभाविक रूप में) निर्गत अंग को **सन्न** और निश्चल को **निषण्ण** कहते हैं।

**अनत्युच्चं चलन्पादमकुब्जकमचञ्चलम् ।**
**अङ्गमिष्टं सौष्ठवेन योज्यमुत्त [ममध्य] मैः ॥८८७॥** 901

जो बहुत ऊँचा न हो, जिसके पैर चल रहे हों और जो कुबड़ा तथा चंचल न हो, ऐसे सुरुचिकर शरीर को उत्तम तथा मध्यम श्रेणी के नर्तकों को सौष्ठव से युक्त करना चाहिए।

**स्थानकं वैष्णवं त्वेतच्चतुरस्रस्य जीवनम् ॥८८८॥**

यह **वैष्णव स्थानक** चतुरस्र का जीवन है।

**स्थानकं वैष्णवं यत्र कटीनाभिगतौ करौ ।** 902
**क्रमतो युगपद्वाथ वक्षश्चैव समुन्नतम् ।**
**चतुरस्रं तदाचष्ट वीरसिंहात्मजः सुधीः ॥८८९॥** 903

जहाँ दोनों हाथ एक साथ या क्रमशः कटि और नाभि पर पहुँचें तथा वक्षःस्थल अत्यन्त उन्नत हो उस वैष्णव स्थानक को विद्वान् अशोकमल्ल ने **चतुरस्र** कहा है।

**२. समपाद और उसका विनियोग**

**एकतालान्तरौ पादौ समौ सौष्ठवसंयुतौ ।**
**यत्रैतत् समपादाख्यं स्थानकं ब्रह्मदैवतम् ॥८९०॥** 904

जहाँ एक ताल के अन्तर पर दोनों पैर समान रूप से सौष्ठव के साथ युक्त हों, वहाँ **समपाद स्थानक** होता है। उसका अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा हैं।

**एतद् द्विजातिदत्ताशीरङ्गीकारेऽथ दर्शने ।**
**पक्षिणां वरवध्वोश्च तथा लिङ्गिव्रतिष्वपि ।** 905
**स्यन्दनस्थे विमानस्थे नियोज्यं नृत्तपण्डितैः ॥८९१॥**

ब्राह्मणों द्वारा दिये गये आशीर्वाद के स्वीकार, दर्शन, पक्षियों के निरूपण, वर-वधुओं, ब्रह्मचारी, व्रती (संन्यासी), रथारूढ़ और विमानारूढ़ के अभिनय में इस आसन का विनियोग होता है।

**३. वैशाख और उसका विनियोग**

**त्र्यस्रपक्षस्थितौ पादौ सार्धतालत्रयान्तरौ ।** 906

निषण्णौ तु नभस्यूरू यत्रोर्ध्वं तावदन्तरौ ॥८६२॥ 907
भुवो विशाखदैवं तद्वैशाखं स्थानकं मतम् ।

जहाँ दोनों पैर त्र्यस्र तथा पक्षस्थित हों; दोनों में साढ़े तीन ताल का अन्तर हो; और जँघाएँ आकाश में स्थित (अर्थात् भूमि से ऊपर उठी) हों, तो उसे **वैशाख स्थानक** कहते हैं। उसका अधिष्ठाता देवता विशाख (स्कन्द) हैं।

प्रेरणे वाजिनामाजौ तथा रङ्गप्रवेशने । 908
वाहने वेगदाने च स्थूलपक्षिनि [री] क्षणे ॥८६३॥

घोड़ों को हाँकने या ऊपर चढ़ने, युद्ध, रंगभूमि में प्रवेश करने, वाहन, वेगवान् और स्थूल पक्षियों के निरीक्षण में उसका विनियोग होता है।

**४. मण्डल और उसका विनियोग**

त्र्यस्रौ पक्षस्थितौ पादावेकतालान्तरौ क्षितौ । 909
निषण्णौ व्योम्नि यत्रोरू सार्धतालद्वयान्तरे ॥८६४॥
कटीजानुसमौ तत् स्यान्मण्डलं शक्रदैवतम् ।

जहाँ दोनों पैर त्र्यस्र मुद्रा में पक्षस्थित हों; दोनों में एक ताल का अन्तर हो; दोनों भूमि पर अवस्थित हों; दोनों जँघाएँ ढाई ताल के अन्तर पर आकाश में स्थित हों; और कटिभाग जँघाओं के बराबर हों; तो उसे **मण्डल स्थानक** कहते हैं। उसका अधिष्ठाता देवता इन्द्र है।

प्रयोगे चापवज्रादेस्तथा वारणवाहने ॥८६५॥ 910
प्रेक्षणे गरुडादीनामेतन्मुनिरभाषत ।
चतुस्तालान्तरौ पादौ परेऽत्र प्रतिपेदिरे ॥८६६॥ 911

धनुष तथा वज्र आदि के चलाने, हाथी की सवारी और गरुड़ आदि के देखने के अभिनय में भरत मुनि ने इस आसन का विनियोग बताया है। कुछ आचार्यों के मत से दोनों पैरों में चार ताल का अन्तर होना चाहिए।

**५. आलीढ़ और उसका विनियोग**

बामो व्योम्नि निषण्णोरुर्यत्र पूर्वोक्तमानतः ।
अग्रे प्रसारितोऽङ्घ्रिश्च पञ्चतालान्तरेऽपरः ॥८६७॥ 912
त्र्यस्रौ द्वावपि चेत् तत् स्यादालीढं रुद्रदैवतम् ।

जहाँ उक्त मण्डल आसन के मान से बाँधा उरु आकाश में स्थित हो। एक (बाँया) पैर आगे फैलाया हुआ हो, दूसरा (दाहिना) पैर पाँच ताल के अन्तर पर स्थित हो, और दोनों पैर त्र्यस्र मुद्रा में हों, तो उसे **आलीढ़ स्थानक** कहते हैं। रुद्र उसके अधिष्ठाता देवता हैं।

**रोषेर्ष्याजनिते जल्पे तद्भवेदुत्तरोत्तरे ॥८९८॥** 913
**संहर्षास्फोटनादौ च मल्लानां वीरताकृते।**
**सन्धानेऽपि च शस्त्राणां.................. ॥८९९॥** 914

रोष तथा ईर्ष्या से उत्पन्न एक-दूसरे के उत्तर-प्रत्युत्तर ,पहलवानों के अत्यन्त हर्ष से ताल ठोंकने और वीरता के लिए शस्त्रों के सन्धान करने के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

६. प्रत्यालीढ़ और उसका विनियोग

**प्रत्यालीढं भवेत्स्थानमालीढाङ्गविपर्ययात्।**
**अनेन मोक्षयेच्छस्त्रमालीढस्थानसन्धितम् ॥९००॥** 915

आलीढ़ स्थानक के विपरीत **प्रत्यालीढ़ स्थानक** की रचना होती है। आलीढ़ स्थानक द्वारा निशाना लगाये हुए शस्त्र-विमोक्षण के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

## आठ स्त्री स्थानक (२)

१. आयत और उसका विनियोग

**तालान्तरे यदा वामस्त्र्यस्रोऽङ्घ्रिर्दक्षिणः समः।**
**प्रसन्नो मुखरागः स्यात्समुन्नतमुरस्तथा ॥९०१॥** 916
**समुन्नतकटिर्हस्तो दक्षिणः स्यान्नितम्बगः।**
**वामो लताकरो यत्र तदा तत् समुदीरितम् ॥९०२॥** 917
**रमात्र देवता—**

जब बायाँ पैर एक ताल की दूरी पर त्र्यस्र मुद्रा में तथा दाहिना पैर सम हो; मुखाकृति प्रसन्न हो; वक्षःस्थल तथा कटि समुन्नत हों; दाहिना हाथ नितम्बगामी तथा बायाँ हाथ लताकर मद्रा में हो, तो उसे **आयत स्थानक** कहते हैं। इस आसन की अधिष्ठातृ देवी लक्ष्मी हैं।

**—तत्स्यात्पुष्पाञ्जलिविसर्जने।**
**रङ्गावतरणारम्भे सखीप्रियतमादिभिः ॥९०३॥** 918
**आभाषणेऽभिलाषे च रोषे मानावलम्बने।**

प्रतिषेधे तथा स्त्रीणामीर्ष्यास्वङ्गुलिमोटने ॥६०४॥ 919
मौनविसर्जनगर्वगाम्भीर्यावाहनेष्वपि ।
एतच्चिकीर्षितासु स्याद् गतिष्वपि कृतास्वपि ॥६०५॥ 920

पुष्पांजलि समर्पित करने में, रंगभूमि पर उतरने के आरम्भ में, सखी तथा प्रियतम आदि से वार्तालाप करने, अभिलाष, रोष, मान करने, निषेध, स्त्रियों की ईर्ष्या, उँगली चटकाने, मौन, विसर्जन, गर्व, गंभीरता, आवाहन करने के लिए इच्छित और सम्पन्न की हुई गतियों के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

रङ्गावतरणारम्भे पुष्पाञ्जलिविसर्जने ।
स्त्रीभिरेवेति तद् योज्यं पूर्वरङ्गेऽवदन्परे ॥६०६॥ 921
नरः स्त्रियोऽथवा कुर्युरिदमेव प्रवेशने ।
यथाभिनेयं स्थानं हि प्रविष्टेष्विति केचन ॥६०७॥ 922

रंगभूमि पर उतरने के आरम्भ में, पुष्पांजलि समर्पित करने में और विघ्न-शान्ति के लिए अभिनय के आरम्भ में किये जाने वाले कृत्य नान्दी पाठ आदि में स्त्रियों को ही उसका विनियोग करना चाहिए। किन्तु अन्य आचार्यों का कहना है कि स्त्री या पुरुष, कोई भी उसका विनियोग कर सकता है। प्रवेश करने तथा प्रविष्ट होने के अभिनय में भी कुछ आचार्य उसका विनियोग बताते हैं।

आयतानन्तरं योज्या रङ्गावतरणादयः ।
यथोचितं तदा ज्ञेयाः प्रचारा हस्तपादजाः । 923
भट्टाभिनवगुप्तस्य मयैतन्मतमीरितम् ॥६०८॥

आयत स्थानक के अनन्तर रंगभूमि पर उतरने आदि की योजना करनी चाहिए। उस समय हाथ-पैर की संचालन-क्रिया को भली भाँति समझ लेना चाहिए। यह निरूपण भट्ट अभिनव गुप्त (**अभिनवभारती** टीका के रचयिता) के मत से किया गया है।

२. अवहित्थ और उसका विनियोग

एतदेवावहित्थाख्यं स्थानभङ्ग्योर्विपर्ययात् । 924
केचिद्विपश्चितोऽत्राहुर्व्यत्यासं कटिहस्तयोः ॥६०९॥

अत्राधिदेवता दुर्गा–

दोनों पैरों को विपरीत क्रम से रखने पर **अवहित्थ स्थानक** बनता है। यहाँ कोई विद्वान् कटि और हस्त में विपर्यय बताते हैं। दुर्गा इस आसन की अधिष्ठातृ देवी हैं।

–तद् रोषे विस्मयेऽपि च । 925
चिन्तालज्जावितर्केषु संलापेऽपि स्वभावजे ।।९१०।।
स्वा [ङ्ग] वलोकने स्त्रीणां निजसौभाग्यगर्वतः । 926
वीक्षणे वरमार्गस्य [लीला] लावण्ययोरपि ।
विलासस्याप्यथाकारगोपनस्यापि सूचकम् ।।९११।। 927

क्रोध, विस्मय, चिन्ता, लज्जा, वितर्क, स्वाभाविक वार्तालाप, स्त्रियों के अपने सौभाग्य के गर्व से अपने अंगों के अवलोकन करने, वर के मार्ग, लीला तथा सौन्दर्य को टकटकी (लगाकर) देखने के अभिनय में उसका विनियोग होता है। विलास तथा आकार को छिपाने के अभिनय में भी उसका प्रयोग होता है।

३. अश्वक्रान्त और उसका विनियोग

एकस्याङ्घ्रेः समस्यान्यः पार्ष्णिदेशमुपागतः ।
सूचीपादोऽथवा स्वीयपार्श्वे तालान्तरे स्थितः ।।९१२।। 928
समो यत्र तदाचष्टाश्वक्रान्तं वीरसिंहजः ।

जब एक सम पैर की एड़ी के पास दूसरा सूची पैर अवस्थित हो; अथवा एक सम पैर दूसरे पार्श्ववर्ती पैर के एक ताल के अन्तर पर स्थित हो, तो अशोकमल्ल के मत से उसे **अश्वक्रान्त स्थानक** कहते हैं।

तदश्वारोहणारम्भे ललिते विभ्रमे तथा । 929
द्रुमशाखावलम्बे च संलापेऽपि निसर्गजे ।।९१३।।
स्खलितेऽपि स्खलद्वासोधारणे गोप्यगोपने । 930
पुष्पगुच्छग्रहेऽप्येतत्सरस्वत्यस्य देवता ।।९१४।।

अश्वारोहण के आरम्भ, ललित हाव-भाव, वृक्षशाखा से लटकने, स्वाभाविक वार्तालाप, गिरने, गिरते हुए वस्त्र धारण करने, गोपनीय वस्तु को छिपाने और फूलों का गुच्छा पकड़ने के अभिनय में उसका विनियोग होता है। इस आसन की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती हैं।



११

४. गतागत

यत्राङ्घ्रिमेकमुद्धृत्य नर्तकी गमनोन्मुखी । 931
निरोधात्तु गतिस्थित्योरुदास्ते तद् गतागतम् ॥९१५॥

जहाँ नर्तकी एक पैर को उठा कर आकाश की ओर मुँह किये गति और स्थिति को रोकने से (संयमन करने से) उदासीन हो, वहाँ **गतागत स्थानक** होता है ।

५. वलित और उसका विनियोग

यत्रेषद्वलितं गात्रमङ्घ्रिर्बलितदिग्भवः । 932
कनीयस्योर्वीमाश्लिष्येत्पराङ्गुष्ठेन तां यदा ।
तदा तद् वलितं स्थानं साभिलाषनिरीक्षणे ॥९१६॥ 933

जब शरीर कुछ झुका हुआ हो; पैर बल खाया हुआ हो; और कानी उँगली (कनीय) तथा अँगूठा धरती से चिपके हुए हों, तो उसे **वलित स्थानक** कहते हैं । उत्कण्ठापूर्वक देखने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

६. मोटित

एकः पादः समोऽन्यस्तु कुञ्चितोर्ध्वतलाङ्गुलिः ।
यदा करौ कर्कटाख्यावूर्ध्वगौ मोटितं तदा ॥९१७॥ 934

जब एक समस्थित पैर की उँगलियाँ और दूसरे कुंचित पैर की उँगलियाँ ऊपर को उठी हों तथा दोनों हाथ कर्कट मुद्रा में ऊर्ध्वगामी हों, तो उसे **मोटित स्थानक** कहते हैं ।

७· विनिर्वातत

तदेवाङ्गपरावृत्त्या पृष्ठतो विनिवर्तितम् ॥९१८॥

जब पृष्ठ भाग से अंगों की अदला-बदली की जाय, तो उसे **विनिवर्तित स्थानक** कहते हैं ।

८. प्रोन्नत और उसका विनियोग

पादाग्राभ्यां समानाभ्यां तथाङ्गुलितलैः स्थितिः । 935
या कायमायतीकृत्य तत् स्थानं प्रोन्नतं मतम् ॥९१९॥

जब शरीर को लम्बा करके पैरों के समान अग्रभागों तथा अँगुलितलों पर खड़ा हुआ जाय, तो उसे **प्रोन्नत स्थानक** कहते हैं ।

नासादघ्नजले धार्ये भित्त्याद्यन्तरितेऽपि च । 936
प्रांशुग्राह्यफलादीनां ग्रहणेऽपि तदीरितम् ॥९२०॥

नाक तक (ऊपर उठे) जल, धारण करने योग्य वस्तु, दीवार आदि की ओट में होने तथा लम्बे मनुष्य द्वारा पकड़े जाने योग्य फल आदि के लेने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

## तेईस देशी स्थानक (३)

### १. समपाद

वितस्त्यन्तरितावङ्घ्री ऋजू साहजिकं वपुः । 937
तत्र तत् स्थानमादिष्टं समपादं मनीषिभिः ॥९२१॥

जहाँ दोनों पैर एक बित्ते के अन्तर पर तथा सीधे हों और शरीर स्वाभाविक स्थिति में हो, उसे मनीषियों ने **समपाद स्थानक** कहा है ।

### २. स्वस्तिक

यत्राङ्घ्री नूपुरस्थाने स्वस्तिकौ कुञ्चितौ यदा । 938
मिथो लग्नकनिष्ठौ च तत् तदा स्वस्तिकं मतम् ॥९२२॥

जब दोनों कुंचित पैर नूपुरस्थान पर स्वस्तिकाकार हों और दोनों की कानी (कनिष्ठा) उँगलियाँ परस्पर सटी हुई हों, तब उसे **स्वस्तिक स्थानक** कहते हैं ।

### ३. संहत और उसका विनियोग

स्वाभाविकं यत्र गात्रमङ्घ्र्योरङ्गुष्ठकौ यदा । 939
गुल्फावपि मिथः श्लिष्टौ तत् स्थानं संहतं तदा ।

जब शरीर स्वाभाविक स्थिति में हो और दोनों पैरों के अँगूठे तथा टखने परस्पर सटे हुए हों, तो उसे **संहत स्थानक** कहते हैं ।

एतन्नियुज्यते धीरैः पुष्पाञ्जलिविसर्जने ॥९२३॥ 940

पुष्पांजलि समर्पित करने में धीर पुरुष इस स्थानक का विनियोग बताते हैं ।

### ४. वर्धमानक

पार्ष्णिश्लिष्टौ तिरश्चीनौ पादौ स्तो वर्धमानके ॥९२४॥

जब दोनों पैर तिरछे हों और उनकी एड़ियाँ सटी हुई हों, तब उसे **वर्धमानक स्थानक** कहते हैं ।

५. नन्द्यावर्त

षडङ्गुलं यदैतस्य पादयोरन्तरं भवेत् । 941
वितस्तिमात्रं तत् स्थानं नन्द्यावर्तं [तदोदितम्] ॥६२५॥

जब वर्धमान स्थानक के पैरों में छह अँगुल या एक बित्ते का अन्तर हो, तब उसे **नन्द्यावर्त स्थानक** कहते हैं।

६. एकपाद

जानुशीर्षे बहिःपार्श्वे समपादस्य चेत्परः । 942
संश्लिष्टो बाह्यपार्श्वेन तदा स्यादेकपादकम् ॥६२६॥

जब समपाद स्थानक के घुटने के अग्रभाग में तथा बाहर पार्श्वभाग में दूसरा पैर बाहरी पार्श्वभाग से सट जाय, तो उसे **एकपाद स्थानक** कहते हैं।

७. चतुरस्र

अष्टादशाङ्गुलं यत्र पादयोरन्तरं द्वयोः । 943
नन्द्यावर्तस्य चेत्स्थानं चतुरस्रमिदं तदा ॥६२७॥

जब नन्द्यावर्त स्थानक के दोनों पैरों में अठारह अँगुल का अन्तर हो, तब उसे **चतुरस्र स्थानक** कहते हैं।

८. पृष्ठोत्तानतल

एकः पश्चाद्वराश्लिष्टाङ्गुलिपृष्ठो यदा परः । 944
समः पुरस्ताद् यत्रेदं पृष्ठोत्तानतलं तदा ॥६२८॥

जब, बिलग हुई उँगलियों वाला एक पैर पीछे रहे और दूसरा सम पैर आगे रहे, तो उसे **पष्ठोत्तानतल स्थानक** कहते हैं।

९. पार्ष्णिविद्ध

अङ्गुष्ठसंहता पार्ष्णिः पार्ष्णिविद्धे मता सताम् ॥६२९॥ 945

जब एड़ी अँगूठे से लगी रहे तो उसे **पार्ष्णिविद्ध स्थानक** कहते हैं।

१०. समसूचि

पार्ष्णिजङ्घोरुसंश्लिष्टनतौ पादौ प्रसारितौ ।
तिर्यञ्चौ तौ तदा यत्र तदा स्यात् समसूचि तत् ॥६३०॥ 946

जब तिरछे फैले हुए दोनों पैर एड़ी, जाँघ और घुटनों से सटकर झुक जायँ, तब उसे **समसूचि स्थानक** कहते हैं।

११. विषमसूचि

युगपच्चेत्सूचीपादौ यत्र प्रसारितौ पुरः ।
पश्चादपि तदा प्रोक्तं [स्थानं विषमसूचि] तत् । 947
केचित् पादौ क्षितिश्लिष्टजानुगु[ल्फौ ब]भाषिरे ॥९३१॥

यदि सूची मुद्रा में दोनों पैर एक साथ आगे या पीछे फैला दिये जायँ, तो उसे **विषमसूचि स्थानक** कहते हैं। कुछ आचार्य पृथ्वी से सटे हुए घुटने तथा टखने वाले पैरों को विषमसूचि स्थानक कहते हैं।

१२. खण्डसूचि

अत्रैकः कुञ्चितः पादः परस्तिर्यक् [प्रसारि] तः । 948
क्षितिश्लिष्टोरुपार्ष्णिश्चेत्तदोक्तं खण्डसूचि तत् ॥९३२॥

यदि एक पैर सिकुड़ा हुआ हो और दूसरा पैर तिरछा फैला हुआ हो तथा जाँघ और एड़ी पृथ्वी से सटी हुई हों, तो उसे **खण्डसूचि स्थानक** कहते हैं।

१३. पार्ष्णिपार्श्वगत

[पार्ष्णि]पार्श्वगतेऽन्यस्यान्तः पार्ष्णिः पार्श्वतो भवेत् ॥९३३॥ 949

यदि एक पैर की एड़ी दूसरे पैर के नीचे बगल में रखी जाय, तो उसे **पार्ष्णिपार्श्वगत स्थानक** कहते हैं।

१४. एकपार्श्वगत

[अग्र]तः समपादस्य मनागङ्घ्रिः परो यदा ।
तिर्यग्बहिः पार्श्वगतः एकपार्श्वगतं त[दा] ॥९३४॥ 950

जब समस्थित एक पैर के आगे दूसरा पैर कुछ तिरछा करके बाहरी बगल में रख दिया जाता है, तब उसे **एकपार्श्वगत स्थानक** कहते हैं।

१५. परावृत्त

उभौ भूत्वा तिरश्चीनौ चरणावेतयोर्यदा ।
एकस्याङ्गुष्ठको यत्र परस्य च कनिष्ठिका । 951
पार्श्वैकमिश्रिते द्वे स्तः परावृत्तमिदं तदा ॥९३५॥

जब दोनों पैर तिरछे रहें; उनमें से एक का अँगुष्ठ और दूसरे की कनिष्ठिका एक बगल से मिली रहें, तब उसे **परावृत्त स्थानक** कहते हैं।

१६. एक जानुनत

एकजानुनते त्वेकः समोऽङ्घ्रिरपरोऽन्तरे । 952
तिर्यक्कुञ्चितजानुः स्या [च्चतु] रङ्गुलसम्मिते ॥९३६॥

जब एक पैर स्वाभाविक स्थिति में हो और दूसरा पैर चार अँगुल की दूरी पर तिरछे तथा मुड़े हुए घुटने से युक्त हो, तो उसे **एकजानुनत स्थानक** कहते हैं ।

१७. ब्राह्म

ब्राह्मे समोऽङ्घ्रिरेकोऽन्यः पृष्ठतःकु[ञ्चितः] कृतः । 953
जानुसन्धिसमत्वेनोत्क्षिप्तः पादो बुधैर्मतः ॥९३७॥

यदि एक पैर स्वाभाविक स्थिति में हो दूसरे को पृष्ठभाग से मोड़ कर घुटने के जोड़ की बराबरी में ऊपर उठा दिया जाय, तो उसे **ब्राह्म स्थानक** कहते हैं ।

१८. वैष्णव

एकं [पादं] समं कृत्वा किञ्चिच्चेत्कुञ्चितोऽपरः । 954
प्रसारितः पुनस्तिर्यक् तदोक्तं वैष्णवं बुधैः ॥९३८॥

जब एक पैर को समस्थित करके दूसरे को कुछ मोड़कर पुनः तिरछा फैला दिया जाय, तब उसे विद्वान् लोग **वैष्णव स्थानक** कहते हैं ।

१९. शैव

यदा समस्य वामाङ्घ्रेर्जानुशीर्षसमः परः । 955
उत्क्षिप्तः कुञ्चितश्चैव तत् तदा शैवमीरितम् ॥९३९॥

जब दाहिना पैर समस्थित बायें पैर के घुटने के अग्रभाग के बराबर ऊपर उठा तथा मुड़ा हुआ हो, तब उसे **शैव स्थानक** कहते हैं ।

२०. कूर्मासन

स्थाने कूर्मासने जानुबाह्यगुल्फमि [लत्क्षि]तिः । 956
दक्षिणाङ्घ्रिः समो वामस्तदैवेतन्न मतं समाम् ॥९४०॥

यदि बायाँ पैर समस्थित हो और दाहिना पैर घुटने तथा टखने से मिलते हुए पृथिवी पर अवस्थित हो, तो उसे सज्जनों ने **कूर्मासन स्थानक** कहा है ।

२१. गारुड

पुरोऽङ्घ्रिः कुञ्चितो वामो[दक्षिणो जानुना]क्षितिम् । 957
स्पृशेद् यदि तदा सद्भिर्गारुडं तदुदीरितम् ।।९४१।।

जब बाँये पैर का अग्रभाग मुड़ा हो और दाहिना पैर घुटने से पृथिवी का स्पर्श करता हो, तब सज्जनों ने उसे **गारुड स्थानक** कहा है ।

२२. वृषभासन

संयुते वियुते यद्वा भूमिश्लिष्टे तु जानुनी । 958
[वृषभासनमाख्यातं सौष्ठवाधिष्ठितं तदा] ।।९४२।।

जब दोनों घुटने संयुक्त या वियुक्त हों; किन्तु भूमि से सटे हुए हों और सौष्ठव से युक्त हों, तब उसे **वृषभासन स्थानक** कहते हैं ।

२३. नागबन्ध

[दक्षिणां तु यदा जङ्घां वामोरुः पृष्ठदेशगाम् । 959
निदध्यादुपविष्टः सन् नागबन्धं तदादिशेत्] ।

यदि भूमि पर बैठे हुए स्थिति में बायें घुटने को पीठ की ओर गयी हुई दाहिनी पिंडली पर रख दिया जाय, तो उसे **नागबन्ध स्थानक** कहते हैं ।

छह सुप्तस्थानक (४)

१. सम

उत्तानास्यं स्रस्तमुक्तहस्तं सुप्तं समं भवेत् ।।९४३।। 960

यदि मुँह उत्तान और हाथ ढीला तथा खुला हुआ हो, तो उसे **समसुप्त स्थानक** कहते हैं ।

२. नत और उसका विनियोग

स्रस्तहस्तयुगं सुप्तं मनाक्प्रसृतजङ्घकम् ।
यत् तन् नतं श्रमालस्यखेदादिषु निरूपितम् ।।९४४।। 961

यदि दोनों हाथ ढीले हों और जँघा थोड़ी फैली हुई हो, तो उसे **नत सुप्त स्थानक** कहते हैं । श्रम, आलस्य तथा खेद आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

३. आकुञ्चित और उसका विनियोग

आकुञ्चत्कायमाविद्धजानु त्वाकुञ्चितं मतम् ।
शीतार्ताभिनयेऽशोकमल्लेन सुविपश्चिता ॥६४५॥ 962

जहाँ शरीर कुछ सिकुड़ा हुआ हो और घुटने मुड़े हुए हों, वहाँ **आकुञ्चित सुप्त स्थानक** होता है। विद्वान् अशोकमल्ल ने शीत-पीड़ित के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

४. प्रसारित

उपधाय यदा बाहुं सम्प्रसार्य तु जानुनी ।
सुप्यते यत्र तत् प्रोक्तं सुखसुप्ते प्रसारितम् ॥६४६॥ 963

जब बाँह को तकिया बनाकर और घुटनों को फैलाकर सुख से सोया जाय, तो उसे **प्रसारित सुप्त स्थानक** कहते हैं ।

५. विवर्तित

अधस्ताद्वदनं सुप्तं सद्भिरुक्तं विवर्तितम् ॥६४७॥

मुँह को नीचे करके सोने पर **विवर्तित सुप्त स्थानक** होता है, ऐसा सज्जनों का अभिमत है ।

६. उद्वाहित और उसका विनियोग

अंसे निधाय शीर्षं चेत्कूर्परेण धरातलम् । 964
आश्रित्य शयनं यत्र स्थानमुद्वाहितं तदा ।
लीलयावस्थितौ सद्भिर्नियोजिमहीभुजाम् ॥६४८॥ 965

जहाँ कन्धे पर सिर रखकर कुहनी से पृथ्वीतल का आश्रय लेकर शयन किया जाय, तो उसे **उद्वाहित सुप्त स्थानक** कहते हैं । राजाओं की लीलापूर्वक अवस्थिति के अभिनय में इस आसन का विनियोग होता है ।

समवेत रूप में बावन प्रकार के स्थानकों का निरूपण समाप्त ।

• •

## चारी प्रकरण / दस

## चारियों का निरूपण

**चारी (चेष्ठाकृतिविशेष भावाभिव्यंजन)**

**गत्यर्थाच्चरते[र्धातो]र्भविऽर्थे करणेऽथवा ।**
**अस्त्रीजातौ ततः ङीषि सत्ति चारीति सिध्यति ॥९४९॥** 966

गमनार्थक **चर्** धातु से भाव अथवा करण अर्थ में **अण्** प्रत्यय तथा **ङीष्** होने पर स्त्रीलिंग में **चारी** प्रयोग निष्पन्न होता है।

**या नर्तनेऽङ्घ्रिजङ्घोरुकटिना युगपत्कृतः ।**
**चेष्टाकृतिविशेषः सा चारी सद्भिरुदीरिता ॥९५०॥** 967

नृत्यकाल में पैर, जँघा, उरु और कटि द्वारा एक साथ जो चेष्ठाकृतिविशेष भावाभिव्यंजन होता है, विद्वानों ने उसे **चारी** नाम से कहा है।

**चारियों के भेद**

**व्यायच्छन्तो मिथश्चार्यो यद्यथालक्ष्म निर्मिताः ।**
**अङ्गोपेतास्ततोऽन्वर्थो व्यायामः स चतुर्विधः ॥९५१॥** 968
**चारी च करणं खण्डो मण्डलं च क्रमादिति ।**
**स्यादेकाङ्घ्रिप्रचारो यः सा चारी परिकीर्तिता ॥९५२॥** 969
**द्व्यङ्घ्रिप्रचारः करणं खण्डस्तु करणैस्त्रिभिः ।**
**खण्डैस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा मण्डलं स्यात् क्रमेण तु ॥९५३॥** 970
**त्र्यस्रे ताले सद्भिरेतच्चतुरस्रे तथोदितम् ।**

अंगों के परस्पर प्रचार-प्रसार के अनुसार चारियों की रचना होती है। इसलिए अर्थानु रूप (अन्वर्थ) उसे **व्यायाम** भी कहा जाता है, जो कि चार प्रकार का होता है : १. **चारी**, २. **करण**, ३. **खण्ड** और ४. **मण्डल**। एक पैर के संचरण को **चारी**, दोनों पैरों के संचरण को **करण**, तीन करणों के एक साथ संचरण को **खण्ड** और तीन

या चार खण्डों के एक साथ संचरण को **मण्डल** कहते हैं। त्र्यस्र, ताल और चतुरस्र परिमाण में सज्जनों ने क्रमशः उनका प्रयोग बताया है।

भूमिचारी के भेद

समपादाड्डिता बद्धा स्पन्दिता विच्यवा तथा ॥९५४॥ 971
जनितोत्सन्दिता चाषगतिरध्यर्धिका परा।
एलकाक्रीडिताख्या च शकटास्याभिधा परा ॥९५५॥ 972
उरूद्वृत्ता स्थितावर्ता चार्यपस्पन्दिता तथा।
समोत्सरितमत्तल्ली मत्तल्लीति क्रमादिमाः ॥९५६॥ 973
चार्यः षोडश भौम्य–

भूमिचारी के सोलह भेद होते है : १. समपादा, २. अड्डिता, ३. बद्धा, ४. स्पन्दिता, ५. विच्यवा, ६. जनिता, ७. उत्सन्दिता, ८. चाषगति, ९. अध्यर्धिका, १०. एलकाक्रीडिता, ११. शकटास्या, १२. उरूद्वृत्ता, १३. स्थितावर्ता, १४. अपस्पन्दिता, १५. समोत्सरितमत्तल्ली और १६. मत्तल्ली।

आकाशचारी के भेद

–स्ताकाशिकीरधुना ब्रुवे।
अतिक्रान्ता त्वपक्रान्ता भ्रमरी च मृगप्लुता ॥९५७॥ 974
पार्श्वक्रान्तोर्ध्वजानुश्च भुजङ्गत्रासिता परा।
अलाता दण्डपादा च विद्युद्भ्रान्ता च सूच्यपि ॥९५८॥ 975
दोलापादा तथोद्वृत्ताविद्धा नूपुरपादिका।
आक्षिप्ताख्येति सम्प्रोक्ता आकाशिक्यश्च षोडश ॥९५९॥ 976

अब आकाशचारियों का निरूपण किया जाता है। उनके भी सोलह प्रकार होते हैं : १. अतिक्रान्ता, २. अपक्रान्ता, ३. भ्रमरी, ४. मृगप्लुता, ५. पार्श्वक्रान्ता, ६. ऊर्ध्वजानु, ७. भुजंगत्रासिता, ८. अलाता, ९. दण्डपादा, १०. विद्युद्भ्रान्ता, ११. सूची, १२. दोलापादा, १३. उद्वृत्ता, १४. आविद्धा, १५, नूपुरपादिका और १६. आक्षिप्ता।

चार्यो भूमिलिताः माग्यों द्वात्रिंशन् मुनिसंमता।

इस प्रकार भरत मुनि के मत से दोनों चारियों के बत्तीस भेद होते हैं।

देशीचारी (भूमिगत) के भेद

अथ देशीप्रसिद्धाः यास्ताश्चारीरभिदध्महे ॥६६०॥ 977
रथचक्रा तलोद्वृत्ता मराला पार्ष्णिरेचिता ।
परावृत्ततला तिर्यङ्मुखा नूपुरविद्धिका ॥६६१॥ 978
कातरा करिहस्ता च हरिणत्रासिता परा ।
अर्धमण्डलिकाप्यूरुताडिता च मदालसा ॥६६२॥ 979
सञ्चारितोत्कुञ्चितापकुञ्चिता स्फुरिता परा ।
स्तम्भक्रीडनिका तिर्यक् कुञ्चिता तलदर्शिनी ॥६६३॥ 980
खुत्ता लङ्घितजङ्घा च स्वस्तिका च कुलीरिका ।
निकुट्टकः पुराट्यर्धपुराटी स्फुरिका ततः ॥६६४॥ 981
सारिका च लताक्षेपोऽन्याडुस्खलितिका तदा ।
ऊरुवेणी च विश्लिष्टा समस्खलितिकेत्यपि ॥६६५॥ 982
संघट्टितेत्यमूर्भौम्यः पञ्चत्रिंशदुदीरिताः ।

अब देशी नाम से प्रसिद्ध चारियों का निरूपण किया जाता है। उनके पैंतीस भेद होते हैं: १. रथचक्रा, २. तलोद्वृत्ता, ३. मराला, ४. पार्ष्णिरेचिता, ५. परावृत्ततला, ६. तिर्यङ्मुखा, ७. नूपुरविद्धिका, ८. कातरा ९. करिहस्ता, १०. हरिणत्रासिका, ११. अर्धमण्डलिका, १२. उरुताडिता, १३. मदालसा, १४. संचारिता, १५. उत्कुञ्चिता, १६. अपकुञ्चिता, १७. स्फुरिता, १८. स्तम्भक्रीडनिका, १९. तिर्यक्कुञ्चिता, २०. तलदर्शिनी, २१. खुत्ता, २२. लंघितजंघा, २३. स्वस्तिका, २४. कुलीरिका, २५. निकुट्टक, २६, पुराटिका, २७, अर्धपुराटिका, २८. स्फुरिका, २९. सारिका, ३०. लताक्षेप, ३१. अड्डस्खलितिका, ३२. ऊरुवेणी, ३३. विश्लिष्टा, ३४. समस्खलितिका और ३५. संघट्टिता।

देशीचारी (आकाशगत) के भेद

दण्डपादा पुरःक्षेपाऽपक्षेपा हरिणप्लुता ॥६६६॥ 983
विद्युद्भ्रान्ता च विक्षेपा जङ्घावर्ताङ्घ्रिताडिता ।
अलाता डमरी विद्धा जङ्घालङ्घनिका परा ॥६६७॥ 984
सूची प्रावृतमुल्लालो वेष्टनोद्वेष्टने तथा ।

उत्क्षेपश्च तथा पृष्ठोत्क्षेप एकोनविंशतिः ॥९६८॥ 985

भ्रमूराकाशिकास्ताश्च चतुष्पञ्चाशदीरिताः ।

आकाशगत देशी चारी के उन्नीस भेद होते हैं : १. **दण्डपादा**, २. **पुरःक्षेपा**, ३. **अपक्षेपा**, ४. **हरिणप्लुता**, ५. **विद्युद्भ्रान्ता**, ६. **विक्षेपा**, ७. **जंघावर्ता**, ८. **अंघ्रिताडिता**, ९. **अलाता**, १०. **डमरी**, ११. **विद्धा**, १२. **जंघालंघनिका**, १३. **सूची**, १४. **प्रावृत**, १५. **उल्लाल**, १६. **बेष्टन**, १७. **उद्वेष्टन**, १८. **उत्क्षेप** और १९. **पृष्ठोत्क्षेप** ।

उभय्योऽप्यथ सर्वास्ताः मार्गदेशीस्थिताः इमाः । 986

षडशीतिर्मताश्चार्यस्तासां लक्ष्माण्यहं ब्रुवे ॥९६९॥

दोनों भूमिगत तथा आकाशगत देशी चारियों के चौवन भेदों और भूमिचारियों तथा आकाशचारियों के बत्तीस भेदों को मिला देने से चारियों के कुल छियासी भेद होते है । अब उनके लक्षण-विनियोगों का निरूपण किया जाता है ।

## सोलह भूमिचारियाँ (१)

**१. समपादा**

अङ्घ्रोनिरन्तरौ तुल्यनखौ कृत्वा यदि स्थितः । 987

समपादस्थानकेन समपादा मता तदा ॥९७०॥

जब समपाद स्थानक के द्वारा दोनों चरणों को अव्यवहित तथा तुल्यनख करके रखा जाय (अर्थात् सटाकर इस प्रकार रखा जाय, जिससे दोनों के अग्रभाग बराबर माप में हों), तब उसे **समपादा** भूमिचारी कहते हैं ।

प्रचारयोग्यतामात्राद् यत् समाधत्त कश्चन । 988

स्थानकत्वेऽपि चारीत्वमस्यास्तत्र सतां मुदे ॥९७१॥

युक्त्यानयैवमन्येषां चारीत्वं सुवचं यतः । 989

स्थानकानामतश्चिन्त्यं समाधानं बुधैरिह ॥९७२॥

समाधत्ताशोकमल्लः संगीतविदुषांवरः । 990

समपादस्थानहेतोश्चारीत्वं चलनादिह ॥९७३॥

यहाँ आशंका होती है कि उक्त लक्षण में **स्थानक** का अर्थ स्थिरता है और **चारी** का अर्थ चलना होता है । इन विरुद्ध धर्मों का समावेश कैसे होगा ? इसका उत्तर कोई (आचार्य) सज्जनों के सन्तोषार्थ यह

कहकर देते हैं कि समपादों में चलने की योग्यता तो है, इसलिए स्थानक में भी चारीत्व है। किन्तु इस युक्ति से 'दूसरे स्थानकों में भी चारीत्व है'—ऐसा कहना आसान हो जाएगा; इसलिए विद्वानों को यहाँ समाधान ढूँढ़ना चाहिए। यहाँ संगीत के श्रेष्ठ विद्वान् अशोकमल्ल ने समाधान किया है कि बराबर परिमाण में पैरों को रखकर चलना ही **समपादा चारी** है। (इस लक्षण में कोई त्रुटि नहीं है।)

**२. अड्डिता**

समाङ्घ्रेः पुरतः पश्चादन्योऽग्रतलसञ्चरः । 991
निघृष्टोङ्घ्रिः क्रमाद् यत्र सा धीरैरड्डिता मता ॥६७४॥

जहाँ समपाद के आगे और पीछे दूसरा पैर अग्रभाग पर चले, फिर क्रमशः एक-एक पैर घसीटा जाय, तो उसे **अड्डिता** भूमिचारी कहते हैं।

**३. बद्धा**

कृत्वोर्वोश्चलनं जङ्घास्वस्तिकेन समन्वितम् । 992
स्वस्तिकेन विना चाङ्घ्रितलाग्रे मण्डलभ्रमात् ॥६७५॥
स्वं स्वं पार्श्वं गते यत्र सोक्ता बद्धेति सूरिभिः । 993
मिलिते प्रोचिरे लक्ष्यलक्ष्मणी केचिदत्र हि ॥६७६॥

जहाँ ऊरुओं के संचरण को जँघाओं की स्वस्तिकमुद्रा से युक्त करके (अथवा) बिना स्वस्तिक के भी, चरण-तल के अग्रभाग में मण्डलाकार घुमाकर अपने-अपने पार्श्व में पहुँचा दिया जाय, वहाँ विद्वानों ने उसे **बद्धा** भूमिचारी कहा है। कोई आचार्य यहाँ लक्ष्य और लक्षण को सम्मिलित रूप में बताते हैं।

**४. स्यन्दिता**

वामः समो निषण्णोरुरन्यस्तिर्यक् प्रसारितः । 994
पञ्चतालान्तरं पादो यत्र सा स्यन्दिता मता ॥६७७॥

जहाँ बायाँ पैर सम हो, ऊरु बैठा हुआ हो और दूसरा पैर पाँच तालों के अन्तर पर तिरछा फैला हुआ हो, तो उसे **स्यन्दिता** भूमिचारी कहते हैं।

**५. विच्यवा**

चरणौ समपादाया विच्युत्य क्षितिकुट्टनम् । 995
कुरुतश्चेत् तलाग्रेण सा तदा विच्यवोदिता ॥६७८॥

जब समपादा चारी के दोनों चरण अपने स्थान से हटकर अपने निचले अग्रभाग से पृथ्वी को कूटते हों, तो उसे **विच्यवा** भूमिचारी कहते हैं ।

६. जनिता

यत्र पादो भवेदग्रतल [सञ्चर] संज्ञितः । 996
हृदि मुष्टिकरोऽन्यो ग्रीवा यथाशोभं भवेद्यदि ॥६७६॥
सा तदा जनिता चारी विद्वद्भिः समुदीरिता । 997
मुख्या पादक्रिया चास्यामिति कर्तव्यता परा ॥६८०॥

जहाँ एक पैर अग्रतल पर हो, हृदय पर मुष्टि नामक हाथ हो और ग्रीवा सुशोभित हो, वहाँ विद्वानों ने उसे **जनिता** भूमिचारी कहा है । इसमें मुख्य चरण-क्रिया परम कर्तव्यता मानी गयी है ।

७. उत्सन्दिता

यत्राङ्गुल्याः कनीयस्था भागेनाङ्गुष्ठकस्य च । 998
क्रमेण रेचकस्यानुकृत्या पादो गतागतम् ॥६८१॥
विधत्ते सोत्सन्दिताख्या सद्भिश्चारी निरूपिता । 999
केचिन्नृत्तकरं ह्यत्र रेचितं सम्बभाषिरे ॥६८२॥

जहाँ कानी उँगली तथा अँगूठे के एक भाग से क्रमशः रेचक के अनुकरण द्वारा पैर बाहर-भीतर आता-जाता है, उसे विद्वानों ने **उत्सन्दिता** भूमिचारी कहा है । यहाँ कोई विद्वान् रेचित नामक नृत्य-हस्त का प्रयोग बताते हैं ।

८. चाषगति

तालान्तरे पुरो गत्वा सव्येऽङ्घ्रौ पृष्ठगामिनि । 1000
तालद्वयान्तरेऽथाङ्घ्री समावुत्प्लुत्य किञ्चन ॥६८३॥
अपगम्योपगच्छेतामुपगम्यापगच्छतः । 1001
यस्यां सैषा चाषगतिर्भीतिर्गत्यादिषु स्मृताः ॥६८४॥

जहाँ दाहिना पैर एक ताल के अन्तर पर आगे-आगे चले और बाँया पैर पीछे-पीछे चले; फिर दो तालों के अन्तर पर दोनों समस्थित पैर कुछ उछलकर एवं हटकर समीप आ जाँय और समीप आकर फिर हट जाँय; ऐसी क्रिया को **चाषगति** भूमिचारी कहते हैं । भय और गमन आदि के अभिनय में इसका विनियोग किया जाता है ।

९. अध्यर्धिका

सव्याङ्घ्रेः पार्ष्णिदेशं चेद् वामः पादः समाश्रितः । 1002
अथ सव्योऽपसृत्याङ्घ्रिः सार्धतालान्तरे स्थितः ॥९८५॥
त्र्यस्रभावेन पार्श्वे स्वे सव्यो वामाङ्घ्रिपार्ष्णिगः । 1003
ततोऽपसृत्य वामाङ्घ्रिः सार्धतालान्तरे तथा ।
स्थितः साध्यर्धिका चारी तदावाचि विचक्षणैः ॥९८६॥ 1004

जहाँ दाहिने पैर की एड़ी के आश्रित होकर बायाँ पैर चले; और फिर दाहिना पैर हटकर डेढ़ ताल की दूरी पर स्थित हो; अनन्तर दाहिना पैर त्र्यस्र भाव से अपने पार्श्व में बायें पैर की एड़ी की तरफ गमन करे; तत्पश्चात् बायाँ पैर हटकर डेढ़ ताल की दूरी पर स्थित हो; ऐसी क्रिया को विद्वानों ने **अध्यर्धिका** भूमिचारी कहा है ।

१०. एलकाक्रीडिता

मनागुत्प्लुत्य चेत्पादौ यत्राग्रस्तलसञ्चरौ ।
पर्यायात् पततश्चारी सैलकाक्रीडिता तदा ॥९८७॥ 1005

जहाँ अग्रतलसंचर नामक दोनों पैर थोड़ा उछलकर अनुक्रम से गिरते हों, उसे **एलकाक्रीडिता** भूमिचारी कहते हैं ।

११. शकटास्या

पूर्वभागं शरीरस्य यदा धृत्वा प्रयत्नतः ॥९८८॥
प्रसारितो भवेद् यत्र पादोऽग्रतलसञ्चरः । 1006
वक्ष उद्वाहितं सोक्ता शकटास्या बुधैस्तदा ॥९८९॥

जब शरीर के अगले भाग को यत्नपूर्वक पकड़कर अग्रतलसंचर पैर फैला दिया जाय और उद्वाहित वक्ष की मुद्रा बनायी जाय, तब उसे विद्वान् लोग **शकटास्या** भूमिचारी कहते हैं ।

१२· उरूद्वृत्ता

पार्ष्णिः स्याच्चरणस्याग्रतलसञ्चारकस्य चेत् । 1007
पराङ्घ्रिपृष्ठाभिमुखी यद्वा व्यत्यासतो भवेत् ॥९९०॥

नतजानुर्यत्र जङ्घा वलिताभ्यन्यजङ्घिकम् । 1008
सोरूद्वृत्ता तदा चारी बुधैरीर्ष्यादिषु स्मृता ।।९९१।।

जब अग्रतलसंचर पाद-मुद्रा की एड़ी दूसरे पैर की एड़ी के सम्मुख हो; अथवा विपरीत क्रम से हो; घुटना झुका हुआ हो और जँघा बल खायी हुई हो; तब से विद्वानों ने उसे **उरूद्वृत्ता** भूमिचारी कहा है । ईर्ष्या आदि के अभिनय में उसका विनियोग किया जाता है ।

१३· स्थितावर्ता

गत्वान्यपादपार्श्वं चेद् यत्राग्रतलसञ्चरः । 1009
अन्तर्जानु स्वस्तिकत्वं प्राप्तोऽन्यश्च्युतिपूर्वकः ।
तथा स्वपार्श्वनीता सा स्थितावर्ता तदोदिता ।।९९२।। 1010

जहाँ अग्रतलसंचर पाद मुद्रा दूसरे पैर के पार्श्व में जाकर घुटने के नीचे स्वस्तिक मुद्रा को प्राप्त कर ले और दूसरा पैर हट कर अपने पार्श्व में ले आया जाय, तो उसे **स्थितावर्ता** भूमिचारी कहते हैं ।

१४· अपस्पन्दिता

स्यादपस्पन्दिता चारी स्पन्दिताङ्घ्रिविपर्ययात् ।।९९३।।

चलायमान चरणों के परिवर्तन से **अपस्पन्दिता** भूमिचारी होती है ।

१५. समोत्सरितमत्तल्ली

निहिते परपादस्य मध्येऽग्रतलसञ्चरे । 1011
कृते जङ्घा स्वस्तिके च परेऽग्रतलसञ्चरे ।।९९४।।
पादेऽङ्घ्री यत्र घूर्णन्तावपसृत्योपसर्पतः । 1012
समोत्सरितमत्तल्ली सा चारी मध्यमे मदे ।।९९५।।

जब अग्रतलसंचर पाद-मुद्रा को दूसरे पैर के बीच में रखा जाय; फिर दूसरे अग्रतलसंचर को जँघा के साथ स्वस्तिकाकार बनाया जाय; तत्पश्चात् दोनों पैर घूमते हुए हटकर समीप आ जाँय, तो उसे **समोत्सरितमत्तल्ली** भूमिचारी कहते हैं । मध्यम मद के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

१६. मत्तल्ली

क्षितिलग्नाखिलतलौ जङ्घास्वस्तिकयोगिनौ । 1013
अर्धत्र्यस्रौ च यत्राङ्घ्री घूर्णन्तावुपसर्पतः ।
यदापसरतोऽसौ स्यान्मत्तल्ली तरुणे मदे ।।९९६।। 1014

यदि दोनों चरणों का सम्पूर्ण तलभाग पृथ्वी से सटा हुआ हो; जँघाएँ स्वस्तिक मुद्रा में हों; फिर दोनों चरण अर्ध त्र्यस्र स्थानक के रूप में होकर घूमते हुए उपसर्पण और अपसर्पण करें, तो उसे **मत्तल्ली** भूमिचारी कहते हैं। तरुण मद के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**विनियोग**

**नाट्ये नृत्ये तथा नृत्ते नियुद्धेऽपि भवन्त्यमूः ।**
**नाट्यवेदेनादिमूलवेदेन परिकीर्त्तिताः ॥९९७॥** 1015

नाट्य (अभिनय), नृत्य (ताल, लय तथा रस के अनुसार किया जाने वाला अभिनय), नृत्त (केवल अंग-विक्षेपपूर्वक किया जाने वाला अभिनय) और बाहुयुद्ध के भाव-प्रदर्शन में भी इन चारियों का उपयोग किया जाता है। इनका वर्णन नाट्यवेद के मूल स्रोत वेदों में पाया जाता है।

## सोलह आकाशचारियाँ (२)

**१. अतिक्रान्ता**

**अङ्घ्रेरेकस्य गुल्फे चेदन्यमुद्धृत्य कुञ्चितम् ।**
**प्रसार्य पुरतः किञ्चिदथोत्क्षिप्य निपातयेत् ॥९९८॥** 1016
**अग्रे लोकानुसारेण चतुस्तालान्तरादितः ।**
**अतिक्रान्ता तदा चारी विपश्चिद्भिः प्रकीर्त्तिता ॥९९९॥** 1017

जब एक पैर के टखने पर दूसरे पैर के मुड़े हुए (कुञ्चित) टखने को लाकर सामने फैला दिया जाय और फिर लोक-रीति के अनुसार चार तालों की दूरी पर उसे उछाल कर सामने गिरा दिया जाय, तो विद्वानों ने उसे **अतिक्रान्ता** आकाशचारी कहा है।

**२. अपक्रान्ता**

**बद्धां विरच्य चारीं चेदङ्घ्रिमुद्धृत्य कुञ्चितम् ।**
**पार्श्वे न्यस्येत् तदा चारीमपक्रान्तां जगुर्बुधाः ॥१०००॥** 1018

यदि बद्धा चारी की रचना करके कुञ्चित पैर को निकाल कर पार्श्व में रख दिया जाय, तो विद्वानों ने उसे **अपक्रान्ता** आकाशचारी कहा है।

**३. भ्रमरी**

**अतिक्रान्ताङ्घ्रिमारच्य त्र्यस्रं चेत्परिवर्त्तयेत् ।**

ऊरुजानुत्रिकमधोऽपराङ्घ्रितलतस्तनुः । 1019
भ्राम्यते सकला यत्र सा चारी भ्रमरी तदा ॥१००१॥

यदि अतिक्रान्ता चारी से युक्त चरण की रचना करके ऊरु, जानु और कटिदेश को त्र्यस्र स्थानक में परिवर्तित कर दिया जाय; तत्पश्चात् दूसरे पैर के तलवे से शरीर को घुमा लिया जाय, तो उसे **भ्रमरी** आकाशचारी कहते हैं।

**४. मृगप्लुता**

अङ्घ्रिं कुञ्चितमुत्क्षिप्योत्प्लुत्योर्व्यन्तं निपात्य च । 1020
अञ्चितस्य परस्याङ्घ्रेर्जङ्घां पश्चाद्यदि क्षिपेत् ।
मृगप्लुता तदा चारी स्याद् विदूषककर्तृका ॥१००२॥ 1021

जब कुञ्चित पैर की रचना करके उछल कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया जाय और दूसरे अञ्चित पैर की जँघा को परिक्षिप्त किया जाय, तब उसे **मृगप्लुता** आकाशचारी कहते हैं। विदूषक के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**५. पार्श्वक्रान्ता**

उन्नीय निजपार्श्वेन पादं कुञ्चितसंज्ञकम् । 1022
उर्व्यां चेत् पातयेत् पार्ष्ण्या पार्श्वक्रान्ता तदोदिता ॥१००३॥
लोके प्रसिद्धा सा पार्श्वदण्डपादेतिसंज्ञया । 1023
पादं परोरुपर्यन्तमुदस्योद्घट्टितं क्षितौ ।
क्षिपेदस्यामिति परे प्राहुर्नृत्तविचक्षणाः ॥१००४॥ 1024

यदि कुञ्चित पैर को अपने पार्श्व से ऊपर उठाकर एड़ी के बल धरती पर पटक दिया जाय, तो **पार्श्वक्रान्ता** आकाशचारी बनती है। यह चारी लोक में **पार्श्वदण्डपादा** नाम से प्रसिद्ध है। एक पैर को दूसरे पैर के ऊरु तक उठाकर उद्घट्टित पाद पृथ्वी पर पटकने से यह चारी बनती है, ऐसा नृत्ताचार्यों ने कहा है।

**६. ऊर्ध्वजानु**

जानु यावत् स्तनसमं कुञ्चितं तावदुत्क्षिपेत् ।
अङ्घ्रिर्यत्रापरः स्तब्धः सोर्ध्वजानुरुदीरिता ॥१००५॥ 1025

यदि कुञ्चित पैर को तब तक ऊपर उठाया जाय जब तक उसका घुटना स्तन के बराबर ऊँचा न उठ जाय और दूसरा पैर स्थिर रहे ; ऐसी क्रिया को **ऊर्ध्वजानु** आकाशचारी कहते हैं ।

**७. भुजंगत्रासिता**

**परोरुमूलक्षेत्रान्तमङ्घ्रिमुत्क्षिप्य कुञ्चितम् ।**
**नितम्बाभिमुखीं यत्र पार्ष्णि जानु स्वपार्श्वगम् ॥१००६॥** 1026
**उत्तानिततलं पादं कटीजानुविवर्तनार्य ।**
**विदध्याद्यदि सान्वर्था भुजंगत्रासिता तदा ॥१००७॥** 1027

यदि दूसरे ऊरु के मूल भाग तक कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर एड़ी को नितम्ब के सम्मुख किया जाय तथा घुटने को अपने पार्श्व में पहुँचा दिया जाय; फिर चरण को कटि तथा घुटने के पास घुमाकर उसके तलवे को उत्तान कर दिया जाय; तो ऐसा करने पर वह अर्थानुरूप **भुजंगत्रासिता** आकाशचारी बनती है ।

**८. अलाता**

**पृष्ठप्रसृतपादस्य परोरोः सम्मुखं तलम् ।**
**कृत्वा पार्ष्णिः स्वपार्श्वे भूक्षिप्ताऽलाता निरूपिता ॥१००८॥** 1028

यदि पीठ की ओर फैले हुए वलित पैर के तलवे को दूसरे घुटने के सम्मुख करके एड़ी को अपने पार्श्व में गिरा दिया जाय, तो **अलाता** आकाशचारी बनती है ।

**९. दण्डपादा**

**पार्ष्णिदेशे स्थापयित्वा चरणं नूपुराभिधम् ।**
**यत्र स्वकायाभिमुखं जान्वग्रं पुरतो जवात् ।** 1029
**यदा प्रसारयेद् दण्डपादा साभिहिता तदा ॥१००९॥**

जब नूपुरपाद को एड़ी के पास रखकर घुटने के अग्रभाग को अपने शरीर के सम्मुख अति वेग से आगे की ओर फैला दिया जाय, तब उसे **दण्डपादा** आकाशचारी कहते हैं ।

**१०. विद्युद्भ्रान्ता**

**वलितः पृष्ठतः पादः शीर्षे स्पृष्ट्वाथ सर्वतः ।** 1030
**भ्रान्त्वा च प्रसृतो यत्र विद्युद्भ्रान्ता तदोदिता ॥१०१०॥**

जब वलित पैर को पीछे की ओर अग्रभाग में रगड़ दिया जाय और तत्पश्चात् चारों ओर मण्डलविद्ध किया जाय, तो **विद्युद्भ्रान्ता** आकाशचारी बनती है ।

११. सूची

कुञ्चितार्ङ्घ्रि समुत्क्षिप्य प्रसार्यँतस्य जङ्घिकाम् । 1031
पराङ्घ्रेर्जानुपर्यन्तमूरुपर्यन्तमेव च ॥१०११॥
अग्रयोगेन चेदेतमङ्घ्रि यत्र निपातयेत् । 1032
समवाचि तदा सूची सा नृत्तसुविचक्षणैः ॥१०१२॥

जब कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर उसकी जँघा को दूसरे पैर के घुटने तक या ऊरु तक फैलाकर अग्र-योग से उस पैर को नीचे गिरा दिया जाय, तब नाट्याचार्यों ने उसे **सूची** आकाशचारी कहा है।

१२. दोलापादा

कुञ्चितं पादमुद्धृत्य पार्श्वयोर्दोलयेत् ततः । 1033
यत्र पार्ष्ण्या निजे पार्श्वे तं क्षिपेच्चेत् तदोदिता ।
दोलापादाभिधा त्वेषा वीरसिंहसुसूनुना ॥१०१३॥ 1034

जब कुञ्चित पैर को उछालकर दोनों पार्श्वों में हिलाया-डुलाया जाय; उसके बाद उसे एड़ी से अपने पार्श्व में फेंका या गिरा दिया जाय, तो अशोकमल्ल ने उसे **दोलापादा** आकाशचारी कहा है।

१३. उद्वृत्ता

आविद्धाङ्घ्रिस्थितान्योरुपार्ष्णिकं प्रविधापयेत् ।
उत्प्लुत्य भ्रमरीं दत्वा धरायां विनिपातयेत् ॥१०१४॥ 1035
यत्रान्याङ्घ्रि समुद्धृत्य तदोद्वृत्ता भवेदसौ ।
अस्या नामान्तरं केचिच्चिरावर्त्तेत्यवादिषुः ॥१०१५॥ 1036

जब मुड़े हुए (आविद्ध) एक पैर को ऊरु सहित, दूसरे पैर की एड़ी पर अवस्थित किया जाय; फिर उछल कर तथा चक्कर काट कर दूसरे पैर को उठा देने के बाद गिरा दिया जाय, तो उसे **उद्वृत्ता** आकाशचारी कहते हैं। कोई इसे **चिरावर्त्ता** अपर नाम से अभिहित करते हैं।

१४. आविद्धा

जङ्घास्वस्तिकविश्लेषात् कुञ्चितं चरणं पुरः ।
वक्रमेकं प्रसार्य स्वपार्श्वे तु यदि पातयेत् । 1037
उपपार्ष्ण्यन्तरं पार्ष्ण्या तदाविद्धेति कीर्तिता ॥१०१६॥

यदि स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित जँघाओं को अलग-अलग करके एक वक्र कुञ्चित पैर के आगे फैलाकर फिर अपने पार्श्व में एड़ी से गिरा दिया जाय, तो उसे **आविद्धा** आकाशचारी कहते हैं ।

१५. नुपुरपादिका

अञ्चितं चरणं पश्चादापयित्वाऽस्य पार्ष्णिना । 1038
स्पृशेत् स्फिजं यदि ततस्तमेवाञ्चितजङ्घकम् ।।१०१७।।
यस्यां निपातयेदग्रतलेन वसुधातले । 1039
तामाचष्टाशोकमल्लस्तदा नूपुरपादिकाम् ।।१०१८।।

यदि एक अंचित चरण को पीछे उछालकर एड़ी से नितम्ब का स्पर्श किया जाय और उसी मुड़ी हुई जँघा वाले (अंचित) चरण को निचले अग्रभाग के बल पृथ्वी पर गिरा दिया जाय, तो उसे अशोकमल्ल ने **नूपुरपादिका** आकाशचारी कहा है ।

१६. आक्षिप्ता

त्रितालान्तरमुत्क्षिप्य पादमानीय कुञ्चितम् । 1040
पार्श्वान्तरं ततस्तं चेज्जङ्घास्वस्तिकयोगतः ।
यत्रोर्व्यं पातयेत्पार्ष्ण्या साक्षिप्ताख्या मता तदा ।।१०१९।। 1041

यदि एक कुंचित पैर को तीन तालों की दूरी तक ऊपर उछाल कर दूसरे पार्श्व में लाया जाय और फिर स्वस्तिकाकार जँघा के योग से उसे एड़ी के बल पृथ्वी पर गिरा दिया जाय, तो उससे **आक्षिप्ता** आकाशचारी बनती है ।

**विनियोग**

नाट्ये नृत्ये गतौ युद्धे नियुद्धेऽपि प्रयोक्तृभिः ।
प्रयोक्तव्या इमाश्चार्यो ललिताङ्गक्रियायुताः ।।१०२०।। 1042

अभिनेताओं को नाटच, नृत्य, गमन, युद्ध तथा बाहुयुद्ध के अभिनय में भी, ललित आँगिक चेष्ठाओं से युक्त इन चारियों का प्रयोग करना चाहिए ।

क्वचिदङ्घ्रेः प्रधानत्वं क्वचित्पाणेः क्वचिद् द्वयोः ।
यथाप्रयोगशोभं हि परिज्ञेयं मनीषिभिः ।।१०२१।। 1043

बुद्धिमान् अभिनेताओं को प्रयोग-सौष्ठव के अनुसार कहीं पैर की, कहीं हाथ की और कहीं दोनों की प्रधानता से चारियों का विनियोग करना चाहिए ।

प्राधान्यं यत्र पादस्य करस्तदनुगो भवेत् ।
भवेच्चेद्धस्तको मुख्यः पादस्तदनुगस्तदा । 1044
यत्रोभयोः प्रधानत्वं तत्र तौ समगौ मतौ ॥१०२२॥

जहाँ पैर की प्रधानता हो, वहाँ हाथ उसका अनुगामी होना चाहिए । जहाँ हाथ की मुख्यता हो, वहाँ पैर उसका अनुगामी होना चाहिए । जहाँ दोनों की प्रधानता हो, वहाँ दोनों का समान रूप से प्रयोग करना चाहिए ।

यतः पादस्ततः पाणिर्यतः पाणिस्ततस्त्रिकम् । 1045
गतिमङ्घ्रेर्विदित्वैवं चार्यामङ्गानि योजयेत् ॥१०२३॥

जहाँ पर पैर का प्रयोग हो, वहाँ पर हाथ का भी और जहाँ पर हाथ का प्रयोग हो वहाँ पर कटिदेश का भी प्रयोग होना चाहिए । इस प्रकार पैर की गति समझ कर चारी में अन्य अंगों की योजना करनी चाहिए ।

गत्वा गत्वा यथा चार्यां चरणो भुवि तिष्ठति । 1046
कृत्वा कृत्वा स्वकर्तव्यं करस्तद्वत्कटीतटे ॥१०२४॥

चारी में जिस प्रकार चरण जा-जाकर भूमि पर अवस्थित होता है, उसी प्रकार हाथ अपनी क्रियाओं को करके कमर पर अवस्थित होता है ।

अर्धचन्द्रकरो नाटये नृत्ते स्यात् पक्षवञ्चितः । 1047
पक्षप्रद्योतको यद्वा कटिक्षेत्रगतः करः ॥१०२५॥

नाटय में अर्धचन्द्र हस्त-मुद्रा का और नृत्त में पक्षवंचितक या पक्षप्रद्योतक हस्त-मुद्रा का प्रयोग होता है । इन दोनों अभिनयों में हाथ कटिदेश पर अवस्थित रहता है ।

पैंतीस देशी भूमिचारियाँ (३)

१. रथचक्रा

स्थानकं चतुरस्रं चेद् विधायाङ्घ्री प्रगच्छतः । 1048
श्लिष्टौ पुरोऽथवा पश्चाद् रथचक्रा तदा मता ॥१०२६॥

जब चतुरस्र स्थानक की रचना करके सटे हुए दोनों पैरों को आगे या पीछे चलाया जाय, तब उसे रथचक्रा चारी कहते हैं ।

२. तलोद्वृत्ता

पुरश्चेत्सर्पतस्तूर्णमङ्गुलीपृष्ठभागतः । 1049
पादाग्रे सा तदादिष्टा तलोद्वृत्ता मनीषिभिः ॥१०२७॥

जब दोनों पैरों के अग्रभाग अँगुलियों के पृष्ठभाग पर (आश्रित होकर) शीघ्रतापूर्वक आगे की ओर चलें, तब विद्वानों ने उसे **तलोद्वृत्ता** चारी कहा है ।

३. मराला

नन्द्यावर्तस्थितावङ्घ्री पार्ष्णिप्रपदरेचितौ । 1050
प्रसार्येते पुरो यत्र सा मरालोदिता बुधैः ॥१०२८॥

नन्द्यावर्त नामक स्थानक और रेचित मुद्रा में अवस्थित दोनों पैर एड़ी तथा अग्रभाग में जहाँ सामने फैलाये जाते हैं, वहाँ विद्वानों ने उसे **मराला** चारी कहा है ।

४. पार्ष्णिरेचिता

पार्ष्णिपार्श्वगताख्येन स्थितास्थानेन यत्र चेत् । 1051
रेचिता क्रियते पार्ष्णिः सा तदा पार्ष्णिरेचिता ॥१०२९॥

पार्ष्णिपार्श्वगत स्थानक में अवस्थित एड़ी जब रेचित की जाती है, तब उसे **पार्ष्णिरेचिता** चारी कहते हैं ।

५. परावृत्ततला

पृष्ठोत्तानतलो यत्र बहिरङ्घ्रिः प्रसारितः । 1052
चारी सा कथिता धीरैः परावृत्ततलाभिधा ॥१०३०॥

जहाँ तलवे को पीठ की ओर उत्तान करके पैर को बाहर फैला दिया जाता है, उसे धीर पुरुष **परावृत्ततला** चारी कहते हैं ।

६. तिर्यङ्मुखा

स्थित्वा चेद् वर्धमानने पादौ तिर्यक् प्रसर्पतः । 1053
वामदक्षिणयोस्तूर्णं तदा तिर्यङ्मुखा मता ॥१०३१॥

यदि वर्धमान स्थानक में अवस्थित होकर दोनों पैर वाम-दक्षिण पार्श्वों में शीघ्रता के साथ तिरछे फैला दिये जाँय, तो उसे **तिर्यङ्मुखा** चारी कहते हैं ।

७. नूपुरविद्धिका

संश्रित्य स्वस्तिकं पाष्र्ण्योस्तथा पादाग्रयोर्यदि । 1054
यत्राङ्घ्री रेचितौ सा स्यात्तदा नूपुरविद्धिका ॥१०३२॥

जब एड़ियों तथा पैरों के अग्रभागों के स्वस्तिक स्थानकों का सहारा लेकर दोनों पैर रेचित किये जाते हैं, तब उसे **नूपुरविद्धिका** चारी कहते हैं ।

८. कातरा

नन्द्यावर्त्ते स्थिताङ्घ्रिभ्यामपसृत्या तु कातरा ॥१०३३॥ 1055

नन्द्यावर्त स्थानक में अवस्थित पैरों के अलग कर देने से **कातरा** चारी होती है ।

९. करिहस्ता

संहतस्थानकेनाङ्घ्री स्थित्वोर्वीं यत्र घर्षतः ।
पार्श्वाभ्यां चेत् तदा सद्भिः करिहस्ताभिधीयते ॥१०३४॥ 1056

जब संहत स्थानक में अवस्थित होकर दोनों पैर दोनों पार्श्वों से पृथ्वी को रगड़ते हैं, तब उसे सज्जन लोग **करिहस्ता** चारी कहते हैं ।

१०. हरिणीत्रासिता

कुञ्चिते वलितप्रान्ते तले स्वस्तिकबन्धने ।
अङ्घ्र्योः कृत्वा यदोत्प्लुत्य नियते यत्र सा तदा । 1057
हरिणीत्रासिता चारी समवाचि विचक्षणैः ॥१०३५॥

जब कुंचित पैरों के प्रान्तभाग बल खाये हुए हों तथा तलवे स्वस्तिकाकार में बँधे हों और वे उछलकर एक जगह स्थिर हो जाँय, तो उसे विद्वानों ने **हरिणीत्रासिता** चारी कहा है ।

११. अर्धमण्डलिका

क्षितिघृष्टौ बहिः प्राप्तौ पादौ यत्र शनैः क्रमात् । 1058
आवर्त्येते यदा सा स्यादर्धमण्डलिका तदा ॥१०३६॥

जहाँ दोनों पैरों को पृथ्वी पर रगड़ कर बाहर करके क्रमशः धीरे-धीरे घुमाया जाता है, तब वहाँ उसे **अर्धमण्डलिका** चारी कहते हैं ।

१२. ऊरुताडिता

स्थित्वैकपादस्थानेन क्षितिस्थेनाङ्घ्रिणा यदा । 1059
यत्रोरुस्ताड्यते चारी तदासावूरुताडिता ॥१०३७॥

जब एकपाद स्थानक में अवस्थित होकर पृथ्वी पर रखे हुए पैर से ऊरु को पीटा जाता है, तब उसे **ऊरुताडिता** चारी कहते हैं ।

१३. मदालसा

यस्याभितस्ततः पादौ स्थापयेन्मत्तवद्यदि । 1060
अलसौ सा तदा धीरैर्निरवाचि मदालसा ॥१०३८॥

यदि मतवाले की तरह, अलसाये हुए दोनों पैरों को सब ओर रख जाय, तो धीर पुरुष उसे **मदालसा** चारी कहते हैं ।

१४. संचारिता

आकुञ्चिताङ्घ्रिमुत्क्षिप्यासकृदन्येन योजयेत् । 1061
तिर्यक् सञ्चारयेदन्यं तदा सञ्चारिता मता ॥१०३९॥

जब कुछ मुड़े हुए एक पैर को ऊपर उठाकर बार-बार दूसरे पैर से मिला दिया जाय तथा दूसरे पैर को तिरछा चलाया जाय, तो उसे **संचारिता** चारी कहते हैं ।

१५. उत्कुंचिता

आकुञ्च्य चरणावूर्ध्वं यत्रोत्क्षिप्य पुरः क्षिपेत् । 1062
ऐकैकं चेत् तदोक्ता सोत्कुञ्चितान्वर्थनामभाक् ॥१०४०॥

जब दोनों चरणों को थोड़ा मोड़कर तथा ऊपर उठाकर एक-एक को आगे फेंका जाय, तब उसे अर्थानुरूप नाम वाली **उत्कुञ्चिता** चारी कहते हैं ।

१६. अपकुंचिता

यत्राकुञ्चितपादाभ्यां क्रमात् पार्श्वाहतिर्भवेत् । 1063
प्राहापकुञ्चितामेनां वीरसिंहात्मजः सुधीः ॥१०४१॥

जहाँ कुछ मुड़े हुए दोनों चरणों से क्रमशः पार्श्वों को पीटा जाय, वहाँ वीरसिंह के विद्वान् पुत्र अशोकमल्ल ने उसे **अपकुञ्चिता** चारी कहा है ।

१७. स्फुरिता

स्फुरिताग्रे सृतौ वेगाद् भूस्पृशोरङ्घ्रिपार्श्वयोः ॥१०४२॥ 1064

भूमि का स्पर्श करते हुए चरणों के पार्श्वों को वेग से आगे फैलाने पर **स्फुरिता** चारी बनती है ।

१८. स्तम्भक्रीडनिका

तिर्यक्प्रसृतपादस्य पार्श्वं परतलेन चेत् ।
यत्र स्पृशेन्मुहुः सोक्ता स्तम्भक्रीडनिका तदा ॥१०४३॥ 1065

जहाँ तिरछे फैले हुए एक पैर के पार्श्व को दूसरे पैर का तलवा बार-बार स्पर्श करे, वहाँ उसे **स्तम्भक्रीडनिका** चारी कहते हैं ।

१९. तिर्यक्कुंचिता

अङ्‌घ्रिं तिर्यञ्चमाकुञ्च्य न्यस्येद्यत्र मुहुर्मुहुः ।
समवोचदिमां तिर्यक्कुञ्चितां वीरसिंहजः ॥१०४४॥ 1066

जहाँ एक पैर को तिरछा करके कुछ सिकोड़ कर बार-बार (भूमि पर) रखा जाय, वहाँ उसे अशोकमल्ल ने **तिर्यक्कुञ्चिता** चारी कहा है ।

२०. तलदर्शिनी

चरणौ संहतस्थौ चेत्तिर्यग्विच्युत्य भूतलम् ।
स्पृशतो बाह्यपार्श्वाभ्यां स्यात्तदा तलदर्शिनी ॥१०४५॥ 1067

जब संहत स्थानक में स्थित दोनों चरण तिरछे अलग होकर बाहरी पार्श्वों से भूतल का स्पर्श करें, तब उसे **तलदर्शिनी** चारी कहते हैं ।

२१. खुत्ता

पादाग्रेण क्षितौ घातो यत्र खुत्तेति सा मता ॥१०४६॥

जहाँ चरणों के अग्रभाग से पृथ्वी पर आघात किया जाय, वहाँ उसे **खुत्ता** चारी कहते हैं ।

२२. लंघितजंघिका

खण्डसूचिः स्थितः पादो वेगेनाकृष्य लङ्घ्यते । 1068
यत्रान्यचरणेनैषा भवेल्लङ्घितजङ्घिका ॥१०४७॥

जहाँ खण्डसूचि स्थानक में अवस्थित एक पैर को वेग से खींचकर दूसरा पैर लाँघ जाता है, वहाँ उसे **लंघितजंघिका** चारी कहते हैं ।

२३. स्वस्तिका

स्वस्तिकाकृतिभागङ्घ्रिर्यत्र सा स्वस्तिका मता ॥१०४८॥ 1069

जहाँ पैर स्वस्तिकाकार धारण करें, वहाँ उसे **स्वस्तिका** चारी कहते हैं ।

२४. कुलीरिका

नन्द्यावर्त्तस्थानकस्थावङ्घ्री तिर्यक्प्रसर्पतः ।
यदा यत्र तदा सद्भिरसौ प्रोक्ता कुलीरिका ।।१०४९।। 1070

जब दोनों चरण नन्द्यावर्त्त स्थानक में अवस्थित होकर तिरछे चलें, तब उसे सज्जन लोग **कुलीरिका** चारी कहते हैं ।

२५. निकुट्टक

कुञ्चितेनाङ्घ्रिणाग्रेण गतिस्तु स्यान्निकुट्टकः ।।१०५०।।

मुड़े हुए पैर के अग्रभाग से चलना **निकुट्टक** चारी कहलाता है ।

२६. पुराटिका

पुराटिका मिथोऽङ्घ्रिभ्यामुद्वृत्ताभ्यां निकुट्टनम् ।।१०५१।। 1071

उठे हुए चरणों से परस्पर कूटना **पुराटिका** चारी कहलाती है ।

२७. अर्धपुराटिका

यत्रोद्वृत्तेन पादेन निकुट्टेन निकुट्टनम् ।
पराङ्घ्रेरुद्धृतस्यैषा भवेदर्धपुराटिका ।।१०५२।। 1072

जहाँ उठे हुए एक चरण से दूसरे अनावृत चरण को कूटा जाय, वहाँ **अर्धपुराटिका** चारी कहलाती है ।

२८. स्फुरिका

पुरः प्रसर्पतः पादौ समौ चेत् स्फुरिका तदा ।।१०५३।।

जब सम नामक दोनों पैर आगे चलते हैं, तब उसे **स्फुरिका** चारी कहते हैं ।

२९. सारिका

पुरः सरति यत्राङ्घ्रिरेकः सा सारिकोदिता ।।१०५४।। 1073

जहाँ एक पैर आगे चलता है, उसे **सारिका** चारी कहते हैं ।

३०. लताक्षेप

पश्चात्प्रक्षिप्य पादं चेत्पुरस्ताच्च प्रसार्यतम् ।
यत्रोर्वीं कुट्टयेत्तेन लताक्षेपस्तदा त्वसौ ।।१०५५।। 1074

जहाँ एक पैर को पीछे फेंककर आगे फैला दिया जाय और उससे पृथ्वी को कूटा जाय, तो उसे **लताक्षेप** चारी कहते हैं ।

३१. अड्डस्खलितिका

स्खलितोऽङ्घ्रिर्यत्र तिर्यगड्डस्खलितिका तु सा ॥१०५६॥

जब पैर तिरछा गिरता है, वहाँ **अड्डस्खलितिका** चारी होती है।

३२. ऊरुवेणी

पादौ स्वस्तिकबन्धेन स्थित्वाङ्घ्री घर्षतो धराम् । 1075
पार्श्वाभ्यां चेत्तदा धीरैरूरुवेणी निरूपिता ॥१०५७॥

जब दोनों चरण स्वस्तिक स्थानक में अवस्थित होकर पार्श्वों से पृथ्वी को घिसते हैं, तब धीर पुरुष उसे **ऊरुवेणी** चारी कहते हैं।

३३. विश्लिष्टा

स्थित्वाङ्घ्री पार्ष्णिविद्धेन चेद्विश्लिष्योपगच्छतः । 1076
यद्वापगच्छतो यत्र सा विश्लिष्टा तदोदिता ॥१०५८॥

जहाँ पार्ष्णि नामक स्थानक में अवस्थित होकर दोनों पैर अलग होकर निकट आ जाँय या दूर हो जाँय तो उसे **विश्लिष्टा** चारी कहते हैं।

३४. समस्खलितिका

अग्रतः पृष्ठतस्तिर्यक पादौ चेत्स्खलतः समम् । 1077
यत्र सोक्ता तदा चारी समस्खलितिका[बुधैः] ॥१०५९॥

जब दोनों पैर आगे-पीछे तिरछे होकर एक साथ गिरें, तब उसे विद्वान् लोग **समस्खलितिका** चारी कहते हैं।

३५. संघट्टिता

स्थित्वा विषमसूच्याख्यस्थानेनोत्प्लुत्य चेत् पतन् । 1078
क्षितौ संघट्टयेत् पादौ तदा संघट्टिता मता ॥१०६०॥

यदि विषमसूचि स्थानक में अवस्थित होकर फिर उछल कर गिरते हुए पैरों से पृथ्वी पर चोट की जाय, तो उस क्रिया को **संघट्टिता** चारी कहते हैं।

उन्नीस देशी आकाशचारियाँ (४)

१. दण्डपादा

अङ्घ्रिं स्वस्तिकविश्लिष्टं निर्यगूर्ध्वं प्रसारयेत् । 1079
यत्र सा दण्डपादाख्या चारी प्रोक्ता मनीषिभिः ॥१०६१॥

जहाँ स्वस्तिक मुद्रा से हटे हुए पैर को तिरछा ऊपर फैला दिया जाय, वहाँ मनीषियों ने उसे **दण्डपादा** चारी कहा है।

२. पुरःक्षेपा

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य विस्तारत्वरया पुरः । 1080
क्षिपेत् क्षितौ यदा चारी पुरःक्षेपा तदोदिता ॥१०६२॥

कुञ्चित मुद्रा में पैर को ऊपर उठाकर यदि विस्तार की शीघ्रता से आगे पृथ्वी पर फेंक दिया जाय तो **पुरःक्षेपा** चारी बनती है।

३. अपक्षेपा

बाह्यपार्श्वेन संस्पृश्य पृष्ठमूरोर्यदीतरः । 1081
अङ्घ्रिरेति नितम्बान्तमपक्षेपा तदा मता ॥१०६३॥

यदि ऊरु के पृष्ठभाग को दूसरा पैर, बाहर वाले पार्श्व से स्पर्श करके नितम्ब के अन्त तक पहुँच जाय तो उसे **अपक्षेपा** चारी कहते हैं।

४. हरिणप्लुता

उत्प्लुत्य चरणौ यस्यामवनौ विनिपातयेत् । 1082
समाचष्ट नृपाशोकमल्लस्तां हरिणप्लुताम् ।
एकाङ्घ्रिपातनं त्वस्यां मन्वतेऽन्ये मनीषिणः ॥१०६४॥ 1083

जिस (चारी) में दोनों चरण उछलकर पृथ्वी पर गिर पड़ें, उसे राजा अशोकमल्ल ने **हरिणप्लुता** चारी कहा है। दूसरे मनीषी लोग उसमें एक ही चरण को गिराना मानते हैं।

५. विद्युद्भ्रान्ता

पुरस्तात्पादमुत्क्षिप्य भालस्योपरि सत्वरम् ।
संभ्राम्योर्व्यां क्षिपेद्यत्र विद्युद्भ्रान्ता भवेदसौ ॥१०६५॥ 1084

जहाँ पैर को आगे शीघ्रता से उठाकर तथा ललाट के ऊपर घुमाकर पृथ्वी पर फेंक दिया जाय, वहाँ उसे **विद्युद्भ्रान्ता** चारी कहते हैं।

६. विक्षेपा

पुरस्तादन्तरिक्षेऽङ्घ्रिं चेत्प्रसार्य मुहुर्मुहुः ।
कुर्यादाकुञ्चितं यत्र सा विक्षेपा तदोदिता ॥१०६६॥ 1085

जब आगे आकाश में पैर को बार-बार फैलाकर सिकोड़ लिया जाय, तब उसे **विक्षेपा** चारी कहते हैं ।

७. जंघावर्ता

अन्तर्भ्रान्त्या बहिर्भ्रान्त्या क्रमेणाङ्‌घ्रेस्तलं यदि ।
यत्रान्यजानुनः पृष्ठे पार्श्वेऽपि क्षिप्यते तदा । 1086
जङ्घावर्ताभिधा सोक्ता चारी चारीविचक्षणैः ॥१०६७॥

जब क्रमशः भीतर-बाहर घुमाकर (एक पैर के) तलवे को दूसरे (पैर के) घुटने के पृष्ठभाग या पार्श्व-भाग पर रखा जाय, तब उसे चारी के विद्वान् **जंघावर्ता** चारी कहते हैं ।

८. अँघ्रिताडिता

विस्तार्याङ्‌घ्री समुत्प्लुत्य मिथस्ताडयतस्तले । 1087
गगने चेत् तदा चारी मतान्वर्थाङ्‌घ्रिताडिता ॥१०६८॥

जब आकाश में पैरों को फैलाकर तथा उछलकर परस्पर तलवे को पीटा जाय, तब उसे अर्थ के अनुरूप **अँघ्रिताडिता** चारी कहते हैं ।

९. अलाता

किञ्चित्पृष्ठगतः पादः परपादेन लङ्घ्यते । 1088
यदि द्रुतं तदालाता विद्वद्भिः परिकीर्तिता ॥१०६९॥

यदि पीठ की ओर थोड़ा गया हुआ एक पैर दूसरे पैर के द्वारा शीघ्रता से लाँघा जाय, तो विद्वान् लोग उसे **अलाता** चारी कहते हैं ।

१० डमरी

जानुदघ्नं समुत्क्षिप्य कुञ्चितं चरणं यदि । 1089
सत्वरं भ्रामयेदन्तर्बहिश्च डमरी तदा ॥१०७०॥

यदि कुञ्चित चरण को घुटने तक उठाकर बाहर-भीतर शीघ्रता से घुमाया जाय, तो वह **डमरी** चारी कहलाती है ।

११. विद्धा

स्वस्तिकाकृतयोरङ्घ्र्योर्यत्रैको दोलितो मनाक् । 1090
परः पुरः कुञ्चितश्चेत्सा विद्धोक्ता बुधैस्तदा ॥१०७१॥

यदि स्वस्तिकाकार पैरों में एक को थोड़ा हिलाया जाय और दूसरे पैर को आगे मोड़ दिया जाय, तो वह **विद्धा** चारी कहलाती है ।

१२. जंघालंघनिका

आकुञ्चिताङ्घ्रिमन्येन पादेन दिवि लङ्घयेत् । 1091
यत्रासौ कथिता चारी जङ्घालङ्घनिका बुधैः ॥१०७२॥

यदि किञ्चित् मुड़े हुए एक पर को दूसरे पैर से आकाश में लाँघा जाय, तो उसे विद्वान् लोग **जंघालंघनिका** चारी कहते हैं ।

१३. सूची

पार्श्वेनोरो विनिक्षिप्य चरणं चेत् प्रसारयेत् । 1092
तीक्ष्णाग्रं यत्र सा सूची तदोक्ता नृत्तवेदिभिः ॥१०७३॥

यदि पार्श्व से छाती को दबाकर तीक्ष्ण अग्रभाग वाले चरण को फैला दिया जाय, तो नृत्त के विद्वान् उसे **सूची** चारी कहते हैं ।

१४. प्रावृत

यत्राङ्घ्रिरुद्धृतो मूर्तिर्वलिता ललिता भवेत् । 1093
तदुक्तं प्रावृतं सद्भिः कुसुमायुधजीवनम् ॥१०७४॥

जहाँ एक पैर उठा लिया जाय और झुकाया हुआ शरीर सुन्दर दीखता हो, वहाँ सज्जन लोग उसे कामदेव का जीवन स्वरूप **प्रावृत्त** चारी कहते हैं ।

१५. उल्लाल

उल्लालनं क्रमेणाङ्घ्र्योर्दिव्युल्लाल उदीरितः ॥१०७५॥ 1094

पैरों को क्रमशः हिलाने को **उल्लाल** चारी कहते हैं ।

१६. वेष्टन

पादेनैकेन यद्यन्यं वेष्टयेद्वेष्टनं तदा ।
एतदेव परे प्राहुर्वलनं वृ (?नृ) त्तवेदिनः ॥१०७६॥ 1095

यदि एक पैर से दूसरे पैर को वेष्टित कर लिया जाय तो उसे **वेष्टन** चारी कहते हैं । दूसरे नृत्त-पण्डित इसी को **वलन** चारी (भी) कहते हैं ।

१७. उद्वेष्टन

वेष्ठयित्वा यदाङ्घ्रेः स्यात् पृष्टदेशे प्रसारणम् ।
तदोद्वेष्टनमाख्यातमशोकेन महीभुजा ॥१०७७॥ 1096

जब एक पैर को वेष्टित करके पृष्टदेश में फैला दिया जाय, तब राजा अशोकमल्ल उसे **उद्वेष्टन** चारी कहते हैं।

१८ उत्क्षेप

अङ्घ्रेराकुञ्चितस्याग्रे पृष्ठे चोत्क्षेपणे यदा ।
क्रियते जानुपर्यन्तं तदोत्क्षेपोऽभिधीयते ॥१०७८॥ 1097

जब कुछ मुड़े हुए पैर को आगे और पीछे घुटने तक ऊपर उठाया जाय, तब उसे **उत्क्षेप** चारी कहते हैं।

१९. पृष्टोत्क्षेप

यद्येष पृष्ठ एव स्यात् पृष्ठोत्क्षेपस्तदा मतः ॥१०७९॥

यदि यह उत्क्षेप केवल पीछे की ओर ही किया जाय तो उसे **पृष्ठोत्क्षेप** चारी कहते हैं।

पच्चीस मुडुपचारियाँ (५)

अङ्गुलीपृष्ठभागं हि नृत्तज्ञा मुडुपं जगुः । 1098
चार्यते तेन मुडुपचारीत्यन्वर्थसंज्ञिका ॥१०८०॥

नाटचाचार्यों ने अँगुली के पृष्ठभाग को **मुडुप** कहा है। उससे चेष्टा प्रकट की जाती है। इसलिए (उसकी) **मुडुपचारी** यह अन्वर्थसंज्ञा (अर्थानुरूप नाम) है।

निरुक्तिमेवं केऽप्याहुरन्ये संज्ञां डवित्थवत् । 1099

अन्य विद्वान् मुडुपचारी शब्द की निरुक्ति (व्याख्याविशेष) इस प्रकार करते हैं और दूसरे आचार्य डवित्थ शब्द की तरह इसकी (अव्युत्पन्न) संज्ञा बताते हैं।

मुडुपोपपदाश्चार्यः सन्ति यद्यप्यनेकशः ॥१०८१॥
तथाप्यमूर्मया काश्चिल्लिख्यन्ते कोहलोदिताः । 1100

यद्यपि मुडुप से सम्बद्ध चारियाँ अनेकानेक हैं, तथापि यहाँ आचार्य कोहल द्वारा प्रतिपादित कुछ चारियों का उल्लेख किया जा रहा है।

मुडुपचारी के भेद

पुरःपश्चात्सरा चारी तथा पश्चात्पुरःसरा ॥१०८२॥

१. देखिए : 'लोहितोदिता' भरतकोश, पृ० ९११ ।

मध्यचक्राभिधा चारी तथैकपदकुट्टिता । 1101
पदद्वयनिकुट्टान्या पादस्थितिनिकुट्टिता ।।१०८३।।
[क्रमपादनिकुट्टा च समपादनिकुट्टिता । 1102
चारी डमरुकुट्टाख्या डमरुद्वयकुट्टिता] ।
पुरःक्षेपनिकुट्टा च पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता । 1103
पार्श्वक्षेपनिकुट्टान्या चक्रकुट्टनिका परा ।।१०८४।।
मध्यस्थापनकुट्टा च चतुष्कोणनिकुट्टिता । 1104
चारी त्रिकोणचारान्या तिरश्चीननिकुट्टिका ।।१०८५।।
अनुलोमविलोमा च प्रतिलोमानुलोमका । 1105
पुरस्ताल्लुठिता पृष्ठलुठिता चक्र(?वक्र)कुट्टिता ।।१०८६।।
पार्श्वद्वयचरी मध्यलुठिताख्या परा तथा । 1106
श्रीमताशोकमल्लेनेत्युद्दिष्टाः पञ्चविंशतिः ।।१०८७।।

श्रीमान् अशोकमल्ल ने मुडुपचारी के पचीस भेद बताये हैं : १. पुरःपश्चात्सरा, २. पश्चात्पुरःसरा, ३. मध्यचक्रा, ४. एकपदकुट्टिता, ५. पदद्वयनिकुट्टा, ६. पादस्थितिनिकुट्टिता, ७. क्रमपादनिकुट्टिका, ८. समपादनिकुट्टिता, ९. डमरुट्टिता, १०. डमरुद्वयकुट्टिता, ११. पुरःक्षेपनिकुट्टिता, १२. पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता १३. पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता, १४. चक्रकुट्टनिका, १५. मध्यस्थापनकुट्टा, १६. चतुष्कोणनिकुट्टिता, १७. त्रिकोणचारी, १८. तिरश्चीनकुट्टिता, १९. अनुलोमविलोमका, २०. प्रतिलोमानुलोमका, २१. पुरस्ताल्लुठिता, २२. पृष्ठलुठिता, २३. चक्रकुट्टिता, २४. पार्श्वद्वयचरी और २५. मध्यलुठिता ।

इमा मुड्डुपचार्योऽथ लक्षणं प्रतिपाद्यते ।।१०८८।। 1107

ये मुडुपचारियाँ हैं । अब इनके लक्षण बताते हैं ।।

१. पुरःपश्चात्सरा

तलेनादौ निकुट्याथ पुरः पश्चान्निवेशितः ।
अङ्घ्रिरङ्गुलिपृष्ठेन स्वस्थाने कुट्टितो यदा । 1108
पुरःपश्चात्सरा चारी तदान्वर्था निरूपिता ।।१०८९।।

पहले तलवे से कूटकर पैर को आगे और पीछे करके रखा जाय; और पश्चात् उँगलियों के पृष्ठभाग से एक पैर को अपने स्थान पर कूटा जाय। ऐसा करने से अर्थ के अनुरूप **पुरःपश्चातसरा** चारी बनती है।

२· पश्चात्पुरः सरा

एषा पश्चात्पुरःक्षेपान्मता पश्चात्पुरःसरा ॥१०६०॥ 1109

यदि पैर को पीछे और आगे करके चलाया जाय, तो वह **पश्चात्पुरः सरा** चारी कहलाती है।

३· मध्यचक्रा

कुट्टितः स्थापितो यत्र भ्रमितः कुट्टितः पुनः ।
स्थाने सा मध्यचक्रेति चारी प्रोक्ता विचक्षणैः ॥१०६१॥ 1110

जहाँ पैर कूटा जाय, रखा जाय, घुमाया जाय और फिर स्थान पर कूटा जाय, तो उसे विद्वानों ने **मध्यचक्रा** चारी कहा है।

४· एकपदकुट्टिता

स्वपार्श्वेकुट्टितः पूर्वं स्थापितोङ्गुलिपृष्ठतः ।
कुट्टितश्चेत्पुनः स्थाने तदैकपदकुट्टिता ॥१०६२॥ 1111

पहले एक पैर अपने पार्श्व में कूटा जाय; उसके बाद उँगलियों के पृष्ठभाग से अवस्थित किया जाय; और पुनः स्थान में कूटा जाय, तो उसे **एकपदकुट्टिता** चारी कहते हैं।

५· पदद्वयनिकुट्टा

पदद्वयनिकुट्टा स्यात् सैवाङ्घ्रिद्वयनिर्मिता ॥१०६३॥

यदि दोनों पैरों से उक्त चारी बनायी जाय, तो उसे **पदद्वयनिकुट्टा** चारी कहते हैं।

६. पादस्थितिनिकुट्टिता

यस्यां निकुट्टितः पादः स्थितोऽथाङ्गुलिपृष्ठतः । 1112
इतस्ततः कुट्टितः सा पादस्थितिनिकुट्टिता ॥१०६४॥

जिस चारी में कूटा हुआ एक पैर उँगलियों के पृष्ठभाग से अवस्थित होकर (पुनः) इधर-उधर कूटा जाय, उसे **पादस्थितिनिकुट्टता** चारी कहते हैं।

७. क्रमपादनिकुट्टिका

एवं द्व्यङ्घ्रिकृता सैव क्रमपादनिकुट्टिका ॥१०६५॥ 1113

उक्त प्रकार से यदि दोनों पैरों को सम्पन्न किया जाय, तो उसे **क्रमपादनिकुट्टिका** चारी कहते हैं।

८. **समपादनिकुट्टिता**

निकुट्टितौ समौ पादौ स्थितावङ्गुलिपृष्ठयोः ।
यदा तदा मताऽन्वर्था समपादनिकुट्टिता ॥१०९६॥ 1114

जब सम नामक दोनों पैर कूटे जाकर उँगलियों के पृष्ठभाग पर अवस्थित हों, तो उसे अर्थानुरूप **समपादनिकुट्टिता** चारी कहते हैं।

९. **डमरुकुट्टिता**

पादश्चेत्कुट्टितः पूर्वं लुठितोङ्गुलिपृष्ठतः ।
पश्चान्निकुट्टितः स्थाने तदा डमरुकुट्टिता ॥१०९७॥ 1115

यदि एक पैर पहले कूटा जाकर उँगलियों के पृष्ठ भाग पर लोट जाय और पश्चात् स्थान पर कूटा जाय, तो उसे **डमरुकुट्टिता** चारी कहते हैं।

१०. **डमरुद्वयकुट्टिता**

पादयुग्मकृता सैव डमरुद्वयकुट्टिता ॥१०९८॥

यदि उक्त चारी में दोनों पैर उक्त प्रकार की क्रिया से सम्पन्न हों, तो उसे **डमरुद्वयकुट्टिता** चारी कहते हैं।

११. **पुरःक्षेपनिकुट्टिता**

[चरणः] कुट्टितः पूर्वं पुरतोङ्गुलिपृष्ठतः । 1116
स्थापितः कुट्टितः स्थाने पुरःक्षेपनिकुट्टिता ॥१०९९॥

यदि पहले चरण को कूटकर आगे की ओर उँगलियों के पृष्ठभाग से स्थापित किया जाय और फिर स्थान पर कूटा जाय तो, उसे **पुरःक्षेपनिकुट्टिता** चारी कहते हैं।

१२. **पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता**

पश्चात्क्षेपाद्भवेदेषा पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता ॥११००॥ 1117

उक्त चारी में पैर को पीछे की ओर चलाने से **पश्चात्क्षेपपनिकुट्टिता** चारी बनती है।

१३. **पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता**

पार्श्वतः क्षेपणादेवं पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता ॥११०१॥

बगल की ओर उक्त प्रकार चलाने से **पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता** चारी बनती है।

१४. चक्रकुट्टनिका

यदाङ्घ्रि कुट्टितं पार्श्वाद्भ्रामयित्वा निवेशयेत् । 1118
ततः स्थाने कुट्टयेच्च चक्रकुट्टनिका तदा ॥११०२॥

जब कूटे हुए पैर को बगल में घुमाकर रखा जाय और उसे फिर स्थान पर कूटा जाय, तो उसे **चक्रकुट्टनिका** चारी कहते हैं ।

१५. मध्यस्थापनकुट्टा

पादश्चेत्कुट्टितः पूर्वं पुरः पश्चान्निवेशितः । 1119
मध्ये निवेशितश्चाथ पुनस्तत्रैव कुट्टितः ।
मध्यस्थापनकुट्टेति तदान्वर्था प्रकीर्तिता ॥११०३॥ 1120

यदि पहले पैर को कूटकर आगे-पीछे स्थापित किया जाय और फिर मध्य में स्थापित कर पुनः वहीं पर कूटा जाय, तो उसे अर्थ के अनुरूप **मध्यस्थापनकुट्टा** चारी कहते हैं ।

१६. चतुष्कोणनिकुट्टिता

यत्राङ्घ्रिः कुट्टितः पूर्वं पुरः पश्चान्निवेशितः ।
त्र्यस्रभावात्पुनश्चापि पुरः पश्चात्तदान्यथा । 1121
स्थाने च कुट्टितः सा स्याच्चतुष्कोणनिकुट्टिता ॥११०४॥

जहाँ एक पैर को पहले कूटकर आगे-पीछे स्थापित किया जाय; फिर त्रिकोणभाव से आगे-पीछे रखा जाय; पुनः विपरीत भाव से स्थान पर कूटा जाय; ऐसी क्रिया को **चतुष्कोणनिकुट्टिता** चारी कहते हैं ।

१७. त्रिकोणचारी

अङ्घ्रिर्निवेशितो यत्र स्थापितोऽङ्गुलिपृष्ठतः । 1122
निकुट्टितः पुरः पार्श्वे पृष्ठे वाथ निवेशितः ॥११०५॥
अङ्घ्रिरङ्गुलिपृष्ठेन पुनः स्थाने च कुट्टितः । 1123
सोक्ता त्रिकोणचारीति सद्भिरन्वर्थनामभाक् ॥११०६॥

जहाँ पैर को प्रविष्ट करके उँगुलियों के पृष्ठभाग से स्थापित किया जाय; फिर कूटकर आगे या बगल में या पीछे प्रविष्ट किया जाय; अनन्तर उँगलियों के पृष्ठभाग से पुनः उसे स्थान पर कूटा जाय; ऐसी क्रिया को अर्थ के अनुरूप **त्रिकोणचारी** चारी कहते हैं ।

१८. तिरश्चीनकुट्टिता

अङ्घ्रिर्निकुट्टितः पूर्वं स्वपार्श्वपरपार्श्वयोः । 1124
मध्ये निवेशितः पश्चात्तिर्यक् तत्रैव कुट्टितः ॥११०७॥
यत्र सा स्यात्तिरश्चीनकुट्टितान्वर्थनामभाक् । 1125

पहले पैर को अपने पार्श्व तथा दूसरे (पैर) के पार्श्व में कूटकर मध्य में स्थापित किया जाय; पश्चात् वहीं पर उसे तिरछा करके कूटा जाय; ऐसी क्रिया को अर्थ के अनुरूप **तिरश्चीनकुट्टिता** चारी कहते हैं ।

१९. अनुलोमविलोमका

चारी त्रिकोणचारी चेदनुलोमविलोमगा ।
स्वस्थाने स्थापितपदा ततस्तत्रापि कुट्टिता । 1126
तदा निगदिता सद्भिरनुलोमविलोमका ॥११०८॥

यदि त्रिकोणचारी नामक चारी अनुलोम (यथाक्रम) और विलोम (विपरीतक्रम) को प्राप्त कर अपने स्थान में स्थापित चरण वाली बनती है, तथा वहाँ कूटी भी जाती है तो उसे सज्जन लोग **अनुलोमविलोमका** चारी कहते हैं ।

२०. प्रतिलोमानुलोमका

व्यत्यासाद्रचिता सैव प्रतिलोमानुलोमका ॥११०९॥ 1127

उक्त चारी को व्यतिक्रम करके बनाने से **प्रतिलोमानुलोमका** चारी होती है ।

२१. पुरस्ताल्लुठिता

पुरस्ताल्लुठिता सा स्याद्यत्राङ्घ्रिर्लुठितः पुरः ॥१११०॥

जहाँ पैर आगे लोटता है वहाँ **पुरस्ताल्लुठिता** चारी होती है ।

२२. पृष्ठलुठिता

पादश्चेत्कुञ्चितः पृष्ठे लुठितोऽङ्गुलिपृष्ठतः । 1128
पुनश्च लुठितः स्थाने स्यात् पृष्ठलुठिता तदा ॥११११॥

यदि पैर पृष्ठभाग में सिकुड़ा हुआ हो; उँगलियों के पृष्ठभाग से लोटा हुआ हो; और स्थान पर पुनः लोट जाय, तो उसे **पृष्ठलुठिता** चारी कहते हैं ।

२३. चक्रकुट्टिता

कुट्टयित्वा तु विन्यस्य भ्रामितो लुठितो यदि । 1129
कुट्टितोऽङ्घ्रिःपुनःस्थाने तदोक्ता चक्र(?वक्र)कुट्टिता ॥१११२॥

यदि पैंर को कूटकर स्थापित करके घुमाया तथा लोटाया जाय और पुनः स्थान पर कूटा जाय, तो उसे **चक्रकुट्टिता** चारी कहते हैं ।

२४. पार्श्वद्वयचरी

कुट्टितोऽङ्गुलिपृष्ठे च स्थितोऽङ्घ्रिरितरस्ततः । 1130
स्वस्तिकाद्विच्युतः पूर्वः स्वपार्श्वे च निकुट्टितः ।
एवमङ्घ्र्यन्तरेणापि पार्श्वद्वयचरी तदा ॥१११३॥ 1131

यदि कूटा हुआ पैर उंगुलियों के पृष्ठभाग में स्थित हों; दूसरा पैर स्वस्तिकमुद्रा से अलग हो; पहला अपने पार्श्व में कूटा जाय; इस प्रकार दूसरे पैर से भी किया जाय; ऐसी क्रिया को **पार्श्वद्वयचारी** कहते हैं ।

२५. मध्यलुठिता

कुट्टितः स्थापितोऽङ्घ्रिश्चेल्लुठितश्च निकुट्टितः ।
समादिष्टा तदा मध्यलुठिता नृत्तवेदिभिः ॥१११४॥ 1132

यदि एक पैर कूटा जाय, रखा जाय,लोटाया जाय और फिर कूटा जाय तो नृत्त के ज्ञाताओं ने उसे **मध्यलुपिठिता** चारी कहा है ।

प्रायशोऽमूः प्रयुज्यन्ते तालनृत्यविचक्षणैः ।
एताः समासतः प्रोक्ता ज्ञेया एवं परा अपि ॥१११५॥ 1133

ताल और नृत्य के विद्वान् इन चारियों का प्रयोग बहुलता से करते हैं । इनको संक्षेप में बताया गया है । इस प्रकार अन्य चारियों को भी जान लेना चाहिए ।

समवेत रूप में एक सौ ग्यारह मार्गदेशीस्थित चारियों का निरूपण समाप्त

# नृत्तकरण प्रकरण / ग्यारह

# नृत्तकरणों का निरूपण

**करण (हस्त-पाद-संयुक्त अभिनय)**

योऽङ्गोपाङ्गकरप्रचारकरणैः सन्तोषितः स्थानकैः ।
चारीभिश्च मनोहरो मुररिपुर्गोपाङ्गनाभिर्विभुः । 1134
नत्वाहं तमकिञ्चनं परिलसत्पीताम्बरालङ्कृतम् ।
संचक्षे करणं तु सम्प्रति मुदे नृत्तार्थिनां नृत्तवित् ॥१११६॥ 1135

जो मनमोहन श्रीकृष्ण अंगों तथा उपाँगों सहित हस्त-संचालन-रूप करणों, स्थानकों और चारियों के प्रयोग से गोपाँगनाओं द्वारा सन्तुष्ट (प्रसन्न) किये गये, उन अकिंचन तथा पीताम्बर से अलंकृत भगवान् को नमस्कार करके अब मैं नृत्तवित्, नृत्तार्थियों के मनोरंजन के लिए **करण** का निरूपण करता हूँ।

अविच्छिन्नरसा पाणिपादादेर्या निरन्तरा ।
क्रिया तन्नृत्तकरणं कीर्तितं नृत्तवेदिभिः ॥१११७॥ 1136

हाथ-पैर आदि (के संचालन) से निरन्तर एवं अविच्छिन्न रूप से रस का अभिभावन करने वाली जो क्रिया है, नाट्याचार्यों ने उसे अभिनय का **करण** कहा है।

**करण के भेद**

भेदान् कतिपयानस्य व्याहरे मुनिसम्मतान् ॥१११८॥

भरत मुनि द्वारा कथित या अभीष्ट उसके (करण के) कतिपय भेदों का मैं यहाँ निरूपण कर रहा हूँ।

तलपुष्पपुटं वक्षःस्वस्तिकं वर्तितं तथा । 1137
मण्डलस्वस्तिकं लीनमुन्मत्तं वलितोरु च ॥१११९॥
स्वस्तिकं स्वस्तिकान्यर्धदिक्पृष्ठोपपदानि च । 1138
आक्षिप्तरेचितालातभुजङ्गत्रासितानि च ॥११२०॥

कटीसमं कटीच्छिन्नं घूर्णितं च निकुञ्चितम् । 1139
निकुट्टार्धनिकुट्टे च विक्षिप्ताक्षिप्तकं तथा ॥११२१॥
अपविद्धं समनखं तथा स्वस्तिकरेचितम् । 1140
मत्तल्लि चार्धमत्तल्लि वलितं चार्धरेचितम् ॥११२२॥
ऊर्ध्वजानुकठिभ्रान्तं छिन्नं पादापविद्धकम् । 1141
भ्रमरं द[ण्ड] पक्षं च नूपुरं ललितं ततः ॥११२३॥
व्यंसितं चतुरं क्रान्तं भुजङ्गत्रस्तरेचितम् । 1142
भुजङ्गाञ्चितमाक्षिप्तोद्धट्टिते दण्डरेचितम् ॥११२४॥
वृश्चिकं वृश्चिकाद्ये च स्यातां रेचितकुट्टिते ॥११२५॥ 1143
लतावृश्चिकवैशाखरेचिते चक्रमण्डलम् ।
आवर्तकुञ्चिते दोलापादं तलविलासितम् ॥११२६॥ 1144
विवृत्तविनिवृत्ते च ललाटतिलकं ततः ।
विवर्तितमतिक्रान्तं विद्युद्भ्रान्तं निशुम्भितम् ॥११२७॥ 1145
उरोमण्डलविक्षिप्ते ततः पार्श्वनिकुट्टकम् ।
तलसंस्फोटितं गण्डसूचि सूच्यर्धसूचिनी ॥११२८॥ 1146
गजक्रीडितकं पार्श्वजानु स्याद् गरुडप्लुतम् ।
गृध्रावलीनकं दण्डपादं सन्नतसर्पिते ॥११२९॥ 1147
मयूरललितं सूचीविद्धं प्रेङ्खोलितं तथा ।
स्खलितं परिवृत्तं च करिहस्तं प्रसर्पितम् ॥११३०॥ 1148
पार्श्वक्रान्तं निवेशं च नितम्बं हरिणप्लुतम् ।
सिंहविक्रीडितं सिंहाकर्षितं जनितं तथा ॥११३१॥ 1149
[अवहित्थमथोद्वृत्तं तलसंघट्टितं तथा] ।
लोलितं शकटास्यं च वृषभक्रीडितं तथा ॥११३२॥ 1150

एलकाक्रीडितं तद्वद्विष्कम्भोपसृताभिधे ।
विष्णुक्रान्तमपक्रान्तमूरूद्वृत्ताञ्चिते ततः ॥११३३॥ 1151
सम्भ्रान्ताभिधमप्यन्यन्मदस्खलितमर्गलम् ।
स्याद्रेचकनिकुट्टाख्यं ततो नागापसर्पितम् ॥११३४॥ 1152
गङ्गावतरणं चेति शतमष्टोत्तरं मया ।
करणानां समुद्दिष्टं लक्ष्यलक्षणवेदिना ॥११३५॥ 1153

उनके नाम हैं : १. तलपुष्पपुट, २. वक्षःस्वस्तिक, ३. वर्तित, ४. मण्डलस्वस्तिक, ५. लीन, ६. उन्मत्त, ७. वलितोरु, ८. स्वस्तिक, ९. अर्धस्वस्तिक, १०. दिक्स्वस्तिक, ११. पृष्ठस्वस्तिक, १२. आक्षिप्तरेचित, १३. अलात, १४. भुजंगत्रासित, १५. कटीसम, १६. कटीच्छिन्न, १७. घूर्णित, १८. निकुञ्चित, १९. निकुट्टक, २०. अर्धनिकुट्टक, २१. विक्षिप्तक, २२. अपविद्ध, २३. समनख, २४. स्वस्तिकरेचित, २५. मत्तल्लि, २६. अर्धमत्तल्लि, २७. वलित, २८. अर्धरेचित, २९. ऊर्ध्वजानु, ३०. कटिभ्रान्त, ३१. छिन्न, ३२. पादापविद्धक, ३३. भ्रमर, ३४. दण्डपक्ष, ३५. नूपुर, ३६. ललित, ३७. व्यंसित, ३८. चतुर, ३९. क्रान्त, ४०. भुजंगत्रस्तरेचित, ४१. भुजंगाञ्चित, ४२. आक्षिप्त, ४३. उद्घट्टित, ४४. दण्डरेचित, ४५. वृश्चिक, ४६. वृश्चिकरेचित, ४७. वृश्चिककुट्टित, ४८. लतावृश्चिक, ४९. वैशाख-रेचित, ५०. चक्रमण्डल, ५१. आवर्त, ५२. कुञ्चित, ५३. दोलापाद, ५४. तलविलासित, ५५. विवृत्त, ५६. विनिवृत्त, ५७. ललाटतिलक, ५८. विवर्तित, ५९. अतिक्रान्त, ६०. विद्युद्भ्रान्त, ६१. निशुम्भित, ६२. उरीमण्डल, ६३. विक्षिप्त, ६४. पार्श्वनिकुट्टक, ६५. तलसंस्फोटित, ६६. गण्डसूचि, ६७. सूचि ६८. अर्धसूचि, ६९. गजक्रीडितक, ७०. पार्श्वजानु, ७१. गरुडप्लुत, ७२. मूर्धावलीनक, ७३. दण्डपाद, ७४. सन्नत, ७५. सर्पित, ७६. मयूरललित, ७७. सूचीविद्ध, ७८. प्रेङ्खोलित, ७९. स्खलित, ८०. परिवृत्त, ८१. करिहस्त, ८२. प्रसर्पित, ८३. पार्श्वक्रान्त, ८४. निवेश, ८५. नितम्ब, ८६. हरिणप्लुत ८७. सिंहविक्रीडित, ८८. सिंहाकर्षित, ८९. जनित, ९०. अवहित्थ, ९१. उद्वृत्त, ९२. तलसंघट्टित, ९३. लोलित, ९४. शकटास्य, ९५. वृषभक्रीडित, ९६. एलकाक्रीडित, ९७. विष्कम्भ, ९८. उपसृत, ९९. विष्णुक्रान्त, १००. अपक्रान्त, १०१. ऊरूद्वृत्त, १०२. अञ्चित, १०३. सम्भ्रान्त, १०४. मदस्खलितक, १०५. अर्गल, १०६. रेचकनिकुट्टक, १०७. नागापसर्पित और१०८. गंगावतरण । इन एक सौ आठ करणों को लक्ष्य एवं लक्षण के ज्ञाता मैंने बता दिया ।

**अन्य भेदोपभेद**

आनन्त्यात् स्थानचारीणाममीषामप्यनन्ततः ।
अतस्तानि न शक्यन्ते वक्तुं साकल्यतो बुधैः ॥११३६॥ 1154

स्थानकों, चारियों और करणों के भी अनन्त भेदोपभेद हैं। अतः विद्वज्जन भी उन सबका वर्णन करने में असमर्थ हैं।

**अङ्गहारोपयोगीनि करणानि कियन्त्यपि ।**
**लक्ष्यन्ते लक्ष्मविदुषामधुना साधुना मया ॥११३७॥** 1155

अब मैं नाट्य-लक्षणों के वेत्ता विद्वानों के लिए नृत्योपयोगी कुछ करणों का लक्षण-विनियोग बता रहा हूँ।

**बाहुल्यान्नर्तनारम्भे समावङ्घ्री लताकरौ ।**
**अङ्गं तु चतुरस्रं स्याद्विशेषस्त्वधुनोच्यते ॥११३८॥** 1156

नृत्य के आरम्भ में बहुधा सम स्थिति पैरों, लताकर हाथों और चतुरस्र अंग का उपयोग किया जाता है। अब उनके सम्बन्ध में विशेष निर्देश किया जा रहा है।

१. तलपुष्पपुट और उसका विनियोग

**विनिःसरति सव्येऽङ्घ्रौ चार्याध्यर्धिकया समम् ।**
**व्यावृत्तितः करद्वन्द्वे सव्यं पार्श्वं समाश्रिते ॥११३९॥** 1157
**परिवृत्त ततस्तस्मिन् सन्नतं पार्श्वमागते ।**
**यत्र तत्कुचदेशस्थो हस्तः पुष्पपुटाभिधः ॥११४०॥** 1158
**तलपुष्पपुटं त्वेतत् पादेऽग्रतलसञ्चरे ।**

अध्यर्धिका नामक चारी के साथ बाँयें पैर के बाहर की ओर निकल जाने पर, दोनों हाथों को घुमाकर बायें पार्श्व में अवस्थित कर देने पर, फिर उनको परिवृत्त कर सन्नत नामक पार्श्व के निकट पहुँच जाने पर, पुष्पपुट हस्त मुद्रा को कुचों के पास अवस्थित कर देना चाहिए; ऐसी क्रिया को **तलपुष्पपुट करण** कहते हैं। इस करण में अग्रतलसंचर नामक पैर का प्रयोग करना चाहिए।

**रङ्गे पुष्पाञ्जलिक्षेपे लज्जायामपि सुभ्रुवाम् ॥११४१॥** 1159

(सूत्रधार द्वारा) रंगमंच पर पुष्पांजलि-समर्पण और सुन्दरियों के लज्जा के भाव-प्रदर्शन में **तलपुष्पपुट करण** का विनियोग करना चाहिए।

२. वक्षःस्वस्तिक और उसका विनियोग

**चतुरस्रकरौ वक्षःस्थले कृत्वाथ रेचितौ ।**
**व्यावृत्त्या च समानीयाभुग्ने वक्षसि चेदिमौ ॥११४२॥** 1160

**क्रियेते स्वस्तिकौ यत्र स्वस्तिकौ चरणावपि ।**
**वक्षःस्वस्तिकमुक्तं तदनाभुग्नांसकं तदा ।** 1161

जब चतुरस्र मुद्रा में दोनों हाथों को वक्षस्थल पर करके रेचितावस्था में आर-पार घुमाकर और उन्हें आभुग्न (झुकाकर) वक्ष पर रख दिया जाय; तदनन्तर दोनों हाथों और दोनों पैरों को स्वस्तिकाकार बना दिया जाय; तो इस क्रिया को **वक्षःस्वस्तिक करण** कहते हैं । इसमें कन्धा झुका हुआ नहीं होना चाहिए ।

**लज्जानुतापयोरस्य प्रयोगः परिकीर्तितः ।।११४३।।**

लज्जा और पश्चात्ताप के अभिनय में **वक्षःस्वस्तिक करण** का विनियोग करना चाहिए ।

३. वर्तित और उसका विनियोग

**वक्षस्यभिमुखौ हस्तावालग्नमणिबन्धकौ ।** 1162
**स्वस्तिकौ युगपद्यत्र व्यावृत्तपरिवर्त्तितौ ।।११४४।।**
**कृत्वोत्तानावूरुयुगे पातयेद्वर्तितं त्वदः ।** 1163

यदि दोनों हाथों को सम्मुखावस्था में रखकर कलाइयों को किञ्चित् वक्ष पर सटा दिया जाय; और तदनन्तर स्वस्तिकाकार मुद्रा में दोनों को एक साथ आवृत-परिवृत कर घुमा दिया जाय; तदनन्तर दोनों हाथों की हथेलियों को उत्तान करके दोनों जाँघों पर गिरा दिया जाय; तो उसे **वर्तित करण** कहते हैं ।

**पातयेच्चेत्पताकौ द्वावसूयायां मतं तदा ।।११४४।।**
**अधोमुखौ निघृष्टौ तौ क्रोधाभिनयने मतौ ।** 1164
**अभिनेयवशादेवं शुकतुण्डादयः कराः ।।११४६।।**

दोनों हाथों की पताक मुद्रा में इस **वर्तित करण** का विनियोग असूया के अभिनय में करना चाहिए । यदि उन्हें अधोमुख करके गिरा दिया जाय तो मतान्तर से उनका विनियोग क्रोध के अभिनय में किया जाता है । कुछ आचार्यों के मत से अभिनय वस्तु के अनुसार वर्तित करण में शुकतुण्ड आदि हस्तों का प्रयोग किया जाता है ।

**केचिदत्रावदन् पादं तलपुष्पपुटोदितम् ।** 1165
**परे करानुगं प्राहुः पादं करणपण्डिताः ।।११४७।।**

कुछ आचार्यों का मत है कि उक्त विनियोगों में **तलपुष्पपुट करण** की पादमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए; किन्तु दूसरे करण-विशेषज्ञ नाटचाचार्यों का कहना है कि हस्तमुद्रा के अनुरूप पादमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए ।

४. मण्डलस्वस्तिक और उसका विनियोग

साधं [तु] विच्यवां कृत्वा चतुरस्रौ करौ ततः । 1166
उद्वेष्टितक्रियापूर्वमूर्ध्वमण्डलिहस्तकौ ॥११४८॥
प्रयुज्य स्वस्तिकौ यत्र कुर्यात् स्थाने तु मण्डलम् । 1167
मण्डलस्वस्तिकमिदम्–

यदि विच्यवा नामक चारी तथा चतुरस्र दोनों हस्तों की रचना करके चारों ओर घेरने की प्रक्रिया के साथ ऊर्ध्व-मण्डल स्थिति में हाथों को प्रयुक्त किया जाय; और तदनन्तर दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में और मण्डल नामक स्थान की रचना की जाय; तो उसे **मण्डलस्वस्तिक करण** कहते हैं ।

–प्रसिद्धार्थनिरीक्षणे ॥११४९॥

किसी प्रसिद्ध वस्तु के निरीक्षण के अभिनय में **मण्डलस्वस्तिक करण** का विनियोग होता है ।

५. लीन और उसका विनियोग

ऊर्ध्वमण्डलिनौ पाणी विधायोरस्स्थितोऽञ्जलिः । 1168
यदा निकुञ्चितं स्कन्धयुगं ग्रीवा नता भवेत् ।
तदा लीनम्–

यदि ऊर्ध्वमण्डलिन् नामक दोनों हाथों की रचना करके हथेलियों से अंजलि बनाकर, दोनों कन्धों को निकुंचित और नता ग्रीवा का निर्माण किया जाय; तो वह **लीन करण** होता है ।

–वल्लभायाः प्रार्थनायां नियुज्यते ॥११५०॥ 1169

प्रेयसी से अनुनय-विनय करने के अभिनय में **लीन करण** का विनियोग होता है ।

६. उन्मत्त और उसका विनियोग

यत्र विद्धाभिधा चारी चरणस्त्वञ्चिताभिधः ।
क्रमेण रेचितो हस्तस्तदुन्मत्तमुदीरितम् । 1170

जहाँ विद्धा नामक चारी, अंचित नामक चरण और रेचित नामक हस्त की क्रमशः रचना की जाय, वहाँ **उन्मत्त करण** होता है ।

सौभाग्यादिसमुद्भूते गर्वे स्त्रीणामिदं मतम् ॥११५१॥

स्त्रियों के सौभाग्य आदि से उत्पन्न गर्व के अभिनय में **उन्मत्त करण** का विनियोग किया जाता है ।

७. वलितोरु और उसका विनियोग

कृत्वोरसि समं पाणी व्यावृत्तपरिवर्तितौ । 1171
सहाक्षिप्ताख्यया चार्या यत्रोरौ परिवृत्तितः ॥११५२॥
आनीय शुकतुण्डाख्यौ क्रियेतेऽधोमुखौ करौ । 1172
बद्धया स्थितिरेवं चेत् स्यात्तदा वलितोरु तत् ।

यदि वक्षस्थल पर दोनों हाथों को एक साथ व्यावृत्त तथा परिवृत बनाया जाय और आक्षिप्ता नामक चारी के साथ परिवर्त्तन द्वारा ऊरु पर लाकर शुकतुण्ड मुद्रा में दोनों हाथों को अधोमुख करके रखा जाय; तदनन्तर बद्धा नामक चारी द्वारा स्थिति की जाय, तो उसे **वलितोरु करण** कहते हैं ।

एतन्नियुज्यते धीरैर्लज्जायां मुग्धयोषिताम् ॥११५३॥ 1173

मुग्धा नामक नायिका की लज्जा के अभिनय में धीर पुरुष **वलितोरु करण** का विनियोग कहते हैं ।

८. स्वस्तिक और उसका विनियोग

उद्वेष्ट्य निर्गतौ यत्र करौ व्यावर्तितौ समम् ।
उत्प्लुत्य पाणिचरणरचितः स्वस्तिको भवेत् । 1174

यदि दोनों हाथों को चारों ओर से घुमा कर एक साथ ही व्यार्वाततावस्था में किया जाय और उछलकर हाथों की भाँति पैरों की भी स्वस्तिक मुद्रा में रचना की जाय, तो उसे **स्वस्तिक करण** कहते हैं ।

तत्स्वस्तिकं सराभस्य निषेधान्वेषणादिषु ॥११५४॥

सब प्रकार की दुर्भावनाओं को दूर करने तथा अन्वेषण आदि के अभिनय में **स्वस्तिक करण** का विनियोग होता है ।

९. अर्धस्वस्तिक और उसका विनियोग

चरणः स्वस्तिकः सव्यः करः करिकराभिधः । 1175
खटको हृदि वामश्चेत्तदार्धस्वस्तिकं मतम् ॥११५५॥

यदि एक पैर को स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित किया जाय और दाहिना हाथ करिहस्त मुद्रा में तथा बायाँ हाथ खटक हस्त मुद्रा में हृदय पर रखा जाय, तो उसे **अर्धस्वस्तिक करण** कहते हैं ।

करं करिकरं केचिदत्र प्रोचुः कटिंस्थितम् । 1176
अर्धचन्द्रकरं सव्यं कुर्याद्वा पक्षवञ्चितम् ।
पक्षप्रद्योतमथवा कटिदेशगतं त्विह ॥११५६॥ 1177

कुछ नाटयाचार्यों का अभिमत है कि करिहस्त मुद्रा को कटि पर रखना चाहिए। दाहिने हाथ को अर्धचन्द्र मुद्रा में अथवा पक्षवञ्चित मुद्रा में अथवा पक्षप्रद्योत मुद्रा में बनाकर कटि पर अवस्थित करना चाहिए। (अर्धस्वस्तिक इसे इसलिए कहा गया है कि इसमें केवल पैर को ही स्वस्तिक मुद्रा में रखा जाता है)।

**१०. दिक्स्वस्तिक और उसका विनियोग**

क्रियते स्वस्तिको यत्र पाणिपादविनिर्मितः ।
ललिताङ्गश्चतुर्दिक्षु तद् दिक्स्वस्तिकमुच्यते । 1178

यदि हाथ-पैर दोनों को स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित किया जाय और चारों दिशाओं में ललित नामक अंग का निर्माण किया जाय, तो उसे **दिक्स्वस्तिक करण** कहते हैं।

नियुज्यते बुधैरेतद् गीतस्य परिवर्तने ॥११५७॥

विद्वानों के मत से गाने के समय शरीर की गति दिखाने में **दिक्स्वस्तिक करण** का विनियोग होता है।

**११. पृष्ठस्वस्तिक और उसका विनियोग**

चारीं कुर्वन्नपक्रान्तां विक्षिप्योद्वेष्टितौ भुजौ । 1179
ततोऽपवेष्टच चाक्षिप्याऽन्याङ्घ्रि सूचीं विधाय च ॥११५८॥
पादाभ्यां यत्र पाणिभ्यां पृष्ठे स्वस्तिकमाचरेत् । 1180
तत् पृष्ठस्वस्तिकं ज्ञेयम्—

यदि दोनों उद्वेष्टित भुजाओं को अपक्रान्ता चारी में व्यवस्थित करने के अनन्तर उन्हें अलग-अलग करके पीछे की ओर घुमा दिया जाय; पैर को सूची नामक मुद्रा में अवस्थित किया जाय; तत्पश्चात् दोनों पैरों और दोनों हाथों से पृष्ठ भाग में (पीठ पीछे) स्वस्तिक मुद्रा बनायी जाय, तो उसे **पृष्ठस्वस्तिक करण** (पीठ पर स्वस्तिक बनाना) कहते हैं।

—सराभस्ये निषेधने ।
अन्यान्वेषणसम्भाषे युद्धस्य च परिक्रमे ॥११५९॥ 1181

सब प्रकार की दुर्भावनाओं को दूर करने, निषेध करने, दूसरे को ढूंढ़ने, संभाषण करने और युद्धस्थल के चारों ओर घूमने के अभिनय में **पृष्ठस्वस्तिक करण** का विनियोग होता है। (इस अभिनय में नर्तकी सभास्थल की ओर पीठ भी कर सकती है)।

१२· आक्षिप्त रेचित और उसका विनियोग

हृदि स्थितौ करावूर्ध्वं व्यावृत्या प्राप्य चेत्ततः।
विक्षिप्य पार्श्वयोस्तत्र करमेकमधोमुखम् ॥११६०॥ 1182
द्रुतभ्रमं हंसपक्षं वक्षस्याक्षिप्य चेत्परम्।
करमेवंविधं यत्र रेचयेत्तदनन्तरम् ॥११६१॥ 1183
स्यातां सूच्यञ्चितावङ्घ्री तत् तदाक्षिप्तरेचितम्।

हृदय पर अवस्थित दोनों हाथों को ऊपर घुमाकर यदि पार्श्वों में डाल दिया जाय; तदनन्तर एक हाथ को अधोमुख करके दूसरे हंसपक्ष हस्त को तेजी से घुमाते हुए वक्ष पर फेंक दिया जाय; दूसरे हाथ को भी इसी मुद्रा में अवस्थित किया जाय; तदनन्तर दोनों पैरों को सूची और अंचित मुद्राओं में बना दिया जाय; तो उस मुद्रा को **आक्षिप्त रेचित करण** कहते हैं।

दर्शयेदमुना त्यागपरिग्रहपरम्पराम् ॥११६२॥ 1184

त्याग और परिग्रह का भाव प्रकट करने अथवा परम्परानुसार **आक्षिप्त रेचित करण** का विनियोग होता है।

१३. अलात और उसका विनियोग

यत्राऽलाताभिधा चारी नितम्बश्चतुरस्रकः।
पाणिः स्याद्दक्षिणे भागेऽथोर्ध्वजानुस्तु वामतः ॥११६३॥ 1185
यदैवमन्यदङ्गं स्यात् तत् तदालातमीरितम्।

यदि (पैरों में) अलाता चारी, नितम्ब चतुरस्र स्थिति में, एक हाथ दक्षिण भाग में, बायाँ घुटना उठा हुआ और अन्य अंग भी यथास्थान हो, तो वहाँ **अलात करण** होता है।

नृत्ये सललिते वीरसिंहजेन महीभुजा ॥११६४॥ 1186

ललित-भाव-सूचक नृत्य में **अलात करण** का विनियोग होता है, ऐसा अशोकमल्ल (वीरसिंह सुत) का अभिमत है।

१४. भुजंगत्रासित

भुजङ्गत्रासितां चारीं विधायाङ्‌घ्रि तु कुञ्चितम् ।
उत्क्षिप्योरुकटीजानु यदि त्र्यस्रं विवर्त्तयेत् ॥११६५॥ 1187
व्यावृत्त्या परिवृत्त्या च यत्रैको दोलसंज्ञकः ।
करोऽन्यः खटकास्यस्तद्भुजङ्गत्रासितं तदा ॥११६६॥ 1188

यदि भुजंगत्रासिता चारी में अवस्थित पैर को कुंचित करके तथा कटि और जानु को उछाल कर त्रिकोण में घुमाया जाय; और एक हाथ को दोल मुद्रा तथा दूसरे को खटकामुख मुद्रा में अवस्थित करके व्यावृत्त-परिवृत्त (आर-पार) किया जाय, तो उसे **भुजंगत्रासित करण** (सर्प से भयभीत) कहते हैं।

१५. कटीसम और उसका विनियोग

कृत्वाक्षिप्तामपक्रान्तां चारीं चाथ करावुभौ ।
स्वस्तिकीकृत्य नाभौ तु दक्षिणं खटकामुखम् ॥११६७॥ 1189
अर्धचन्द्रं परं कट्यां कुर्यात् पार्श्वं तु सन्नतम् ।
एकमुद्वाहितं त्वन्यदेवमङ्गान्तरैरपि ॥११६८॥ 1190
आवृत्तिर्वैष्णवं स्थानं यत्र तत्स्यात्कटीसमम् ।

पहले अपक्रान्ता नामक चारी की रचना करके दोनों हाथों को स्वस्तिकाकार बनाया जाय; तदनन्तर दाहिने हाथ को खटकामुख मुद्रा में नाभि पर और बायें हाथ को अर्धचन्द्र मुद्रा में कटि पर अवस्थित किया जाय; एक पार्श्व को संनत और दूसरे को उद्वाहित में रखा जाय; अन्य अंगों को भी यथास्थान व्यवस्थित किया जाय; फिर वैष्णव स्थानक की रचना की जाय। इस नृत्य-मुद्रा को **कटीसम करण** (समान कटी) कहा जाता है।

सूत्रधारेण तद्योज्यं जर्जरस्याभिमन्त्रणे ॥११६९॥ 1191

सूत्रधार द्वारा जर्जर का आवाहन करने के अभिनय में **कटीसम करण** का विनियोग होता है।

१६. कटीच्छिन्न और उसका विनियोग

पार्श्वतो भ्रमरीं कृत्वा मण्डलस्थानमाश्रितः ।
विधायैकां कटीं छिन्नां पल्लवं भुजमूर्धनि ॥११७०॥ 1192
एवमङ्गान्तरेणापि द्विस्त्रिर्वावृत्तयः कृताः ।
यत्र तत्तु कटीछिन्नं करणं कीर्तितं बुधैः ॥११७१॥ 1193

पहले पार्श्व में भ्रमरी नामक चारी बना दी जाय और तदनन्तर मण्डल नामक स्थानक की रचना की जाय; फिर छिन्ना नामक कटि तथा भुजा के शीर्ष भाग में पल्लव नामक हस्त की रचना की जाय; इसी प्रकार अन्य अंगों की भी रचना करके फिर दो-तीन बार आवृत्तियाँ की जायँ। इस अभिनय-मुद्रा को विद्वानों ने **कटीच्छिन्न करण** (टूटी कटि) कहा है।

१७. घूर्णित

**यत्रोर्ध्वदेशगो हस्तो व्यावृत्त्या दक्षिणस्ततः।**
**परिवृत्त्या त्वधः पार्श्वदेशाद्भ्रान्तिं समाचरेत् ॥११७२॥** 1194
**तद्दिकोऽङ्घ्रिः समाश्रित्य जङ्घास्वस्तिकतामनु।**
**कुर्याच्चारीमपक्रान्तां दोलाख्यमपरं करम्।** 1195
**तद् घूर्णितं केचिदाहुरुत्प्लुत्य स्वस्तिकं त्विह ॥११७३॥**

यदि आरम्भ में दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर घुमा दिया जाय और बाद में परिवर्तित कर नीचे पार्श्व भाग में कम्पित कर दिया जाय; फिर उस दिशा में अवस्थित पैर और जँघा में स्वस्तिक मुद्रा की रचना की जाय; तत्पश्चात् अपक्रान्ता नामक चारी का आश्रय ग्रहण किया जाय और दूसरे बायें हाथ में दोला मुद्रा धारण की जाय। अभिनय की इस स्थिति को **घूर्णित करण** कहते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि इस अभिनय में उछलकर बायें हाथ से स्वस्तिक मुद्रा बनानी चाहिए।

१८. निकुञ्चित और उसका विनियोग

**विधाय वृश्चिकं पादं यत्र तद्दिग्गतं करम्।** 1196
**शिरस्यरालमारच्य नासादेशार्जवेन चेत् ॥११७४॥**
**उरस्यरालमपरं तत् तदा स्यान्निकुञ्चितम्।** 1197

एक पैर से वृश्चिक स्थानक की रचना करके उसी दिशा में हाथ को भी ले जाया जाय; फिर शिर पर (दायें) अराल हस्त को बना कर नासिका की सीध पर रखा जाय; तदनन्तर छाती पर दूसरे (बायें) अराल हस्त की रचना की जाय। इस अभिनय-स्थिति को **निकुञ्चित करण** कहते हैं।

**तदौत्सुक्ये वितर्के च गगनोत्पतनादिषु।**

उत्सुकता, वितर्क और आकाश से गिर जाने आदि के अभिनय में **निकुञ्चित करण** का विनियोग होता है।

**केचित्पताकसूच्यास्यावत्र नासाग्रगौ जगुः ॥११७५॥** 1198

कुछ विद्वानों का मत है कि निकुञ्चित करण-मुद्रा में पताक तथा सूच्यास्य हस्तों को नासिका के अग्रभाग में अवस्थित करना चाहिए ।

१९. निकुट्टक

कृत्वादौ मण्डलस्थानं चतुरस्रतया करम् ।
सव्यमुद्वेष्टितेनांसशीर्षमानीय यत्र तत् ॥११७६॥ 1199
पतनोत्पतनोपेतकनिष्ठाद्यङ्गुलीद्वयम् ।
विदध्यादलपद्मं तमङ्घ्रिमुद्घट्टयेत्करम् ॥११७७॥ 1200
सव्यमाविद्धवक्रत्वं नीत्वाथ चतुरस्रकम् ।
कुर्यादेवं वामपाणिपादं तत् स्यान्निकुट्टकम् । 1201

आरम्भ में मण्डल नामक स्थानक की रचना करके बाँये हाथ को चतुरस्र मुद्रा में अवस्थित किया जाय; फिर उसे चारों ओर से घुमावदार बना कर कन्धे के ऊपर लाकर कनिष्ठा तथा अनामिका उँगलियों को क्रमशः गिरने तथा उठने की स्थिति में किया जाय; तत्पश्चात् अलपद्म हस्त की रचना करके एक पैर को अलग किया जाय; फिर दायें हाथ को अविद्धवक्र बनाकर चतुरस्र स्थिति में लाया जाय; यही प्रक्रिया पैर से भी की जाय। अभिनय की इस स्थिति को **निकुट्टक करण** कहते हैं ।

२०. अर्धनिकुट्टक

अङ्गेनैकेन रचितमिदमर्धनिकुट्टकम् ॥११७८॥

यदि निकुट्टक करण की एक ही अंग से रचना की जाय, तो वह **अर्धनिकुट्टक करण** कहलाता है ।

२१. विक्षिप्ताक्षिप्तक और उसका विनियोग

सव्यावृत्तौ करे सोऽङ्घ्रिर्बहिर्विक्षिप्यते यदि । 1202
चतुरस्रस्तदान्योऽथ प्राक्तनः परिवृत्तियुक् ॥११७९॥
पाणिपादः स आक्षिप्तो यत्राङ्गमपरं क्रमात् । 1203
एवमेवं भवेदेतद्विक्षिप्ताक्षिप्तकं तदा ॥११८०॥

यदि दायें हाथ को बायीं ओर घुमा दिया जाय और पैर को बाहर की ओर प्रसारित किया जाय; इसी तरह दूसरे चतुरस्र हस्त को भी घुमाया जाय; फिर हाथ, पैर और तदनन्तर क्रमशः एक-एक अंग का संचालन किया जाय; तो उस अभिनय-स्थिति को **विक्षिप्ताक्षिप्तक करण** कहते हैं ।

गतागते वदन्त्यस्य नियोगं केऽपि सूरयः । 1204
स नेष्टो नाट्यविदुषां यतोऽभिनयपाणिभिः ॥११८१॥

नाटचाचार्यों की एक परम्परा जाने-आने के अभिनय में इस करण का विनियोग बताती है; किन्तु दूसरी परम्परा के नाटचाचार्यों को यह अभिमत मान्य नहीं है। उनका कथन है कि इस करण में हस्ताभिनय की प्रमुखता है, और गमनागमन में तो पादों का प्रयोग होता है, जो उचित नहीं है।

वाक्यार्थाभिनयः कार्यः प्राधान्येनाभिनेतृभिः । 1205
इदं तु सद्भिराख्यातं नृत्यमात्रपरं ततः ॥११८२॥

सज्जनों के निर्देश से इस करण में अभिनेताओं को मुख्य रूप से गीत और भाव (वाक्यार्थ) का अभिनय करना चाहिए; क्योंकि अभिनय ही उसका एकमात्र प्रयोजन है।

प्रयोज्यमेतन्नाट्याङ्गं विच्छेदे सन्धिगुप्तये । 1206
यदि तालयादीनां गतीनां च परिक्रमे ॥११८३॥
तथा तालानुसन्धाने तथा युद्धनियुद्धयोः । 1207
चारीस्थानकसंयोगेऽप्येतत्करणमीरितम् ॥११८४॥

अलग होने, सन्धि के गोपन, ताल-लय आदि की गतियाँ, परिक्रमा, ताल के अनुसन्धान, युद्ध, कुस्ती और चारी-स्थानक-संयुक्त अभिनय में इस नाटचांगभूत करण का प्रयोग करना चाहिए।

२२· अपविद्ध और उसका विनियोग

चतुरस्रं समाश्रित्य सव्यं व्यावर्त्य हस्तकम् । 1208
निस्सार्याक्षिप्तया चार्या कृत्वा तद्दिग्भवं करम् ।

यदि बायें हाथ को चतुरस्र मुद्रा में अवस्थित करके (दाहिनी ओर) घुमाकर और उसी दिशा के दूसरे दायें हाथ को आक्षिप्ता चारी धारण कर उसे बाहर की ओर निःसारित कर दिया जाय, तो उसे **अपविद्ध करण** कहते हैं।

[शु[1]कतुण्डं करं तस्यैवोरौ तु परिपातयेत् । 1209
यत्रापविद्धं तद्वामे वक्षःस्थे खटकामुखे ।]

अथवा—यदि बायें हाथ को शुकतुण्ड मुद्रा में बनाकर उसे बायें ही ऊरु पर गिरा दिया जाय और दूसरे दायें हाथ को खटकामुख मुद्रा में अवस्थित कर बायें वक्ष पर रख दिया जाय, तो उसे **अपविद्ध करण** कहते हैं।

---

१. देखिए : संगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ६०२, ३।

असूयायां तथा कोपे विनियोगोऽस्य दर्शितः ॥११८५॥ 1210

असूया तथा क्रोध के अभिनय में अपविद्ध करण का विनियोग होता है ।

२३. समनख और उसका विनियोग

यत्र गात्रं स्वभावस्थमङ्घ्री समनखौ युतौ ।
लताकरो समनखम्–

जहाँ शरीर स्वाभाविक स्थिति में वर्तमान हो; दोनों पैर समान नखयुक्त हों; और दोनों हाथ लताहस्त मुद्रा में हों; वहाँ समनख करण होता है ।

–एतदाद्यप्रवेशने ॥११८६॥ 1211

आद्य वस्तु के प्रवेश करने के अभिनय में समनख करण का विनियोग होता है ।

२४. स्वस्तिकरेचित और उसका विनियोग

चतुरस्रः स्थितो यत्र विधाय त्वरितभ्रमौ ।
हंपक्षाभिधौ हस्तौ व्यावृत्योर्ध्वं शिरःस्थलात् ॥११८७॥ 1212
सम्प्राप्य परिवृत्याधः प्राप्तावाविद्धवक्रकौ ।
स्वस्तिकौ हृदयक्षेत्रे क्रियेते तदनन्तरम् ॥११८८॥ 1213
विप्रकीर्णौ ततः कट्यां पक्षवञ्चितकौ ततः ।
पक्षप्रद्योतकौ हस्तौ चारी तदनुगा ततः ॥११८९॥ 1214
अवहित्थाभिधं स्थानमेतत्स्वस्तिकरेचितम् ।

पहले चतुरस्र मुद्रा में एक हाथ को अवस्थित किया जाय; फिर हंसपक्ष दोनों हाथों को शीघ्रता से घुमा दिया जाय; तदनन्तर उन्हें ऊपर मस्तक प्रदेश से घुमाते हुए नीचे लाकर आविद्धवक्र हाथों में परिवर्तित कर दिया जाय; तत्पश्चात् दोनों हाथों में स्वस्तिक मुद्रा धारण कर उन्हें हृदय पर रख दिया जाय; पुनः उन्हें विप्रकीर्ण मुद्रा में रच कर कटि में रख दिया जाय; फिर उन्हें क्रमशः पक्षवंचितक और पक्षप्रद्योतक मुद्राओं में अवस्थित किया जाय; और तदनन्तर चारी और तदनुरूप अवहित्थ स्थानक की रचना की जाय । इस अभिनय-भेद को स्वस्तिकरेचित करण कहते हैं ।

निरूपितमिदं धीरैः हर्षस्थादिनिरूपणे ॥११९०॥ 1215

आनन्दित व्यक्ति आदि के भावाभिव्यंजन में, धीर पुरुषों के मत से, **स्वस्तिकरेचित करण** का विनियोग करना चाहिए ।

**२५. मत्तल्लि और उसका विनियोग**

**स्वस्तिकं गुल्फयोर्बद्ध्वा यत्राङ्घ्र्योरपसर्पणम् ।**
**सममुद्वेष्टितौ पाणी तथा तावपवेष्टितौ ।** 1216
**विदध्यादसकृत् तत् स्यान्मत्तल्लि–**

यदि दोनों टखनों को स्वस्तिकाकार में बाँधकर पैरों से लुढ़कते हुए चला जाय और साथ ही दोनों हाथों को मोड़कर फिर खोल दिया जाय; इस प्रकार बार-बार करते रहने से जो अभिनय-मुद्रा बनती है, उसे **मत्तल्लि करण** कहते हैं ।

**–मदसूचकम् ॥११६१॥**

मद के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

**२६. अर्धमत्तल्लि और उसका विनियोग**

**स्खलितापसृतावङ्घ्री चेद्वामो रेचितः करः ।** 1217
**परः कटौ तदा चार्धमत्तल्लि–**

यदि दोनों पैर फिसलते तथा लुढ़कते हों और बायाँ हाथ रेचित मुद्रा में तथा दाहिना हाथ कटि पर अवस्थित हो, तो उसे **अर्धमत्तल्लि करण** कहते हैं ।

**–तरुणे मदे ॥११६२॥**

अत्यन्त मदमत्तता के अभिनय में **अर्धमत्तल्लि करण** का विनियोग होता है ।

**२७. वलित**

**अपसर्पति सूच्याख्ये देहदेशात्करे यदा ।** 1218
**अपेतश्चरणः सूची चारी तु भ्रमरी क्रमात् ।**
**एवमङ्गान्तरेणापि यत्र तद्वलितं तदा ॥११६३॥** 1219

जब शरीर से सूचास्य हस्त अपसर्पित हो और पैर से क्रमशः सूची, चारी तथा भ्रमरी मुद्रा धारण कर गमन किया जाय; और दूसरे अंगों से भी इसी प्रकार की क्रिया की जाय, तब उसे **वलित करण** कहते हैं ।

२८. अर्धरेचित

मण्डलस्थानमाश्रित्य खटकास्यं यदा हृदि ।
कृत्वा कुर्यात्करं सूची [मुखं चैव] तदन्तिके ॥११६४॥ 1220
तद्दिक्कं पादमुद्घाट्य सन्नतं पार्श्वमाचरेत् ।
तदापसरणे प्रोक्तं नृत्तज्ञैरर्धरेचितम् ॥११६५॥ 1221

जब मण्डल स्थानक में अवस्थित होकर खटकामुख हस्त को हृदय पर रख दिया जाय; फिर उसे सूचीमुख हस्त बना दिया जाय। जिस दिशा में हाथ हो उसी दिशा में एक पैर को बढ़ाया जाय; पार्श्व को सन्नत मुद्रा में अवस्थित किया जाय; उसके बाद पीछे हटा जाय; तब उस क्रिया को **अर्धरेचित करण** कहते हैं।

२९. ऊर्ध्वजानु

ऊर्ध्वजानौ यदा चार्या कुञ्चितेऽङ्घ्रावसो करः ।
अलपद्मोऽथवारालः पक्षवञ्चितकोऽथवा ॥११६६॥ 1222
ऊर्ध्वास्यः कुचसाम्यस्थजानुनः खटकोऽपरः ।
वक्षःस्थः स्यात्तदा धीरैरूर्ध्वजानु प्रकीर्त्तितम् ॥११६७॥ 1223

जब ऊर्ध्वजानु नामक चारी तथा कुञ्चित नामक पैरों की स्थिति में अलपद्म या अराल अथवा पक्षवंचितक नामक हाथ ऊर्ध्वमुख रहे और दूसरा खटकामुख हाथ कुच की समानता में अवस्थित, घुटने पर से होते हुए वक्ष पर रख दिया जाय, तो धीर पुरुषों ने उसे **ऊर्ध्वजानु करण** कहा है।

३०. कटिभ्रान्त और उसका विनियोग

अपसर्पे द्रुतं वामं चरणं यत्र तस्य तु ।
पार्श्वे न्यस्येत्परं सूचीं ततश्चेद्भ्रामयेत्कटिम् ॥११६८॥ 1224
कुर्याद्वा भ्रमरीं पाणी व्यावृत्तपरिवर्तितौ ।
वैष्णवस्थानमन्ते तत् कटिभ्रान्तं तदा मतम् ॥११६९॥ 1225

पीछे हटने की शीघ्रता की स्थिति में बायें चरण को पार्श्व भाग में रख दिया जाय; फिर दूसरे दायें पैर को सूची मुद्रा में कर दिया जाय और तत्पश्चात् कटि को घुमाया जाय; अथवा भ्रमरी चारी की रचना कर दोनों हाथों को व्यावृत्त-परिवृत्त किया जाय; अन्त में वैष्णव नामक स्थानक का निर्माण किया जाय; इस क्रिया को **कटिभ्रान्त करण** कहते हैं।

तालानामन्तरालेषु गतीनां च परिक्रमे ।
यतीनां परिपूर्तौ च सद्भिरेतन्नियुज्यते ॥१२००॥ 1226

सज्जनों के मतानुसार तालों के मध्य भाग, गतियों के घुमाव और यतियों (संन्यासियों) की पूर्ति के अभिनय में **कटिभ्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

**३१. छिन्न और उसका विनियोग**

क्रमात् करौ कटीपार्श्वदेशे चेदलपल्लवौ ।
छिन्ना कटी च वैशाखस्थानं छिन्नं तदोदितम् । 1227

यदि अलपल्लव मुद्रा में दोनों हाथों को क्रमशः कटिपार्श्व में रख दिया जाय; कटि छिन्ना मुद्रा में हो; और अन्त में वैशाख स्थानक की रचना की जाय; तो उसे **छिन्न करण** कहते हैं ।

तदङ्गप्रतिसारे स्यात् तथा तालप्रभञ्जने ॥१२०१॥

अंगों को फैलाने और ताल ठोकने के अभिनय में **छिन्न करण** का विनियोग होता है ।

**३२. पादापविद्धक**

खटकास्यौ यदा पाणी नाभिक्षेत्रे पराङ्मुखौ । 1228
सूच्याङ्घ्रिः परपादेन युक्तोऽपक्रान्तया युतः ।
अपरश्चरणोऽथैव तदा पादापविद्धकम् ॥१२०२॥ 1229

जब खटकास्य नामक दोनों हाथ नभिदेश में पराङ्मुख होकर रहें; सूची नामक पैर दूसरे पैर से जुड़ा हो; और दूसरा पैर अपक्रान्ता नामक चारी में हो; तब वह **पादापविद्धक करण** होता है ।

**३३. भ्रमर और उसका विनियोग**

कुर्वन्नाक्षिप्तचार्याङ्घ्रि पाणिमुद्वेष्टच चेत्ततः ।
वलितं तु त्रिकं कुर्यात् स्वस्तिकं पादसम्भवम् ॥१२०३॥ 1230
यत्रापराङ्गमेवं स्यादुल्बणावेकदा करौ ।
तत् तदा भ्रमरं ज्ञेयम्—

जब पहले हाथ-पैर में आक्षिप्ता नामक चारी को धारण करके त्रिक का वलय किया जाय (कटि भाग को झुका दिया जाय); फिर पैरों की स्वस्तिक मुद्रा बना ली जाय; इसी प्रकार अन्य अंगों की भी रचना की जाय; अन्त में एक बार उल्वण हाथों की रचना की जाय; तब उसे **भ्रमर करण** कहते हैं ।

—उद्धृतस्य परिक्रमे ॥१२०४॥ 1231

वेग से चक्कर काटने के अभिनय में **भ्रमर करण** का विनियोग होता है।

**३४. दण्डपक्ष**

चारी यत्रोर्ध्वजानुः स्यात् करौ स्यातां लताकरौ।
तत्रैकं निक्षिपेदूर्ध्वजानूपरि यदा पुनः। 1232
एवमङ्गान्तरेणापि दण्डपक्षमिदं तदा ॥१२०५॥

जहाँ ऊर्ध्वजानु चारी तथा दोनों लताहस्त हों और फिर एक हाथ को ऊर्ध्वजानु के ऊपर रख दिया जाय; इसी प्रकार अन्य अंगों को भी संचालित किया जाय; वहाँ **दण्डपक्ष करण** होता है।

**३५. नूपुर**

विरच्य भ्रमरीं चारीमथ नूपुरपादिकाम्। 1233
अङ्घ्रिणैकेन तत्पाणिं विदध्याद्रेचितं यदि।
परं लताकरं हस्तं तदोक्तं नूपुरं बुधैः ॥१२०६॥ 1234

यदि एक पैर से भ्रमरी नामक चारी की रचना करने के पश्चात् नूपुरपादिका नामक चारी को बनाया जाय; फिर एक हाथ को रेचित और दूसरे को लता मुद्रा में अवस्थित किया जाय, तो बुधजनों के मतानुसार उसे **नूपुर करण** कहते हैं।

**३६. ललित और उसका विनियोग**

सव्यः करः केशबन्धनितम्बादिकवर्तनाः।
यत्राऽथ हस्तको वामो भवेत् करिकरस्ततः ॥१२०७॥ 1235
उद्घट्टितोऽङ्घ्रिरन्याङ्गमप्येवं ललितं तु तत्।

जहाँ दायाँ हाथ केशबन्ध तथा नितम्ब आदि वर्तना में हो और बायाँ हाथ कटिहस्त मुद्रा में हो; एक पैर उद्घट्टित और अन्य अंग भी इसी प्रकार संचालित होते हों; वहाँ **ललित करण** होता है।

विलासिनि सुधीधुर्याशोकमल्लेन कीर्तितम् ॥१२०८॥ 1236

नाट्याचार्य अशोकमल्ल के मत से विलासी के अभिनय में **ललित करण** का विनियोग होता है।

३७. व्यंसित और उसका विनियोग

पाणिमुद्वेष्टच यत्रैकोऽधोगतो विप्रकीर्णितः ।
परावृत्य परस्ताद्दगूर्ध्वं हृदयगस्ततः ॥१२०६॥ 1237
उत्तानितो रेचितः स्यादेकोऽन्योऽधोमुखस्तथा ।
स्थानमालीढसंज्ञं चेत् तत्तदा व्यंसितं मतम् । 1238

जहाँ एक हाथ को उद्वेष्टित करके दूसरे विप्रकीर्ण हस्त को उसके नीचे लाया जाय; फिर घुमाकर उसे ऊपर हृदय पर अवस्थित किया जाय; तत्पश्चात् एक रेचित हाथ को उत्तान और दूसरे को अधोमुख किया जाय; फिर आलीढ़ स्थानक धारण किया जाय; वहाँ **व्यंसित करण** होता है ।

नियोज्यं वायुसून्वादिबृहत्कपिपरिक्रमे ॥१२१०॥

हनुमान तथा बालि, सुग्रीव (बृहत्कपि) आदि के अभिनय में **व्यंसित करण** का विनियोग होता है ।

३८. चतुर और उसका विनियोग

यत्रालपल्लवो वामो हृदयक्षेत्रसंस्थयोः । 1239
करयोश्चतुरोऽन्योऽथ पादस्तूद्घट्टितो यदि ॥१२११॥
—चतुरमीरितम् ।

जहाँ दोनों हाथ हृदय में अवस्थित हों; बायाँ अलपल्लव और दायाँ चतुर मुद्रा में हो; और एक पैर उद्घट्टित हो; वहाँ **चतुर करण** होता है ।

तदा विस्मयसूचायामिदम्— 1240
वैदूषिक्यां नृपाग्रण्याशोकमल्लेन धीमता ॥१२१२॥

विद्वान् राजा अशोकमल्ल के मत से विस्मय, असूया तथा विद्वता के अभिनय में **चतुर हस्त** का विनियोग होता है ।

३९. क्रान्त

यत्रातिक्रान्तचार्याङ्‌घ्रि पात्यमानं निकुञ्च्य चेत् । 1241
पृष्ठतः स्थापयित्वा तु पुरोदेशे प्रसारयेत् ॥१२१३॥
व्यावर्त्य तत्करं न्यस्योरस्यतः परिवृत्तितः । 1242

निष्क्रम्य तद्वदाक्षिप्य हृदि तं खटकामुखम् ।
कुर्यादेव पराङ्गं च तत् तदाक्रान्तमीरितम् ॥१२१४॥ 1243

जहाँ अतिक्रान्ता चारी के द्वारा एक पैर को पतित करते हुए सिकोड़ कर पीठ की ओर स्थापित करके आगे की ओर प्रसारित किया जाय; फिर उसे घुमाकर वक्ष की ओर ले जाया जाय; और तत्पश्चात् वहाँ से हटाकर उसे खटकामुख मुद्रा में हृदय पर अवस्थित किया जाय; इसी प्रकार दूसरे पैर को भी किया जाय; वहाँ **क्रान्त करण** होता है ।

४०. भुजंगत्रस्तरेचित

भुजङ्गत्रासिता यत्र चारी स्याद् रेचितौ करौ ।
वामपार्श्वे तदाख्यातं भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ॥१२१५॥ 1244

जहाँ पैरों में भुजंगत्रासिता चारी हो और दोनों रेचित हाथ वाम पार्श्व में अवस्थित हों, वहाँ **भुजंगत्रस्त रेचित करण** होता है ।

४१. भुजंगाञ्चित

सव्याङ्घ्रिणा यदा चारी भुजङ्गत्रासिताभिधा ।
रेचितः स्यात् करः सव्यो वामपाणिर्लताकरः । 1245
यत्र धीरैस्तदाख्यातं भुजङ्गाश्चितकं त्वदः ॥१२१६॥

जहाँ दाहिने पैर से भुजंगत्रासिता चारी बनायी जाय; दाहिना हाथ रेचित मुद्रा और बायाँ हाथ लताहस्त मुद्रा में हो; धीर पुरुषों के मत से, वहाँ **भुजंगाञ्चित करण** होता है ।

४२. आक्षिप्त और उसका विनियोग

चार्याक्षिप्ता यदा क्षिप्तः खटकश्चतुरोऽथवा । 1246
तदाक्षिप्तमिदं धीरै–

जब पैर आक्षिप्ता चारी में और हाथ खटक या चतुर मुद्रा में हों, धीर पुरुषों के मत से उसे **आक्षिप्त करण** कहते हैं ।

–विदूषकगतौ स्मृतम् ॥१२१७॥

विदूषक की चाल के अभिनय में **आक्षिप्त करण** का विनियोग होता है ।

४३. उद्‌घट्टित

यदोद्‌घट्टितपादः स्यात्तत्पार्श्वं सन्नतं करौ । 1247
तालिकाकरणोद्युक्तौ तत्तदोद्‌घट्टितं मतम् ॥१२१८॥

जब पैर उद्‌घट्टित, पार्श्व सन्नत और दोनों हाथ तालिका बनाने में तत्पर हों, तो उसे **उद्‌घट्टित करण** कहते हैं ।

४४. दण्डरेचित और उसका विनियोग

दण्डपादा यदा चारी दण्डपक्षाभिधौ करौ । 1248
तदा प्रमोदनृत्ते स्यात्करणं दण्डरेचितम् ।
प्रयोगं केचिदिच्छन्ति तस्योद्धतपरिक्रमे ॥१२१९॥ 1249

जब पैर दण्डपादा चारी और दोनों हाथ दण्डपक्ष मुद्रा में हों, तब उसे **दण्डरेचित करण** कहते हैं । प्रमोद-नृत्त के अभिनय में उसका विनियोग होता है । उद्धत व्यक्ति के घूमने के अभिनय में भी कोई आचार्य उसका विनियोग बताते हैं ।

४५. वृश्चिक और उसका विनियोग

करौ करिकरौ पश्चाद् दूरे वृश्चिकपुच्छवत् ।
अङ्‌घ्रिश्चेत् सन्नतं पृष्ठं तदा वृश्चिकमीरितम् । 1250

यदि दोनों हाथ पीठ पीछे (कन्धे के समतर) कटिहस्त मुद्रा और एक पैर (उनके कुछ) दूर पर बिच्छू की पूँछ (डंक) की तरह अवस्थित हों; पृष्ठ भाग सन्नत हो; तो वहाँ **वृश्चिक करण** होता है ।

इदमैरावणादीनामाकाशगमने मतम् ॥१२२०॥

इन्द्र के हाथी (ऐरावत) और आकाश में उड़ने के अभिनय में **वृश्चिक करण** का विनियोग होता है ।

४६. वृश्चिकरेचित और उसका विनियोग

वृश्चिकेऽङ्घ्रौ यदा पाणी स्वस्तिकीभूय रेचितौ । 1251
विश्लिष्यापि तदाकाशगतौ वृश्चिकरेचितम् ॥१२२१॥

जब दोनों पैर वृश्चिक और दोनों हाथ स्वस्तिक होकर फिर उन्हें खोलकर रेचित में किया जाय, तब उसे **वृश्चिकरेचित करण** कहते हैं । आकाश में उड़ने के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

४७. वृश्चिक कुट्टित और उसका विनियोग

वृश्चिकं चेद्विधायाङ्‌घ्रि भुजशीर्षे करौ क्रमात् । 1252
अलपद्मौ निकुट्टचेते तदा वृश्चिककुट्टितम् ।

यदि एक पैर वृश्चिक मुद्रा और दोनों हाथों को क्रमशः अलपद्म तथा निकुट्ट में धारण किया जाय, तो उसे **वृश्चिक कुट्टित करण** कहते हैं ।

साश्चर्याकाशगमनवाञ्छादौ तत्प्रयुज्यते ॥१२२२॥ 1253

आश्चर्य के साथ आकाश गमन और इच्छा आदि के अभिनय में **वृश्चिककुट्टित करण** का विनियोग होता है ।

४८· लतावृश्चिक और उसका विनियोग

वृश्चिकेऽङ्‌घ्रिर्यदा वामः करश्चेत्स्याल्लताकरः ।
तदा लतावृश्चिकम्–

जब एक (दाहिना) पैर वृश्चिक मुद्रा में और बायाँ हाथ लताहस्त मुद्रा में हो, तब उसे **लतावृश्चिक करण** कहते हैं ।

–तदाकाशोत्पतने मतम् ॥१२२३॥ 1254

आकाश में उड़ने के आशय में **लतावृश्चिक करण** का विनियोग होता है ।

४९· वैशाखरेचित

रेचितं यत्र पाण्यङ्‌घ्रिकटिग्रीवं यदा भवेत् ।
वैशाखस्थानके तत् स्यात् तदा वैशाखरेचितम् ॥१२२४॥ 1255

जहाँ दोनों हाथ, पैर, कमर तथा ग्रीवा रेचित में रखे जाँय और वैशाख स्थानक की रचना की जाय, तब उसे **वैशाखरेचित करण** कहते हैं ।

५०. चक्रमण्डल और उसका विनियोग

चरयित्वाड्डितां चारीं चक्राकारं भ्रमेद्यदि ।
यत्र दोलाख्यहस्ताभ्यां देहेनान्तर्नतेन चेत् ॥१२२५॥ 1256
तत्तदा सद्भिराख्यातं करणं चक्रमण्डलम् ।

यदि अड्डिता चारी बनाकर और दोनों हाथों को दोलाहस्त में प्रयुक्त कर पूरा शरीर अन्दर की ओर झुका दिया जाय तथा दोनों हाथों को जमीन में टेक दिया जाय और तब उसे चक्राकार में घुमाया जाय, तो उसे **चक्रमण्डल करण** कहते हैं ।

**[भवेत्] तद् वरिवस्यायां तथोद्धतपरिक्रमे ॥१२२६॥** 1257

पूजा और शीघ्रतापूर्वक परिक्रमा के अभिनय में **चक्रमण्डल करण** का विनियोग होता है ।

**५१. आवर्त्त और उसका विनियोग**

**चाषगत्या समं चार्या हस्तौ दोलाभिधौ यदि ।**
**विधायोद्वेष्टितौ यत्र कुर्यात्तावपवेष्टितौ ।** 1258
**तदावर्तमिदं प्रोक्तं धीरैः-**

यदि चाषगति चारी के समान ही दोनों दोला हस्तों की रचना करके उन्हें उद्वेष्टित (खोला) तथा अपवेष्टित (बन्द) कर दिया जाय, तो विद्वान् उसे **आवर्त करण** कहते हैं ।

**-भीत्यपसर्पणे ॥१२२७॥**

भयपूर्वक पीछे हटने के अभिनय में **आवर्त करण** का विनियोग होता है ।

**५२. कुञ्चित और उसका विनियोग**

**वामपार्श्वे यदोत्तानोऽलपद्माकारतां दधत् ।** 1259
**करः सव्योऽथ वामोऽग्रतलसञ्चरसंज्ञकः ।**
**श्राङ्घ्रिस्तदा कुञ्चितं स्यात्-**

जब अलपद्म दाहिना हस्त बायें पार्श्व में उत्तान करके रख दिया जाय और बायाँ पैर अग्रतलसंचर मुद्रा में (पीठ की ओर घूमा हुआ नत रूप में) अवस्थित किया जाय, तब उसे **कुञ्चित करण** कहते हैं ।

**-सानन्दसुरगोचरम् ॥१२२८॥** 1260

आनन्दपूर्वक देवताओं के प्रत्यक्ष (पूजन, आवाहन) करने में **कुञ्चित** हस्त का विनियोग होता है ।

**५३. दोलापाद**

**यत्रोर्ध्वजानुश्चारी स्याद्दोलापादाभिधापि च ।**
**करो दोलाभिधश्चैत्तद्दोलापादमुदीरितम् ॥१२२९॥** 1261

जहाँ पैरों को ऊर्ध्वजानु तथा दोलापाद (पैर झुलाना) चारियों में अवस्थित किया जाय और हाथ भी उसी (दोल) का अनुसरण करे, वहाँ दोलापाद करण होता है।

**५४. तलविलासित और उसका विनियोग**

अङ्घ्रिस्तूर्ध्वाङ्गुलितलः पार्श्वे तूर्ध्वं प्रसारितः ।
तदग्रगः पताकश्चेदेमङ्गान्तरे क्रमात् । 1262
सूत्रधारादिविषयं तदा तलविलासितम् ॥१२३०॥

जब एक पैर की उँगलियों का तल भाग ऊपर उठा हो और पैर पार्श्व में ऊपर की ओर प्रसारित किया गया हो; तदनन्तर उसके आगे पताक हस्त हो; और इसी प्रकार अन्य अंगों की भी रचना की जाय, तो उसे **तलविलासित करण** कहते हैं। सूत्रधार आदि के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**५५. विवृत्त और उसका विनियोग**

चार्या चरणमाक्षिप्यासकृदाक्षिप्तया यदा । 1263
विधाय हस्तौ व्यावृत्तिपरिवर्त्तनसंयुतौ ॥१२३१॥
विदध्याद्भ्रमरीं यत्र ततस्तौ रेचयेन्नटः । 1264
तद्विवृत्त समाख्यातम्–

जब नर्तक या अभिनेता आक्षिप्ता नामक चारी के द्वारा पैर को बार-बार फेंक कर दोनों हाथों को व्यावर्तित तथा परिवर्तित करता है; और पुनः भ्रमरी की रचना करने के उपरान्त दोनों हाथों को रेचित में कर दिया जाता है, तब इसे **विवृत्त करण** कहते हैं।

–उद्धतस्य परिक्रमे ॥१२३२॥

उद्धत गति के अभिनय में **विवृत करण** का विनियोग होता है।

**५६. विनिवृत्त और उसका विनियोग**

यत्र सूच्यङ्घ्रिणान्योऽङ्घ्रिः पार्ष्णौ स्वस्तिकमाचरेत् । 1265
ततस्त्रिकस्य चलनं व्यावृत्तिपरिवृत्तितः ॥१२३३॥
एकपार्श्वे विधायाथ चारीं बद्धाभिधां करौ । 1266
रेचितौ तौ चरेत् तत् स्याद्विनिवृत्तम्–

जहाँ सूची नामक एक पैर के साथ दूसरा पैर एड़ी में स्वस्तिक मुद्रा धारण किये हो; कटि प्रदेश को व्यावृत्त तथा परिवृत्त किया जाय; फिर एक पार्श्व में बद्धा चारी को धारण किया जाय; और अन्त में दोनों हाथों की रेचित में रचना की जाय; तो उसे **विनिवृत्त करण** कहते हैं।

**–परिक्रमे ॥१२३४॥**

परिक्रमा करने के अभिनय में **विनिवृत्त करण** का विनियोग होता है।

५७· ललाटतिलक और उसका विनियोग

**वृश्चिकाङ्घ्रेर्यदाङ्गुष्ठः पादस्य तिलकं लिखेत्।** 1267
**ललाटेऽथ तदा ज्ञेयं ललाटतिलकं बुधैः।**

यदि वृश्चिक पैर का अँगूठा ललाट पर पैर का तिलक लिखे, तब विद्वान् लोग उसे **ललाटतिलक करण** समझें।

**विद्याधरगतावेतन्नियोज्यं –नृत्तवेदिभिः ॥१२३५॥** 1268

नृत्तवेत्ताओं को चाहिए कि विद्याधर की गति के अभिनय में वे **ललाटतिलक करण** का विनियोग करें।

५८. विर्वातत

**पाणिपादं समाक्षिप्य कुर्यात्त्रिकविवर्त्तनम्।**
**रेचितं च परं पाणिं यत्रैतत्स्याद्विवर्त्तितम् ॥१२३६॥** 1269

यदि एक हाथ और एक पैर को चलाकर कटिदेश में घुमाया जाय; और फिर दूसरे हाथ को रेचित में परिणत किया जाय; तो उसे **विर्वातत करण** कहा जाता है।

५९. अतिक्रान्त

**अतिक्रान्तं विधायाङ्घ्रिं पुरो यत्र प्रसारयेत्।**
**करौ प्रयोगयोग्यौ च तदतिक्रान्तमुच्यते ॥१२३७॥** 1270

जहाँ पैर को अतिक्रान्त क्रम करके उसे आगे फैला दिया जाय और दोनों हाथों को भी उसी के अनुसार संचालित किया जाय, वहाँ **अतिक्रान्त करण** होता है।

६०. विद्युद्भ्रान्त और उसका विनियोग

**विद्युद्भ्रान्ता यत्र चारी करौ तदनुगामिनौ।**
**विद्युद्भ्रान्तमिदं प्रोक्तम्–**

जहाँ पैर विद्युद्भ्रान्ता चारी में हो और दोनों हाथ भी उसी का अनुगमन करें। वहाँ **विद्युद्भ्रान्त करण** होता है ।

**–उद्धतस्य परिक्रमे ।** 1271

तीव्र वेग से घूमने के अभिनय में **विद्युद्भ्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

**अत्रौचित्यात्पुरः केचिदुशन्तिचरणक्रियम् ॥१२३८॥**

कुछ नाटचाचार्यों का मत है कि **विद्युद्भ्रान्त करण** में पहले पैर का संचालन होना चाहिए ।

**६१. निशुम्भित और उसका विनियोग**

**कुञ्चितोऽङ्घ्रिः पार्ष्णिदेशे द्वितीयचरणस्य चेत् ।** 1272
**वक्षः समुन्नतं यत्र खटकास्य करस्य तु ॥१२३९॥**
**अङ्गुलिर्मध्यमा भाले करोति तिलकं तदा ।** 1273
**तन्निशुम्भितमाख्यातम्–**

यदि एक निकुञ्चित पैर को दूसरे पैर की एड़ी पर रख दिया जाय, छाती उठा ली जाय और खटकास्य मुद्रा को हाथ की मध्यमा उँगली से ललाट पर तिलक रचना की जाय, तो उसे **निशुम्भित करण** कहते हैं ।

**–ईशाभिनयगोचरम् ॥१२४०॥**

भगवान् शंकर के अभिनय में **निशुम्भित करण** का विनियोग होता है ।

**खटकास्यकरस्थाने त्रिपताकोऽथवात्र हि ।** 1274
**प्राहात्राधोमुखं सूचीकरं कीर्त्तिधरः सुधीः ।**
**उशन्ति चरणं केचित् सूचीं नृत्तविचक्षणाः ॥१२४१॥** 1275

पण्डित कीर्तिधर इस करण में खटकास्य के स्थान पर त्रिपताक या अधोमुख सूची हस्त का विनियोग बताते हैं । कुछ नाटचाचार्यों का मत है कि उसमें सूचीपाद का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

**६२. उरोमण्डल**

**बद्धां चारीं स्थितावर्तां रचयन् रचयेत्करौ ।**
**उरोमण्डलिनौ यत्र तदुरोमण्डलं भवेत् ॥१२४२॥** 1276

जहाँ स्थितावर्ता नामक चारी और उरोमण्डलिन् नामक दोनों हाथों की रचना की जाय, वहाँ **उरोमण्डल करण** होता है ।

**६३. विक्षिप्त और उसका विनियोग**

**विद्युद्भ्रान्तां दण्डपादां चारीं च क्रमतो यदि ।**
**विधायोद्वेष्टनेनापवेष्टनेनापि हस्तकौ ।।१२४३।।** 1277
**एकाध्वयायिनौ यत्र रेचयन्पुरतोऽनु च ।**
**पार्श्व[योर्वि]क्षिपेत् तत् स्याद्विक्षिप्तकरणं तदा ।** 1278

यदि क्रमशः समुद्भ्रान्ता और दण्डपादा चारियों को बनाकर दोनों हाथों को उद्वेष्टित तथा अपवेष्टित के द्वारा समस्थिति में लाया जाय; पुनः उन्हें रेचित कर आगे-पीछे तथा अगल-बगल में चलाया तथा फेंका जाय; तो उसे **विक्षिप्त करण** कहते हैं ।

**विनियोगोऽस्य कथित उद्धतस्य परिक्रमे ।।१२४४।।**

उद्धतपूर्ण गति में **विक्षिप्त करण** का विनियोग होता है ।

**६४. पार्श्वनिकुट्टक और उसका विनियोग**

**विधाय स्वस्तिकौ हस्तौ यत्रोर्ध्वास्यस्तयोः करः ।** 1279
**एको निकुट्टितः पार्श्वे द्वितीयोऽधोमुखस्तथा ।।१२४५।।**
**तद्वन्निकुट्टितौ पादावेतत्पार्श्वनिकुट्टकम् ।** 1280

यदि दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में बनाकर उनमें से एक को ऊर्ध्वमुख करके पार्श्व में कुट्टित किया जाय और दूसरे को अधोमुख करके दूसरे पार्श्व में कुट्टित किया जाय; उसी प्रकार दोनों पैरों को भी कुट्टित किया जाय तो उसे **पार्श्वनिकुट्टक करण** कहते हैं ।

**सद्भिः सञ्चरणाभ्यासे प्रकाशेन समीरितम् ।।१२४६।।**

चलने या घूमने के अभ्यास के अभिनय में सज्जनों ने **पार्श्वनिकुट्टक करण** का विनियोग बताया है ।

**६५. तलसंस्फोरित**

**अतिक्रान्ताख्यया चार्या दण्डपादाख्ययाथवा ।** 1281
**क्षिप्रमुत्क्षिप्य पादेऽग्रे पात्यमाने यदा करौ ।**

सशब्दां कुरुतस्तालीं तलसंस्फोटितं तदा ॥१२४७॥ 1282

यदि अतिक्रान्ता या दण्डपादा चारी के द्वारा एक पैर को तेजी से ऊपर उठा कर आगे फेंक दिया जाय और दोनों हाथों से ताली बजायी जाय, तो उसे **तलसंस्फोटित करण** कहते हैं ।

**६६. गण्डसूचि और उसका विनियोग**

अङ्घ्रिः सूची नतं पार्श्वं खटकास्यो हृदि स्थितः ।
यत्र गण्डे [भ] वेद्वामोऽलपद्मौ गण्डसूच्यदः ॥१२४८॥ 1283
अलपद्मकरस्थाने सूचीपादं परे जगुः ।
केचित्सूचीं नृत्तपाणिं परेऽभिनयहस्तकम् । 1284

जहाँ पैर सूची मुद्रा में पार्श्व नत तथा दायाँ खटकामुख हस्त हृदय पर और बायाँ अलपद्म हस्त कपोल पर अवस्थित हो, वहाँ **गण्डसूचि करण** होता है । अन्य आचार्य अलपद्म हस्त के स्थान पर सूचीपाद का निर्देश करते हैं । कुछ आचार्यों के मत से सूची नामक नृत्तहस्त का और कुछ के मत से केवल अभिनय-हस्त का ही विनियोग करना चाहिए ।

अनेनाभिनयेद्धीरः कपोलाभरणादिकम् ॥१२४९॥

धीर पुरुष को कपोल और आभरण आदि के अभिनय में **गण्डसूचि करण** का विनियोग करना चाहिए ।

**६७. सूचि और उसका विनियोग**

कुञ्चितोऽङ्घ्रिः समुत्क्षिप्य स्थाप्यते [भूमिमस्पृश]न् । 1285
अथोरःस्थो भवेदेकः खटकास्याभिधः करः ॥१२५०॥
परोऽलपद्मः शीर्षस्थोऽन्याङ्गमेवं क्रमाद्यदा । 1286
तदैतत्करणं सूचि–

यदि कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर भूमि का स्पर्श किये बिना ही स्थापित किया जाय; खटकास्य एक हाथ को वक्ष पर और अलपद्म दूसरे हाथ को शिर पर रख दिया जाय; अन्य अंग भी इसी क्रम से संचालित हों; तो उसे **सूचि करण** कहते हैं ।

–विस्मयाभिनये मतम् ॥१२५१॥

विस्मय के अभिनय में **सूचि करण** का विनियोग होता है ।

**६८. अर्धसूचि**

एकाङ्गनिर्मितं त्वेतदर्धसूचि मतं बुधैः ॥१२५२॥ 1287

उक्त सूचि करण यदि एक अंग से बनाया जाय तो उसे विद्वान् **अर्धसूचि करण** कहते हैं।

६९. गजक्रीडितक

**दोलापादा यदा चारी करः करिकराभिधः ।**
**व्यापारवान् कर्णदेशे गजक्रीडितकं तदा ॥१२५३॥** 1288

यदि पैर दोलापाद चारी में और हाथ कटिहस्त में वर्तमान रहकर वे कान के पास क्रियाशील रहें, तो उसे **गजक्रीडितक करण** कहते हैं।

७०. पार्श्वजानु और उसका विनियोग

**ऊरुपृष्ठे समस्याङ्घ्रेः पादश्चेत्स्थापितः परः ।**
**अर्धचन्द्रः करः कट्यां मुष्टिस्तूरसि हस्तकः ।** 1289
**यत्रैतत्पार्श्वजानूक्तम्–**

यदि एक पैर सम (साधारण) स्थिति में हो और दूसरा पैर जाँघ पर रख दिया जाय; एक हाथ अर्धचन्द्र में कटि पर तथा दूसरा मुष्टि मुद्रा में छाती पर रख दिया जाय; तो उसे **पार्श्वजानु करण** कहते हैं।

**–सद्भिर्युद्धनियुद्धयोः ॥१२५४॥**

सज्जनों के मत से युद्ध तथा कुस्ती के अभिनय में **पार्श्वजानु करण** का विनियोग होता है।

७१. गरुडप्लुत

**लतारेचितकौ यत्र करौ पादस्तु वृश्चिकः ।** 1290
**वक्षः समुन्नतं चेत् स्यात् तत् तदा गरुडप्लुतम् ॥१२५५॥**

यदि दोनों हाथों को लता रेचितक में रख दिया जाय; पैर वृश्चिक में कर दिया जाय; और छाती समुन्नत (भली भाँति उठी हुई) हो, तो वहाँ **गरुडप्लुत करण** होता है।

७२. गृध्रावलीनक और उसका विनियोग

**पृष्ठप्रसारितस्याङ्घ्रेरङ्गुष्ठो भुवमाश्रितः ।** 1291
**लताकरौ करौ चेत्स्यात्तदा गृध्रावलीनकम् ।**

यदि पैर को पीछे की ओर फैलाकर घुटने को कुछ मोड़ दिया जाय और अँगूठा भूमि को स्पर्श करता हो; दोनों हाथ लता हस्त मुद्रा में हों; तो वहाँ **गृध्रावलीनक करण** होता है।

**तदवाचि महापक्षियुद्धाभिनयने बुधैः ॥१२५६॥** 1292

विद्वानों के मत से गरुड़ आदि बड़े पक्षियों के युद्ध के अभिनय में **गृध्रावलीनक करण** का विनियोग होता है ।

**७३. दण्डपाद और उसका विनियोग**

यत्र नूपुरपादाख्या दण्डपादाभिधा तथा ।
चारी स्यादथ चेत् क्षिप्रं पाणिः स्थाप्येत दण्डवत् । 1293
तत्तदा दण्डपादं स्यात्–

यदि पैरों से नूपुरपादा और दण्डपादा नामक चारियाँ बना ली जायँ; हाथ को वेग से दण्डवत् रखा जाय; तो उसे **दण्डपाद करण** कहते हैं ।

–साटोपे तु परिक्रमे ॥१२५७॥

आडम्बर सहित (या अभिमानपूर्ण) गति के अभिनय में **दण्डपाद करण** का विनियोग होता है ।

**७४. सन्नत और उसका विनियोग**

मृगप्लुतां विधायाङ्घ्रिः स्वस्तिकः पुरतः करौ । 1294
दोलौ यदा सन्नतं स्यात्–

यदि मृगप्लुता की रचना करके पैरों को स्वस्तिक में आगे रख दिया जाय और दोनों हाथों को दोला मुद्रा में किया जाय, तो उसे **सन्नत करण** कहते हैं ।

–नीचापसरणे तदा ॥१२५८॥

नीचों को हटाने के अभिनय में **सन्नत करण** का विनियोग होता है ।

**७५. सर्पित और उसका विनियोग**

पराङ्घ्रेरञ्चिते पादे त्वपसर्पति मस्तकम् । 1295
नामितं रेचितः पाणिरसौ तत्पार्श्वके यदि ॥१२५९॥
एवं पराङ्गं यत्रेदं सर्पितं करणं तदा । 1296

यदि दोनों पैर अञ्चित में, मस्तक अपसर्प में हो; एक हाथ नमित और दूसरा रेचित होकर उसके पार्श्व में अवस्थित रहे; और अन्य अंग भी उसी का अनुसरण करे, तो वहाँ **सर्पित करण** होता है ।

उपसृत्यापसरणे मत्तस्य परिकीर्त्तितम् ॥१२६०॥

मदमत्तता या भाववेग में लड़खड़ाकर अपसारित करके चलने के अभिनय में **सर्पित करण** का विनियोग होता है।

७६. मयूरललित

**आचरेद् रेचितौ हस्तावूरावाकुञ्च्य वृश्चिकम् ।** 1297
**अङ्‌घ्रि यत्र भ्रमरिकां विदध्यान्नर्तको यदि ।**
**तत्तदा करणं प्रोक्तं मयूरललिताभिधम् ॥१२६१॥** 1298

यदि अभिनेता दोनों हाथों में रेचित की रचना कर फिर पैर को जाँघ पर सिकोड़ कर वृश्चिक बनाये; अन्त में भ्रमरिका चारी धारण करे; तो उसे **मयूरललित करण** कहते हैं।

७७. सूचीविद्ध और उसका विनियोग

**पक्षवञ्चितकः कट्यां यद्वा स्यादर्धचन्द्रकः ।**
**वक्षःस्थः खटकास्योऽन्यः सूच्यङ्‌घ्रिः परपार्ष्णिगः ।** 1299
**यत्रैतत्करणं सूचीविद्धम्–**

यदि पक्षवंचितक या अर्धचन्द्र एक हस्त कटि पर और खटकास्य दूसरा हस्त वक्ष पर अवस्थित हो; एक सूचीपाद दूसरे सूचीपाद के समान एड़ी पर रहे; तो उसे **सूचीविद्ध करण** कहते हैं।

**–चिन्तादिषु स्मृतम् ॥१२६२॥**

चिन्ता आदि के अभिनय में **सूचीविद्ध करण** का विनियोग होता है।

७८. प्रेङ्खोलित और उसका विनियोग

**दोलापादं विधायैकपादेनाथ पराङ्‌घ्रिणा ।** 1300
**उत्प्लुत्य भ्रमरीं यत्र विदध्यान्नर्तको यदि ।**
**प्रेङ्खोलितं तदा–**

यदि अभिनेता एक पैर से दोलापाद की रचना कर दूसरे पैर से उछलकर भ्रमरी का अवलम्बन करे; तो उसे **प्रेङ्खोलित करण** कहते हैं।

**–योज्यमेतल्लीलापरिक्रमे ॥१२६३॥** 1301

लीला की गति प्रदर्शित करने में **प्रेङ्खोलित करण** का विनियोग होता है।

७९. स्खलित

गत्यागतौ यदा दोलापादाङ्घ्रेर्हंसपक्षकः ।
अनुगच्छेदेवमङ्गमपरं स्खलितं तदा ॥१२६४॥ 1302

यदि एक पैर से दोलापाद बनाकर दूसरे पैर से हंसपक्षक धारण किया जाय; और हाथ भी तदनुसार चलाये जायँ; तो उसे **स्खलित करण** कहते हैं ।

८०. परिवृत्त

उर्ध्वमण्डलिनौ पाणी चार्या बद्धाख्यया यदि ।
सूचीपादो विवृत्तः स्याद्यत्राथ भ्रमरीं भवेत् । 1303
तदेदं परिवृत्ताख्यं करणं समुदीरितम् ॥१२६५॥

यदि दोनों हाथ ऊर्ध्वमण्डल मुद्रा में हों; पैर बद्धा चारी में होकर सूची चारी में घुमाया जाय; और तदनन्तर त्रिक भी भ्रमरी में हो; तो उसे **परिवृत्त करण** कहते हैं ।

८१. करिहस्त

खटकास्यः करो वामो हृद्यन्योद्वेष्टनेन चेत् । 1304
कर्णेऽन्यस्त्रिपताकोऽथ सपादः पुरतोऽञ्चितः ।
निर्गच्छति तदैतत्स्यात्करणं करिहस्तकम् ॥१२६६॥ 1305

यदि खटकास्य नामक बाँया हाथ दूसरे हाथ से उद्वेष्टित होकर हृदय पर रहे; फिर दूसरा दाँया त्रिपताक हाथ कान पर रहे; और अञ्चित नामक पैर आगे निकल कर संचलित हो; तो उसे **करिहस्त करण** कहते हैं ।

८२. प्रसर्पित और उसका विनियोग

रेचितो यः करः सोऽङ्घ्रिर्यत्र घर्षन् भुवं व्रजेत् ।
शनैः शनैरन्यपादादपरश्चेल्लताकरः । 1306
प्रसर्पितमिदं धीरैस्तदा–

यदि एक हाथ रेचित में और दूसरा लता में रखा जाय; दोनों पैर प्रसर्प में धीरे-धीरे भूमि पर संचालित किये जाँय; तो धीर पुरुषों के मत में उसे **प्रसर्पित करण** कहते हैं ।

–खगगतौ मतम् ॥१२६७॥

आकाशचारी जीवों की गति के अभिनय में **प्रसर्पित करण** का विनियोग होता है ।

८३. पार्श्वक्रान्त और उसका विनियोग

पार्श्वक्रान्ता यदा चारी पाणी पादानुगामिनौ । 1307
पार्श्वक्रान्तं तदा–

यदि पैर पार्श्वक्रान्ता चारी में हों और दोनों हाथों को भी उसी मुद्रा में संचालित किया जाय; तो उसे **पार्श्वक्रान्त करण** कहते हैं ।

–रौद्रभीमादीनां परिक्रमे ।।१२६८।।

रौद्र रस और भीम आदि वीर पुरुषों के अभिनय में **पार्श्वक्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

८४. निवेश

हस्तौ वक्षःस्थितौ यत्र वक्षो निर्भुग्नसंज्ञितम् । 1308
स्थानकं मण्डलं सद्भिर्निवेशं तदुदीरितम् ।।१२६९।।

यदि दोनों हाथ छाती पर रख दिये जाँय; वक्ष निर्भुग्न (सीधा तना हुआ) हो; और मण्डल स्थानक बना लिया जाय; तो सज्जनों के अनुसार उसे **निवेश करण** कहते हैं ।

८५. नितम्ब

अधोमुखाङ्गुली पाणी पताकौ प्राप्य मूर्धनि । 1309
निष्क्रम्य परिवृत्योर्ध्वं स्कन्धयोः स्वीययोस्ततः ।।१२७०।।
न्यस्यान्यौन्यमुखौ यत्र स्वगात्राभिमुखाङ्गुली । 1310
कुर्यात् नितम्बहस्तौ तन्नितम्बकरणं मतम् ।।१२७१।।

यदि दोनों पताक हस्तों को अधोमुख करके शिर पर रख दिया जाय; तदुपरान्त उन दोनों हस्तों को अपने दोनों कन्धों के ऊपर निकाल कर घुमा दिया जाय; फिर दोनों को आमने-सामने करके उनकी उँगलियों को अपने शरीर के सम्मुख रख दिया जाय; और उन्हें नितम्बाकार बना दिया जाय; तो उस मुद्रा को **नितम्ब करण** कहते हैं ।

८६. हरिणप्लुत और उसका विनियोग

हरिणप्लुतया चार्या भवेतां यदि हस्तकौ । 1311
खटकामुखदोलाख्यौ तदैतद्धरिणप्लुतम् ।

उक्तं श्रीमदशोकेन—

यदि पैर हरिणप्लुत चारी में और दोनों हाथ खटकामुख तथा दोला में अवस्थित किये जाँय; तो नृपति अशोकमल्ल ने उसे **हरिणप्लुत करण** कहा है।

—हरिणप्लुतिगोचरम् ॥१२७२॥ 1312

हरिणों की छलाँग के अभिनय में **हरिणप्लुत करण** का विनियोग होता है।

**८७. सिंहविक्रीडित और उसका विनियोग**

पुरः कृत्वालातपादं यत्र हन्तुमिवोद्यतः।
पाणिस्तथापराङ्घ्रिः स्यात्सिंहविक्रीडितं तदा। 1313

यदि पैर में अलात बनाकर उसे आगे करके और हाथ को मारने की स्थिति में किया जाय; तथा दूसरे हाथ-पैरों को भी तदनुसार संचालित किया जाय, तो वहाँ **सिंहविक्रीडित करण** होता है।

रौद्रगत्यामिदं प्रोक्तं नृत्तविद्याविशारदैः ॥१२७३॥

नाट्याचार्यों ने रौद्र गति के अभिनय में **सिंहविक्रीडित करण** का विनियोग कहा है।

**८८. सिंहार्कषित और उसका विनियोग**

वामोऽङ्घ्रिर्वृश्चिकः पद्मकोशौ यद्वोर्णनाभकौ। 1314
पराङ्घ्रौ वृश्चिकीकृतो भङ्क्त्वा चेत्प्राक्तनौ करौ।
पुनस्तथा कृतौ सिंहे सिंहार्कषितकं तदा ॥१२७४॥ 1315

यदि बाँया पैर वृश्चिक में; दोनों हाथ पद्मकोश या ऊर्णनाभ में किये जायँ; फिर दूसरे पैर पर, वृश्चिकाकार दोनों हाथों को भंग करके फिर उन्हें वृश्चिकाकार बना दिया जाय (अर्थात् इस क्रिया को बार-बार दुहराया जाय); तो उसे **सिंहार्कषित करण** कहते हैं। सिंह के अभिनय में उसका विनियोग होता है।

**८९. जनित और उसका विनियोग**

जनिता यत्र चारी स्यान्मुष्टिर्वक्षःस्थलेऽपरः।
करौ लताकरस्तत् स्यादारम्भे जनितं कृते ॥१२७५॥ 1316

यदि पैरों में जनिता चारी, हाथ वक्षस्थ पर और दूसरा हाथ लता मुद्रा में हो; तो उसे **जनित करण** कहते हैं। (सब प्रकार के) अभिनयों के आरम्भ करने में इस करण का विनियोग होता है।

९०. अवहित्थ और उसका विनियोग

चारीमारच्य जनितां चेदरालालपल्लवौ ।
भालवक्षःस्थितौ हस्तौ क्रमादभिमुखाङ्गुली ॥१२७६॥ 1317
विधायोद्वेष्टितेनाथ पार्श्वगौ परिवृत्तितः ।
ततोपवेष्टच वक्षोगौ परिवृत्या पुनस्तथा ॥१२७७॥ 1318
न्यस्येते सम्मुखौ यत्र मिथस्तदवहित्थकम् ।

पैरों में जनिता चारी की रचना करके यदि अराल और पल्लव दोनों हाथों को क्रमशः ललाट तथा वक्ष पर रख दिया जाय; उनकी उँगलियाँ एक-दूसरे के आमने-सामने कर दी जाँय; फिर उन्हें उद्वेष्टित करके पार्श्व में घुमा कर अलग कर दिया जाय और छाती पर रख दिया जाय; तत्पश्चात् पुनः घुमाकर दोनों को पूर्ववत् आमने-सामने रख दिया जाय; तो उस मुद्रा को **अवहित्थ करण** कहते हैं ।

गोपनाप्रायवाक्यार्थगोचरं परिकीर्त्तितम् ॥१२७८॥ 1319
इदं परेऽवहित्थाख्यं करयोगाद्बभाषिरे ।
चिन्तादौर्बल्यविषयं नृत्तविद्याविशारदाः ॥१२७९॥ 1320

अगोचर अर्थयुक्त वाक्यों के अभिनय में बहुधा **अवहित्थ करण** का विनियोग होता है । कुछ नृत्ताचार्यों का कहना है कि इस **अवहित्थ करण** को, हाथ के योग से, चिन्ता तथा दुर्बलता का भाव प्रकट करने के अभिनय में प्रयुक्त किया जाता है ।

९१. उद्वृत्त

प्रसार्याक्षिप्यते क्षिप्रं पाणिपादं यदैकदा ।
अङ्गमुद्वृत्तचारीकमुद्वृत्तं तदुदीरितम् ॥१२८०॥ 1321

यदि एक हाथ-पैर को एक ही बार में शीघ्रतापूर्वक फैलाकर आक्षिप्त कर दिया जाय; दूसरे पैर और हाथ में उद्वृत्ता चारी और धड़ भी उद्वृत्त कर दिया जाय; अर्थात् उठा दिया जाय; तो उसे **उद्वृत्त करण** कहते हैं ।

९२. तलसंघट्टित

दोलापादाभिधां चारीमाचरन् यदि हस्तकौ ।
सङ्घट्टिततलौ कृत्वा पताकौ वैष्णवे स्थितः ॥१२८१॥ 1322

**स्थानकेऽथ करं सव्यं कट्यां न्यस्येत् ततः पराम् ।**
**विदध्याद्रेचितं पाणिं तलसङ्घट्टितं तदा ॥१२८२॥** 1323

यदि दोलापाद नामक चारी की रचना करके दोनों पताक हस्तों की हथेलियों को मिला दिया जाय; फिर वैष्णव स्थानक धारण किया जाय; तत्पश्चात् दाहिने हाथ को कटि पर रख कर दूसरे बाँये हाथ को रेचित में कर दिया जाय; तो उस मुद्रा को **तल संघट्टित करण** कहते हैं ।

९३. **लोलित**

**यदैको रेचितो हस्तोऽन्योऽलपद्मो हृदि स्थितः ।**
**शिरस्तु लोलितं पार्श्वद्वये विश्रान्तिमत् ततः ।** 1324
**वैष्णवं स्थानकं यत्र तदा तल्लोलितं मतम् ॥१२८३॥**

यदि एक हाथ रेचित और दूसरा अलपद्म बना कर हृदय पर रख दिया जाय; फिर शिर को भी लोलित करके उसे (क्रमशः) दोनों पार्श्वों में अवस्थित किया जाय; तदनन्तर वैष्णव स्थानक की रचना की जाय; तो उसे **लोलित करण** कहते हैं ।

९४. **शकटास्य और उसका विनियोग**

**शकटास्याभिधा चारी पाणिरेकोऽङ्घ्रिणा समम् ।** 1325
**प्रसृतोऽथ परो हस्तः खटकास्यो हृदि स्थितः ।**
**यत्रेदं शकटास्यं स्याद्-**

यदि शकटास्य चारी की रचना करके एक हाथ एक पैर के समान फैला हो और दूसरा खटकास्य मुद्रा में हृदय पर अवस्थित हो; तो वहाँ **शकटास्य करण** होता है ।

**-बालखेलनगोचरम् ॥१२८४॥** 1326

बालक्रीड़ा के अभिनय में **शकटास्य करण** का विनियोग होता है ।

९५. **वृषभक्रीडित**

**चारीं कुर्वन्नलातां चेदाचरेद्रेचितौ करौ ।**
**व्यावर्त्तनेन चाकुञ्च्य स्थापयेद् भुजशीर्षयोः ।** 1327
**अलपद्माकृती कृत्वा वृषभक्रीडितं तदा ॥१२८५॥**

यदि अलात चारी की रचना करके दोनों हाथों को रेचित में कर दिया जाय; फिर उन्हें अलपद्म में परिणत करके घुमाव के साथ भीतर की ओर सिकोड़ कर भुजा और सिर पर रख दिया जाय; तो उसे **वृषभक्रीडित करण** कहते हैं ।

९६. एलकाक्रीडित और उसका विनियोग

**एलकाक्रीडिता चारी चेद्दोलखटकामुखौ ।** 1328
**सन्नतं वलितं चाङ्गमेलकाक्रीडितं तदा ।**

यदि एलकाक्रीडिता चारी की रचना करके दोनों हाथों को दोल तथा खटकामुख में कर दिया जाय; शरीर झुका तथा वलित हो; तो उसे **एलकाक्रीडित करण** कहते हैं ।

**गमने त्वधमानां तन्नियोज्यं नृत्तवेदिभिः ॥१२८६॥** 1329

नाट्याचार्यों के मत से तुच्छ व्यक्तियों की गति के अभिनय में **एलकाक्रीडित करण** का विनियोग होता है ।

९७. विष्कम्भ

**अपसृत्य यदा वामं सव्यः सूचीमुखः करः ।**
**उपगच्छेन्निकुट्टयेत सपादोऽन्यः करो हृदि ॥१२८७॥** 1330
**विधायैवं पराङ्गं च सूचीपादस्तु दक्षिणः ।**
**एषोऽलपल्लवः पाणिरपरः पूर्ववद्भवेत् ।** 1331
**पौनः पुन्येन यत्रैवं विष्कम्भं तदोदितम् ॥१२८८॥**

यदि बाँये हाथ को हटाकर उसे दाहिने सूचीमुख हाथ के समीप लाया जाय और पैर सहित कुट्टित किया जाय; फिर दूसरे दाहिने हाथ को हृदय पर अवस्थित किया जाय; शरीर को भी तद्वत् संचालित किया जाय; तत्पश्चात् दाँयें सूचीपाद और बाँयें अलपल्लव हस्त को बार-बार इसी प्रकार किया जाय; तो उसे **विष्कम्भ करण** कहते हैं ।

९८. उपसृत और उसका विनियोग

**कृत्वा क्षिप्ताभिधां वामभागे चारीं ततः करम् ।** 1332
**व्यावृत्तं परिवृत्तं च सव्ये पार्श्वे नते यदि ॥१२८९॥**
**अरालतां नयेदेनं तदोपसृतमीरितम् ।** 1333

यदि बाँये पैर से आक्षिप्ता चारी का निर्माण कर हाथ को व्यावृत्त तथा परिवृत्त किया जाय; दाहिने पार्श्व को नत किया जाय; फिर उसे अराल मुद्रा में परिणत कर दिया जाय; तो उसे **उपसृत करण** कहते हैं।

**श्रीमदशोकमल्लेन विनयेनोपसर्पणे ॥१२६०॥**

नृपति अशोकमल्ल के अनुसार विनयपूर्वक समीप आने के अभिनय में **उपसृत करण** का विनियोग होता है।

**९९. विष्णुक्रान्त और उसका विनियोग**

**यत्रोर्ध्वं प्रसरत्यग्रे चरणश्चलनोन्मुखः।** 1334
**कुञ्चितोऽथ यदा स्यातां हस्तकौ रेचितौ तदा।**
**विष्णुक्रान्तमिदं प्रोक्तम्–**

आगे चलने के लिए उन्मुख ऊपर की ओर प्रसारित पैर यदि मोड़ दिया जाय और दोनों हाथों को रेचित कर दिया जाय; तो उसे **विष्णुक्रान्त करण** कहते हैं।

**–विष्णुक्रमणगोचरम् ॥१२६१॥** 1335

भगवान् विष्णु की गति के अभिनय में **विष्णुकान्त करण** का विनियोग होता है।

**१००. अपक्रान्त**

**बद्धां चारीमपक्रान्तां चाचरन् रचयेत्करौ।**
**प्रयोगानुगतौ यत्र तदपक्रान्तमीरितम् ॥१२६२॥** 1336

यदि बद्धा और अपक्रान्ता चारियों की रचना करते हुए (अर्थात् दोनों जाँघों से वलित करके टाँगें अपक्रान्त क्रम में चलायी जाँय); दोनों हाथों को भी तदनुसार संचालित किया जाय; तो उसे **अपक्रान्त करण** कहते हैं।

**१०१. ऊरूद्वृत्त और उसका विनियोग**

**चार्योरूद्वृत्तया सार्धमरालखटकामुखौ।**
**यत्रोरुपृष्ठयोर्न्यस्येद्वर्तनापूर्वकौ करौ ॥१२६३॥** 1337
**ऊरूद्वृत्तमिदं प्रोक्तम्–**

यदि ऊरुद्वृत्ता चारी के साथ अराल और खटकामुख हस्तों को वर्तना क्रिया के उपरान्त, ऊरु के पृष्ठभाग पर रख दिया जाय; तो उसे **ऊरुद्वृत्त करण** कहते हैं।

–ईर्ष्याप्रणयकोपयोः ।

प्रार्थनायामपि नृपाशोकमल्लेन धीमता ॥१२६४॥ 1338

नृपति अशोकमल्ल के मत से ईर्ष्या, प्रणय-कोप और प्रार्थना के अभिनय में **ऊरूद्वृत्त करण** का विनियोग होता है ।

१०२. अञ्चित और उसका विनियोग

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां नासिकाक्षेत्रसंश्रितः ।

करिहस्तो यदा धत्तेऽलपद्मत्वं तदाश्चितम् । 1339

यदि करिहस्त हाथ व्यावृत्त-परिवृत्त द्वारा (अर्थात् घुमाकर तथा मोड़कर) नासिका स्थान पर पहुँच कर अलपद्म हस्त का स्वरूप धारण कर लेता है, तो उसे **अञ्चित करण** कहते हैं ।

आत्मनः कौतुकादेतत् सम्मुखस्यावलोकने ॥१२६५॥

जब कोई नर्तकी अन्य नर्तकी के सामने अपने कौतुकवश ताकती है, तब उस अभिनय में **अञ्चित करण** का विनियोग होता है । (अथवा अपने कौतुकवश सामने ताकने के आशय में उसका विनियोग होता है )

१०३. सम्भ्रान्त और उसका विनियोग

विधायाविद्धचारीं चेद्व्यावर्त्य परिवृत्तितः । 1340

अलपद्माभिधं पाणिं स्थापयेदूरुपृष्ठके ।

तदा सम्भ्रान्तमादिष्टम्–

यदि अविद्धा चारी की रचना करके अलपद्म हस्त को चारों ओर घुमाकर ऊरु के पृष्ठ भाग पर रख दिया जाय, तो उसे **सम्भ्रान्त करण** कहते हैं ।

–ससाध्वसपरिक्रमे ॥१२६६॥ 1341

भयपूर्ण या घबराहट युक्त की गति के अभिनय में **सम्भ्रान्त करण** का विनियोग होता है ।

१०४. मदस्खलित और उसका विनियोग

स्वस्तिकीभूय यत्राङ्घ्री क्रमेणैवापसर्पतः ।

परिवाहितसंज्ञं च शिरो दोलाभिधौ करौ । 1342

इदं मदस्खलितकं कथितम्–

यदि दोनों पैर स्वस्तिक मुद्रा में क्रमशः पीछे की ओर हटते जाँय, शिर परिवाहित में और दोनों हाथ डोला में हों, उसे **मदस्खलित करण** कहते हैं ।

—मध्यमे मदे ।।१२९७।।

मध्यम मद के अभिनय में **मव्यस्खलित करण** का विनियोग होता है ।

**१०५. अर्गल और उसका विनियोग**

वामस्याङ्घ्रेःकनिष्ठायाःभागेऽङ्घ्रीर्दक्षिणःस्थितः । 1343

अथान्यः स्तब्धजङ्घः सन् सार्धतालद्वयान्तरे ।।१२९८।।

प्रसारितोऽथपाणिः सन् स्तब्धबाहुः स्वपार्श्वके । 1344

यदालपल्लवः किञ्चित्प्रसृताग्रोऽपरस्तदा ।

अर्गलं गदितं धीरैः—

यदि बाँये पैर की कनिष्ठा उँगली के अग्रभाग में दाहिना पैर अवस्थित किया जाय; दूसरे पैर की जँघा निश्चल रहे; एक पैर दूसरे पैर के ढाई ताल आगे रख दिया जाय; उसके बाद एक हाथ की बाँह निश्चल रहे और वह अपने पार्श्व में अलपल्लव मुद्रा में हो; दूसरा हाथ (पैरों की उक्त स्थिति के अनुरूप) अग्रभाग में कुछ प्रसृत होकर अवस्थित रहे ; तो विद्वानों के मत से उसे **अर्गल करण** कहा जाता है ।

—अङ्गदादि परिक्रमे ।।१२९९।। 1345

अंगद आदि की गति के अभिनय में **अर्गल करण** का विनियोग होता है ।

**१०६. रेचकनिकुट्टक**

सव्यः स्याद्रेचितः पाणिः सपादस्तु निकुट्टितः ।

वामो दोलाकरो यत्र तद्रेचकनिकुट्टकम् ।।१३००।। 1346

यदि दाहिना रेचित हस्त, पैर सहित कूटा जाय और बाये हाथ दोलाकर मुद्रा में हो, तो उसे **रेचकनिकुट्टक करण** कहते हैं ।

**१०७. नागापसर्पित और उसका विनियोग**

[हस्तौ चेद् रेचितौ स्यातां शिरस्तु परिवाहितम्[1]]।

स्वस्तिकीभूय चेदङ्घ्री कुरुतोऽपसृतिं तदा । 1347

नागापसर्पितं प्रोक्तं नृत्तज्ञैः —

यदि दोनों हाथ रेचित मुद्रा में हों, शिर परिवाहित हो और दोनों पैर स्वस्तिक होकर पीछे की ओर चलें, तो नृत्तवेत्ताओं ने उसे **नागापसर्पित करण** कहा है ।

---

१. देखिए : संगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ७४५ (अडियार संस्करण) ।

–तरुणे मदे ।।१३०१।।

तरुण मद के अभिनय में उसका विनियोग होता है ।

१०८. गंगावतरण और उसका विनियोग

अङ्घ्रेस्तु क्षेपनिक्षेपौ भवेतां चेद्यथा यथा । 1348
तथा पाणी पताकाख्यावुभावुन्नतिसन्नती ।।१३०२।।
कुरुतः संनतं शीर्षं गङ्गावतणं तदा । 1349

पैर जैसे-जैसे चलें, तदनुसार दोनों पताक हस्त उन्नति तथा अवनति को धारण करें और शिर संनत मुद्रा में अवस्थित हो, तो ऐसी क्रिया को **गंगावतरण करण** कहते हैं ।

गङ्गावतरणे योज्यमिदं नृत्तविचक्षणैः ।।१३०३।।

नाट्याचार्यों ने गंगा जी के पृथ्वी पर उतरने के अभिनय में उसका विनियोग बताया है ।

**करण प्रयोग के विशेष निर्देश**

वामो बाहुल्यतः कार्यः करः करणकर्तृभिः । 1350
वक्षःस्थः करणेष्वन्यो ज्ञेयस्तत्करणानुगः ।।१३०४।।
अनुक्तनियमेऽप्येषा परिभाषोदिता बुधैः । 1351
करणेऽनुक्तचारीके चारी तच्चरणानुगा ।
ज्ञेया ज्ञेयोऽथवा पादः करानुगतिसुन्दरः ।।१३०५।। 1352

करणों के निर्माताओं या प्रयोक्ताओं को चाहिए कि वे बायें हाथ का प्रयोग अधिक करें। करणों में दाहिने हाथ को छाती पर रखें और वह करणों का अनुगामी हो । किसी नियम विशेष का निर्देश न करते हुए भी विद्वानों ने यह परिभाषा (सामान्य नियम) बतायी है । जहाँ करण में चारी का उल्लेख न किया गया हो, वहाँ करण के पैर के अनुसार चारी को योजना कर लेनी चाहिए; अथवा हस्त-संचालन के अनुसार पैर की सुन्दर रचना करनी चाहिए ।

एक सौ आठ नृत्तकरणों का निरूपण समाप्त

# उत्प्लुतिकरणों का निरूपण / बारह

## उत्प्लुतिकरणों का निरूपण

अथोद्दिशति देशीविद् देशीस्थकरणानि च ।
उत्प्लुत्याद्यानि भूमीन्द्रो वैरिहा वीरसिंहजः ॥१३०६॥ 1353

देश-विशेष की गति-विधियों को जानने वाले शत्रुहन्ता महाराज वीरसिंह-पुत्र अशोकमल्ल ने देशविशेष में किये जाने वाले उत्प्लुति आदि करणों को (इस प्रकार) निरूपित किया है ।

**उछल कर किये जाने वाले करणों (उत्प्लुतिकरण) के भेद**

अञ्चितं करणं पूर्वमेकपादाञ्चितं परम् ।
समपादाञ्चितं तिर्यगञ्चितं भैरवाश्रितम् । 1354
भ्रान्तपादाञ्चितं दण्डप्रणामाञ्चितकं तथा ॥१३०७॥
अञ्चितं कर्तरीपूर्वं लङ्कादाहाञ्चितं तथा । 1355
समकर्तर्यञ्चितं च बलिबन्धाञ्चितं तथा ॥१३०८॥
अथ क्षेत्राञ्चितं तद्वदन्यत् स्कन्धाञ्चिताभिधम् । 1356
करणं चालगं चोर्ध्वालगं स्यादन्तरालगम् ॥१३०९॥
कूर्मालगं लोहडी स्यादेकपाददिलोहडी । 1357
विचित्रलोहडी बाहुबन्धलोहड्यपीतरा ॥१३१०॥
कर्त्तर्याद्या लोहडी च समकर्त्तरिलोहडी । 1358
चतुर्मुखादिरन्यास्याल्लोहडी चालगाञ्चितम् ॥१३११॥
जलादिशयनं दर्पशरणं नागबन्धकम् । 1359
अथ स्यान्मत्स्यकरणं तिर्यक्करणमेव च ॥१३१२॥
कपालचूर्णनं तिर्यक्स्वस्तिकं नतपृष्ठकम् । 1360
कराद्यं स्पर्शनं स्कन्धभ्रान्तमेणप्लुतं तथा ॥१३१३॥
लोहड्यञ्चितकं तद्वत्सूच्यन्तमथ लक्षणम् । 1361

उत्प्लुतिकरणों के अड़तीस भेद होते हैं : १. अञ्चित, २. एकपादाञ्चित, ३. समपादाञ्चित, ४. तिर्यगञ्चित, ५. भैरवाञ्चित, ६. भ्रान्तपादाञ्चित, ७. दण्डप्रणामाञ्चित, ८. कर्त्तर्यञ्चित, ९. लंकादाहाञ्चित, १०. समर्त्तर्यञ्चित, ११. बालिबन्धाञ्चित, १२. क्षेत्राञ्चित, १३. स्कन्धाञ्चित, १४. अलग, १५. ऊर्ध्वालग, १६. अन्तरालग, १७. कूर्मालग, १८. लोहडी १९. एकपादलोहडी, २०. विचित्रलोहडी, २१. बाहुबन्धलोहडी, २२. कर्त्तरीलोहडी, २३. समकर्त्तरीलोहडी, २४. चतुर्मुखलोहडी, २५. अलगाञ्चित, २६. जलशयन, २७. दर्पशरण, २८. नागबन्ध, २९. मत्स्यकरण ३०. तिर्यक्करण, ३१. तिर्यक्स्वस्तिक, ३२. कपालचूर्णन, ३३. नतपृष्ठक, ३४. करस्पर्श, ३५. स्कन्धभ्रान्त, ३६. एणप्लुत, ३७. लोहड्याञ्चित और ३८. सूच्यन्त।

**उच्यते क्रमतोऽमीषां मया लक्ष्यानुसारतः ॥१३१४॥**

अब लक्ष्य के अनुसार इन करणों का क्रमशः लक्षण निरूपित किया जा रहा है।

१. अञ्चित

**विधाय समपादाख्यं स्थानमुत्तानितो यदा।** 1362
**उत्पतेदञ्चितं प्रोक्तं तदा करणवेदिभिः ॥१३१५॥**

जब समपाद नामक स्थानक को बनाकर उत्तान होकर उछला जाय, तब करण के ज्ञाताओं ने उसे **अञ्चित करण** बताया है।

२. एकपादाञ्चित

**एकपादाञ्चितं प्रोक्तमन्वर्थं करणं बुधैः ॥१३१६॥** 1363

विद्वानों ने **एकपादाञ्चित करण** को अर्थ के अनुरूप बताया है।

३. समपादाञ्चित

**कृत्वोर्ध्वास्यौ समौ पादौ स्कन्धेनाक्रम्य भूतलम्।**
**पादाबुल्लालन्यत्र परिवर्तनमाचरेत्।** 1364
**तिर्यक्क्रमादिदं प्रोक्तं समपादाञ्चितं बुधैः ॥१३१७॥**

यदि सम नामक दोनों चरणों को ऊर्ध्वमुख करके कन्धे से भूतल को छूकर दोनों चरणों को सहलाते हुए तिरछे क्रम से घुमाया जाय, तो उसे विद्वानों ने **समपादाञ्चित** करण कहा है।

४. तिर्यगञ्चित

**समपादात्कृते तिर्यगुत्प्लवे तिर्यगञ्चितम् ॥१३१८॥** 1365

समस्थित पैर से तिरछा कूदने पर **तिर्यगञ्चित करण** होता है।

५. भैरवाञ्चित

ऊरुस्थितैकपादस्योत्प्लवने भैरवाञ्चितम् ॥१३१९॥

ऊरु पर एक पैर को रखकर उछलने से भैरवाञ्चित करण होता है ।

६. भ्रान्तपादाञ्चित

आक्रम्यांसद्वयेनोर्वीं भ्रामयित्वा तु दक्षिणम् । 1366
अङ्घ्रिं तदीयपृष्ठेन वामाङ्घ्रेस्तु निपीडयेत् ॥१३२०॥
जङ्घामध्य [मथा] रच्याश्रितं कृतविवर्तनम् । 1367
पादावुल्लालयेद्यत्र भ्रान्तपादाञ्चितं त्विदम् ॥१३२१॥

यदि दोनों कन्धों से पृथ्वी का स्पर्श करके दाहिने पैर को घुमाकर उसके पृष्ठभाग से बायें पैर को पीड़ित किया जाय; फिर घुमाये हुए अञ्चित पैर को जँघा के बीच में करके दोनों पैरों को सहलाया जाय; तो ऐसा करने से भ्रान्तपादाञ्चित करण बनता है ।

७. दण्डप्रणामाञ्चित

उत्प्लुत्याञ्चितवद्यत्र धरायां दण्डवत्पतेत् । 1368
तदुक्तं करणं दण्डप्रणामाञ्चितसंज्ञकम् ॥१३२२॥

अञ्चित करण की तरह उछलकर पृथ्वी पर डंडे की भाँति गिरने से दण्डप्रणामाञ्चित करण होता है ।

८. कर्तर्यञ्चित

कर्त्तर्यञ्चितमेतत्स्याद्यत्राङ्घ्रिस्वस्तिकाश्रितम् ॥१३२३॥ 1369

जहाँ पैरों को स्वस्तिकाकार करके अञ्चित करण बनाया जाता है वहाँ कर्तयञ्चित करण होता है ।

९. लंकादाहाञ्चित

अञ्चितं रचयन्देहविवृत्योरुपराङ्मुखः ।
महीतले यदासीनो विदध्यादुत्कटासनम् । 1370
तदा करणमादिष्टं लङ्कादाहाञ्चिताभिधम् ॥१३२४॥

जब अञ्चित करण की रचना करते हुए शरीर को घुमाकर ऊरु की ओर से मुँह फेरकर पृथ्वी पर बैठकर उत्टक आसन लगाया जाता है, तब लंकादाहाञ्चित करण होता है ।

१०. समकर्तर्यञ्चित

समपादं समाधाय यदा कृत्वाञ्चितं नटः । 1371
रचयेत्स्वस्तिकौ तत्सत्समकर्मरिकाञ्चितम् ॥१३२५॥

जब नट सम स्थित पैर की रचना करके अञ्चित करण करने के उपरान्त स्वस्तिक हाथों का निर्माण करता है, तब **समकर्तर्यञ्चित करण** होता है ।

११. बलिबन्धाञ्चित

कृत्वाग्रे गजदन्तं तु विदध्यादञ्चितं यदा । 1372
बलिबन्धाञ्चितं ज्ञेयं तदा करणकोविदैः ॥१३२६॥

जब पहले गजदन्त नामक हाथ की रचना करके अञ्चित करण किया जाता है तब उसे करणवेत्ता विद्वानों को **बलिबन्धाञ्चित करण** जानना चाहिए ।

१२. क्षेत्राञ्चित

आदौ प्रान्ते च यत्र स्यादञ्चितस्योत्कटासनम् । 1373
इदं क्षेत्राञ्चितं प्रोक्तमशोकेन महीभुजा ॥१३२७॥

जहाँ अञ्चित करण के आदि और प्रान्त में उत्कटासन किया जाता है, वहाँ राजा अशोकमल्ल ने **क्षेत्राञ्चित करण** बताया है ।

१३. स्कन्धाञ्चित

रचयित्वाञ्चितं यत्र स्कन्धालिङ्गितभूतलः । 1374
तिर्यगुल्लालयन्पादाववतिष्ठेत सत्वरम् ।
इदं स्कन्धाञ्चितं प्रोक्तं करणं प्राक्तनैर्बुधैः ॥१३२८॥ 1375

पुरातन आचार्यों का मत है कि जहाँ अञ्चित की रचना करके कन्धों से पृथ्वी का आलिंगन किया जाय और तिरछे पैरों को सहलाते हुए शीघ्रता से उठा जाय; तो वहाँ **स्कन्धाञ्चित करण** होता है ।

१४. अलग

अधोमुखः समुत्प्लुत्य निपत्य पुरतो यदा ।
कुक्कुटासनमाबध्य स्थितश्चे [दलगं तदा] ॥१३२९॥ 1376

जब मुँह नीचे की ओर किये उछलकर तथा सामने गिरकर एवं कुक्कुटासन बाँधकर स्थित हुआ जाय, तो वहाँ **अलग करण** होता है ।

१५. ऊर्ध्वालग

समाङ्घ्रेरूर्ध्वता स्थित्यां निपत्योर्ध्वालगं मतम् ॥१३३०॥

गिरकर स्थित होने में यदि सम नामक पैर ऊपर की ओर रहे तो **ऊर्ध्वालग करण** होता है ।

१६. अन्तरालग

विधायालगमुत्तानोरःस्थलो भुवि चेत् पतेत् । 1377
शिरसा पृष्ठतः श्रोणेः संस्पर्शादन्तरालगम् ॥१३३१॥

अलग करण की रचना करके यदि छाती को उत्तान किये सिर के बल भूमि पर गिरा जाय और पीछे की ओर से कटि का स्पर्श किया जाय, तो वहाँ **अन्तरालग करण** होता है ।

१७. कूर्मालग

कूर्मासनं चेदलगे तदा कूर्मालगं मतम् ॥१३३२॥ 1378

यदि अलग करण में **कूर्मालग** लगा लिया जाय तो, वह **कूर्मालग करण** कहलाता है ।

१८. लोहडी

समावङ्घ्री विधायाथ विवर्त्य त्रिकमाचरेत् ।
तिर्यगुत्प्लवनं यत्र सद्भिः सा लोहडी मता । 1379
लोहडीं लुठितं केचिदेतामेव प्रचक्षते ॥१३३३॥

सम स्थित दोनों पैरों की रचना करके तीन बार घुमाकर जहाँ तिरछा कूदा जाय, वहाँ **लोहडी करण** होता है । इसी लोहडी को कोई विद्वान् लुठित कहते हैं ।

१९. एकपादलोहडी

एकपादेन रचिता सैकपादादिलोहडी ॥१३३४॥ 1380

जो लोहडी एक पैर से रची जाती है उसे **एकपादलोहडी करण** कहते हैं ।

२०. विचित्रलोहडी

गात्रस्य चक्रवद्भ्रान्तिस्तिर्यक्पार्श्वोपलक्षिता ।
यत्र सोक्ता विचित्राद्या लोहडी नृत्तवेदिभिः ॥१३३५॥ 1381

नाट्याचार्यों को अभिमत है कि जहाँ शरीर को चक्र की तरह घुमाया जाय और पार्श्व तिरछा दिखाई पड़े, वहाँ **विचित्रलोहडी करण** होता है ।

२१. बाहुबन्धलोहडी

गजदन्तयुता त्वेषा बाहुबन्धादिलोहडी ।।१३३६।।

जिस लोहडी में गजदन्त नामक हाथ का प्रयोग किया जाता है, वह **बाहुबन्धलोहडी** कहलाती है ।

२२. कर्तरीलोहडी

स्वस्तिकाङ्घ्रिकृता त्वेषा कर्त्तरीलोहडी मता ।।१३३७।। 1382

जो लोहडी स्वस्तिकाकार पैरों से की जाती है, वह **कर्तरीलोहडी** कहलाती है ।

२३. समकर्तरीलोहडी

आदौ प्रान्ते च यस्याः स्तः समौ स्वस्तिकतां गतौ ।

पादौ सा लोहडी ज्ञेया समकर्त्तरिपूर्वका ।।१३३८।। 1383

जिस लोहडी के आदि और प्रान्तभाग में दोनों सम नामक पैर स्वस्तिक मुद्रा को धारण करें, वह **समकर्तरीलोहडी** कहलाती है ।

२४. चतुर्मुखलोहडी

लोहडी या चतुर्दिक्षु सा चतुर्मुखलोहडी ।।१३३९।।

जो लोहडी चारों दिशाओं में की जाती है, वह **चतुर्मुख लोहडी** कहलाती है ।

२५. अलगाञ्चित

कृत्वालगं यदावेगादञ्चितं रचयेन्नटः । 1384

तदालगाञ्चितं ज्ञेयं सद्भिरन्वर्थनामकम् ।।१३४०।।

जब अलग करण की रचना करके नट वेग से अञ्चित पैर की रचना करता है, तब सज्जन लोग उसे अर्थ के अनुरूप नाम वाला **अलगाञ्चित करण** समझते हैं ।

२६. जलशयन

जलादिशयनं तत्स्याद्यत्रास्ते जलशायिवत् ।।१३४१।। 1385

जिस करण में, जल में सोने वाले की तरह अवस्थित होना पड़ता है, उसे **जलशयन करण** कहते हैं ।

२७. दर्पशरण

वैष्णवस्थानमाधाय पतेत्पार्श्वेन चेद् भुवि ।

तदाचष्ट नृपो दर्पशरणं वीरसिंहजः ।।१३४२।। 1386

यदि वैष्णव स्थानक का आश्रय लेकर बगल से पृथ्वी पर गिरा जाय, तो राजा वीरसिंह के पुत्र अशोकमल्ल ने उसे **दर्पशरण करण** कहा है ।

२८. नागबन्ध

[स्या[1]द्दर्पसरणस्यान्ते नागबन्धवदासनम् ।
यत्र तन्नागबन्धाख्यं करणं तद्विदो विदुः । 1387

जहाँ दर्पशरण के अन्त में नागबन्ध के समान आसन लगाया जाय, वहाँ करणों के ज्ञाताओं ने उसे **नागबन्ध करण** कहा है ।

२९. मत्स्यकरण

उत्प्लुतेर्मध्यमावृत्या कुरुते वामपार्श्वतः ।
परिवृत्तिं तदा यत्र तन्मत्स्यकरणं भवेत् । 1388

जहाँ उछलने के मध्य बार-बार वाम पार्श्व की ओर से चक्कर लगाया जाय, वहाँ **मत्स्यकरण** होता है ।

यद्वा कस्यापि करणस्यान्ते तु क्षितिमण्डले ।
उत्तानशयतो मध्यं नितम्बोन्नतिपूर्वकम् । 1389
आवर्त्य वामपार्श्वेन मत्स्यवत्परिवर्त्य च ।
अन्ते समुत्प्लुतिं कृत्वा पादोल्लालनया क्षणात् । 1390
उत्तिष्ठेद्यत्र तदपि मत्स्याद्यं करणं भवेत् ।

अथवा किसी करण के अन्त में पृथ्वी पर उत्तान सोकर नितम्ब को उठाये हुए मध्यभाग को घुमाकर वामपार्श्व से मछली की तरह उलटकर तथा अन्त में उछलकर पैर को सहलाते हुए क्षण भर में उठा जाय, तो यह भी **मत्स्यकरण** कहलाता है ।

३०. तिर्यक् करण

यत्रैकेनैव पादेन तिर्यगुत्प्लुत्य भूतले । 1391
निपत्यैकाङ्घ्रिणा तिष्ठेत्तत्तिर्यक्करणं भवेत् ।

जहाँ एक ही पैर से तिरछा उछलकर पृथ्वी पर गिरकर एक पैर पर खड़ा हुआ जाय, वहाँ **तिर्यक् करण** होता है ।

३१. तिर्यक्स्वस्तिक

तिर्यक्स्वस्तिकमुत्प्लुत्य स्यात्तिर्यक्स्वस्तिके कृते । 1392

तिरछी स्वस्तिक मुद्रा में उछलने से **तिर्यक्स्वस्तिक करण** होता है ।

१. देखिए : भरतकोश ।

३२. कपालचूर्णन

लोहडीमलगं यद्वा विधाय धरणीतलम् ।
स्पृष्ट्वैव शिरसा यत्र परिवृतिं करोति चेत् । 1393
कपालचूर्णनं नाम करणं तत्प्रचक्षते ।

लोहडी या अलग नामक करण को करके पृथ्वीतल को छूकर जहाँ सिर को घुमाया जाता है, वहाँ **कपालचूर्णन करण** होता है ।

३३. नतपृष्ठक

कपालचूर्णने जाते वक्षस्युत्तानिते नते । 1394
नतपृष्ठं परैरुक्तं वङ्कोलकरणं त्विदम् ।

कपालचूर्णन करण के हो जाने पर तथा नत नामक वक्ष के उत्तान करने पर **नतपृष्ठ करण** होता है । दूसरे आचार्यों ने इसे **वङ्कोलकरण** कहा है ।

३४ करस्पर्श

अलगं विधाय करणं हस्तेनाश्रित्य नर्तकी भूमिम् । 1395
परिवर्तेन यदेदं स्पर्शनमुक्तं कराद्यं तत् ।

यदि नर्तकी अलग करण की रचना करके हाथ से घूमते हुए भूमि का आश्रय ग्रहण करे, तो वह **करस्पर्श करण** कहलाता है ।

३५. स्कन्धभ्रान्त

पृथ्व्यां स्थित्वांसयुग्मेन कृत्वा चैवोत्कटासनम् । 1396
करणञ्चाञ्चितं कृत्वा धृत्वाङ्गान्तरसञ्चरे ।
बाहुभ्यां भुवमाक्रम्य भ्रामं भ्रामं च पूर्ववत् । 1397
तिष्ठेत्प्रतिदिशं यत्र तत्स्कन्धभ्रान्तमुच्यते ।

दोनों कन्धों से भूमि पर अवस्थित होकर उत्कटासन तथा अञ्चित करण करके दूसरे अंगों को चलायमान करते हुए भुजाओं से पृथ्वी को आक्रान्त किया जाय और पूर्ववत् प्रत्येक दिशा में घूम-घूम कर खड़ा हुआ जाय, तो वहाँ **स्कन्धभ्रान्त करण** होता है ।

३६. एणप्लुत

कृत्वोत्प्लवनं सूचीमन्यतमां स्वे विधाय चेद्व्रजते । 1398
भूमावूर्ध्वस्थानं यदोत्कटासनं तदाप्लुतं चैणवम् ।

जब उछलने के पश्चात् सूची नामक चारी करके भूमि पर ऊर्ध्व स्थान वाले उत्कटासन को किया जाता है तब **एणप्लुत करण** होता है ।

३७. लोहड्यञ्चित

विधाय लोहडीं पश्चादञ्चितं क्रियते द्रुतम् । 1399
यत्र तत्करणं प्रोक्तं लोहड्यञ्चितसंज्ञिकम् ।

जहाँ लोहडी करण करने के पश्चात् शीघ्रता से अञ्चित करण किया जाता है वहाँ **लोहड्यञ्चित करण** होता है ।

३८. सूच्यन्त

करणे यत्र यत्रान्ते समसूच्यादि सूचिषु । 1400
एकं कुर्यात्तदा तत्तत्सूच्यन्तमिति कथ्यते ।

करण में जहाँ-जहाँ अन्त में समसूचि आदि सूचि-स्थानकों में से किसी एक को सम्पन्न किया जाता है, वहाँ-वहाँ **सूच्यन्त करण** होता है ।

अड़तीस उत्प्लुतिकरणों का निरूपण समाप्त

• •

# अंगहार रेचक मण्डल प्रकरण / तेरह

## अंगहारों का निरूपण

अंगहार (अंग-विक्षेप)

[1]पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यान् दृष्टादृष्टफलानपि । 1401
अङ्गहारान्प्रवक्ष्यामि नामतो लक्ष्मतस्तथा ।

पूर्वरंग (नाटक आदि की आरम्भिक क्रिया) में प्रयोग करने योग्य तथा दृष्ट एवं अदृष्ट फल वाले अंगहारों (अंग-विक्षेपों) के नाम तथा लक्षणों का निरूपण किया जा रहा है ।

अङ्गानामुचिते देशे प्रापणं सविलासकम् । 1402
मातृकोत्करसम्पाद्यमङ्गहारोऽभिधीयते ।

मातृका-समूह के योग से सम्पन्न होने वाले अंगों को हाव-भाव के साथ समुचित स्थान पर पहुँचाना **अंगहार** कहलाता है ।

यद्वा हारो हरस्यायं प्रयोगोऽङ्गैरिति स्मृतः । 1403
करणाभ्यां मातृका स्यात् कलापः करणैस्त्रिभिः ।
चतुर्भिः खण्डको ज्ञेयः संघातः पञ्चभिर्मतः । 1404
इति सङ्घविशेषेण संज्ञाभेदान्परे जगुः ।

अथवा, **हरस्य अयम् इति हारः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार हार का अर्थ है प्रयोग । अंगों से प्रयोग - यह अंगहार शब्द का अर्थ है । दो करणों के योग से **मातृका** बनती है; तीन करणों के योग से **कलाप**; चार करणों के योग से **खण्डक**; और पाँच करणों के योग से **संघात** का निर्माण होता है । इस प्रकार अंगों के समूह-विशेष के कारण अन्यान्य आचार्यों ने अंगहारों के अनेक भेद बताये हैं ।

करणन्यूनताधिक्यं तेषां मेने मुनिः स्वयम् । 1405
द्वाभ्यां त्रिचतुराभिर्वेत्येतद्वा शब्दसूचितम् ।

उन अंगहारों में करणों की न्यूनता तथा अधिकता को स्वयं भरत मुनि ने स्वीकार किया है । दो या तीन अथवा चार मातृकाओं के योग से अंगहार का सम्पादन करना चाहिए, यह उन्होंने शब्द द्वारा सूचित किया है ।

---

१. देखिए : संगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ७९५–८१४ ।

अंगहार के भेद

स्थिरहस्तोऽथ पर्यस्तः सूचीविद्धोऽपराजितः । 1406
वैशाखरेचितः पार्श्वस्वस्तिको भ्रमरोऽपरः ।
आक्षिप्तकः परिच्छिन्नो मदाद्विलसितस्ततः । 1407
आलीढाच्छुरितौ पार्श्वच्छेदसंज्ञोऽपसर्पितः ।
मत्ताक्रीडस्तथा विद्युद्भ्रान्तोऽमी षोडशोदिताः । 1408
चतुरस्रेण मानेनाङ्गहारा मुनिसत्तमैः ।

१. स्थिरहस्त, २. पर्यस्त, ३. सूचीविद्ध, ४. अपराजित, ५. वैशाखरेचित, ६. पार्श्वस्वस्तिक, ७. भ्रमर, ८. आक्षिप्तक, ९. परिच्छिन्न, १०. मदविलसित, ११. आलीढ, १२. आच्छुरित, १३. पार्श्वच्छेद, १४. अपसर्पित, १५. मतक्रीड तथा १६. विद्युद्भ्रान्त—इन सोलह अंगहारों को मुनिवरों ने चतुरस्र मान के हिसाब से बताया है ।

विष्कम्भापसृतौ (तो)मत्तस्खलितो गतिमण्डलः । 1409
अपविद्धश्च विष्कम्भोद्घट्टिताक्षिप्तरेचिताः ।
रेचितोऽर्धनिकुट्टश्च वृश्चिकापसृतस्ततः । 1410
अलातकः परावृत्तः परिवृत्तादिरेचितः ।
उद्वृत्तकश्च सम्भ्रान्तसंज्ञः स्वस्तिकरेचितः । 1411
षोडशेति त्र्यस्रमाना द्वात्रिंशदुभये मताः ।

१. विष्कम्भापसृत, २. मत्तस्खलित, ३. गतिमण्डल, ४. अपविद्ध, ५. विष्कम्भ, ६. उद्घट्टित, ७. आक्षिप्तरेचित, ८. रेचित, ९. अर्धनिकुट्ट, १०. वृश्चिकापसृत, ११. अलातक, १२. परावृत्त, १३. परिवृत्तरेचित, १४. उद्वृत्तक, १५. सम्भ्रान्त और १६. स्वस्तिकरेचित—ये सोलह अंगहार त्र्यस्रमान के हिसाब से बताये गये हैं । दोनों मानों के अंगहारों को मिलाकर कुल बत्तीस अंगहार होते हैं ।

करणव्रातसन्दर्भानन्त्यात्तेषामनन्तता । 1412
द्वात्रिंशत्ते तथाऽप्युक्ताः प्राधान्यविनियोगतः ।

करण-समूह के सन्दर्भों के अनन्त होने से अंगहार अनन्त होते हैं । तो भी प्रधानता के हिसाब से बत्तीस बताये गये हैं ।

एकैकं करणं कार्यं कलया गुरुरूपया । 1413
सर्वेषामङ्गहाराणामित्याह करणाग्रणीः ।

गुरु रूप कला के क्रम से सभी अंगहारों के एक-एक करण का निर्माण करना चाहिए, यह करणों के विशेषज्ञों का अभिमत है ।

**१. स्थिरहस्त**

चतुरस्र मान में सोलह अंगहार (१)

लीनं समनखं कृत्वा व्यंसितं चात्र विच्युतौ । 1414
करौ कृत्वौज्झितालीढः प्रत्यालीढं व्रजेत्ततः ।
निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्यस्वस्तिकाक्षिप्तकान्यथ । 1415
नितम्बं करिहस्तं च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ।
करणैः स्थिरहस्तः स्याद्दशभिः शिववल्लभः । 1416
अङ्गहारेषु सर्वेषु प्रत्यालीढान्तमादितः ।
प्रयोक्तव्यमिति प्राहुः केचिन्नाट्यविशारदाः । 1417

१. **लीन**, २. **समनख**, तथा ३. **व्यंसित** करणों को करके दोनों हाथों को अलग-अलग करे; फिर आलीढ नामक स्थानक को छोड़कर प्रत्यालीढ नामक स्थानक को प्राप्त करे; अनन्तर ४. **निकुट्टक**, ५. **ऊरुद्वृत्त** ६. **स्वस्तिक**, ७. **आक्षिप्त**, ८. **नितम्ब**, ९. **करिहस्त** और १०. **कटीच्छिन्न**—कुल दस करणों को क्रमशः करने से **स्थिरहस्त** अंगहार बनता है, जो शिव को प्रिय है । कोई नाट्य-पण्डित कहते हैं कि सभी अंगहारों में आदि से प्रत्यालीढ तक सभी करणों का प्रयोग करना चाहिए ।

**२. पर्यस्तक**

तलपुष्पपुटं पूर्वमपविद्धं च वर्तितम् ।
निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्याक्षिप्तत्तोरोमण्डलान्यथ । 1418
नितम्बं करिहस्तं च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ।
दशभिः करणैरेभिः प्रोक्तः पर्यस्तको बुधैः । 1419

१. **तलपुष्पपुट**, २. **अपविद्ध**, ३. **वर्तित**, ४. **निकुट्टक**, ५. **ऊरुद्वृत्त**, ६. **आक्षिप्त**, ७. **उरोमण्डल**, ८. **नितम्ब**, ९. **करिहस्त** और १०. **कटीच्छिन्न**—क्रमशः इन दस करणों की रचना से **पर्यस्तक** अंगहार का निर्माण करना चाहिए, ऐसा विद्वानों ने कहा है ।

३. सूचीविद्ध

अर्धसूच्यथ विक्षिप्तमावर्तं च निकुट्टकम् ।
ऊरूद्वृत्तमथाऽऽक्षिप्तमुरोमण्डलसंज्ञकम् ] । 1420
करिहस्तं कटीच्छिन्नं यत्रैतानि क्रमान्नव ।
सोऽङ्गहारोऽङ्गहारज्ञैः सूचीविद्धः प्रकीर्तितः ॥१३४३॥ 1421

१. अर्धसूची, २. विक्षिप्त, ३. आवर्त, ४. निकुट्टक, ५. ऊरूद्वृत्त, ६. आक्षिप्त, ७. उरोमण्डल, ८. करिहस्त और ९. कटीच्छिन्न--जिसमें ये नौ करण प्रयुक्त होते हैं, उस अंगहार को, अंगहारों के ज्ञाताओं ने सूचीविद्ध कहा है ।

४. अपराजित

करणं दण्डपादाख्यं व्यंसितं च प्रसर्पितम् ।
ततो निकुट्टकं चार्धनिकुट्टाक्षिप्तके ततः ॥१३४४॥ 1422
उरोमण्डलसंज्ञं च करणं करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्नं च नवभिरेभिः स्यादपराजितः ॥१३४५॥ 1423

१. दण्डपाद, २. व्यंसित, ३. असर्पित, ४. निकुट्टक, ५. अर्धनिकुट्ट, ६. आक्षिप्त, ७. उरोमण्डल, ८. करिहस्त और ९. कटिच्छिन्न--जिसमें इन नौ करणों की रचना से अपराजित अंगहार का निर्माण होता है ।

५. मदविलसित

मदस्खलितमत्तल्लितलसंस्फोटितानि चेत् ।
रचयेत् त्रिश्चतुः पञ्चकृत्वो वा चित्रितान्यथ ॥१३४६॥ 1424
निकुट्टोरूद्वृत्तके तु विदध्यात् करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्नं च सम्प्रोक्तो मदाद्विलसितस्तदा ॥१३४७॥ 1425

मदस्खलित, मत्तल्लि और तलसंस्फोटित--इन करणों की तीन, चार या पांच बार रचना करके निकुट्टक, ऊरूद्वृत्त, करिहस्त और कटिच्छिन्न करणों को करने से मदविलसित अंगहार बनता है ।

६. मत्तक्रीड

भ्रमरं नूपुरं चैव भुजङ्गत्रासितं यदा ।
कृत्वा दक्षिणभागेन यत्र वैशाखरेचितम् ॥१३४८॥ 1426

आक्षिप्तं च तथा छिन्नं वामतो भ्रमरं पुनः ।
नितम्बं करिहस्तं च कटिच्छिन्नं समाचरेत् ।।१३४६।। 1427
तदाङ्गहारो दशभिरमीभिः करणैरसौ ।
मत्तक्रीडोऽथ गणनाभ्यासेन भ्रमरस्य सः । 1428
एकादशभिरादिष्टो बुधैः शङ्करशङ्करः ।।१३५०।।

जब दक्षिण भाग से १. भ्रमर, २. नूपुर, ३. भुजंगत्रासित, ४. वैशाखरेचित, ५. आक्षिप्त तथा ६. **छिन्न करणों** की रचना करके वामभाग से पुनः ७. भ्रमर, ८. नितम्ब, ९. करिहस्त तथा १०. **कटिच्छिन्न**—इन दस करणों की रचना की जाती है, तब **मत्तक्रीड** अंगहार बनता है। यहाँ विद्वानों का कहना है कि **भ्रमर** की एक बार और गणना करने से ११. करणों से **मत्तक्रीड** अंगहार बनता है, जो शंकर को प्रिय है।

७. भ्रमर

नूपुराक्षिप्तके छिन्नसूचीनी च नितम्बकम् । 1429
करिहस्तं च करणमुरोमण्डलसंज्ञकम् ।
कटिच्छिन्नं च करणैरमीभिर्भ्रमरो भवेत् ।।१३५१।। 1430

१. नूपुर, २. आक्षिप्तक, ३. छिन्नसूचि, ४. नितम्ब, ५. करिहस्त, ६. उरोमण्डल और ७. **कटिच्छिन्न**—इन करणों की रचना से **भ्रमर** अंगहार बनता है।

८. विद्युद्भ्रान्त

वामतश्चेदर्धसूचि विद्युद्भ्रान्तं तु सव्यतः ।
पुनरेतद् द्वयं चाङ्गविपर्यासाद् विधाय च ।।१३५२।। 1431
अथाच्छिन्नमतिक्रान्तं वामाङ्गेऽथ समा[च]रेत् ।
तला(? लता)द्यं वृश्चिकं पश्चात् कटिच्छिन्नमिति क्रमात् ।।१३५३।।
षड्भिस्तु करणैरेभिर्विद्युद्भ्रान्तो मतस्तदा । 1432
आद्यद्विकरणाभ्यासगणने स मतोऽष्टभिः ।।१३५४।। 1433

वामभाग से **अर्धसूचि**, दक्षिण भाग से **विद्युद्भ्रान्त** और पुनः इन दोनों को अंगपरिवर्तन द्वारा सम्पन्न करके वामभाग में **छिन्न** तथा **अतिक्रान्त** करणों की रचना करे; पश्चात् **लतावृश्चिक** और **कटिच्छिन्न** को क्रमशः

सम्पन्न करे; इन छह करणों से विद्युद्भ्रान्त अंगहार बनता है। यहाँ प्रारंभ के दो करणों को दुहरा देने से गणना में आठ करण होते हैं।

९. परिच्छिन्न

कृत्वा समनखं यत्र छिन्नं सम्भ्रान्तके ततः ।
वामाङ्गे भ्रमरं चार्धसूचि चेद् रचयेत् ततः ॥१३५५॥ 1434
अतिक्रान्तं भुजङ्गाद्यं त्रासितं करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्नं च कुर्यात् स परिच्छिन्नस्तदा मतः ॥१३५६॥ 1435

जहाँ **समनख** करण को करके **छिन्न** तथा **संभ्रान्तक** की रचना की जाय; वाम अंग में **भ्रमर** तथा **अर्धसूचि** को बनावे और पश्चात् **अतिक्रान्त**, **भुजंगत्रासित**, **करिहस्त** और **कटिच्छिन्न** का निर्माण किया जाय, तो **परिच्छिन्न** अंगहार बनता है।

१०. पार्श्वच्छेद

कुट्टितं वृश्चिकाद्यं चेदूर्ध्वजानु च नूपुरम् ।
आक्षिप्तस्वस्तिकं कृत्वा परिवृत्तिं त्रिकस्य च ॥१३५७॥ 1436
उरोमण्डलकं पश्चात् नितम्बकरिहस्तके ।
कटिच्छिन्नं च रचयेत् पार्श्वच्छेदस्तदा मतः ॥१३५८॥ 1437

पहले **कुट्टित**, **वृश्चिक**, **ऊर्ध्वजानु**, **नूपुर** और **आक्षिप्तस्वस्तिक** करणों को करके कटिभाग को घुमाकर पश्चात् **उरोमण्डल**, **नितम्ब**, **करिहस्त** तथा **कटिच्छिन्न** करणों की रचना की जाय, तो **पार्श्वच्छेद** अंगहार बनता है।

११. अपसर्पित

अपक्रान्तं व्यंसितं च पाण्योरेवं यदा क्रिया ।
करिहस्तकमर्धाद्यं सूचि विक्षिप्तकं ततः ॥१३५९॥ 1438
कटिच्छिन्नं च करणमुरूद्वृत्तमतः परम् ।
आक्षिप्तं करि[ह]स्तं च कटिच्छिन्नं पुनस्तदा ॥१३६०॥ 1439
सप्तभिः करणैरेभिरपसर्पितको मतः ।
अन्त्यद्विकरणाभ्यासगणने नवभिर्मतः ॥१३६१॥ 1440

पहले **अवक्रान्त** और **व्यंसित** हाथों की रचना की जाय; तत्पश्चात् **करिहस्त, अर्धसूचि, विक्षिप्तक, कटिच्छिन्न, ऊरूद्वृत** और **आक्षिप्त** को किया जाय; पुनः **करिहस्त** तथा **कटिच्छिन्न** करण धारण किया जाय; तो **अपसर्पितक** अंगहार होता है। **करिहस्त** और **कटिच्छिन्न** को दोहरा देने से यहाँ करणों की संख्या नौ (? दस) हो जाती है।

१२. आक्षिप्त

नूपुरं यत्र विक्षिप्तमलातक्षिप्तके ततः ।
उरोमण्डलकं चाथ नितम्बं करिहस्तकम् । 1441
कटिच्छिन्नमपि ज्ञेयोऽमीभिराक्षिप्तको बुधैः ।।१३६२।।

जहाँ **नूपुर, विक्षिप्त, अलात, क्षिप्तक, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त** और **कटिच्छिन्न** करणों की क्रमशः रचना की जाय, वहाँ विद्वानों ने **आक्षिप्त** अंगहार बताया है।

१३. आच्छुरित

नूपुरं भ्रमरं चाथ व्यंसितं तदनन्तरम् । 1442
अलातकं नितम्बं च सूच्यथो करिहस्तकम् ।
कटिच्छिन्नं चाङ्गहारोऽमीभिराच्छुरिताभिधः ।।१३६३।। 1443

**नूपुर, भ्रमर, व्यंसित, अलात, नितम्ब, सूचि, करिहस्त** तथा **कटिच्छिन्न** नामक करणों की क्रमशः रचना से **आच्छुरित** अंगहार बनता है।

१४. आलीढ़

विधाय व्यंसितं वामे निकुट्टं नूपुरं यदा ।
अन्यतोऽलातमाक्षिप्तमुरोमण्डलकं तथा । 1444
करिहस्तकटिच्छिन्ने कुर्यादालीढकस्तदा ।।१३६४।।

जब वाम भाग में **व्यंसित, निकुट्ट** तथा **नूपुर** नामक करण किये जाते हैं और दक्षिण भाग में **अलात, आक्षिप्त, उरोमण्डलक, करिहस्त** और **कटिच्छिन्न** नामक करण रचे जाते हैं, तब **आलीढ़** अंगहार बनता है।

१५. वैशाखरेचित

पार्श्वयुग्मेन वैशाखरेचितं यत्र नूपुरम् । 1445
भुजङ्गत्रासितोन्मत्तो मण्डलस्वस्तिकं ततः ।।१३६५।।

निकुट्टोरूद्वृत्ताकेचितिक्षप्तोरोमण्डले ततः । 1446
करिहस्तं कटिच्छिन्नमित्येभिर्दशभिः क्रमात् ।
वैशाखरेचितोऽसौ स्यादङ्गहारो हरप्रियः ॥१३६६॥ 1447

जहाँ दोनों पार्श्वों में क्रमशः वैशाखरेचित, नूपुर, भुजंगत्रासित, उन्मत्त, मण्डलस्वस्तिक, निकुट्ट, ऊरूद्वृत्त, उरोमण्डल, करिहस्त और कटिच्छिन्न—इन दश करणों की रचना की जाय, वहाँ वैशाखरेचित अंगहार बनता है, जो शंकर को प्रिय है ।

१६. पार्श्वस्वस्तिक

दिक्स्वस्तिकमथैकेन गात्रेणार्धनिकुट्टकम् ।
दिक्स्वस्तिकं पुनरथान्याङ्गेनार्धनिकुट्टकम् ॥१३६७॥ 1448
ततोऽपविद्धोरूद्वृत्ताक्षिप्तकानि नितम्बकम् ।
करिहस्तकटीछिन्नैः करणैरष्टभिः क्रमात् । 1449
एभिः स्यादङ्गहारोऽयं पार्श्वस्वस्तिकसंज्ञकः ॥१३६८॥

एक अंग से दिक्स्वस्तिक, अर्धनिकुट्टक, पुनः दिक्स्वस्तिक; फिर अन्य अंग से अर्धनिकुट्टक, तदनन्तर अपविद्ध, ऊरूद्वृत्त, आक्षिप्त, नितम्ब, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न–क्रमशः इन आठ करणों की रचना की जाय, तो वहाँ पार्श्वस्वस्तिक अंगहार सम्पन्न होता है ।

त्र्यस्र मान में सोलह अंगहार (२)

१. अपविद्ध

अपविद्धं ततः सूचीविद्धमुद्वेष्टिते करे । 1450
चार्या बद्धाख्यया सार्धं भ्रामयेत् चेत् त्रिकं ततः ॥१३६९॥
ऊरूद्वृत्तामुरः पूर्वं मण्डलं च ततः परम् । 1451
पञ्चमं तु कटीच्छिन्नमपविद्धस्तदोदितः ॥१३७०॥

यदि उद्वेष्टित हाथ में अपविद्ध तथा सूचीविद्ध करणों को रचकर बद्धा नामक चारी के साथ कटिदेश को घुमाया जाय; उसके बाद ऊरूद्वृत्त, उरोमण्डल तथा पाँचवे कटीच्छिन्न करण की रचना की जाय; तो वहाँ अपविद्ध अंगहार बनता है ।

२. परावृत्त

जनितं दक्षिणाङ्गेन शकटास्यमतः परम् । 1452
अलातभ्रमरे कुर्यात् वाममङ्गे निकुट्टितम् ।।१३७१।।
करिहस्तं कटीच्छिन्नं क्रमादेतानि यत्र षट् । 1453
परावृत्तः सोऽङ्गहारः सदा शङ्करशङ्करः ।
नमनोन्नमनं प्रोक्तं गात्रस्येह निकुट्टितम् ।।१३७२।। 1454

यदि दाहिने अंग से जनित, और बायें अंग से शकटास्य, अलात भ्रमर करणों की रचना की जाय; फिर निकुट्टित करके करिहस्त और कटीच्छिन्न--क्रमशः इन (सब मिलाकर) छह करणों के निर्माण से परावृत्त अंगहार सम्पन्न होता है, जो सदा शंकर को सन्तुष्ट करता है। अंग का झुकाना और उठाना यहाँ निकुट्टित कहलाता है।

३. रेचित

आदौ स्वस्तिकपूर्वं स्याद् रेचितं तदनन्तरम् ।
अर्धाद्यं रेचितं वक्षः स्वस्तिकोन्मत्तके ततः ।।१३७३।। 1455
आक्षिप्तरेचितं चार्धमत्तल्लिकरणं ततः ।
रेचकाद्यं निकुट्टं च भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ।।१३७४।। 1456
नूपुरं च ततः कृत्वा कुर्याद् वैशाखरेचितम् ।
भुजङ्गाञ्चितकं दण्डरेचितं करणं ततः ।।१३७५।। 1457
चक्रमण्डलकं पश्चाद् वृश्चिकाद्यं तु रेचितम् ।
व्यंसितं च विवृत्तं च विनिवृत्तविवर्तिते ।।१३७६।। 1458
गरु[ड] प्लुतसंज्ञं च करणं ललितं तथा ।
मयूराद्यं ततः पश्चात् सर्पितं स्खलितं तथा ।।१३७७।। 1459
प्रसर्पितं तलाद्यं तु संघट्टितमतः परम् ।
वृषभक्रीडितं चाथ लोलितं चेति विंशतिः ।।१३७८।। 1460
या षड्भिरधिकामीषां करणानामुदीरिता ।
रचयित्वा चतुर्दिक्षु भागैस्तं विषमैर्नटः ।।१३७९।। 1461

परिवृत्तिप्रकारेण ततः प्रान्ते समाश्रयेत् ।
उरोमण्डलकं पाश्चात् कटिच्छिन्नं स रेचितः ॥१३८०॥ 1462

पहले **स्वस्तिकरेचित**, पश्चात् **अर्धरेचित**, तदनन्तर **वक्षःस्वस्तिक**, **उन्मत्त**, **आक्षिप्तरेचित**, **अर्धमत्तल्लि**, **रेचकनिकुट्टक**, **भुजंगत्रस्तरेचित**, **नूपुर**, **वैशाखरेचित**, **भुजंगाञ्चित**, **दण्डरेचित**, **चक्रमण्डल**, **वृश्चिकरेचित**, **व्यंसित**, **विवृत्त**, **विनिवृत्त**, **विर्वातत**, **गरुडप्लुत**, **मयूरललित**, **सर्पित**, **स्खलित**, **प्रसर्पित**, **तलसंघट्टित**, **वृषभक्रीडित** और **लोलित**--इन छब्बीस करणों को क्रमशः चारों दिशाओं में रचकर नर्तक इनके विषम भाग करके घुमाते हुए किनारे में ले आये । तदुपरान्त **उरोमण्डल** और **कटिच्छिन्न** करणों की रचना करे; ऐसा करने से **रेचित** नामक अंगहार बनता है ।

४. आक्षिप्तरेचित

रचयेच्चातुरी योगाद् यत्र स्वस्तिकरेचितम् ।
पृष्ठाद्यं स्वस्तिकं चाथ दिवस्वस्तिकमतः परम् ॥१३८१॥ 1463
कटीच्छिन्नं समं पश्चाद् घूर्णितं भ्रमरं[त] तः ।
रेचितं वृश्चिकाद्यं च ततः पार्श्वनिकुट्टकम् । 1464
उरोमण्डलसंज्ञं च करणं सन्नतं ततः ।
सिंहाकर्षितकं नामापसर्पितमथात्र तु ॥१३८२॥ 1465
वक्षःस्वस्तिकमिच्छन्ति केचिन्नृत्तमनीषिणः ।
दण्डपक्षं ललाटाद्यं तिलकं करणं ततः ॥१३८३॥ 1466
विलासितं तलाद्यं च निशुम्भितमतः परम् ।
विद्युद्भ्रान्तं च करणं गजक्रीडितकं ततः ॥१३८४॥ 1467
नितम्बं विष्णुक्रान्तोरूद्वृत्ताक्षिप्तमतः परम् ।
उरोमण्डलकं पश्चात् नितम्बं करिहस्तकम् ॥१३८५॥ 1468
कटीच्छिन्नं भवेत् नो वा सा स्यादाक्षिप्तरेचितः ।
पञ्चविंशतिसंख्याकैः करणैः प्राक्तने मते ॥१३८६॥ 1469
अनावृत्या नितम्बस्य तथोरोमण्डलस्य च ।
आवृत्या त्वनयोरेव सप्तविंशतिभिर्भवेत् ॥१३८७॥ 1470

ये वक्षःस्वस्तिककटीच्छिन्ने नेच्छन्ति सूरयः ।
तन्मतेऽपि तदभ्यासात् पञ्चविंशतिभिर्भवेत् ।।१३८८।। 1471

पहले चतुरता से **स्वस्तिकरेचित** की रचना की जाय; उसके बाद **पृष्ठस्वस्तिक**, **दिक्स्वस्तिक**, **कटीच्छिन्न**, **घूर्णित**, **भ्रमर**, **वृश्चिकरेचित**, **पार्श्वनिकुट्टक**, **उरोमण्डल**, **सन्नत**, **सिंहाकर्षित**, **नागापसर्पित**, **वक्षःस्वस्तिक**, **दण्डपक्ष**, **ललाटतिलक**, **निशुम्भित**, **विद्युद्भ्रान्त**, **गजक्रीडित**, **नितम्ब**, **विष्णुक्रान्त**, **ऊरूद्वृत्त**, **आक्षिप्त**, **ऊरोमण्डल**, **नितम्ब**, **करिहस्त** और **कटीच्छिन्न** अथवा उसके बिना भी--इन पचीस करणों से **आक्षिप्तरेचित** अंगहार बनता है । किन्तु यह पचीस संख्या तब होगी जब **नितम्ब** तथा **ऊरोमण्डल** को दोहराया नहीं जाएगा । इनको दोहरा देने से करणों की संख्या सत्ताईस हो जाती है । जो विद्वान् **वक्षःस्वस्तिक** तथा **कटीच्छिन्न** करणों को यहाँ नहीं चाहते हैं, उनके मत में भी उक्त दोनों करणों को दोहरा देने से पच्चीस संख्या हो जाती है ।

५. उद्वृत्त

विधाय नूपुरं यत्र भुजङ्गाञ्चितकं ततः ।
गृध्रावलीनकं पश्चाद्विक्षिप्तोद्वृत्तके तथा ।।१३८९।। 1472
एकाङ्गेन ततः कुर्यादूरूद्वृत्तं नितम्बकम् ।
लताद्यं वृश्चिकं चाथ कटीच्छिन्नमिति क्रमात् ।।१३९०।। 1473
नवभिः करणैरेभिरूद्वृत्तोऽसौ मतो बुधैः ।
विक्षिप्तोद्वृत्तयोरेषोऽभ्यासेन द्व्यधिको भवेत् ।।१३९१।। 1474

पहले **नूपुर** करण करके **भुजंगाञ्चित**, **गृध्रावलीनक**, **विक्षिप्त** तथा **उद्वृत्त** करणों की रचना की जाय; फिर एक अंग से **ऊरूद्वृत्त**, **नितम्ब**, **लतावृश्चिक** और **कटीच्छिन्न**--इन नौ करणों को क्रमशः किया जाय, तो **उद्वृत** अंगहार बनता है । यहाँ **विक्षिप्त** और **उद्वृत्त** करणों को दोहरा देने से दो अधिक करण हो जाते हैं ।

६. उद्घट्टित

निकुट्टं करणं पश्चादुरोमण्डलसंज्ञकम् ।
नितम्बकरिहस्ते च कटीच्छिन्नमिति क्रमात् । 1475
पञ्चभिः करणैरेभिरुद्घट्टित उदीरितः ।।१३९२।।

निकुट्ट, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त और कटीच्छिन्न--इन पाँच करणों को क्रमशः करने से उद्घट्टित अंगहार बनता है ।

७. अलात

स्वस्तिकं करणं पूर्वमथ द्विर्व्यंसितं ततः । 1476
अलातं चोर्ध्वजानु स्यान्निकुञ्चितमतः परम् ॥१३६३॥
अर्धसूच्यथ विक्षिप्तोद्वृत्ताक्षिप्तकानि च । 1477
करिहस्तं कटीच्छिन्नं भवन्त्येतान्यलातके ।
एकादश तथाभ्यासगणने व्यंसितेऽधिकम् ॥१३६४॥ 1478

पहले स्वस्तिक करण, पश्चात् दो व्यंसित, अलात, ऊर्ध्वजानु, निकुञ्चित, अर्धसूचि, विक्षिप्त, उद्वृत्त, आक्षिप्त, करिहस्त और कटीच्छिन्न--ये ग्यारह करण क्रमशः अलात अंगहार में प्रयुक्त होते हैं । यहाँ व्यंसित को दो बार दोहरा देने से करणों की संख्या एक अधिक अर्थात् बारह हो जाती है ।

८. सम्भ्रान्त

विक्षिप्ताञ्चितके दण्डपूर्वं सूचि ततः परम् ।
गङ्गावतरणं चाथ सूच्यथो दण्डपादकम् ॥१३६५॥ 1479
वामाङ्गरचितं पश्चाच्चतुरं भ्रमरं ततः ।
नूपुराक्षिप्तके चार्धस्वस्तिकं च नितम्बकम् ॥१३६६॥ 1480
करिहस्तमुरः पूर्वं मण्डलं कटिपूर्वकम् ।
छिन्नं चेति क्रमादेभिः पञ्चाद्यैर्दशभिर्मतः । 1481
सम्भ्रान्तनामको धीरैरङ्गहारो हरप्रियः ॥१३६७॥

विक्षिप्त, अञ्चित, दण्डसूचि, गंगावरण, सूचि, दण्डपाद, वाम अंग में रचे जायँ; तत्पश्चात् चतुर, भ्रमर, नूपुर, आक्षिप्त, अर्धस्वस्तिक, नितम्ब, करिहस्त, उरोमण्डल और कटिच्छिन्न--इन पन्द्रह करणों को क्रमशः प्रयुक्त किया जाय, तो सम्भ्रान्त अंगहार बनता है, जो शंकर को प्रिय है ।

९. अर्धनिकुट्ट

नूपुरं करणं पूर्वं विवृत्तं तदनन्तरम् । 1482
निकुट्टार्धनिकुट्टार्धरेचितानि ततः परम् ॥१३६८॥

रेचकाद्यं निकुट्टं च करणं ललिताभिधम् । 1483
वैशाखरेचितं [पश्चात् चतुरं दण्डरेचितम्] ॥१३९९॥
वृश्चिकाद्यं कुट्टितं च ततः पार्श्वनिकुट्टकम् । 1484
सम्भ्रान्तोद्घट्टिताख्योरोमण्डलानि ततः परम् ॥१४००॥
करिहस्तकटिच्छिन्ने यत्रैतानि क्रमादसौ । 1485
भवेदर्धनिकुट्टाख्यस्त्वङ्गहारः शिवप्रियः ॥१४०१॥

पहले नूपुर करण, पश्चात् निकुट्ट, अर्धनिकुट्ट, अर्धरेचित, रेचकनिकुट्ट, ललित, वैशाखरेचित, चतुर, दण्डरेचित, वृश्चिककुट्टित, पार्श्वनिकुट्टक, संभ्रान्त, उद्घट्टित, उरोमण्डल, करिहस्त और कटिच्छिन्न--ये करण क्रमशः, शंकर के प्रिय, अर्धनिकुट्ट नामक अंगहार में प्रयुक्त होते हैं ।

१०. परिवृत्तरेचित

नितम्बं स्वस्तिकाद्यं तु रेचितं तदनन्तरम् । 1486
विक्षिप्ताक्षिप्तकं चाथ लतावृश्चिकसंज्ञकम् ॥१४०२॥
उन्मत्तकरिहस्ते च भुजङ्गत्रासितं ततः । 1487
आक्षिप्तं करिहस्तं च नितम्बं च नवेत्यथ ॥१४०३॥
भ्रमरेण सहेमानि परिवृत्त्याश्रयेत् ततः । 1488
स्थित्वा दिगन्तरास्यस्तु व्यावर्त्यैतरयोर्दिशोः ॥१४०४॥
करिहस्तं कटिच्छिन्नं विदध्यात् पूर्वदिक् स्थितः । 1489
यत्रासो परिवृत्ताद्यो रेचितः परिकीर्तितः ॥१४०५॥
गङ्गावतरणं त्यक्त्वा तथा नागापसर्पितम् । 1490
परिवृत्तविधिर्ज्ञेयः सर्वत्रैवाङ्गहारकैः ॥१४०६॥

नितम्ब, स्वस्तिकरेचित, विक्षिप्त, आक्षिप्त, लतावृश्चिक, उन्मत्त, करिहस्त, भुजंगत्रासित, आक्षिप्त, करिहस्त और नितम्ब--इन करणों को भ्रमर के साथ घुमाकर अन्य दिशा में मुख करके अवस्थित हो; फिर अन्य दो दिशाओं में घूमकर पूर्व दिशा में खड़ा होकर करिहस्त एवं कटिच्छिन्न करणों की रचना करे; ऐसा करने से परिवृत्तरेचित अंगहार बनता है । गंगावतरण और नागापसर्पित नामक करणों को छोड़कर सर्वत्र अंगहार करने वालों को परिवृत्त का प्रकार जान लेना चाहिए ।

११. स्वस्तिकरेचित

वैशाखरेचितं पूर्वं वृश्चिकं चाथ तद् द्वयम् । 1491
सव्यसव्येतराङ्गाभ्यां निकुट्टं सलताकरम् ॥१४०७॥
तुर्यं यत्र कटीच्छिन्नमसौ स्वस्तिकरेचितः । 1492
अभ्यासादाद्ययोरत्र करणानि भवन्ति षट् ।
स्वस्तिकापसृतं केचिदिममेव प्रचक्षते ॥१४०८॥ 1493

पहले **वैशाखरेचित**, पश्चात् **वृश्चिक**, अनन्तर दाहिने-बायें अंगों से **लताकर** हाथ के साथ **निकुट्ट** और चौथे **कटीच्छन्न** नामक करणों के करने से **स्वस्तिकरेचित** अंगहार बनता है । यहाँ **वैशाखरेचित** और **वृश्चिक** को दोहरा देने से छह करण हो जाते हैं । कोई आचार्य इसी अंगहार को **स्वस्तिकापसृत** कहते हैं ।

१२. विष्कम्भापसृत

निकुट्टार्धनिकुट्टे द्वे कृत्वा पार्श्वद्वयेन चेत् ।
भुजङ्गत्रासितं कुर्याद् भुजङ्गत्रस्तरेचितम् ॥१४०९॥ 1494
आक्षिप्तकमुरःपूर्वं मण्डलं च लताकरौ ।
सप्तमं तु कटीच्छिन्नं विष्कम्भापसृतस्तदा ॥१४१०॥ 1495

दोनों पार्श्व से **निकुट्ट** तथा **अर्धनिकुट्ट** नामक करणों को करके **भुजंगत्रासित**, **भुजंगत्रस्तरेचित**, **आक्षिप्त**, **उरोमण्डल**, दोनों **लताकर** नामक हाथ और सातवें **कटीच्छिन्न** नामक करण के करने से **विष्कम्भापसृत** अंगहार बनता है ।

१३. विष्कम्भक

निकुट्टकं विधायाथ निकुञ्चितमथाञ्चितम् ।
ऊरूद्वृत्तकमप्यर्धनिकुट्टं तदनन्तरम् ॥१४११॥ 1496
भुजङ्गत्रासितं पाणिमुद्वेष्ट्य भ्रमरं ततः ।
करिहस्तकटीच्छिन्ने कुर्याद् विष्कम्भकस्तु सः ॥१४१२॥ 1497

**निकुट्टक** करण को करने के पश्चात् **अञ्चित**, **ऊरूद्वृत्त**, **अर्धनिकुट्ट** और **भुजंगत्रासित** करणों की रचना की जाय; अनन्तर एक हाथ को **उद्वेष्टित** करके **भ्रमर**, **करिहस्त** तथा **कटीच्छिन्न** करणों को बनाया जाय, तो **विष्कम्भक** अंगहार होता है ।

१४. गतिमण्डल

मण्डलस्वस्तिकं त्वाद्यं नूपुरोन्मत्तके ततः ।
उद्घट्टितं च मत्तल्ल्याक्षिप्तोरोमण्डलान्यथ । 1498
कटीच्छिन्नममीभिः स्यादष्टभिर्गतिमण्डलः ॥१४१३॥

मण्डलस्वस्तिक, नूपुर, उन्मत्त, उद्घट्टित, मत्तल्लि, आक्षिप्त, उरोमण्डल और कटीच्छिन्न--इन आठ करणों के क्रमशः प्रयोग से गतिमण्डल अंगहार बनता है ।

१५. वृश्चिकापसृत

स्याल्लतावृश्चिकं पूर्वं यत्र पश्चान्निकुञ्चितम् । 1499
मत्तल्लि च नितम्बं च करिहस्तं ततः परम् ।
कटीच्छिन्नं षष्ठमसौ वृश्चिकापसृतो भवेत् ॥१४१४॥ 1500

लतावृश्चिक, निकुञ्चित, मत्तल्लि, नितम्ब, करिहस्त और छठा कटीच्छिन्न--इन करणों की क्रमशः रचना से वृश्चिकापसृत अंगहार बनता है ।

१६. मत्तस्खलित

मत्तल्ल्यथो गण्डसूचि ततो लीनापविद्धके ।
तलसंस्फोटितं चाथ करिहस्तमतः परम् । 1501
कटीच्छिन्नं क्रमान्मत्तस्खलितः सप्तभिर्भवेत् ॥१४१५॥

मत्तल्लि, गण्जसूचि, लीन, अपविद्ध, तलसंस्फोटित, करिहस्त और कटीच्छिन्न--इन सातों करणों को क्रमशः करने से मतस्खलित अंगहार बनता है ।

करणोत्करसन्दर्भानन्त्यादेतदनन्तता । 1502
यद्यप्यस्ति तथाप्येते समासात् समुदीरिताः ॥१४१६॥

करण-समूह के सन्दर्भ से अंगहारों की संख्या अनन्त हो जाती है; फिर भी यहाँ उनका संक्षेप में निरूपण किया गया है ।

दृष्टादृष्टफला दृष्टनियोगा मुख्यभावतः । 1503
सर्वत्रैवाङ्गहारेषु कलया गुरुरूपया ॥१४१७॥

योज्यं करणमेकैकमिति तज्ज्ञाः [प्रचक्ष] ते । 1504
अङ्गेषु पूर्वरङ्गस्य तथा चोत्थापनादिषु ॥१४१८॥
मृदङ्गप्रमुखैर्वाद्यैर्लयतालानुगामिभिः । 1505
वर्धमानासारितेषु पाणिकागीतिकादिषु ॥१४१९॥
पुरुषैरङ्गहारास्ते परं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिभिः । 1506
प्रयोक्तव्याः शिवस्याग्रे यथाविधि मनीषिभिः ॥१४२०॥

अंगहार मुख्य भाव से **दृष्टफल** (जिनके परिणाम देखे गये हों), **अदृष्टफल** (जिनके परिणाम देखे न गये हों) और **दृष्टनियोग** (जिनकी प्रवृत्ति देखी गई हो) होते हैं। सभी जगह अंगहरों में गुरुरूप कला के द्वारा एक-एक करण की योजना करनी चाहिए, ऐसा उसके विशेषज्ञ कहते हैं। कल्याण चाहने वाले मनीषी पुरुष लय और ताल का अनुगमन करने वाले मृदंग आदि वाद्यों के द्वारा **वर्धमान**, **आसारित** और **पाणिका गीत** आदि के अवसर पर शंकर के आगे उन अंगहारों का विधिपूर्वक प्रयोग करें।

बत्तीस अंगहारों का निरूपण समाप्त।

•

## चार प्रकार के रेचकों का निरूपण

अथाहं रेचकान् वक्ष्ये चतुरान् मुनिसम्मतान् । 1507
पाणिकण्ठकटीपादविशेषेणसमुद्भवान् ॥१४२१॥

अब, भरत मुनि के अभीष्ट हस्त, कण्ठ, कटि और पाद विशेष से उत्पन्न चार प्रकार के रेचकों का निरूपण किया जाता है।

**१. पाणिरेचक**

त्वरया परितो भ्रान्ति यदा स्याद्धंसपक्षयोः । 1508
पर्यायेण तदा धीरैरादिष्टः पाणिरेचकः ॥१४२२॥
अथवा स्यादसौ पार्णेविरलप्रसृताङ्गुलेः । 1509

यदि हंसपक्ष मुद्रा में दोनों हाथों को बारी-बारी से शीघ्रतापूर्वक चारों ओर घुमाया जाय, तो धीर पुरुषों ने उसे **पाणिरेचक** कहा है। अथवा, बिरल (अलग-अलग) तथा फैली हुई उँगलियों वाले हाथ को तिरछा घुमाया जाय, तो वह (भी) **पाणिरेचक** कहलाता है।

२. कण्ठरेचक

**तिर्यग्भ्रान्तिरथो यः स्यात् कण्ठस्य विधुतभ्रमः ।।१४२३।।**
**स कण्ठरेचकः प्रोक्तः कण्ठरेचककोविदैः ।** 1510

यदि कण्ठ को तिर्यक् रूप में कम्पित करके घुमा दिया जाय, तो कण्ठरेचकवेत्ताओं ने उसे **कण्ठरेचक** कहा है।

३. कटिरेचक

**सर्वतो भ्रमणात् कट्याः कथितः कटिरेचकः ।।१४२४।।**

यदि कटि को चारों ओर घुमाया जाय, तो उसे **कटिरेचक** कहा जाता है।

४. पादरेचक

**या त्वन्तर्बहिरङ्गुष्ठाग्रस्य पार्ष्णेर्निरन्तरा ।** 1511
**नमनोन्नमनोपेता गतिः सा पादरेचकः ।।१४२५।।**

यदि अँगूठे के अग्रभाग तथा एड़ी के बाहर-भीतर निरन्तर रूप से झुकने-उठने की गति की जाय, तो उसे **पादरेचक** कहते हैं।

**धीरधुर्योऽशोकमल्लश्चतुरश्चतुरोदितान् ।** 1512
**रेचकांश्चतुरोऽवोचज्जितारातिर्महीपतिः ।।१४२६।।**

धीराग्रणी, चतुर, शत्रुजयी महाराज अशोकमल्ल ने, बुद्धिमान् व्यक्तियों द्वारा कथित, (उक्त प्रकार से) चार रेचकों का निरूपण किया है।

चार प्रकार के रेचकों का निरूपण समाप्त।

## मण्डलों का निरूपण

मण्डल (गति) के भेद

[1]अतिक्रान्तं वामविद्धं क्रान्तं ललितसञ्चरम् । 1513
सूचीविद्धमलातं च [विचित्रं] विहृतं तथा ।।१४२७।।
ललितं दण्डपादं च दशोद्दिष्टानि सूरिभिः । 1514
मण्डलान्यान्तरिक्षाणीति–

विद्वानों ने आकाशगत मण्डल के दस भेद बताये हैं : १. अतिक्रान्त, २. वामविद्ध, ३. क्रान्त, ४. ललितसञ्चर, ५. सूचीविद्ध, ६. अलात, ७. विचित्र, ८. विहृत, ९. ललित और १०. दण्डपाद ।

–अथ भौमान्यनुक्रमात् ।।१४२८।। 1515
भ्रमरं शकटास्यं च पिष्ठकुट्टमथाड्डितम् ।
समोत्सरितमावर्तमेलकाक्रीडितं तदा ।।१४२९।। 1516
आस्कन्दितं चाषगतमध्यर्धमिति सूरिभिः ।
दशोद्दिष्टान्यथामीषां लक्ष्माणि व्याहरे क्रमात् ।।१४३०।। 1517

विद्वानों ने भूमिगत मण्डल के दस भेदों का क्रमशः इस प्रकार उल्लेख किया है : १. भ्रमर, २. शकटास्य, ३. पिष्टकुट्टक, ४. अड्डित, ५. समोत्सरित, ६. आवर्त, ७. एलकाक्रीडित, ८. आस्कन्दित, ९. चाषगति और १०. अध्यर्ध । अब क्रमशः उनके लक्षण-विनियोग का निरूपण किया जा रहा है ।

दस आकाशगत मण्डल (१)

१. अतिक्रान्त

जनितो दक्षिणः पादः शकटास्यः स एव च ।
अथालातो भवेद् वामः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।।१४३१।। 1518
अथ वामो भवेत् सूची स एव भ्रमरस्तथा ।
अथ सव्योऽङ्घ्रिरुद्वृत्तो वामोऽलातोथ चेदुभौ ।।१४३२।। 1519
चरणौ छिन्नकरणमाश्रितौ तदनन्तरम् ।
वामाङ्गनिर्मिता वाथ भ्रमरी यत्र जायते ।।१४३३।। 1520

अथातिक्रान्तको वामो दण्डपादः परस्तदा ।
तन्मण्डलमतिक्रान्तं समवोचन् विचक्षणाः ॥१४३४॥ 1521

दाहिना पैर **जनित** तथा **शकटास्य** करणों में अवस्थित हो और बायाँ पैर **अलात** करण बना हो; फिर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** तथा बायाँ पैर **सूची** और **भ्रमर** बना हो; पुनः दाहिना पैर **उद्वृत्त** और बायाँ पैर **अलात** हो; दोनों चरण **छिन्नकरण** का सहारा लिये हों; तदनन्तर वाम अंग में **भ्रमरी** नामक चारी की रचना की जाय; फिर बायाँ पैर **अतिक्रान्त** करण और दाहिना पैर **दण्डपाद** बनाया जाय; तो ऐसी क्रिया को विद्वानों ने **अतिक्रान्त** आकाशमण्डल कहा है ।

[च[1]मत्काराय चारीणामानुपूर्व्येण या क्रिया ।
तन्मण्डलमिति प्रोक्तमखण्डमतिशालिभिः । 1522

चमत्कार उत्पन्न करने के लिए चारियों को क्रमशः क्रियान्वित करना ही मण्डल कहलाता है, ऐसा विद्वानों का मत है ।

भौममाकाशिकं चेति तत्पुनर्द्विविधं भवेत् ।
प्राचुर्याद्भौमचारीणां भौममण्डलमुच्यते । 1523
आकाशचारी बाहुल्यादाकाशिकमिति स्मृतम् ।
भौमाकाशिकभेदानामुद्देशोऽत्र विधीयते । 1524

फिर उस मण्डल के दो भेद हैं : १. **भौम** और २. **आकाशिक** । अधिकता के कारण भौम चारियों को भौममण्डल और आकाशचारियों को आकाशिकमण्डल कहा गया है । यहाँ भौम और आकाशिक नाम-भेद से उद्देश्य का विधान किया गया है ।

भ्रमरं च तदावर्तमास्कन्दितमथाड्डितम् ।
समोत्सरितमत्यर्धमेलकाक्रीडितं तथा । 1525
शकटास्यं पिष्टकुट्टं ततश्चाषगताभिधम् ।
भौमानि मण्डलानीति दशोद्दिष्टान्यनुक्रमात् । 1526

भौम मण्डल के क्रमशः दस नाम बताये गये हैं : १. **भ्रमर**, २. **आवर्त**, ३. **आस्कन्दित**, ४. **अड्डित**, ५. **समोत्सरित**, ६. **अत्यर्ध**, ७. **एलकाक्रीडित**, ८. **शकटास्य**, ९ **पिष्टकुट्ट** और १०. **चाषगत** ।

---

१. देखिए : अशोक–भरतकोश, पृ० ४५४ ।

अतिक्रान्तं दण्डपादं क्रान्तं च विहृतं तथा ।
सूचीविद्धं वामविद्धं तदा ललितसञ्चरम् । 1527
विचित्रं ललितं चैव ततश्चालातमित्यपि ।
एतान्याकाशिकानि स्युः मण्डलानि दश क्रमात्] । 1528

आकाशिक मण्डल के भी क्रमशः दस नाम हैं : १. अतिक्रान्त, २. दण्डपाद, ३. क्रान्त, ४. विहृत, ५. सूचीविद्ध, ६. वामविद्ध, ७. ललितसञ्चर, ८. विचित्र, ९. ललित और १०. अलात ।

२. वामविद्ध

सूची स्वाद् दक्षिणः पादो वामोऽतिक्रान्ततां गतः ।
दक्षिणो दण्डपादोऽन्य सूच्यङ्घ्रिभ्रमरः क्रमात् ।।१४३५।। 1529
पार्श्वक्रान्तस्तु सव्यःस्याद् वामस्त्वाक्षिप्ततां गतः ।
दक्षिणो दण्डपादः स्यादूरूद्वृत्तोऽप्यथ क्रमात् ।।१४३६।। 1530
पादः सूची भवेद् वामस्ततोऽसौ भ्रमरो भवेत् ।
आलातोऽप्यथ सव्यः स्यात् पार्श्वक्रान्तोऽथ वामकः । 1531
अतिक्रान्तो यत्र वामविद्धमेतत् प्रकीर्तितम् ।।१४३७।।

दाहिना पैर सूची हो और बायाँ पैर अतिक्रान्त हो; फिर दाहिना पैर दण्डपाद और बायाँ पैर क्रमशः सूची तथा भ्रमर हो; पुनः दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त हो और बायाँ पैर आक्षिप्त; दाहिना पैर क्रमशः दण्डपाद तथा ऊरूद्वृत्त हो और बायाँ पैर सूची तथा भ्रमर हो; फिर दाहिना पैर अलात तथा पार्श्वक्रान्त हो और बायाँ पैर अतिक्रान्त हो; तो ऐसी स्थिति में वामविद्ध आकाशमण्डल होता है ।

३. क्रान्त

सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामोऽपक्रान्तो दक्षिणो भवेत् । 1532
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामः परितो मण्डलभ्रमः ।।१४३८।।
अथ वामो भवेत् सूची परोपऽक्रान्ततां गतः । 1533
यत्र तन्न् मुनिभिः क्रान्तं स्वभावगमने मतम् ।।१४३९।।

दाहिना पैर **सूची** करण हो और बायाँ **अपक्रान्त** करण हो; फिर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** हो और बायाँ पैर चारों ओर मण्डलाकार में घुमाया जाय; फिर बायाँ पैर **सूची** हो और दाहिना पैर **अपक्रान्त** हो; तो इस क्रिया को भरत आदि मुनियों ने **क्रान्त** आकाशमण्डल कहा है। इसका विनियोग स्वाभाविक चाल के अभिनय में किया जाता है।

४. ललितसञ्चर

ऊर्ध्वजानुस्ततः सूची दक्षिणोऽङ्घ्रिः क्रमात् ततः । 1534
अपक्रान्तोऽपरः पार्श्वक्रान्तः स्याद् दक्षिणस्ततः ।।१४४०।।
सूची भ्रमरको वामः क्रमादङ्घ्रिस्तु दक्षिणः । 1535
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तो दक्षिणः पुनः ।।१४४१।।
सूची वामोऽप्यपक्रान्तः पार्श्वक्रान्तश्च दक्षिणः । 1536
अतिक्रान्तस्तु वामोऽङ्घ्री द्वौ छिन्नकरणाश्रयौ ।।१४४२।।
वामाङ्घ्रिर्निर्मिता बाह्यभ्रमर्यन्ते यदा तदा । 1537
सञ्चरं ललिताद्यं स्यान्मण्डलं शिववल्लभम् ।।१४४३।।

दाहिना पैर क्रमशः **ऊर्ध्वजानु** तथा **सूची** करण बना हो और बायाँ पैर **अपक्रान्त** बना हो; तदनन्तर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** और बायाँ पैर क्रमशः **सूची** तथा **भ्रमर** बना हो; फिर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** और बायाँ **अतिक्रान्त** हो; पुनः दाहिना पैर **सूची** तथा बायाँ पैर **अपक्रान्त** हो; फिर दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** और बायाँ पैर **अतिक्रान्त** हो; दोनों पैर **छिन्न** करण का आश्रय लिये हुए हों; अन्त में बायें पैर से बाहर **भ्रमरी** नामक चारी बनायी जाय; तो **ललितसञ्चर** आकाशमण्डल बनता है, जो शंकर को प्रिय है।

५. सूचीविद्ध

दक्षिणे यत्र सूची स्याद् भ्रमरोऽप्यथ जायते । 1538
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तश्चरणः परः ।।१४४४।।
सूची स्यादथ वामोऽङ्घ्रिरपक्रान्तः स्वरूपधृक् । 1539
पार्श्वक्रान्तोऽपरस्तद्धि सूचीविद्धं प्रकीर्तितम् ।।१४४५।।

जहाँ दाहिना पैर **सूची** तथा **भ्रमर** मुद्रा में हो और बायाँ पैर **पार्श्वक्रान्त** हो; फिर दाहिना पैर **अतिक्रान्त** तथा **सूची** में हो और बायाँ पैर **अपक्रान्त** का स्वरूप धारण किये हुए हो; पुनः दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्त** हो; तो **सूचीविद्ध** आकाशमण्डल बनता है।

६. अलात

कुर्याद् वामाङ्घ्रिणा सूचीं भ्रमरीं दक्षिणाङ्घ्रिणा । 1540
भुजङ्गत्रासितां चारीमलातामपराङ्घ्रिणा ।।१४४६।।
षड्वारमथवा सप्तकृत्वः कृत्वा क्रमादिमाः । 1541
क्षिप्रं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु समन्तान्मण्डलाकृतिः ।।१४४७।।
अपक्रान्तां दक्षिणेन वामेन त्वङ्घ्रिणा यदा । 1542
अतिक्रान्ताभ्रमरिके विधत्ते ललितैः क्रमैः ।
तदालातं मण्डलं स्यात्सदा शङ्करशङ्करम् ।।१४४८।। 1543

बायें पैर से **सूची** तथा **भ्रमरी** नामक चारियों को तथा दाहिने पैर से **भुजंगत्रासिता** नामक चारी को और फिर बायें पैर से **अलाता** नामक चारी को छह बार या सात बार क्रमशः करके चारों दिशाओं में मण्डलाकार में शीघ्रतापूर्वक घुमाकर दाहिने पैर से **अपक्रान्ता** नामक चारी को और बायें पैर से **अतिक्रान्ता** एवं **भ्रमरिका** नामक चारियों को सुन्दर ढंग से करने पर **अलात** नामक **आकाशमण्डल** बनता है, जो सदा शंकर को प्रिय है।

७. विचित्र

जनितो दक्षिणोऽङ्घ्रिः स्यादूरूद्वृत्तोऽपि विच्यवः ।
अथ सप्तस्थितावर्तोद्व्यावर्तोदितभेदवान् ।।१४४९।। 1544
वामोऽङ्घ्रिः स्पन्दितोऽथ स्यात् पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।
भुजङ्गत्रासितोऽन्यः स्यादतिक्रान्तस्तु दक्षिणः ।।१४५०।। 1545
उद्वृत्तकोऽप्यसौ वामस्त्वलातो दक्षिणः पुनः ।
पार्श्वक्रान्तोऽथ सूच्यङ्घ्रिर्वामो विक्षिप्य दक्षिणम् । 1546
अपक्रान्तो भवेद् वामो यत्र तत् स्याद् विचित्रकम् ।।१४५१।।

दाहिना पैर **जनिता, ऊरूद्वृत्ता, विच्यवा,** सात **स्थितावर्ता** और दो **आवर्ता** चारियों के भेद से युक्त हों; बायाँ पैर **स्पन्दिता** चारी से युक्त हो, दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्ता** चारी से युक्त हो; फिर बायाँ पैर **भुजंगत्रासिता** से युक्त हो; दाहिना पैर **अतिक्रान्ता** से युक्त हो, बायाँ पैर **उद्वृत्ता** से युक्त हो; पुनः दाहिना पैर **अलाता** से युक्त हो; फिर बायाँ पैर **पार्श्वक्रान्ता** से युक्त हो; तो **विचित्र** आकाशमण्ड्ल होता है।

८. विहृत

दक्षिणो विच्यवीभूयः क्रमादुत्स्पन्दितस्ततः । 1547
पार्श्वक्रान्तोऽप्यथो वामः स्पन्दितस्तदनन्तरम् ॥१४५२॥
भवेत् सव्योऽङ्घ्रिरुद्वृत्तो वामोऽलातत्वमागतः । 1548
सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामः पार्श्वक्रान्तत्वमाश्रितः ॥१४५३॥
आक्षिप्तो दक्षिणो यत्र भ्रान्त्वा सव्यापसव्यतः । 1549
आश्रितो दण्डपादत्वमथः वामः क्रमाद् यदि ॥१४५४॥
सूच्यङ्घ्रिर्भ्रमरश्चाथ भुजङ्गत्रासितोऽपरः । 1550
अतिक्रान्तस्तु वामः स्यात् तत् तदा विहृतं मतम् ॥१४५५॥

दाहिना पैर **विच्यवा** चारी से युक्त होकर क्रमशः **स्पन्दिता** तथा **पार्श्वक्रान्ता** से युक्त हो; तदनन्तर बायाँ पैर **स्पन्दिता** से युक्त हो, दाहिना पैर **उद्वृत्ता** से युक्त हो; बायाँ पैर **अलाता** से युक्त हो, दाहिना पैर **सूची** से युक्त हो; फिर बायाँ पैर **पार्श्वक्रान्ता** से युक्त हो, दाहिना पैर **आक्षिप्ता** से युक्त होकर दायें-बायें घूमकर **दण्डपादा** से युक्त हो जाय; फिर बायाँ पैर क्रमशः **सूची** तथा **भ्रमरी** से युक्त हो; दाहिना पैर **भुजंगत्रासिता** से युक्त हो और बायाँ पैर **अतिक्रान्ता** से युक्त हो; तो **विहृत** आकाशमण्डल होता है ।

९. ललित

दक्षिणश्चरणः सूची वामोऽपक्रान्ततां गतः । 1551
पार्श्वक्रान्तो भवेत् सव्यो भुजङ्गत्रासितोऽप्यसौ ॥१४५६॥
अतिक्रान्तः पुनर्वामः स्यादाक्षिप्तस्तु दक्षिणः । 1552
वामः क्रमादतिक्रान्त ऊरूद्वृत्तोऽप्यलातकः ॥१४५७॥
पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्यात् सूची वामोऽथ दक्षिणः । 1553
अपक्रान्तोऽथ वामोऽङ्घ्रिरतिक्रान्तत्वमाश्रितः ।
सञ्चरेल्ललितं यत्र तन्मतं ललितं बुधैः ॥१४५८॥ 1554

दाहिना चरण **सूची** से युक्त हो, बायाँ चरण **अपक्रान्ता** से युक्त हो; दाहिना चरण **पार्श्वक्रान्ता** तथा **भुजंगत्रासिता** से युक्त हो, बायाँ चरण **अतिक्रान्ता** से युक्त हो; पुनः दाहिना **आक्षिप्ता** से युक्त हो, बायाँ क्रमशः **अतिक्रान्ता**, **ऊरूद्वृत्ता** तथा **अलाता** से युक्त हो; फिर दाहिना **पार्श्वक्रान्ता** से और बायाँ **सूची** से युक्त हो; तदनन्तर

दाहिना **अपक्रान्ता** से युक्त हो और बायाँ **अतिक्रान्ता** से युक्त होकर सुन्दर ढंग से संचरण करे; तो उसे विद्वानों ने **ललित** आकाशमण्डल बताया है ।

**१०. दण्डपाद**

जनितो दण्डपादश्च दक्षिणोऽङ्घ्रिः क्रमात् ततः ।
सूची स्याद् भ्रमरश्चान्योऽथोद्वृत्तो दक्षिणस्ततः ॥१४५९॥ 1555
वामोऽलातोऽथ चरणः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।
भुजङ्गत्रासितोऽप्येष ततोऽतिक्रान्ततः गतः ॥१४६०॥ 1556
वामोऽथ दण्डपादस्तु सूची चान्यस्ततो यदा ।
वामः स्याद् भ्रमरो यत्र दण्डपादमिदं तदा ॥१४६१॥ 1557

दाहिना पैर क्रमशः **जनिता**, **दण्डपादा** तथा **सूची** नामक चारियों से युक्त हो, बायाँ पैर **भ्रमरी** से युक्त हो; फिर दाहिना पैर **उद्वृत्ता** से युक्त और बायाँ पैर **अलाता** से युक्त हो; पुनः दाहिना पैर **पार्श्वक्रान्ता**, **भुजंगत्रासिता** तथा **अतिक्रान्ता** से युक्त हो, और बायाँ पैर **दण्डपादा** से युक्त हो; पुनः दाहिना पैर **सूची** से युक्त हो, और बायाँ पैर **भ्रमरी** से युक्त हो; तो **दण्डपाद** आकाशमण्डल होता है ।

## दस भूमिगत मण्डल (२)

**१. भ्रमर**

दक्षिणो जनितोऽथाङ्घ्रिर्वामः स्यात् स्पन्दितस्ततः ।
दक्षिणः शकटास्योऽथ वामोऽपि स्पन्दितोऽथवा ॥१४६२॥ 1558
दक्षिणो भ्रमरः पादः स्याद् वामः स्पन्दितस्ततः ।
दक्षिणः शकटास्यः स्याद् वामश्चाषगतो भवेत् ॥१४६३॥ 1559
परस्तु भ्रमरोऽथाङ्घ्रिर्वाम स्यात् स्पन्दितो यदि ।
तदोक्तं भ्रमरं धीरैर्मण्डलं शिववल्लभम् ॥१४६४॥ 1560

दाहिना पैर **जनिता** नामक चारी से युक्त और बायाँ पैर **स्पन्दिता** से युक्त हो; फिर दाहिना **शकटास्या** से तथा बायाँ **स्पन्दिता** से युक्त हो; पुनः दाहिना **भ्रमरी** से युक्त हो, बाँया **स्पन्दिता** से युक्त हो; फिर दाहिना **शकटास्या** से युक्त और बायाँ **चाषगति** से युक्त हो; तत्पश्चात् दाहिना **भ्रमरी** से युक्त और बाँया **स्पन्दिता** से युक्त हो; तो धीर पुरुषों ने उसे **भ्रमरी** भूमिमण्डल कहा है, जो शंकर को प्रिय है ।

२. शकटास्य

दक्षिणो जनितोऽथ स्यात् स्थितावर्तः स एव चेत् ।
शकटास्यस्ततोऽसौ स्यादेलकाक्रीडितस्ततः ॥१४६५॥ 1561
ऊरूद्वृत्तोऽड्डितोऽङ्घ्रिःस्याज्जनितोऽपि ततो भवेत् ।
शकटास्योऽथ वामोऽङ्घ्रिः स्पन्दितस्तदनन्तरम् ॥१४६६॥ 1562
शकटास्यस्ततः पादो यावन्मण्डलपूरणम् ।
क्रमतो यत्र जायन्ते शकटास्यं तदीरितम् ॥१४६७॥ 1563

दाहिना पैर क्रमशः जनिता, स्थितावर्ता, शकटास्या, एलकाक्रीडिता, ऊरुद्वृत्ता, अड्डिता, पुनः **जनिता** तथा **शकटास्या** नामक चारियों से युक्त हो और बायाँ पैर क्रमशः स्पन्दिता एवं मण्डल के पूर्ण होकर **शकटास्या** से युक्त हो; तो **शकटास्य** भूमिमण्डल होता है ।

३. पिष्टकुट्टक

दक्षिणोऽङ्घ्रिर्भवेत् सूची वामोऽपक्रान्तकस्ततः ।
क्रमान्मुहुः सव्यवामौ भुजङ्गत्रासितौ ततः । 1564
मण्डलभ्रमणं प्रान्ते यत्रेदं पिष्टकुट्टकम् ॥१४६८॥

दाहिना पैर सूची से युक्त तथा बायाँ पैर **अपक्रान्ता** से युक्त हो; फिर दोनों दाहिना और बायाँ क्रमशः **भुजंगत्रासिता** से युक्त हो और उन्हें मण्डलाकार में घुमाया जाय; तो **पिष्टकुट्टक** भूमिमण्डल होता है ।

४. अड्डित

उद्घट्टितोऽथ बद्धः स्यात् समोत्सरितपूर्वकः । 1565
मत्तल्लिरर्धमत्तल्लिरपक्रान्तश्च दक्षिणः ॥१४६९॥
उद्वृत्तश्च ततो विद्युद्भ्रान्तश्च भ्रमरस्ततः । 1566
स्पन्दितोऽप्यथ वामः स्याच्छकटास्योऽथ दक्षिणः ॥१४७०॥
भवेद् द्विश्चरणश्चाषगतिश्च तदनन्तरम् । 1567
वामोऽड्डितोऽध्यर्धिकश्च क्रमाच्चाषगतिः परः ॥१४७१॥
समोत्सरितमत्तल्लिर्मत्तल्लिर्भ्रमरः पुनः । 1568

वामोऽथ स्पन्दितीभूय विधत्ते स्फोटनं भुवः ।
दक्षिणो यदि पादः स्यादड्डितं मण्डलं तदा ॥१४७२॥ 1569

दाहिना पैर क्रमशः **उद्घट्टिता बद्धा, समोत्सरितमत्तल्लि,** अर्धमत्तल्लि तथा अपक्रान्ता नामक चारियों से युक्त हो और बायाँ पैर क्रमशः **उद्वृत्ता, विद्युद्भ्रमन्ता,** भ्रमरी तथा स्पन्दिता से युक्त हो; फिर दाहिना पैर **शकटास्या** तथा **चाषगति** से युक्त होकर दो बार प्रयुक्त हो और बायाँ पैर क्रमशः **अड्डिता** तथा **अध्यधिका** से युक्त हो; फिर दाहिना पैर **चाषगति** से युक्त हो तथा बायाँ पैर क्रमशः **समोत्सारितमत्तल्लि, मत्तल्लि** तथा **भ्रमरी** से युक्त हो और दाहिना पैर **स्पन्दिता** से युक्त होकर पृथ्वी पर चोट करे; तो **अड्डिता** भूमिमण्डल होता है ।

५. समोत्सरित

समपादं समाश्रित्य सम्प्रसार्य करौ ततः ।
निरन्तरौ विधायोर्ध्वावावेष्ट्योद्वेष्ट्य च क्रमात् ॥१४७३॥ 1570
न्यस्येत् कटीतटेऽथाङ्घ्री भ्रामयेत् सव्यवामकौ ।
क्रमादथ पुरो वाममङ्घ्रिं यत्र प्रसारयेत् ॥१४७४॥ 1571
एवं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु मण्डलभ्रमणं क्रमात् ।
समोत्सरितमेतत् स्यात् मण्डलं शिवशङ्करम् ॥१४७५॥ 1572

सम स्थिति पैर का आश्रय लेकर दोनों हाथों को फैलाकर तथा सटाकर ऊपर करके क्रमशः आवेष्टित तथा उद्वेष्टित करके कटि पर रख दिया जाय; अनन्तर दाहिने और बायें पैरों को क्रमशः घुमाकर बायें पैर को आगे फैला दिया जाय; इस प्रकार चारों दिशाओं में मण्डलाकार घुमाने से **समोत्सरित** भूमिमण्डल बनता है, जो शंकर को प्रिय है ।

६. आवर्त

[द[1]क्षिणो जनितो वामः स्थितावर्तस्ततः परम् ।
शकटास्यो भवेत् पश्चादेडकाक्रीडिताह्वयः] । 1573
ऊरूद्वृत्तोऽड्डितः पश्चाच्चारी स्याज्जनिताभिधा ।
समोत्सरितमत्तल्लिः क्रमात् पादस्तु दक्षिणः ॥१४७६॥ 1574

१. देखिए : संगीतरत्नाकर, अध्याय ७, श्लोक ११५४, (आडियार संस्करण) ।

शकटास्यस्ततोऽनूरूद्वृत्तोऽङ्घ्रिः स्यादथापरः ।
अङ्घ्रिश्चाषगतिद्विः स्यात् स्पन्दितो दक्षिणस्ततः ॥१४७७॥ 1575
शकटास्यो भवेद्वामः पराङ्घ्रिर्भ्रमरोऽथ चेत् ।
अङ्घ्रिश्चाषगतिर्वामस्तदावर्तमुदीरितम् ॥१४७८॥ 1576

दाहिना पैर जनिता चारी से युक्त हो तथा बायाँ स्थितावर्ता से युक्त होकर **शकटास्या, एडकाक्रीडिता, ऊरूद्वृत्ता, अड्डिता,** पुनः जनिता तथा समोत्सरितमत्तल्ली से क्रमशः युक्त हो; दाहिना पैर **शकटास्या** तथा **ऊरूद्वृत्ता** से युक्त हो और बायाँ पैर **चाषगति** में दो बार युक्त हो; पुनः दाहिना पैर **स्पन्दिता** से तथा बायाँ पैर **शकटास्या** से युक्त हो; फिर दाहिना **भ्रमरी** से युक्त हो और बायाँ **चाषगति** से युक्त हो; तो **आवर्त** भूमिमण्डल होता है।

७. एलकाक्रीडित

भूमिश्लिष्टैर्यदा पादैः सूचीविद्धं समाश्रितैः ।
एलकाक्रीडितैः सूचीविद्धैरपि पुनः पुनः ॥१४७९॥ 1577
सम्पूर्णभ्रमणैः प्राग्वत् सूचीविद्धैस्ततोऽङ्घ्रिभिः ।
आक्षिप्तैर्मण्डलभ्रान्त्या चतुर्दिक्ष्ववसानके । 1578
तदेलकाक्रीडिताख्यमाख्यातं मण्डलं बुधैः ॥१४८०॥

भूमि से सटे हुए पैर **सूचीविद्ध** नामक करण का आश्रय लेकर **एलकाक्रीडित** तथा पुनः-पुनः **सूचीविद्ध** करणों से युक्त होकर पूर्ण रूप घुमाये जाते हुए आक्षिप्त करणों में अवस्थित किये जाँय; फिर अन्त में चारों दिशाओं में मण्डलाकर घुमाने से **एलकाक्रीडित** भूमिमण्डल बनता है, ऐसा विद्वानों का कहना है।

८. आस्कन्दित

दक्षिणो भ्रमरः पादस्ततो वामोऽड्डितो भवेत् । 1579
दक्षिणः शकटास्यत्वं प्राप्तोऽरूद्वृत्ततां व्रजेत् ॥१४८१॥
यदा वामोऽध्यर्धिकः स्याद् भ्रमरो दक्षिणः पुनः । 1580
स्पन्दितः शकटास्यः स्याद् वामस्तेन महीतलम् ।
आस्फोटितं स्फुटं यत्र तदास्कन्दितमीरितम् ॥१४८२॥ 1581

दाहिना पैर **भ्रमरी** चारी से युक्त तथा बायाँ पैर **अड्डिता** से युक्त हो; फिर दाहिना **शकटास्या** तथा **ऊरूद्वृत्ता** से और बायाँ **अध्यर्धिका** से युक्त हो; दाहिना पुनः **भ्रमरी** से युक्त हो, और बायाँ **स्पन्दिता** तथा **शकटास्या** से युक्त हो; उससे पृथ्वी पर स्पष्ट रूप से पटकने की आवाज हो; तो **आस्कन्दित** भूमि मण्डल बनता है।

९. चाषगत

सर्वे चाषगताः पादा यदान्ते मण्डलभ्रमः ।
तदा चाषगतं ज्ञेयं नियुद्धे मण्डलं बुधैः ॥१४८३॥ 1582

जब पैर **चाषगति** नामक चारी से युक्त हो और अन्त में मण्डलाकार घुमाया जाय; तो **चाषगत** भूमिमण्डल बनता है। विद्वानों ने इसका विनियोग कुश्ती के अभिनय में बताया है।

१०. अध्यर्ध

क्रमादङ्घ्रिर्दक्षिणः स्याज्जनितः स्पन्दितस्ततः ।
अड्डितोक्तचतुर्भेदो वामः स्यादथ दक्षिणः ॥१४८४॥ 1583
शकटास्यश्चतुर्दिक्षु मण्डलभ्रमणं यदा ।
भवेदन्ते तदा धीरैरध्यर्धं परिकीर्तितम् ॥१४८५॥ 1584

दाहिना पैर क्रमशः **जनिता** तथा **स्पन्दिता** से युक्त और बायाँ पैर **अड्डिता** के चार भेदों से युक्त हो; फिर दाहिना पैर **शकटास्या** से युक्त होकर अन्त में चारों दिशाओं में मण्डलाकार घुमाया जाय; तो धीर पुरुष उसे **अध्यर्ध** भूमिमण्डल कहते हैं।

चारी नाम्ना प्रविज्ञेयश्चरणस्तु मनीषिभिः ।
चरणन्यूनताधिक्यं मन्वते नेह दोषकृत् । 1585
अतो न्यूनेऽधिके चाङ्घ्रौ न दुष्टं मण्डलं मतम् ॥१४८६॥

मनीषियों को यहाँ चारी के नाम से चरण को समझना चाहिए। यहाँ विद्वान् लोग चरण की न्यूनता या अधिकता को दोषकारक नहीं मानते हैं। इसलिए चरण के न्यून और अधिक होने पर भी मण्डल निर्दुष्ट है।

समवेत रूप में बीस मण्डलों का निरूपण समाप्त।

# लास्यांग प्रकरण / चौदह

## मार्गस्थित लास्यांगों का निरूपण (१)

मार्गस्थित लास्यांगों (आंगिक अभिनयों) के भेद

स्थितपाठ्यमथासीनं सैन्धवं पुष्पमण्डिका । 1586
प्रच्छेदकः शेषपदं द्विमूढं च त्रिमूढकम् ॥१४८७॥
वैभाविकं चित्रपदमुक्तप्रत्युक्तकं तथा । 1587
उत्तमोत्तमकं चेति द्व्यधिकानि दशाब्रुवन् ॥१४८८॥
क्रमान्मार्गस्थितानीति लास्याङ्गान्यथ लक्षणम् । 1588
प्रोच्यतेऽशोकमल्लेन तेषां लक्ष्मानुसारतः ॥१४८९॥

अशोकमल्ल ने मार्गस्थित लास्यांगों के बारह भेद बताये हैं : १. स्थितपाठ्य, २. आसीन, ३. सैन्धव, ४. पुष्प मण्डिका, ५. प्रच्छेदक, ६. शेषपद, ७. द्विमूढ, ८. त्रिमूढ, ९. वैभाविक, १०. चित्रपद, ११. उक्तप्रत्युक्त और १२. उत्तमोत्तम। अब उनकी गति-विधियों के अनुसार उनके लक्षण-विनियोगों का निरुपण किया जा रहा है।

१. स्थितपाठ्य

[यदा] कन्दर्पतप्ताङ्गी तन्वी [वि] रहविह्वला । 1589
स्थिता पठेत् प्राकृतं चेत् स्थितपाठ्यं तदोदितम् ॥१४९०॥

जब कामपीडित तथा विरह से व्याकुल युवती खड़ी होकर प्राकृत भाषा का पद्यपाठ करे, तब **स्थितपाठ्य** लास्यांग होता है।

यथा–

मयणप्यहुकोवताविनाए मह सीदाइं कुरंगलोअणाए। 1590
सहि वल्लहसंगवंचिदाए सरणं पुम्मदलांइ जीवियस्स[1] ॥१४९१॥

जैसे; हे सखी ! कामदेव के क्रोध से जलायी हुई, (अतएव) डरी हुई और प्रियतम के सहवास से वंचित की हुई मुझ मृगनयनी के प्राणों के रक्षक कमलदल ही हो सकते हैं।

---

मदनप्रभुकोपतापिताया मम भीतायाः कुरङ्गलोचनायाः ।
सखि वल्लभसङ्घवञ्चितायाः शरणं पद्मदलानि जीवस्य ॥
(नृत्यरत्नकोश, वाल्यूम २, पृष्ठ १९९, श्लोक ७)।

२. आसीन

यत्राङ्गना खण्डितास्ते चिन्ताशोकसमाकुला । 1591
वर्जिताभिनयैर्वाक्यैस्तदासीनं मतं बुधैः ॥१४६२॥

जहाँ खण्डिता नायिका चिन्ता और शोक से व्याकुल तथा अभिनय एवं वचनों से रहित होकर बैठी रहती है, वहाँ बुधजन **आसीन** लास्यांग बनाते हैं ।

यथा—

प्रसरति दिनमणितेजसि विगलित तमसि प्रकाशिते नभसि । 1592
अपनीताधररागं पश्य वयस्ये समागतं रमणम् ॥१४६३॥

जैसे ; हे सखी ! सूर्य की किरणों के फैल जाने तथा अंधकार के नष्ट हो जाने पर और आकाश के प्रकाशित हो जाने पर अधर की लालिमा से रहित होकर आये हुए कान्त को देखो ।

भालेऽलक्तकमञ्जिताधरमुरः कर्पूरमुद्रं वहन् । 1593
निःशुङ्कः पतिरभ्युपैति वियति प्रत्यग्रसूर्योदये ॥
चिन्तासागरसन्निमग्नमनसा नीता मया यामिनी । 1594
किं कुर्वे सखि कैतवं कलयता मुग्धामुना वञ्चिता ॥१४६४॥

ललाट पर महावर, लालिमा रहित अधर और कर्पूर से अंकित वक्षःस्थल धारण किये हुए (मेरे) पति आकाश में सद्यः सूर्योदय हो जाने पर निःशंक होकर (मेरे) पास आ रहे हैं । चिन्ता रूपी सागर में डूबे हुए मन वाली मैंने (सारी) रात बिता दी । सखी ! क्या करूँ ? इस छलिये ने भोली-भाली मुझको ठग लिया ।

३. सैन्धव

यत्र पात्रं कालहीनं नाट्यपाठ्यविवर्जितम् । 1595
भाषासिन्धुभवाच्चैतत् सैन्धवं समुदीरितम् ॥१४६५॥

जहाँ पात्र समय से रहित, नाट्य-पाठ्य से अनभिज्ञ हो और भाषा सिन्धु देश की हो, वहाँ **सैन्धव** लास्यांग होता है ।

४. पुष्पमण्डिका

विचित्रं यत्र कान्तानां गीतं वाद्यं च नर्तनम् । 1596
मनोवाक्कायचेष्टाभिर्हीनं सा पुष्पमण्डिका ॥१४६६॥

जहाँ कान्तों का गीत, वाद्य तथा नृत्य विचित्र हो और कायिक (आंगिक), वाचिक एवं मानसिक (आहार्य) चेष्टाओं से शून्य हो, वहाँ **पुष्पमडिण्का** लास्यांग होता है ।

५. प्रच्छेदक

यत्राङ्गनाः परित्यक्तलज्जाश्चन्द्रातितापिताः । 1597
कृतापराधकान् यान्ति प्रियान् प्रच्छेदकस्तु सः ॥१४९७॥

जहाँ चन्द्रमा से अत्यन्त तप्त रमणियाँ लज्जा का परित्याग करके अपराधी प्रियतमों के पास जाती हैं, वहाँ **प्रच्छेदक** लास्यांग होता है ।

यथा–
सखि स्फुरति यामिनी शशिनमुन्नकयांशुभिर् 1598
ज्वलद्भिरिव मामयं स्पृशति मानमुन्मूलयन् ।
अतो विगतलज्जया सुरतसंगरे सज्जया । 1599
मयापि विदितागसं प्रियमुपासितुं गम्यते ॥१४९८॥

जैसे ; हे सखी ! रात्रि चन्द्रमा को उठाकर चमक रही है और यह चन्द्रमा मानों अपनी जाज्वल्यमान किरणों से मेरे मान का उन्मूलन करते हुए मुझे छू रहा है। इसलिए मैं निर्लज्ज होकर रतियुद्ध की तैयारी करके अपराधी प्रियतम के पास जा रही हूँ ।

६. शेषपद

तताद्यनुगता गाननिष्णाता यत्र गायकाः । 1600
गायन्ति सुखसंस्थानास्तच्छेषपदमीरितम् ॥१४९९॥

(वीणा, सारंगी आदि) वाद्यों का अनुगमन करने वाले गानविद्या में निष्णात गायक जहाँ सुख से बैठकर गाते हैं वहाँ **शेषपद** लास्यांग होता है ।

७. द्विमूढ

चित्रार्थं श्लेषभावाढ्यं मुखप्रतिमुखान्वितम् । 1601
यद् वाक्यं तद् द्वि[मू]ढाख्यं लास्याङ्गं कथितं बुधैः ।१५००॥

विचित्र अर्थों वाला, श्लेषालंकार से युक्त और मुख एवं प्रतिमुख संधियों से युक्त जो वाक्य होता है, उसे बुधजन **द्विमूढ** लास्यांग कहते हैं ।

यथा—

अङ्कुरितां मम हृदये प्रेमलतां रमणजलधरो मुदितः । 1602
सिञ्चति जीवनस्वनैरिह वचनैरुन्नतिं नेतुम् ॥१५०१॥

जैसे ; मेरे हृदय में अंकुरित हुई प्रेम रूपी लता को बढ़ाने के लिए प्रियतम रूपी बादल वचन रूपी जलधारा से सींच रहा है ।

८. त्रिमूढ

रम्यवर्णनिबद्धं यद् बहुभावसमन्वितम् । 1603
अलङ्कृतं तुल्यवृत्तं[वा]क्यं तत् स्यात् त्रिमूढकम् ॥१५०२॥

जो रमणीय अक्षरों में निबद्ध हो; अनेक भावों से युक्त हो; अलंकार से पूर्ण हो; और समान वृत्त वाला हो, उसे **त्रिमूढ** लास्यांग कहते हैं ।

यथा—

भयहर्षरोषरोदनवद [न]–सम्भेदनानि कुर्वाणौ । 1604
स्मरसङ्गरसङ्गमितौ जितमिति नौ मन्मथो हसति ॥१५०३॥

भय, हर्ष, क्रोध, रुदन, कथन और संभेदन—ये सब करते हुए तथा रतियुद्ध में लगे हुए हम दोनों को जीत लिया—यह कहकर कन्दर्प हँस रहा है ।

कुचोन्नमनचातुरीचलितकञ्चुकीबन्धया 1605
कपोलपुलकावलीकलितयाऽऽयतापाङ्गया ।
विमोहनविवर्तनैर्विदितसङ्गया संगमे 1606
त्वयाभिलषिते कथं सुमुखि मानमालम्बसे ॥१५०४॥

हे सुमुखी ! कुचों को उत्तुंग बनाने की चतुरता से चोली पहनने वाली कपोलों पर रोमांच से युक्त लम्बी तिरछी चितवन वाली और ज्ञात सहवास वाली तुम मोहक हाव-भावों द्वारा मेरे सहवास की इच्छा प्रकट करके मान का अवलम्बन क्यों कर रही हो ?

९. वैभाविक

प्रियं स्वप्ने समालोक्य पञ्चबाणनिपीडिता । 1607
विचित्रान् रचयेद् भावान् यदा वैभाविकं तदा ॥१५०५॥

जब नायिका स्वप्न में प्रियतम को देखकर कामबाण से पीड़ित होती हुई अनेक प्रकार के भावों की रचना करे, तब **वैभाविक** लास्यांग होता है ।

यथा–

अद्याकर्णय नैशिकं सखि मया कान्तश्चिरं प्रोषितो 1608
निद्रामुद्रितनेत्रयापि शयने साक्षादिवावेक्षितः ।
मायासङ्गमभङ्गभीरुतरये वोन्मज्ज्य लज्जाजलात् 1609
कण्ठग्राहमनिन्दितः परिवृतः प्रोल्लासितो मोदितः ॥१५०६॥

जैसे; हे सखी ! अब रात का वृत्तान्त सुनो ! चिरकाल से परदेश गये हुए प्रियतम को, निद्रा से मुंदी हुई आँखें होने पर भी, मैंने पलंग पर साक्षात् की तरह देखा। तब मानों ऐन्द्रजालिक संगम के नष्ट होने से अत्यन्त डरी हुई मैंने लज्जा रूपी जल से निकलकर प्रियतम के गले से लिपटकर घेर लिया और खूब आमोद-प्रमोद किया।

१०. चित्रपद

यत्र चित्रकृतं कान्तं कान्ता कामकृतव्यथा । 1610
दृष्ट्वा खिद्यति चेदुक्तमिदं चित्रपदं तदा ॥१५०७॥

जहाँ चित्र में नायक को देखकर नायिका कामपीड़ा से खिन्न हो जाती है, वहाँ **चित्रपद** लास्यांग होता है।

यथा–

कान्तं चित्रपटे विलिख्य विदधे यावत् तयालापनम् 1611
लब्धो जीवनवासरैः कतीपयैस्त्यक्ष्यामि न त्वामिति।
तावन् मज्जदनल्पबाष्पसलिले सम्भिन्नभिन्नाक्षरम् 1612
खेदस्वेदकपाटकोटिघटितं कण्ठे विशीर्णं वचः ॥१५०८॥

जैसे; चित्रपट पर प्रियतम को लिखकर जब तक नायिका यह कहने लगी कि मिलने पर तुम्हें जीवन के कतिपय दिनों तक नहीं छोड़ूंगी, तब तक अत्यधिक अश्रुजल में डूब जाने से छिन्न-भिन्न अक्षरों वाला तथा खेद के कारण बहने वाले पसीने-रूपी किवाड़ों के सिरे से टकराया हुआ वचन कण्ठ में ही विगलित हो गया।

११. उक्तप्रत्युक्त

प्रसादकं सरोषस्य साधिक्षेपपदं यदा । 1613
नानार्थगीतसहितमुक्तप्रत्युक्तकं तदा ॥१५०९॥

जब क्रुद्ध व्यक्ति को प्रसन्न करने वाला आक्षेपयुक्त तथा अनेक अर्थों सहित वचन प्रयुक्त होता है, तब उक्त **प्रत्युक्त** लास्यांग होता है।

यथा—

प्राप्तो वसन्तसमयः समयानभिज्ञ 1614
रोषं परित्यज भजस्वमयि प्रसादम् ।
उत्तुङ्गपीवरपयोधरभूरिभारा— 1615
माराधितोऽपि नहि रक्षितुमीहसे माम् ॥१५१०॥

हे समय से अनभिज्ञ कान्त ! वसन्तकाल आ गया है । (इसलिए) रोष का परित्याग करो । मुझ पर प्रसन्न हो जाओ । क्या, मनाये जाने पर भी, तुम उन्नत तथा स्थूल कुचों वाली मुझको (अपना) नहीं रखना चाहते हो ?

१२. उत्तमोत्तम

युक्तं चित्ररसैर्वाक्यं चित्रैर्भावैश्च मञ्जुलम् । 1616
तथाभिनयनैर्युक्तमुत्तमोत्तमकं मतम् ॥१५११॥

विभिन्न प्रकार के रसों तथा भावों से युक्त, सुन्दर तथा अनेक प्रकार के अभिनयों से युक्त वाक्य **उत्तमोत्तम** लास्यांग कहलाता है ।

यथा—

सहर्षमवलोकनं विहितभीतमालिङ्गनम् 1617
सरोषमपि भाषणं सजललोचनं रोदनम् ।
इति प्रथमसंगमे चतुरचित्तचेतोहरो 1618
विचित्ररससङ्करो जयति कोऽपि वामभ्रुवः ॥१५१२॥

जैसे ; हर्षपूर्वक देखना, भयपूर्वक आलिंगन करना, क्रोधपूर्वक बोलना और सजलनेत्रपूर्वक रोना—यह ललना के प्रथम सहवास में चतुर व्यक्ति के चित्त को हरने वाला अनेक रसों का सम्मिश्रण विलक्षण होता है ।

## देशी लास्यांगों का निरूपण (२)

**देशी लास्यांगों के भेद**

चालिश्चालिवटस्तूकं मनो लेढिरुरोङ्कणम् । 1619
ढिल्लाई त्रिकलिः किन्तु देशीकारं निजापनम् ॥१५१३॥
उल्लासस्थसको भावः सुकलासं लयस्तथा । 1620
ढालश्छेवाङ्गहारश्च लङ्घितं विहसी तथा ॥१५१४॥

नीकी नमनिका शङ्का वितडं गीतवाद्यता । 1621
विवर्तनं रथ(?थर)हरं स्थापना सौष्ठवं ततः ॥१५१५॥
स्रुवा मसृणतोपारस्तथाङ्गानङ्गमित्यपि । 1622
कोमलिका चाभिनयस्ततो मुखरसस्तथा ॥१५१६॥
एवं सप्ताधिकास्त्रिशल्लास्याङ्गानां समासतः । 1623
देश्याद्यानाम्–

देशी लास्यांगों के संक्षेप में सैंतीस भेद इस प्रकार है : १. चालि, २. चालिवट, ३. तूक, ४. मनस्, ५. लेढि, ६. उरोङ्कण ७. ढिल्लाई, ८. त्रिकलि, ९. किन्तु, १०. देशीकार, ११. निजापन, १२. उल्लास, १३. थसक, १४. भाव, १५. सुकलास, १६. लय, १७. ढाल, १८. छेवा, १९. अंगहार, २०. लंघित, २१. विहसी, २२. नीकी, २३. नमनिका, २४. शंका, २५. वितड, २६. गीतवाद्यता, २७. विवर्तन, २८. थरहर, २९. स्थापना, ३०. सौष्ठव, ३१. स्रुवा, ३२. मसृणता, ३३. उपार, ३४. अंगानंग, ३५. अभिनय, ३६. कोमलिका और ३७. मुखरस ।

–अथैतेषां लक्ष्यलक्षणवेदिना ।
लक्ष्माण्यशोकमल्लेन कथ्यन्ते साधुनाधुना ॥१५१७॥ 1624

लक्ष-लक्षणों के ज्ञाता साधु अशोकमल्ल अब उनके लक्षणों का निरूपण कर रहे हैं ।

१. चालि

बाहुकट्यूरुपादानामेकदा चालनं यदा ।
तालतौल्ययुतं नातिमन्दं नातिद्रुतं तथा ॥१५१८॥ 1625
मधुरं सविलासं च कोमलं त्र्यस्रभावभाक् ।
तदा चालिं समाचष्टाशोकमल्लो नृपाग्रणीः ॥१५१९॥ 1626

जब बाँह, कमर, जाँघ और पैर को एक ही समय ताल-मात्रा के साथ न बहुत मन्द और न बहुत शीघ्र गति से मधुरता, हावभाव, कोमलता तथा त्र्यस्रभाव पूर्वक चलाया जाय, तब महाराज अशोकमल्ल उसे चालि नामक लास्यांग कहते हैं ।

२. चालिवट

शैघ्र्यसांमुख्यबहुला सैव चालिवटो मतः ॥१५२०॥

जब चालि लास्यांग में शीघ्रता और सम्मुखता का बाहुल्य होता हो, तब वही **चालिवट** लास्यांग कहलाता है।

३. तूक

द्रुतमन्दादिभावेन चालनं हावपूर्वकम् । 1627
लीलावतंसयुतयोः कर्णयोस्तूकमीरितम् ॥१५२१॥

लीला के लिए धारण किये गये आभूषणों से युक्त दोनों कानों को शीघ्र तथा मन्द गति से हाव-भाव पूर्वक चलाया जाय, तो **तूक** लास्यांग कहलाता है।

४. मन

शृङ्गाररससम्पन्नः कोऽप्यपूर्वो गुणो यदा । 1628
लक्ष्यते शिक्षिताद् योऽतिसूक्ष्मोऽभिनयभावभाक् ॥१५२२॥
अन्य एव तु नाट्याङ्गक्रियायोगाद्यदा लयैः । 1629
तदा मनो मनोहारि सुमनोभिरिदं मतम् ॥१५२३॥

जब शृंगार रस से सम्पन्न कोई अपूर्व गुण, जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा अभिनय के भाव का द्योतक हो और नाट्यांग-क्रिया के योग से दूसरा ही हो, शिक्षित व्यक्ति से लय के साथ दिखाई पड़े, तब मनस्वी लोगों ने उसे सुन्दर **मन** नामक लास्यांग कहा है।

५. लेढि

कोमलं मधुरं तिर्यक् सविलासं च यद् भवेत् । 1630
एकदा चालनं बाहुकटीनां सा लेढिर्मता ॥१५२४॥
सौन्दर्यभरसंपन्नः संगीतप्राप्तिसम्भवः । 1631
आनन्दातिशयः कोऽपि लेढिरित्यपरे जगुः ॥१५२५॥

बाँह और कमर का एक साथ संचालन, जो कोमल, मधुर, तिरछा तथा हाव-भावपूर्वक हो, **लेढि** नामक लास्यांग कहलाता है। दूसरे आचार्यों का मत है कि सौन्दर्य के भार से सम्पन्न और संगीत के संयोग से व्युत्पन्न एवं अतिशय आनन्द से युक्त लास्यांग **लेडि** कहलाता है।

६. उरोङ्कण

अंसयोः स्तनयोस्तालसम्मितं चालनं भवेत् । 1632
पर्यायादेकदा वा यद् द्रुतं यद् वा विलम्बितम् ॥१५२६॥

क्रमादधः पुनः पश्चादूर्ध्वमेतदुरोङ्कणम् । 1633
इदमेव नटाः प्राहुस्त्रङ्गशब्देन कोविदाः ॥१५२७॥
मनाक् सुललितं तिर्यक् चालनं यत् कुचांसयोः । 1634
विलम्बेनाविलम्बेन तदूचुः केप्युरोङ्कणम् ॥१५२८॥
यत्र पात्रं द्रुतं गात्रं कम्पयेत् तालकालतः । 1635
मनाङ् मनोहरं केचिदूचुरे तदुरोङ्कणम् ।
इदमेव रचे नाम्नाचक्षन्ते साम्प्रदायिकाः ॥१५२९॥ 1636

यदि कंधों तथा स्तनों को ताल-मात्रा के प्रमाण से क्रमशः या एक समय शीघ्रता से या विलम्ब से क्रमशः नीचे और ऊपर की ओर चलाया जाय, तो उसे उरोकंण लास्यांग कहते हैं। इसी को विज्ञ नर्तक त्रंग शब्द से अभिहित करते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि कुचों तथा कंधों को घोड़ा सुन्दर ढंग से तिरछा करके विलम्ब से या शीघ्रता से जो चलाया जाता है, वह **उरोकंण** कहलाता है। अन्य विद्वानों का कहना है कि जहाँ अभिनेता ताल-मात्रा के प्रमाण से शरीर को कुछ सुन्दरतापूर्वक शीघ्रता से कम्पित करता है, वहाँ उरोकंण लास्यांग होता है। इसी को नाटच-सम्प्रदाय के आचार्य **रचे** नाम से पुकारते हैं।

७. ढिल्लाई

नर्तकी तनुते नृते यदाङ्गं स्तोकसौष्ठवम् ।
भावार्द्रहृदयोपेता विलासमधुरान्वितम् । 1637
हेलाभावालसं यत्र सा ढिल्लाई तदा मता ॥१५३०॥

जब नृत्य में भावों से सरस हृदयवाली नर्तकी विलास के माधुर्य से युक्त और शृंगार-सूचक हाव-भावों से अलसाये हुए अंग को किञ्चित् सुन्दरता के साथ फैलाती है, तब उसे **ढिल्लाई** लास्यांग कहते हैं।

८. त्रिकलि

चार्यां स्थानेऽथवा काललयानुगतिभिर्यदा । 1638
विधुताकम्पिताधूतपरिवाहितकम्पितैः ॥१५३१॥
पञ्चभिर्मूर्धभिर्यत्र पात्रं चित्तानि पश्यताम् । 1639
आनन्दयत्यसौ सद्भिस्तदा त्रिकलिरीरितः ॥१५३२॥

जब चारी में या स्थानक में ताल-लय का अनुगमन करने वाले, **विद्युत, आकम्पित, आधूत, परिवाहित** और **कम्पित** नामक पाँच मस्तक मुद्राओं द्वारा अभिनेता देखने वालों के चित्त को आनन्दित कर देता है, तब सज्जन लोग उसे **त्रिकलि** लास्यांग कहते हैं ।

९. किन्तु

> यत्राङ्गना गीततालतुलितं चालनं यदा । 1640
> भ्रुवयोः स्तनयोःकट्याः कुर्यात् किन्तु तदा त्विदम् ।।१५३३।।

जहाँ रमणी गीत के ताल के अनुसार भौंहों, स्तनों तथा कटि का संचालन करती है, वहाँ **किन्तु** नामक लास्यांग होता है ।

१०. देशीकार

> मनोहरं यदग्राम्यं तत्तद्देशानुसारतः । 1641
> नानारीत्यन्वितं नृत्तं देशीकारमिदं जगुः ।।१५३४।।

मनोहर, ग्राम्य से भिन्न और तत्तत् देश के अनुसार अनेक प्रकार की रीतियों से युक्त नृत को **देशीकार** लास्यांग कहते हैं ।

११. निजापन

> पात्रे यत्राप्रत्नेन सौष्ठवं रेखयान्वितम् । 1642
> नृत्तति प्रेष्यते दृष्टिः करे सुगतिसुन्दरी ।
> सभ्यातिमोहनीभावसम्पन्ना तन्निजापनम् ।।१५३५।। 1643

जहाँ आसानी से सुन्दरतापूर्वक रेखा (राग) से अन्वित होकर नृत्य करते हुए पात्र पर दृष्टिपात किया जाय और हाथ में सभासदों (दर्शकों) को मोहित करने वाली अच्छी गति रूपी सुन्दरी हो, तो वहाँ **निजापन** लास्यांग होता है ।

१२. उल्लास

> क्षिप्रं निरूपितांस्तालान् दर्शयेद् भावसूचकैः ।
> द्विगुणैस्त्रिगुणैर्यद्वा पात्रं गात्रसमुद्भवैः ।।१५३६।। 1644
> सूक्ष्मैरसकृदुल्लासैर्मनो हरति पश्यताम् ।
> तदोल्लासं समाचष्टं वीरसिंहसुनन्दनः ।।१५३७।। 1645

जब पात्र निरूपण किये गये तालों को शीघ्र दिखावे अथवा भावसूचक दूने-तिगुने अंगोत्पन्न सूक्ष्म उल्लासों द्वारा बारबार देखने वालों का मन हरण कर ले, तब वीरसिंह के पुत्र ने उसे **उल्लास** लास्यांग कहा है ।

१३. थसक

ललितं स्यात्कुचाधस्तान्नयनं थसको मतः ॥१५३८॥

यदि ललित हस्त को कुचों के नीचे ले जाया जाय, तो वह **थसक** लास्यांग कहलाता है ।

१४. भाव

गीतं नृत्यानुगं यत्र नाट्यं च विल[स]ल्लयम् । 1646
समासाद्य मुदं यत्र पात्रं पुष्यन् कलाङ्कुरान् ।
नृत्येद् विलासमधुरं तदासौ भाव उच्यते ॥१५३९॥ 1647

जहाँ गीत नृत्य का अनुगामी हो, नृत्य लय से शोभित हो और पात्र हर्ष प्राप्त करके कलांकुरों का पोषण करता हुआ हाव-भाव एवं मधुरता के साथ नृत्य करे, वहाँ **भाव** नामक लास्यांग होता है ।

१५. सुकलास

लास्याङ्गानि सचारीणि पादादेरपि चालनम् ।
कृत्वान्तराद्वक्तुर्यन्मेलनं गीतवाद्ययोः ॥१५४०॥ 1648
यदा कलाकलापज्ञैः सुकलासं तदोदितम् ।
स्थानचारीकराणां यन्मेलनं यौगपद्यतः । 1649
गीतवाद्यलयेष्वेतन् मेनिरेऽन्ये मनीषिणः ॥१५४१॥

यदि लास्यांग चारी से युक्त हों, पैर आदि को भी चलाया जाय और वक्ता का अन्तर करके गीत और वाद्य में मेल कराया जाय, तो कला के विशेषज्ञ लोग उसे **सुकलास** नामक लास्यांग कहते हैं । दूसरे मनीषी गीत, वाद्य और लय में स्थान, चारी और हाथ के एक साथ मेल को **सुकलास** लास्यांग मानते हैं ।

१६. लय

श्रितं कञ्चिल्लयं वेगाद् योजयेदितरौ लयौ । 1650
पात्रं सविस्मयं यत्र नृत्येऽसौ सम्मतो लयः ॥१५४२॥

जहाँ नृत्य में किसी चालू लय के साथ वेग से अन्य लयों को मिला दिया जाय और पात्र चकित रहे, वहाँ **लय** नामक लास्यांग होता है ।

१७. ढाल

यदा [त्व] मन्दमुल्लोलकमलोपरि बिन्दुवत् । 1651
नृत्ये यत्राङ्सञ्चारः तदासौ ढाल उच्यते ।
इममेव बुधाः केचित्ताननाम्ना प्रचक्षते ॥१५४३॥ 1652

जब नृत्य में अत्यन्त चंचल कमल पर जल-बिन्दु की तरह अंगों का संचार किया जाता है, तब वह **ढाल** नामक लास्यांग कहलाता है। इसी को कोई विद्वान् **तान** नाम से अभिहित करते हैं।

१८. छेवा

सुभ्रुवो यत्र नेत्रान्तौ भावगर्भौ स्वभावतः ।
तरलौ नर्तने स्यातामसौ छेवा मता बुधैः ॥१५४४॥ 1653

जहाँ नृत्य में नर्तकी के नेत्रों के कोर स्वभावतः भावगर्भित एवं चंचल हों, वहाँ बुधजन **छेवा** नामक लास्यांग मानते हैं।

१९. अंगहार

ललिता यत्र गात्रस्य नतिः पूर्वोत्तरार्धयोः ।
चापवत् तालसहिता सोऽङ्गहारोऽभिधीयते ॥१५४५॥ 1654

जहाँ पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध धनुष की तरह अंगों का वलन (झुकना) ताल सहित सुन्दर दिखाई दे, वहाँ **अंगहार** लास्यांग होता है।

२०. लंघित

मुहुर्मुहुः समुल्लङ्घ्य वाद्यस्यावादनं यदा ।
पात्रं विश्रम्य विश्रम्य नृत्येत् स्याल्लङ्घितं तदा ॥१५४६॥ 1655

जब पात्र वाद्य के शब्द का बार-बार उल्लंघन करके रुक-रुक कर नृत्य करे, तब **लंघित** लास्यांग होता है।

२१. विहसी

विहसी तु तदा ज्ञेया यदा स्यात् सुन्दरस्मितम् ॥१५४७॥

जब सुन्दर मुसकराहट के साथ नृत्य किया जाय, तब उसे **विहसी** लास्यांग कहते हैं।

२२. नीकी

नर्तकी नर्तने गीतवाद्यताल [ल] येष्वपि । 1656
अस्खलन्ती यदा नीकी तदा जनमनोहरा ॥१५४८॥

जब नृत्य में नर्तकी गीत, वाद्य, ताल और में लय भी किसी प्रकार की त्रुटि न करती हुई जन-मन को आकृष्ट कर ले, तब वह **नीकी** लास्यांग होता है

२३. नमनिका

अङ्गानां यत्र पात्रस्य प्रयासव्यतिरेकतः । 1657
नमनं स्यात् प्रयोगेषु दुष्करेष्वपि सा तदा ।
मता नमनिका धीरैः सभ्यानन्दविवर्धनी ॥१५४९॥ 1658

जहाँ अत्यन्त कठिन प्रयोगों में बिना प्रयास के भी (स्वाभाविक रूप में) पात्र के अंगों का नमन होता रहता है, धीर पुरुष उसे, सभासदों के आनन्द को बढ़ाने वाली, **नमनिका** नामक लास्यांग कहते हैं ।

२४. शंका

अङ्गानि तावदौद्धत्याच्चालयित्वा सविभ्रमम् ।
पुनराहार्य तान्यग्रे पार्श्वयोरपि नर्त्तकी । 1659
वञ्चयन्तीव चेल्लोकं नृत्येच्छङ्का तदोदिता ॥१५५०॥

जहाँ अंगों को उद्धतता से विलासपूर्वक चलाकर नर्तकी पुनः अंगों को आगे तथा बगलों में भी संचालित करके लोगों को ठगती हुई-सी नृत्य करे, तो वहाँ **शंका** नामक लास्यांग होता है ।

२५. वितड

स्वभावाल्ललितं चारीकरणादिबलाद् यदा । 1660
कुरुते कठिनं यत्र तदेदं वितडं मतम् ॥१५५१॥

जहाँ चारी, करण आदि के बल से कठिन नृत्य को भी स्वाभाविक रूप में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया जाय, वहाँ **वितड** नामक लास्यांग होता है ।

२६. गीतवाद्यता

नृत्येदनुगुणं यत्र नर्तकी गीतवाद्ययोः । 1661
अक्षराणां लयस्यापि समता गीतवाद्यता ॥१५५२॥

जहाँ नर्तकी गीत और वाद्य के अनुकूल नृत्य करे और अक्षरों तथा लय की भी संगति रहे, वहाँ **गीतावद्यता** नामक लास्यांग होता है ।

२७. विवर्तन

वाद्यप्रबन्धवर्णानां यत्र साम्येन नर्तनम् । 1662

रचयेद् हस्तकैः पात्रं चारीभिः करणैरपि ।
भ्रमरीभिश्च सम्प्रोक्तं विवर्तनमिदं बुधैः ॥१५५३॥ 1663

जहाँ पात्र वाद्य और गीत के वर्णों के साम्य से हाथों, चारियों, करणों और भ्रमरियों द्वारा नृत्य प्रस्तुत करे, वहाँ उसे बुधजन **विवर्तन** नामक लास्यांग कहते हैं ।

२८. थरहर

नर्तने तनुयात् क्षीप्रं कम्पनं कुचयोर्नटी ।
भुजावधि विलासेन यदा थरहरं तदा ॥१५५४॥ 1664

जब नर्तकी नृत्यकाल में कुचों के कम्पन को हाव-भाव के साथ शीघ्रतापूर्वक बाँहों तक फैलाती है, तब **थरहर** नामक लास्यांग होता है ।

२९. स्थापना

या स्थितिर्ललिता भूमौ सरेखमुखरागभाक् ।
समार्धे नर्त्तनेऽङ्गानां प्राहुस्तां स्थापनां बुधाः ॥१५५५॥ 1665

नृत्य के बराबर आधे भाग में भूमि पर अंगों को ऐसे सुन्दर ढंग से स्थापित किया जाय, जिसमें रेखा सहित चेहरे का रंग स्पष्ट दिखायी दे, तो उसे बुधजन **स्थापना** नामक लास्यांग कहते हैं ।

३०. सौष्ठव

सौष्ठवस्य पुरोक्तस्य चतुर्भिर्बाष्टभिर्मिता ।
यद् वा द्वादशभिर्यत्राङ्गुलैर्वा खर्वता त्रिधा ॥१५५६॥ 1666
तत्तद्देशानुसारेण कटिकण्ठोरुजानुषु ।
वाञ्छया वा महीपस्य सद्भिस्तत् सौष्ठवं मतम् ॥१५५७॥ 1667

पहले बताये गये **सौष्ठव** को चार, आठ या बारह अंगुल के नाप से कटि, कण्ठ, जाँघ और घुटने में तीन बार देश-विशेष के अनुसार या राजाज्ञा के अनुसार छोटा कर दिया जाय, तो सज्जन लोगों ने उसे **सौष्ठव** नामक लास्यांग कहा है ।

३१. स्रुवा

यथा मन्दानिलाघाताच्चलेद्दीपशिखा तथा ।
चलेयुर्यत्र गात्राणि सा स्रुवा परिकीर्तिता ॥१५५८॥ 1668

जैसे मंद वायु के झोंके से दीपक की लौ चलायमान हो जाती है, उसी तरह जहाँ अंग चलायमान हों, वहाँ **स्रुवा** नामक लास्यांग होता है ।

३२. मसणता

मुग्धां स्निग्धां यदा दृष्टिं तनुते रसनिर्भराम् ।
नृत्यहस्तानुगां नृत्ये तदा मसृणता भवेत् ।।१५५९।। 1669

जब नृत्य में नृत्य-हस्तों का अनुगमन करने वाली मुग्ध, स्निग्ध तथा रसभरी दृष्टि को फैलाया जाय, तब **मसणता**, नामक लास्यांग होता है ।

३३. उपार

पूर्वं पूर्वमुपक्रान्ता नृत्यस्यावयवा यदा ।
भूषावलितसर्वाङ्गा वर्तेरन्नुत्तरोत्तरम् । 1670
तालप्रयोगनैपुण्यात् तदोपारो मतो बुधैः ।।१५६०।।

जब पहले-पहले आरंभ किये गये नृत्य के अवयव आभूषणों से सर्वांग युक्त होकर आगे-आगे ताल-प्रयोग निपुणता से विद्यमान रहें, तब **उपार** नामक लास्यांग होता है ।

३४. अंगानंग

अङ्गं लास्याङ्गमादिष्टमनङ्गं ताण्डवं मतम् । 1671
यत्र नृत्येऽनयोर्योगस्तदङ्गानङ्गमीरितम् ।।१५६१।।

अंग को **लास्यांग** और अनंग (काम) को **ताण्डव** (नृत्य) कहा गया है । जहाँ नृत्य में दोनों का योग होता है वहाँ **अङ्गानङ्ग** नामक लास्यांग होता है ।

३५. अभिनय

भावप्रकाशकैरङ्गैर्यथावत् करणादिकम् । 1672
विदध्याद् यत्र पात्रं चेदसावभिनयस्तदा ।।१५६२।।

जहाँ पात्र भावसूचक अंगों से अच्छी तरह करण आदि की रचना करे वहाँ **अभिनय** नामक लास्यांग होता है ।

६. कोमलिका

यदा नृत्येङ्गनाङ्गानां क्रियाभिर्वलनादिभिः । 1673
आर्द्रता प्रेक्ष्यते चित्तात् परा कोमलिका तदा ।।१५६३।।

जब नृत्य में सुन्दरियों के अंगों की वलन आदि क्रियाओं द्वारा चित्त से सरसता लक्षित होती है, तब **कोमलिका** नामक लास्यांग होता है ।

**३७. मुखर**

**यत्र पात्रं मुखे कुर्याद् वर्णानां तु विवर्तनम् ।** 1674
**तत्तद्रसानुगुण्येन भवेन्मुखरसस्त्वसौ ॥१५६४॥**

जहाँ पात्र अपने मुख में तत्तत् रसों के अनुकूल अक्षरों को परिवर्तित करे, वहाँ **मुखरस** नामक लास्यांग होता है ।

**अन्य भेद**

**अन्येऽपि सन्ति ये भेदा देशीलास्याङ्गसश्रयाः ।** 1675
**ग्रन्थविस्तरसंत्रासान्न तेऽस्माभिर्निरूपिताः ॥१५६५॥**

देशी लास्यांगों के अन्य जो भेद हैं, उन्हें ग्रन्थ के विस्तार भय से नहीं बताया गया है ।

लास्यांगों का निरूपण समाप्त

• •

# कलास करण प्रकरण / पन्द्रह

## [1]कलास करणों का निरूपण

**कलास (ताल के अनुसार नृत्य) के भेद**

**विद्युत्कलासः खड्गाद्यः कलासो मृगपूर्वकः ।** 1676
**बकाद्यः प्लवपूर्वश्च हंसाद्यश्चेति षण्मताः ॥१५६६॥**

कलास के छह भेद होते हैं : १. विद्युत्कलास, २. खड्गकलास, ३. मृगकलास, ४. बककलास, ५. प्लवकलास और ६. हंसकलास ।

**तत्राद्यौ प्लुतमानेन गुरुमानात् ततोऽग्रिमौ ।** 1677
**पञ्चमो लघुमानने षष्ठः स्याद् द्रुतमानतः ॥१५६७॥**

उनमें **विद्युत्कलास** और **खड्गकलास** त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से; **मृगकलास** और **बककलास** द्विमात्रिक ताल के प्रमाण से; **प्लवकलास** एकमात्रिक ताल के प्रमाण से; और **हंसकलास** अर्धमात्रिक ताल के प्रमाण से सम्पन्न होते हैं ।

**तत्राद्यः षड्विधः खड्गकलासः स्याच्चतुर्विधः ।** 1678
**तृतीयस्त्वेकधा तुर्यपञ्चमौ च चतुर्विधौ ॥१५६८॥**
**त्रिधान्तिमः कलासः स्यादेवं द्वाविंशतिर्मताः ।** 1679
**कलासाः क्रमशस्तेषां संचक्षे लक्षणान्यहम् ॥१५६९॥**

**विद्युत्कलास** के छह भेद, **खड्गकलास** के चार भेद, **मृगकलास** का एक भेद, **बककलास** और **प्लवकलास** के चार-चार भेद और **हंसकलास** के तीन भेद होते हैं । इस प्रकार सब को मिलाकर कुल बाईस कलास होते हैं । अब क्रमशः उनके लक्षणों का निरूपण किया जाता है ।

**प्रथम**

### छह विद्युत्कलास (१)

**मेघपंक्तौ यथा विद्युच्चकास्ति सचमत्कृतिः ।** 1680
**तथा यत्र पताकादीन् प्लुतमानकृतान् करान् ॥१५७०॥**

---

[1] कलास एक वाद्ययंत्र का नाम है । उसके ताल-प्रमाण के अनुसार हस्तपादादि की विशेष चेष्टाओं की योजना को इस प्रकरण के अन्तर्गत निरूपित किया गया है ।

तिर्यगूर्ध्वमधोऽधश्चेदारादातन्वती नटी । 1681
विभाति विद्युदाद्यस्तु कलासः स तदोदितः ॥१५७१॥
वामं करं पताकाख्यं नीत्वा दक्षिणकर्णकम् । 1682
तथा परं करं वामां कटिं वामां च जङ्घिकाम् ॥१५७२॥
एतद्व्यत्यासनेनापि कृत्वा पाणिद्वयं ततः । 1683
सम्मुखं रचयेद् विद्युद्भेद आद्यो भवेदसौ ॥१५७३॥

जैसे मेघों की पंक्ति में बिजली चमत्कार के साथ चमकती है, उसी तरह जहाँ त्रिमात्रिक ताल के मान से बनाये हुए पताक आदि हस्तों को तिरछे, ऊपर, नीचे और दूर या समीप फैलाती हुई नर्तकी विराजमान होती है, वहाँ **प्रथम विद्युत्कलास** होता है। बायें हाथ को दाहिने कान, बायें हाथ, बायीं कटि और बायीं जाँघ के पास ले जाकर सामने **पताक हस्त** की रचना करे। उसको बदलकर भी हाथ की रचना करे; अर्थात् बायें **पताक हस्त** के बदले दाहिने हाथ को **पताक हस्त** में परिणत करे। ऐसा करने से भी **प्रथम विद्युत्कलास** बनता है।

**द्वितीय**

विधाय दक्षिणं पाणिमर्धचन्द्रं स्वसम्मुखम् । 1684
विलोक्य च नटी कुर्याद् धनुराकृति जानु चेत् ।
तदा भेदो द्वितीयः स्याद् विद्युदाद्यकलासजः ॥१५७४॥ 1685

अपने सम्मुख दाहिने हाथ को **अर्धचन्द्र हस्त** में परिणत करके नटी घुटने को धनुष के आकार में प्रस्तुत करे। ऐसा करने से **द्वितीय विद्युत्कलास** बनता है।

**तृतीय**

समदृष्टिर्नटी हस्तमञ्जलिं प्रविधापयेत् ।
अस्याङ्गुलीः प्रसार्याथ पुरतः शिखरं करम् । 1686
कृत्वा प्रसारयेद् बाहू तदा भेदस्तृतीयकः ॥१५७५॥

सीधी दृष्टि वाली नर्तकी **अञ्जलि हस्त** की रचना करके उसकी उँगलियों को फैला दे; फिर सामने **शिखर हस्त** की रचना करके दोनों भुजाओं को फैला दे। ऐसा करने से **तृतीय विद्युत्कलास** बनता है।

**चतुर्थ**

केशबन्धौ करौ [कृ] त्वा क्रमादलिकमूर्धनोः । 1687
करौ दक्षिणवामौ चेन्निधाय द्वौ पताककौ ।

कुर्यात् तदा भवेद् भेदश्चतुर्थश्च पुरोदितः ॥१५७६॥ 1688

**केशबन्ध** मुद्रा में दोनों हाथों की रचना करके दाहिने और बाँयें हाथों को क्रमशः ललाट और मस्तक पर रख कर दो **पताक हस्तों** की रचना करे। ऐसा करने से **चतुर्थ विद्युत्कलास** बनता है।

**पंचम**

कृत्वा पुष्ठपुटं पाणिमुच्चैस्तं द्विर्निरीक्ष्य च।
तदनूत्सङ्गमारच्य चरणै दक्षिणं द्रुतम् ॥१५७७॥ 1689
स्पृशेद् दक्षिणहस्तेन वामाङ्घ्रिं वामपाणिना।
यत्रासौ पञ्चमो भेदः कलासज्ञैरुदीरितः ॥१५७८॥ 1690

**पुष्पपुट** नामक हाथ को ऊँचा करके दो बार निरीक्षण करे; फिर **उत्संग** नामक हाथ की रचना करके दाहिने हाथ से दाहिने पैर का और बायें हाथ से बायें पैर का स्पर्श करे। ऐसा करने से **पंचम विद्युत्कलास** बनता है।

**षष्ठ**

प्लुतमानकृताङ्घ्रिश्चेदधो [ऽथ] मकरं करम्।
कृत्वा नृत्यति पाणिभ्यां षष्ठो भेदस्तदोदितः ॥१५७९॥ 1691

त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से पैर और नीचे **मकर** नामक हाथ की रचना करके दोनों हाथों से नृत्य करे। ऐसा करने से **षष्ठ विद्युत्कलास** बनता है।

## चार खड्गकलास (२)

**प्रथम**

सव्यापसव्यतो यत्र नर्तकी चकिता मुहुः।
विलोक्य च पुरः पश्चाद् धृतखड्गलतेव सा ॥१५८०॥ 1692
आचरन्ती प्रचारं चेद् विचित्रमथ हस्तकान्।
प्लुतमानकृतानर्धचन्द्रादीन् रचयेत् स्फुटान्। 1693
तदा खड्गकलासोऽसौ विद्वद्भिः परिभाषितः ॥१५८१॥

जहाँ खड्गलता (तलवार) धारण किये हुई-सी नर्तकी बायें, दायें, आगे और पीछे देखकर विचित्र चाल चलती हुई त्रिमात्रिक ताल के प्रमाण से **अर्धचन्द्र** आदि हाथों की सुस्पष्ट रचना करे; वहाँ विद्वानों ने उसे **प्रथम खड्गकलास** बताया है।

द्वितीय

वामं करं कटौ न्यस्य परं खड्गाकृतिं करम् । 1694
कृत्वा सकम्पं चेदर्धचन्द्रमास्ते तदादिगः ॥१५८२॥
कृत्वा कपोतमूर्ध्वं चेदधोमुष्टिं करं ततः । 1695
यत्र तिर्यक् पताकाख्यं करं कुर्यात्तदाभिधा ।
द्वितीया खड्गपूर्वस्य कलासस्य निरूपिता ॥१५८३॥ 1696

बायें हाथ को कटि पर रखकर दूसरे हाथ को खड्गाकृति (खड्ग जैसा) बनावे; फिर कम्पन सहित **अर्धचन्द्र हस्त** की रचना करे ; फिर **कपोत हस्त** को ऊपर, **मुष्टि हस्त** को नीचे तथा **पताक हस्त** को तिरछा करे । ऐसा करने पर **द्वितीय खड्गकलास** निष्पन्न होता है ।

तृतीय

विधाय त्रिपताकौ द्वौ यस्य यश्चरणः पुरः ।
घातयन्निव तत्रैतं योजयेत्स तृतीयकः ॥१५८४॥ 1697

दोनों **त्रिपताक** हस्तों की रचना करके आगे चरण-प्रहार करने से **तृतीय खड्गकलास** बनता है ।

चतुर्थ

स्वस्तिकं कर्कटं मुष्टिपताकपाणी चतुरः ।
धृतिमोहघातपातक्रियां कुर्याच्चतुर्थकः ॥१५८५॥ 1698
तत्र [वि] धाश्चतुर्धोर्ध्वमधः पार्श्वद्वयोऽपि च ।

चतुर जन **स्वस्तिक, कर्कट, मुष्टि** तथा **पताक** नामक हाथों की रचना करके धैर्य, मोह, घात और पतन क्रिया को करे । ऐसा करने से **चतुर्थ खड्विलास** होता है । यदि उक्त हस्तों को ऊपर -नीचे तथा दोनों पार्श्वों में भी संचालित किया जाय तो **चतुर्थ खड्गकलास** निष्पन्न होता है ।

एवं खड्कलासस्य भेदाश्चत्वार ईरितः ॥१५८६॥ 1699

इस प्रकार **खड्विलास** के चारों भेदों का निरूपण कहा गया है ।

मृगकलास (३)

पादाङ्गुलीभिराक्रम्य भुवमुत्थाय जानुनी ।
मुहुर्मुहुः सन्निपात्य गर्भखिन्नमृगीव चेत् ॥१५८७॥ 1700

सालस्यगमनोपेता मृगशीर्षकरान्विता ।
नर्तकी गुरुमानेन हरिणप्लुतया प्लुतम् । 1701
विदध्याद् विचित्र्यां यत्र कलासोऽसौ मृगादिगः ॥१५८८॥

यदि पैरों की उँगलियों से पृथ्वी को आक्रान्त करके दो घुटनों को उठाकर तथा बार-बार गिराकर, गर्भभार से खिन्न हरिणी की तरह अलसायी हुई चाल वाली, नर्तकी **मृगशीर्ष** नामक हाथ की रचना करके हरिण की छलाँग मारकर चले, तो वह **मृगकलास** होता है ।

चार बककलास (४)

प्रथम

यत्र पक्षौ समानीयौ बकीवाधून्यती करौ । 1702
सव्यापसव्ययोरारात् सन्दंशमुकुलाभिधौ ॥१५८९॥
नर्तकी लघुमानेन कृतासनसमुत्थितिः । 1703
नृत्येत् ससौष्ठवं स स्यात् कलासो बकपूर्वकः ॥१५९०॥
कामपि भ्रमरीं कृत्वा संहतस्थानमाश्रिता । 1704
करौ कृत्वाऽलपद्माख्यावरालौ यत्र पादयोः ॥१५९१॥
नीत्वा क्रमेणैकदा वा कम्पयेदच्युताविव । 1705
जलक्लिन्नाथवा सव्यं पाणिं मुकुलसंज्ञकम् ॥१५९२॥
मत्स्यग्रहासक्तचित्तबकवद्यदि संव्रजेत् । 1706
पादाग्रेण नटी मन्दं मन्दं पश्चात्पुरोऽपि च ।
तदैष भेद आद्यः स्याद् बकपूर्वकलासजः ॥१५९३॥ 1707

जैसे बगली अपने पंखों को फड़फड़ाती है, उसी तरह नर्तकी अपने हाथों की मुद्रा बनावे; तत्पश्चात् बायें-दायें क्रम से समीप ही **सन्देश** और **मुकुल** हस्तमुद्राओं की रचना करे ; तदनन्तर एकमात्रिक ताल के प्रमाण से आसन से उठकर सुन्दर ढंग से नृत्य करे । इसी को **बककलास** कहते हैं । **संहत** नामक स्थानक के आश्रित किसी **भ्रमरी** नामक चारी को करके **अलपद्म** एवं **अराल** नामक हाथों की रचना करे; उन्हें पैरों के समीप ले जाकर क्रमशः या एक साथ बिना गिराये ही कम्पित करे; जल से भीगी अथवा यों ही बायें हाथ की **मुकुल** मुद्रा बनाकर मछली पकड़ने में दत्तचित्त बगली की तरह यदि नर्तकी पैरों के अग्रभाग से धीरे-धीरे पीछे या आगे की ओर चले तो **प्रथम बककलास** निष्पन्न होता है ।

द्वितीय

त्रिपताकौ यदा पाणी विषमासनसंश्रितौ ।
विधाय मण्डिकां पादौ यथास्वं च पदे पदे ॥१५६४॥ 1708
नीत्वा तत्र करौ चित्रं सन्दंशमथ कुर्वती ।
पश्यन्त्यग्रे पार्श्वयोश्च चकितेव नटी मुहुः । 1709
तनोति यत्र नृत्तं स बकभेदो द्वितीयकः ॥१५६५॥

जब **त्रिपताक** दोनों हाथों को विषम आसन पर टिकाकर **मण्डिका** नामक मुद्रा (दे० श्लोक १५९६) रचकर दोनों पैरों को बगलों प्रत्येक पग में ठीक ढंग से रखकर **चित्र** तथा **सन्देश** नामक दोनों हाथों को बनाकर आगे और बगलों में चकित होकर बार-बार देखती हुई नर्तकी नृत्य का विस्तार करती है, तब **द्वितीय बककलास** निष्पन्न होता है ।

तृतीय

सव्यापसव्यतो यत्र वामं दक्षिणतस्तथा । 1710
जानु सत्वरमापात्य भुव्यङ्घ्री स्थापयेद् यदा ॥१५६६॥
मण्डिका सा तदा प्रोक्ताशोकमल्लेन भूभुजा । 1711
विधाय मुकुलं हस्तं क्षिप्रमग्रे शनैरनु ॥१५६७॥
गच्छन्त्यनुपदं तद्वन्नटी स्खलति खिद्यति । 1712
धृतमुक्ते यथा मीने बकोऽस्यानुपदं क्रमात् ॥१५६८॥
अलपद्मरालं च मुकुलं यत्र कुर्वती । 1713
नृत्ये चित्रमसौ भेदो बकस्य स्यात् तृतीयकः ॥१५६९॥

जब बायें-दायें क्रम से दाहिने तरफ से बायें घुटने को शीघ्रता से मोड़कर दोनों पैरों को पृथ्वी पर स्थापित किया जाता है तब राजा अशोकमल्ल उसे **मण्डिका** कहते हैं । जहाँ **मुकुल हस्त** की रचना करके आगे शीघ्रता से और पीछे धीरे से चलती हुई नर्तकी, पकड़ी हुई मछली के छूट जाने पर बगुले की तरह, कदम-बकदम गिरती है और खिन्न होती है तथा **अलपद्म, अराल** एवं **मुकुल** हस्त की रचना करती हुई नाचती है, वहाँ **तृतीय बककलास** निष्पन्न होता है ।

**चतुर्थ**

उत्तानवञ्चितौ पाणी विधायाथार्धचन्द्रकम् । 1714
कट्यां करं निवेश्याथ पादाग्राभ्यां नटी यदा ॥१६००॥
रचयन्ती गतीर्नाना [बक] वत् पुरतोऽनु च । 1715
पादाङ्गुष्ठकरस्पर्शान्नृत्ये वक्राकृतिस्तदा ।
तुर्यो भेदो बकाद्यस्य कलासस्य बुधैर्मतः ॥१६०१॥ 1716

**उत्तानवञ्चित** नामक दोनों हाथों की रचना करके अर्धचन्द्र हस्त को कटि पर रखकर जब नर्तकी पैरों के अग्रभाग से बगुले की तरह आगे-पीछे अनेक प्रकार की चालों को रचती हुई **बक्राकृति** होकर पैरों के अंगूठों को हाथ से छूकर नृत्य करती है, तब विद्वानों ने उसे **चतुर्थ बककलास** कहा है ।

चार प्लवकलास (५)

**प्रथम**

विषमस्था समुत्प्लुत्य समौ पादौ यदा नटी ।
बिभ्रती सर्वतश्चित्रं त्रिपता [क] करान्विता ॥१६०२॥ 1717
नृत्येदसौ तदा प्रोक्तः कलासः प्लवपूर्वकः ।
त्रिपताकौ पताकौ वा कृत्वा नाभिस्थितौ करौ ॥१६०३॥ 1718
पद्भ्यां तालानुगं गच्छेत् पश्चाद्यत्र भवेदसौ ।
आद्यो भेदः प्लवाद्यस्य कलासस्य बुधैर्मतः ॥१६०४॥ 1719

विषमासन से उछलकर **सम** नामक पैरों को धारण करती हुई नर्तकी जब सब ओर आश्चर्य के साथ **त्रिपताक** नामक हाथ से युक्त होकर नृत्य करती है, तब **प्लवकलास** निष्पन्न होता है । जहाँ पश्चात **त्रिपताक** या **पताक** नामक दोनों हाथों को नाभि पर रखकर पैरों से ताल का अनुसरण करती हुई **नर्तकी** चले, वहाँ विद्वानों ने **प्रथम प्लवकलास** माना है ।

**द्वितीय**

विधाय त्रिपताकौ चेद् वाममङ्घ्रिं पुरोगतम् ।
पाणिमेवं विधं वामं लघुमानेन नर्तकी ॥१६०५॥ 1720
वामतो गम [नं] कृत्वा बध्नीयादासनं समम् ।



५१

विषमं वा ततः स्थानात्समुत्प्लुत्य समाङ्घ्रिकम् । 1721
गच्छेत् तदा प्लवस्योक्तः सद्भिर्भेदो द्वितीयकः ॥१६०६॥

यदि **त्रिपताक** नामक दोनों हाथों की रचना करके बायें पैर और बायें हाथ को आगे किये हुए नर्तकी एकमात्रिक ताल के प्रमाण से बायीं ओर जाकर **सम** या **विषम** नामक आसन को बाँधे; फिर उस स्थान से उछलकर **सम** पैर से चले । ऐसा करने पर सज्जनों ने **द्वितीय प्लवकलास** बताया है ।

**तृतीय**

त्रिपताकौ कटीक्षेत्रे विधाय सममासनम् । 1722
विषमं वा यदा स्थित्वा स्थित्वोत्प्लुत्य महीतले ॥१६०७॥
दधती चरणौ गच्छेल्लघुमानात् पुरोऽनु वा । 1723
पश्यन्तीमवनिं ज्ञेयः प्लवभेदस्तृतीयकः ॥१६०८॥

**त्रिपताक** नामक दोनों हाथों को कटिक्षेत्र में रखकर **सम** या **विषम** आसन पर स्थित होकर तथा उछलकर पृथ्वी पर पैरों को रखती हुई नर्तकी यदि एकमात्रिक ताल के प्रमाण से आगे या पीछे पृथ्वी को देखती हुई चले, तो वहाँ **तृतीय प्लवकलास** समझना चाहिए ।

**चतुर्थ**

यदाग्रे पृष्ठतश्चैव व्युत्क्रमात्क्रमतोऽथवा । 1724
सव्यापसव्ययोर्नृत्यं चतुर्धा सम्प्रजायते ।
तदा भेदः प्लवस्य स्याच्चतुर्थश्चतुरोदितः ॥१६०९॥ 1725

जब आगे और पीछे व्यतिक्रम या क्रम से बायीं-दायीं ओर चार प्रकार से नृत्य किया जाता है, तब **चतुर्थ प्लवकलास** निष्पन्न होता है ।

### तीन हंसकलास (६)

**प्रथम**

हस्तौ विधाय हंसास्यौ यत्र हंसीवनर्तकी ।
अतिरम्याङ्घ्रिविन्यासैर्नानागतिमनोहरम् ॥१६१०॥ 1726
यदा नृत्यति हंसाद्यः कलासः स तदोदितः ।
नर्तकी दक्षिणे पार्श्वे विधाय मकरं करम् ॥१६११॥ 1727

[[1]मकरं दक्षपार्श्वस्थं पताकं वामहस्तकम् ।
पुरतो यत्र हंसीव यायाद्भेदः स आदिमः । 1728

जहाँ **हंसास्य** नामक दोनों हाथों की रचना करके नर्तकी हंसी की तरह अति रमणीय चरण-विन्यासों से नाना प्रकार की सुन्दर चालें चलती हुई नृत्य करती है, वहाँ **हंसकलास** कहा गया है । यदि नर्तकी दाहिने पार्श्व में **मकर हस्त** तथा बायें हाथ को **पताकहस्त** बनाकर आगे हंसी की तरह चले, तो वह **प्रथम हंसकलास** होता है ।

**द्वितीय**

मुकुलं हस्तमारभ्या पादाभ्यां पृष्ठतो व्रजेत् ।
विचित्रलास्यभेदज्ञा हंसीवासौ द्वितीयकः । 1729

यदि (नर्तकी) मुकुल नामक हाथ की रचना करके पैरों से पीछे की ओर हंसी की तरह चले, तो लास्यों के भेदों के ज्ञाता उसे **द्वितीय हंसकलास** मानते हैं ।

**तृतीय**

हस्तं हंसास्यमाधाय पार्श्वयोर्ललितां गतिम् ।
आलापवर्णतालानां क्रमतो यत्र नृत्यति । 1730
हंसीवासौ तृतीयोऽयं भेदः प्रोक्तः पुरातनैः] ।

जहाँ **हंसास्य** नामक हाथ को बनाकर पार्श्वों में ललित चाल चलती हुई नर्तकी आलाप, अक्षर तथा ताल के क्रम से हंसी की तरह नाचती है, वहाँ पूर्वाचार्यों ने **तृतीय हंसकलास** माना है ।

समवेत रूप में बाईस कलास करणों का निरूपण समाप्त

श्रीसाम्बाशिवार्पणमस्तु

• •

१. **हंसकलास** के ये भेद मूलपाठ में अनुपलब्ध हैं । अतः मैंने उन्हें प्रो० रसिकलाल सी० पारिख और डॉ० प्रियबाला शाह द्वारा सम्पादित श्री कुम्भकर्ण विरचित **नृत्यरत्नकोश** से उद्धृत किया है—(सम्पादक) ।

# चित्रसूची

[१०८ नृत्तकरणों की मुद्राएँ]

तलपुष्पपुट

वक्षःस्वस्तिक

वर्तित

मण्डलस्वस्तिक

लीन

उन्मत्त

वलितोरु

स्वस्तिक

अर्धस्वस्तिक

दिक्स्वस्तिक

पृष्ठस्वस्तिक

आक्षिप्तरेचित

अलात

भुजंगत्रासित

कटीभ्रम

कटिछिन्न

घूर्णित

निकुञ्चित

निकुट्टक

अर्धनिकुट्टक

विक्षिप्ताक्षिप्तक

अपविद्ध

समनख

स्वस्तिकरेचित

मत्तल्लि

अर्धमत्तल्लि

वल्लित

अर्धरेचित

ऊर्ध्वजानु

कटिभ्रान्त

छिन्न

पादापविद्धक

भ्रमर

दण्डपक्ष

नुपुर

ललित

व्यंसित

चतुर

क्रान्त

भुजंगत्रस्तरेचित

भुजंगाञ्चित

आक्षिप्त

उद्घट्टित

दण्डरेचित

वृश्चिक

वृश्चिकरेचित

वृश्चिककुट्टित

लतावृश्चिक

वैशाखरेचित

चक्रमण्डल

आवर्त

कुञ्चित

दोलापाद

तलविलासित

विवृत्त

विनिवृत्त

ललाटतिलक

विवर्तित

अतिक्रान्त

विद्युद्भ्रान्तक्रिय

निशुम्भित

उरोमण्डल

विक्षिप्त

पार्श्वनिकुट्टक

तलसंस्फोटित

गण्डसुचि

सूचि

अर्धसूचि

गजक्रीडितक

पार्श्वजानु

गरुडप्लुत

गृध्रावलीनक

दण्डपाद

संनत

सर्पित

मयूरललित

सूचीविद्ध

प्रेङ्खोलित

स्खलित

परिवृत्त

करिहस्त

प्रसर्पित

पार्श्वक्रान्त

निवेश

नितम्ब

हरिणप्लुत

सिंहविक्रीडित

सिंहाकर्षित

जनित

अवहित्थ

उद्वृत्त

तलसंघट्टित

लोलित

शकटास्य

वृषभक्रीडित

एलकाक्रीडित

विष्कम्भ

उपसृत

विष्णुक्रान्त

अपक्रान्त

उरूदवृत्त

अञ्चित

संभ्रान्त

मदस्खलितक

अगंल

रेंचकनिकुट्टक

नागापसर्पित

गंगावतरण

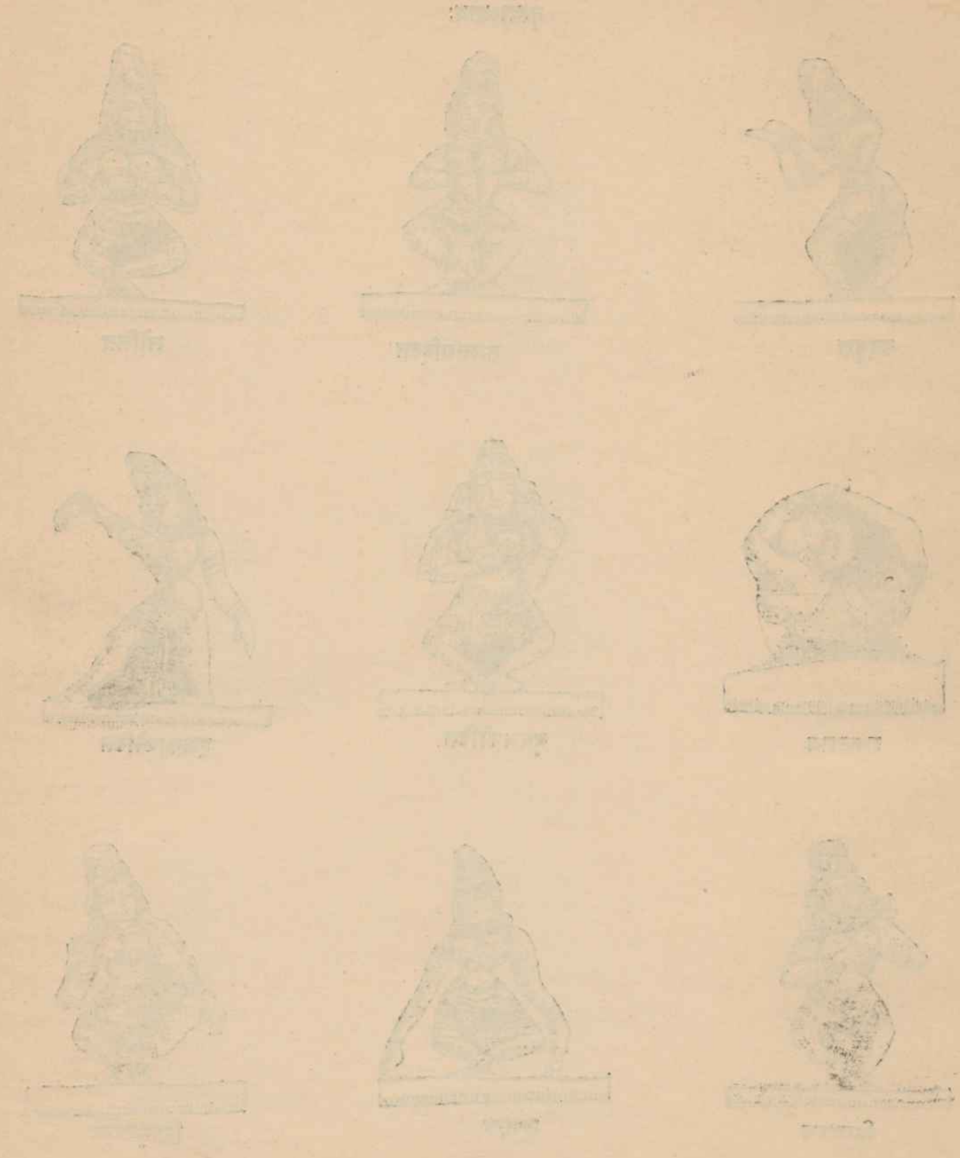

अपक्रान्त

उरूदवृत्त

अञ्चित

संभ्रान्त

मदस्खलितक

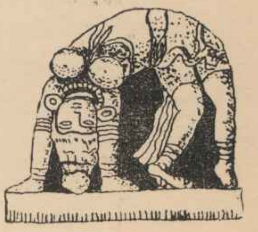
अगंल

रेंचकनिकुट्टक

नागापसर्पित

गंगावतरण

# परिशिष्ट

# श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| **अ** | |
| अंशे निधाय शीर्षं चेत् | ९४८ |
| अंशभालकपोलानाम् | २६५ |
| अंसग्रहे च सिंहाद्यैः | १९५ |
| अंसयोः कुचयोर्वापि | २९३ |
| अंसयोः स्तनयोस्ताल | १५२६ |
| अंसवर्तनिकं प्रोक्तम् | ७९२ |
| अंसान्त लुठितौ स्वैरम् | ८२८ |
| अंसावधि स्तनक्षेत्रात् | ८५८ |
| अक्षराणां लयस्यापि | १५५२ |
| अक्षरेषु चलन् कार्ये | ३३ |
| अक्षुब्धासमतारा या | ४३६ |
| अग्रतः पृष्ठतस्तिर्यक् | १०५९ |
| अग्रतः समपादस्य | ९३४ |
| अग्रगोऽस्तलश्चेति | ६०१ |
| अग्रयोगेन चेदेतम् | १०१४ |
| अग्रसंकोचनादेष- | ३९ |
| अग्रे पार्श्वेऽथवोर्ध्वे वा | २२१ |
| अग्रे प्रसारितोऽङ्घ्रिश्च | ८९७ |
| अग्रे लोकानुसारेण | ९९९ |
| अङ्कुरितां मम हृदये प्रेमलताम् | १५०१ |
| अङ्कुशाभिनये त्वेष | १५३ |
| अखण्डिते महालाभे | १५५ |
| अङ्गं तु चतुरस्रं स्यात् | ११३८ |
| अङ्गं लास्याङ्गयमादिष्टम् | १५६१ |
| अङ्गमिष्टं सौष्ठवेन | ८८७ |
| अङ्गहारान्प्रवक्ष्यामि | ३४३ |
| अङ्गहारेषु सर्वेषु | १३४३ |
| अङ्गहारोपयोगीनि | — |
| अङ्गानामुचिते देशे | १३४३ |
| अङ्गानां यत्र पात्रस्य | १५४९ |
| अङ्गानि तावदौद्धत्यात् | १५५० |
| अङ्गीनिरन्तरौ तुल्य- | ९७० |
| अङ्गुलिस्फोटनान्मौनात् | ६६० |
| अङ्गुलीपञ्चकेन स्यात् | १९० |
| अङ्गुलीपृष्ठभागं हि | १०८० |
| अङ्गुल्यग्रस्थितं कार्यम् | १६२ |
| अङ्गुल्याग्रा यदा गुप्ताः | ४५ |
| अङ्गुल्यमामिकास्पर्शात् | ९ |
| अङ्गुल्यः सरलाः स्तब्धाः | ५९४ |
| अङ्गुल्या पूर्वपूर्वस्याः | १५० |
| अङ्गुष्ठसंहिता पार्ष्णिः | — |
| अङ्गुष्ठसहिताङ्गुल्यः | १९१ |
| अङ्गुष्ठस्यापि भेदाः स्युः | ५९९ |
| अङ्गेषु पूर्वरङ्गस्य | १४१८ |
| अङ्गैर्गतिप्रकारैश्च | ६६९ |
| अङ्गैर्निर्भूषणैर्दुःखैः | ६८१ |


५५

## नृत्याध्यायः


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| अङ्गैर्लीनैरिवाङ्गेषु | ६७८ |
| अङ्गोपेतास्ततोऽन्वर्थो | ९५१ |
| अङ्घ्रि कुञ्चितमुन्न्यस्य | १००२ |
| अङ्घ्रि तिर्यञ्चमाकुञ्च्य | १०४४ |
| अङ्घ्रिरङ्गुलिपृष्ठेन | १०८९ |
| अङ्घ्रिरेति नितम्बान्तम् | १०६३ |
| अङ्घ्रिर्निकुट्टितः पूर्वम् | ११०७ |
| अङ्घ्रिर्निवेशितो यत्र | ११०५ |
| अङ्घ्रिर्यत्रापरः स्तधः | १००५ |
| अङ्घ्रिश्चाषगतिर्द्धिः स्यात् | १४७७ |
| अङ्घ्रिश्चाषगतिर्वामः | १४७८ |
| अङ्घ्रिं स्वस्तिक विश्लिष्टम् | १०६१ |
| अङ्घ्रो निरन्तरौ तुल्य- | ९७० |
| अङ्घ्रे राकुञ्चितस्याग्रे | १०७८ |
| अङ्घ्रे रेकस्य गुल्फे चेत् | ९९८ |
| अङ्घ्र्योः कृत्वा यदोत्प्लुत्य | १०३५ |
| अञ्चितं चरणं पश्चात् | १०१७ |
| अञ्चितस्य परस्याङ्घ्रेः | १००२ |
| अड्डितोक्तश्चतुर्भेदः | १४८४ |
| अतस्तानि न शक्यन्ते | ११३६ |
| अतिक्रान्तं दण्डपादम् | १४२७ |
| अतिक्रान्तं भुजङ्गाद्यम् | १३५६ |
| अतिक्रान्तं वामविद्धम् | १४२७ |
| अतिक्रान्तः पुनर्वामः | १४५० |
| अतिक्रान्तस्तु वामः स्यात् | १४५५ |
| अतिक्रान्तस्तु वामोऽङ्घ्री | १४४२ |
| अतिक्रान्ताङ्घ्रिमारच्य | १००१ |
| अतिक्रान्ता तदा चारी | ९९९ |
| अतिक्रान्ता त्वपक्रान्ता | ९५७ |
| अतिक्रान्ता भ्रमरिके | १४४८ |
| अतिक्रान्तो यत्र वामः | १४३७ |
| अतिरम्याङ्घ्रिविन्यासैः | १६१० |
| अतो न्यूनेऽधिके चाङ्घ्रौ | १४८६ |
| अती विगतलज्जायाः | १४९८ |
| अत्यदर्थे समर्थे च | ४ |
| अत्युत्फुल्लपुटा नासा | ५११ |
| अत्र प्राह समाधानम् | ४२४ |
| अत्राधि देवता दुर्गा | ९१० |
| अत्रैक कुञ्चितः पादः | ९३२ |
| अत्रैव केचिदिच्छन्ति | ८६८ |
| अथ ज्ञानेच्छयोस्तोषे | ३ |
| अथ देशीप्रसिद्धाः याः | ९६० |
| अथ पक्षस्थितस्त्वसौ | ८८२ |
| अथ पुंसां तथा स्त्रीणाम् | ६५५ |
| अथवा द्रुतमानेन | ८३१ |
| अथ वामो भवेत् सूची | १४३९ |
| अथ वामो भवेत् सूची | १४३२ |
| अथवा स्यादसौ पाणेः | १४२३ |
| अथवा स्वस्तिकाकारौ | ३१४ |
| अथवेदं त्रिखण्डोक्त- | ७७४ |
| अथ सप्तस्थितावर्तः | १४४९ |
| अथ सक्तेऽङ्घ्रिरुद्वृत्तः | १४३२ |
| अथ सव्योऽपसृत्याङ्घ्रिः | ९८५ |
| अस्थानानि षट् पुंसाम् | ८७७ |
| अथाच्छिन्नमतिक्रान्तम् | १३५३ |
| अथातिक्रान्तको वामः | १४३ |
| अथान्तरे तथा सत्ये | १४ |
| अथान्यः परिवृत्याधो | २५८ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| अथापि चेति स्वग्रन्थे | ८६८ | अधोमुख प्रयोक्तव्यः | २६ |
| अथारालं करं वामम् | ३१३ | अधोमुखः सद्वर्णेषु | १८६ |
| अथालातो भवेत् वामः | १४३१ | अधोमुखी भवेद्वामा | १०४ |
| अथाहं रेचकान् वक्ष्ये | १४२१ | अधोमुखी ललाटस्था | ९५ |
| अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म | ८७८ | अधोमुखेन शीर्षेण | ६९० |
| अथैतो केशपर्यन्तम् | ७८६ | अधोमुखो नियोज्योऽथ | ३३ |
| अथो तेषां लक्षणानि | ३४६ | अधोमुखो नियोज्योऽथ | ३८ |
| अधः क्षिप्ता मुहुः पातात् | ५९५ | अधोमुखो भालदेशः | १६० |
| अद्याकर्णय नैशिकं सखि | ३४६ | अधोमुखौ निघृष्टौ तौ | ११४६ |
| अधः पार्श्वगता कार्या | ९८ | अधोमुखौ पताकौ चेत् | २७३ |
| अधमानां गतौ प्रोक्तः | ३९५ | अधोमुखौ यथोचित्यम् | १९५ |
| अधमोऽभिनयेच्छीतम् | ६३५ | अधोमुखौ विधायाधः | २४९ |
| अधरस्फुरणे त्वेषः | २६ | अधोमुखौ स्वस्तिकौ तौ | १२६ |
| अधरस्य प्रकर्तव्यः | ५७ | अनंगोद्दीपनं चाथ | ८५१ |
| अधरे दशनैर्दंशः | ५५८ | अनत्युच्चं चलत्पादम् | ८८७ |
| अधः शैलशिलोत्पाटे | २३० | अनन्ता भ्रूपुटादीनाम् | ४७३ |
| अधस्तत्र व्रजत्येकः | ८५९ | अनयैव दिशा ज्ञेयाः | ८६२ |
| अधस्तलत्वमप्याहुः | २४२ | अनवस्थितसञ्चारा | ४७१ |
| अधस्तले वियोगे तु | ८८ | अनादरेऽधस्तलः | ११८ |
| अधस्ताद्दर्शनं यत् स्यात् | ५०४ | अनामिका पताकस्य | १०७ |
| अधस्तात्प्रेक्षणेनापि | ६२७ | अनावृत्त्या नितम्बस्य | १३८७ |
| अधस्ताद्वदनं सुप्तम् | ९७७ | अनुत्पन्नेऽनातुरे | ८ |
| अधस्तात् सञ्चरन्ती या | ४७२ | अनुरागे प्रतिज्ञायाम् | ३ |
| अधस्तात् सञ्चरन्ती सा | ४६२ | अनुरूपे प्रसन्ने च | २०६ |
| अधिकोच्छ्वासनिःश्वासैः | ६६१ | अनुलोमविलोमा च | १०८६ |
| अधो घर्षन् रताश्वासे | २४ | अनुसृत्य त्रिकोणत्वम् | ८०२ |
| अधो मण्डलिता कार्या | ९८ | अनृतोक्ते यथौचित्यम् | १६८ |
| अधोमुखः कुञ्चिताग्रः | १९३ | अनेन मोक्षयेच्छस्त्रम् | ९०० |
| अधोमुख पताकाभ्याम् | ६४१ | अन्तःपुरे वामभागे | २२६ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| अन्तर्जानु स्वस्तिकत्वम् | ९९२ | अन्वर्थौ पिहितौ प्राप्तौ | ४८७ |
| अन्तर्निम्न समाख्यातः | ४१९ | अन्वर्थौ स्फुरितौ ज्ञेयौ | ४८८ |
| अन्तर्बहिः करावूर्ध्वम् | ८४५ | अपक्रान्तं व्यंसितं च | १३५९ |
| अन्तर्बहिश्चक्रचरौ | ८३० | अपक्रान्ता दक्षिणेन | १४४८ |
| अन्तर्भूतं ततस्त्रित्वम् | ६०२ | अपक्रान्तोऽथवामोऽङ्घ्रिः | १४५८ |
| अन्तर्भ्रान्त्या बहिर्भ्रान्त्या | १०६७ | अपक्रान्तोऽपरः पार्श्व- | १४४० |
| अन्तर्यातौ चेति गुल्फौ | ५९१ | अपक्रान्तो भवेद् वामः | १४५१ |
| अन्तश्च लीलयान्यस्मिन् | ७७७ | अपगम्योपगच्छेताम् | ९८४ |
| अन्तस्तिर्यक् चक्रभावान् | ७८१ | अपतीताधररागम् | १४९३ |
| अन्त्यद्विकरणाभ्यासः | १३६१ | अपरं करमारच्य | ८२२ |
| अन्य एव तु नाट्याङ्गः | १५२३ | अपरः पार्श्वयोर्यत्र | ७६७ |
| अन्यकर्णस्थितौ यम- | २६९ | अपरेण करेणाथ | १४० |
| अन्यतोऽलातमाक्षिप्तम् | १३६४ | अपविद्धं ततः सूची | १३६९ |
| अन्याङ्गुलिसमीपस्थः | २८ | अपविद्धं ततो ज्ञेयम् | ७५५ |
| अन्येऽपि सन्ति ये भेदाः | १५६५ | अपविद्धं समनखम् | ११२२ |
| अन्योऽन्याभिमुखावी- | २६५ | अपविद्धश्च विष्कम्भाद् | १३४३ |
| अन्योन्याभिमुखेद्वारे | १३० | अपविद्धस्तथेत्युक्तः | ३७१ |
| अन्योन्याभिमुखौ तौ तु | १२९ | अपसृतं तन्निवृत्त्या | ३३४ |
| अन्योन्याभिमुखौ भ्रान्तौ | ८५९ | अप्रत्यक्षा विनिर्देश्याः | — |
| अन्योन्याभिमुखौ स्याताम् | १२८ | अप्रदानेन नेत्रस्य | ६१८ |
| अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ | २३६ | अभिनीता यथौचित्यम् | ६९७ |
| अन्यो बिडम्बनां धत्ते | ८१५ | अभिनेयवशादेवम् | ११४७ |
| अन्योर्ध्ववर्तना तद्वत् | ७१० | अभिनेयवशाद् धीरैः | ७५३ |
| अन्वक्षरेण हस्तेन | ७७३ | अभिनेयेषूत्तमेषु | ३१९ |
| अन्वर्थः कम्पितः शीत- | ५३७ | अभिनीतास्वराः सप्त | ५९५ |
| अन्वर्थलक्षणाः पञ्च | ५६१ | अभिनेयो वसन्तस्तु | ६३८ |
| अन्वर्थलक्षणोत्क्षिप्ता | ४७७ | अभ्यन्तरप्रवेशेन | ८३६ |
| अन्वर्थाः कुञ्चितास्त्रास | ५९७ | अभ्यन्तरेण तत् प्रोक्तम् | ६१३ |
| अन्वर्थौ कुञ्चितौ स्याताम् | ४८६ | अभ्यासात्कथितावेव | २८८ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| अभ्यासादाद्ययोरत्र | १४०८ | अलपल्लवनामा चेत् | ७४० |
| अभ्यासाद् रचितौ चेत्स्तः | ४ | अलपल्लवहस्तोऽत्र | ७३९ |
| अमी केचित् समासेन | ८६१ | अलसौ सा तदा धीरैः | १०३८ |
| अमी नृत्तस्य तु प्राणाः | ८६० | अलातं चोर्ध्वजानु | १३९३ |
| अमूराकाशिकास्ताश्च | ९६९ | अलातकं नितम्बं च | १३६३ |
| अयं तु पादविन्यासे | १३८ | अलातकः परावृत्तः | १३४३ |
| अयमन्तःपुरे तु स्यात् | ११३ | अलातचक्रकाख्यं च | ७६२ |
| अयमेवालपद्मःस्यात् | २०४ | अलातचक्रमाख्यातम् | ८१५ |
| अयुक्तनृततुच्छोवतौ | २०५ | अलातभ्रमरे कुर्यात् | १३७१ |
| अरालकपरावृत्ते | ८१३ | अलाता डमरी विद्धा | ९६७ |
| अरालवर्तनापूर्वम् | २९४ | अलाता दण्डपादा च | ९५८ |
| अरालेन तथा वाम | ६३० | अलातोऽप्यथ सव्यः स्यात् | १४३७ |
| अरालो वर्तितः पश्चात् | ७१७ | अलिरेणुपतङ्गानाम् | ६५४ |
| अरालौ•विततौ स्वाभि- | २४० | अल्पसञ्चारिणी दृष्टिः | ४५४ |
| अर्धचन्द्रकरो नाट्ये | १०२५ | अल्पे फले मिते ग्रासे | ३५ |
| अर्धत्र्यस्रौ च यत्राङ्घ्री | ९९६ | अवज्ञायां वहिः क्षिप्तः | १६८ |
| अर्धमण्डलपूर्वा च | ७१३ | अवश्यं सर्वथास्थाने | ७० |
| अर्धमण्डलितप्यूरु | ९६२ | अवष्टभ्य भुवं पार्ष्ण्या | ३५३ |
| अर्धसूच्यथ विक्षिप्त | १३९४ | अवहित्थमथोद्वृत्तम् | ११३२ |
| अर्धाद्य रेचितः वक्षः | १३७३ | अविच्छिन्नरसा पाणिः | १११७ |
| अर्हद्दिवतयोश्च स्यात् | १५३ | अव्यक्तालोकिनी धीरैः | ४४७ |
| अलंकृतं तुल्यवृत्तम् | १५०२ | अशून्ये तद्विधेत्यर्थे | १३४ |
| अलकापनयने स स्यात् | ११८ | अशोकेन समादिष्टा | ७०७ |
| अलकोत्क्षेपणेऽप्येषः | ५४ | अश्वेभोष्ट्रखरव्याघ्रः | ६६९ |
| अलक्तकादिचरणः | १३५ | अष्टबन्धविहाराख्यम् | ७६५ |
| अलङ्कारानुपादाने | २४२ | अष्टबन्धविहाराख्यम् | ८३८ |
| अलपद्मकरे यत्र | ७१६ | अष्टादशाङ्गुले यत्र | ९२७ |
| अलपद्मकरालं च | १५९९ | असंयुताविमावूर्ध्वा | १४९ |
| अलपद्मावथे वाथ | ३११ | असकृद् यत्र तत् प्रोक्तम् | ७७४ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| असकृद्वा सकृद्वापि | ३५२ | आकुञ्चत्पुटपक्षमाग्रा | ४५०८ |
| असमग्रे प्रयोक्तव्यः | १० | आकुञ्च्य चरणावूर्ध्वम् | १०४० |
| असम्बद्ध बहिः क्षिप्त | १६४ | आकुञ्चिताङ्घ्रिमन्येन | १०७२ |
| असान्तिकं ततो गत्वा | ३०४ | आकुञ्चिताङ्घ्रिमुत्क्षिप्य | १०३९ |
| असावधोमुखः कार्यः | १३६ | आकूणितपुटा गूढा | ४६० |
| असावुडुगणे कार्यः | ३० | आकूणितपुटापाङ्गा | ४६४ |
| असूयते तथानिष्टे | ४५८ | आकेशबन्धमुत्क्षिप्तैः | ८४८ |
| असूयावज्ञयोर्हास्य | ५३५ | आक्षिप्तं करिहस्तं च | १४०३ |
| असूयोत्क्षेपयोश्चोभे | ४७९ | आक्षिप्तं करि [ह] स्तं च | १३६० |
| असौ च सत्वरे दाने | १८८ | आक्षिप्तं च तथा छिन्नम् | १३४९ |
| असौ दरिद्रे मन्देऽपि | २३ | आक्षिप्तकः परिच्छिन्नः | १३४३ |
| असौ देवार्चने स्त्रीणाम् | १९२ | आक्षिप्तरेचितं चार्ध- | १३७४ |
| असौ पुरोगतः कार्यः | ६८ | आक्षिप्तरेचितालात | ११२० |
| असौ योज्यः सहस्रादौ | ४४ | आक्षिप्तस्वस्तिकं कृत्वा | -१३५७ |
| असौ शराकर्षणे स्यात् | ७२ | आक्षिप्ताख्येति संप्रोक्ता | ९५९ |
| असौ शिरसि तद्देशे | ५८ | आक्षिप्तर्मण्डलभ्रान्त्या | १४८० |
| अस्खलन्ती यदा नीकी | १५४८ | आक्षिप्तो दक्षिणो यत्र | १४५४ |
| अस्त्रीजातौ ततः ङीषि | ९४९ | आगते दक्षिणे पार्श्वे | १८१ |
| अस्पृशान्तौ करौ पार्श्वौ | २६३ | आघूर्णितान्तरा क्षामा | ४७० |
| अस्य क्रियान्तराण्येवम् | -- | आघ्राणे कुसुमादीनाम् | ५३० |
| अस्याङ्गुलीः प्रसार्याथ | १५७५ | आङ्गिकाभिनयोऽल्पः | ५८७ |
| अस्या नामान्तरं केचित् | -- | आचरन्ती प्रचारं चेत् | १५८१ |
| अस्यान्येऽभिनया धीरैः | २३० | आज्ञाप्रतिज्ञयोर्नाथे | २१७ |
| अहमित्यादिनिर्देशे | ११५ | आदानेऽसौ फलादीनाम् | ६७२ |
| **आ** | | आदिकूर्मावताराख्यम् | ७५८ |
| आकाशचारी बाहुल्यात् | १४२७ फु० | आदिकूर्मावताराख्यम् | ७९४ |
| आकाशवीक्षणात् पादः | ६६६ | आदिमध्यावसानेषु | ८४४ |
| आकाशाभिनये तूर्ध्वम् | १२२ | आदिष्टेऽधोमुखः स स्यात् | ६ |
| आकुञ्चत्कायमाविद्ध | ९४५ | आदौ स्वस्तिकपूर्वं स्यात् | १३७३ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| आचद्विकरणाभ्यास | १३५४ | आविद्धवर्तना केश | ७११ |
| आद्यो भेदः प्लवाद्यस्य | १६७४ | आविद्धाङ्घ्रिस्थितान्योरु | १०१४ |
| आध्मातमुदरं पूर्णम् | ३९१ | आविद्धाधोमुखो यत्र | ७१८ |
| आनन्त्यात् स्थानचारीणाम् | १११६ | आविद्धापविद्धौ च | ८४९ |
| आनन्दयत्यसौ साद्भिः | १५३२ | आविद्धौ चेत् तदा सोक्ता | ७२४ |
| आनन्दातिशयः कोऽपि | १५२५ | आविष्टो येन भावेन | ६४४ |
| आनम्रा कुञ्चिता ग्रीवा | ३६६ | आवेष्टितं तदा प्रोक्तम् | ६११ |
| आनीय शुकतुण्डाख्यौ | ११५३ | आवेष्टिताभिधं पूर्वम् | ६०९ |
| आभाषणेऽभिलाषे च | ९०४ | आवृत्त्या त्वनयोरेव | १३८७ |
| आभ्यामेव कराभ्यां च | ६३४ | आश्रितो दण्डपादस्त्वम् | १४५४ |
| आयतस्थानकस्था च | ६६० | आश्रित्य शयनं यत्र | ९४८ |
| आयताख्यावाहित्थाख्ये | ८६७ | आश्लिष्टस्वस्तिकीभूय | २८९ |
| आयतानन्तरं योज्या | ९०८ | आश्लिष्टस्वस्तिको हंस | ३०५ |
| आर्तौ तयोर्ध्वश्वासे च | ५११ | आश्लेषणाच्छरीराणाम् | ६५६ |
| आर्तौ हास्ये जुगुप्सायाम् | ५१३ | आस्कन्दितं चाषगतम् | १४३० |
| आर्द्रता प्रेक्ष्यते चित्तात् | १५६३ | आस्फोटितं स्फुटं यत्र | १४८२ |
| आर्द्रापराधके चाथ | १६७ | आस्यदेशेऽङ्गुलिक्षेपात् | ३७ |
| आलापवर्णतालानाम् (हंसक०) | — | इ | |
| आलिङ्गनेन पुंसोऽपि | ६६४ | इतराण्यपि कर्माणि | २१९ |
| आलिङ्गस्तु धरां वाहुः | ३७३ | इतरेतरसंश्लेषात् | ३३ |
| आलीढं च तथा प्रत्या- | ८६६ | इतस्ततः कुट्टितः सा | १०९४ |
| आलीढाच्छुरितौ पार्श्व | १३४३ | इतस्ततश्चलन्नेष | १२३ |
| आलोकितोल्लोकिते च | ५०० | इति त्रेधा भवेत्सोऽयम | १७० |
| आवर्तकुञ्चिते दोला | ११२६ | इति प्रथमसंगमे | १५१२ |
| आवर्तिन्यः पार्श्वगता | २०३ | इति संघविशेषेण | १३४३ |
| आवर्त्यते यदा सा स्यात् | १०३६ | इत्थं प्रदर्शयेन्नाट्ये | ६८२ |
| आविद्धश्चेति षड्बाहून् | ३७१ | इत्याह ग्रहणस्थाने | ५६० |
| आविद्ध भ्रामितिभ्रमौ | २८३ | इत्याह मुनिरन्ये तु | ८८१ |
| आविद्धवक्रयोर्यत्र | ७२४ | इत्युक्तं मुनिना सर्व- | ७०५ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| इदमर्थे किमर्थे च | ११ | उत्क्षिप्तापार्ष्णिराकुञ्चन् | ३४८ |
| इदमर्थेऽधोमुखी | ९६ | उत्क्षिप्तमास्यमुद्वाहि | ५७५ |
| इदमेव नटाः प्राहुः | १५२८ | उत्क्षिप्ता पतितोत्क्षिप्ता | ५९० |
| इदमेव रचे नाम्ना | १५२९ | उत्क्षेपं केचिदुभयोः | ४४१ |
| इन्द्राभिनयने त्वेषा | ९५ | उत्क्षेपस्य तथा पृष्ठ | ९६८ |
| इदमेव बुधाः केचित् | १५४३ | उत्पन्नेऽप्येवमर्थे | ७१ |
| इमावन्योन्यसंश्लिष्टौ | १३२ | उत्तमे निकटस्थाः स्युः | ३२० |
| इमा मुडुपचार्योऽथ | १०८८ | उत्तमोऽपि कदाप्येवम् | ६३६ |
| इमावुभावपि ज्ञेयौ | ४८९ | उत्तमोत्तमकं चेति | १४८८ |
| इमौ कीर्तिधरः प्राह | ७२९ | उत्तानवञ्चितौ पाणी | १६०० |
| इमौ कीर्तिधरः प्राह | २९३ | उत्तानस्यं स्रस्तमुक्त- | ९४३ |
| इमौ विच्युतसन्दंशौ | ७९ | उत्तानाधोमुखौ शश्वत् | २६४ |
| इमौ शिरःस्थौ कर्तव्यौ | १४१ | उत्तानिततलं पादम् | — |
| इष्टोऽनिष्टस्तथा मध्यः | ६१६ | उत्तानितोऽथ विश्वासे | १२ |
| इहैकवचने मानम् | २६९ | उत्तानितोऽधोमुखः स्यात् | ६७ |
| **ई** | | उत्तानितो मुखस्थः स्यात् | ११ |
| ईषच्छ्वासोच्छ्वासयुक्ता | ५१५ | उत्तानितो केचिदिमौ | २७९ |
| ईषत्प्रकम्पितायान्ती | ८४ | उत्तानोऽधस्तलः पार्श्वे | ६०२ |
| ईषद्वक्रीकृतान्योन्या | २२४ | उत्तानोऽधोमुखः पार्श्वे | ६०० |
| **उ** | | उत्तानोऽधोमुखीभूय | २६२ |
| उक्तैः संसर्गरूपेण | ८४७ | उत्तानो नयनौपम्ये | १४ |
| उग्रदर्शनविज्ञान | ४६९ | उत्तानितौ पताकौ द्वौ | ६३२ |
| उग्रा भ्रुकुटिभीष्मा या | ४३५ | उत्तानौ वामभागस्थौ | २४४ |
| उच्चैर्या मुहुरुत्क्षिप्ता | ५९६ | उत्तापेऽभिघातेऽपि | ४५९ |
| उचितश्च्युत सन्दंशः | ३० | उत्तुङ्गपीवरपयोधर | १५१० |
| उच्छ्वासे च्युतसन्दंशः | १८९ | उत्प्लुत्य चरणौ यस्याम् | १०६४ |
| उच्छ्वासे सौरभेऽप्येसा | ५१२ | उत्प्लुत्य भ्रमरी दत्वा | १०१४ |
| उक्षिप्तः कुञ्चितश्चैव | ९३९ | उत्फुल्लपुटयुग्मा या | ४६९ |
| उत्क्षिप्तपार्ष्णिः प्रसृत | ३५० | उत्फुल्लमध्यमा त्रस्ता | ४६८ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| उत्सङ्गं हस्तमाचष्ट | २४१ |
| उत्सार्योद्वेष्टितेन स्यात् | |
| उदये विवृतास्योऽथ | २९ |
| उद्गतौ मण्डलाकारम् | ८२६ |
| उद्गिरन्तीव या धैर्यम् | ४४५ |
| उद्घाटितं च मत्तल्लि- | १४१३ |
| उद्घट्टितस्तथा पादः | ३४४ |
| उद्घट्टितोऽथ बद्धः स्यात् | १४६९ |
| उद्धृत्याधोमुखकार्यः | २०१ |
| उद्भिन्ने विच्युतः स स्यात् | १७८ |
| उद्वर्तितस्ताण्डवेऽसौ | ३९७ |
| उद्वाहितं तथा सुप्त- | ८७६ |
| उद्वाहितविधं चेति | ३२७ |
| उद्वेगसंभ्रमैः शस्त्रः | ६६३ |
| उद्वेगैरास्य संकोचैः | ६४९ |
| उद्वेष्टितं विधायाप- | २८४ |
| उद्वेष्टितक्रियापूर्वम् | ७४७ |
| उद्वेष्टितक्रियापूर्वम् | ८५७ |
| उद्वेष्टितक्रियापूर्वम् | ११४८ |
| उद्वेष्टितक्रिया पूर्वौ | ७४४ |
| उद्वेष्टितो दर्शने स्यात् | १२ |
| उद्वेष्टितौ भुजोऽसौ स्यात् | ३७५ |
| उद्वेष्टितौ परावृत्तौ | ६५३ |
| उद्वृत्तश्च ततो विद्युत् | १४७० |
| उद्वृत्तकश्च संभ्रान्ते | १३४३ |
| उद्वृत्तकोऽप्यसौ वामः | १४५१ |
| उद्वृत्तसंज्ञकौ हस्तौ | २६१ |
| उद्वृत्ताग्रं भूमिलग्नम् | ५९९ |
| उद्वृत्तो वदनोत्क्षेपात् | ५४१ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| उन्नतं तद्विपर्यासात् | ३३७ |
| उन्नताग्रः परोऽरालः | ३१६ |
| उन्नीय निजपार्श्वेन | १००३ |
| उन्मत्तं करिहस्तं च | १४०३ |
| उन्मादे च तथार्तौ च | ४६७ |
| उन्मूलने त्वधो गत्वा | ६९ |
| उन्मेषितावलग्नौ स्तः | ४८९ |
| उपकर्ण यदा तिर्यक् | ८४६ |
| उपपार्ष्ण्यन्तरं पार्ष्ण्या | १०१६ |
| उपधाय यदा बाहुम् | ९४६ |
| उभयोऽप्यत्र सर्वास्ता | ९६९ |
| उभौ भूत्वा तिरश्चीनौ | ९३५ |
| उरसः प्राप्य शीर्षं यः | ३७६ |
| उरःस्थवर्तनां विद्यात् | ७२७ |
| उरसो मण्डलाकारः | ३८१ |
| उरूद्वृत्तकमत्यर्धं | १४११ |
| उरुद्वृत्तमुरः पूर्वम् | १३७० |
| उरुद्वृत्ता स्थितावर्ता | ९५६ |
| उरूद्वृत्तोऽड्डितः स्यात् | १४७६ |
| उरुद्वृत्तोऽड्डितोऽङ्घ्रिः | १४६६ |
| उरोमण्डलकं चाथ | १३६२ |
| उरोमण्डलकं पश्चात् | १३५७ |
| उरोमण्डलकं पश्चात् | १३८० |
| उरोमण्डलकं पश्चात् | १३८५ |
| उरोमण्डलविक्षिप्ते | ११२८ |
| उरोमण्डलसंज्ञं च | १३४५ |
| उरोमण्डलसंज्ञं च | १३८२ |
| उरोवर्तनिकात्वेन | २८६ |
| उर्व्यां चेत् पातयेत् पार्ष्ण्या | १००३ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| उल्लालनं क्रमेणाङ्घ्रय: | -- |
| उल्लासस्थसको भाव: | १५१४ |
| उल्वणौ वर्तितौ स्वोक्त- | -- |
| उष्णं च भूमिसन्तापम् | ६४६ |
| उष्णात्तु च्छ्वासनि:श्वासौ | ५२० |
| **ऊ** | |
| ऊरुजानुत्रिकमध: | १००१ |
| ऊरुद्वयं च हस्तानाम् | ६०५ |
| ऊरुवेणी च विश्लिष्य | ९६५ |
| ऊर्ध्वं गतोद्वाहिता स्यात् | ४०२ |
| ऊर्ध्वं विलुठित: पूर्वम् | ७९९ |
| ऊर्ध्वगाधोमुखावेतौ | ७८ |
| ऊर्ध्वगोऽधोगतश्चाथ | ६०३ |
| ऊर्ध्वजानुकटिभ्रान्तम् | ११२३ |
| ऊर्ध्वजानुस्तत: सूची | १४४० |
| ऊर्ध्वप्रसारणाद् बाहवौ | ६७४ |
| ऊर्ध्वप्रसारितो चेत्स्यात् | ८० |
| ऊर्ध्वमण्डलिनौ पाणी | ११५० |
| ऊर्ध्वमण्डलिनौ प्रोक्त | २८१ |
| ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ | ७२६ |
| ऊर्ध्वमुखस्तथाचाध: | ६०४ |
| ऊर्ध्वमुखो नियोज्योऽसौ | २५ |
| ऊर्ध्वमुखो विचित्र स्यात् | २८ |
| ऊर्ध्वमुखौ क्रमात् कृत्वा | ३१२ |
| ऊर्ध्वलोके तु सर्वेषाम् | ९२ |
| ऊर्ध्वविच्युतसन्दंश: | २७ |
| ऊर्ध्वविच्युतसन्दंश: | १८७ |
| ऊर्ध्वग्रौ खटकास्यौ च | २९९ |
| ऊर्ध्वाङ्गुष्ठावधोवक्त्रौ | २५१ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो यदा मुष्टि: | ५३ |
| ऊर्ध्वाध: पतिता कार्या | ९७ |
| ऊर्ध्वाध: पतिता कार्या | १०० |
| ऊर्ध्वाध: शीघ्रमायान्ती | ८५ |
| ऊर्ध्वाध: शिखरौ हस्तौ | ६० |
| ऊर्ध्वाधोमण्डलभ्रान्तौ | ७९३ |
| ऊर्ध्वा यस्मिन्नलग्नाग्रा | १९१ |
| ऊर्ध्वास्य: शिरस: पश्चात् | -- |
| ऊर्ध्वास्योऽसौ कपोलादौ | १३५ |
| ऊर्ध्वोगा तून्नता ग्रीवा | ३६३ |
| ऊर्ध्वोत्तानोऽर्धचन्द्रेऽथ | १४३ |
| ऊर्ध्वोत्थितो नाभिदेशात् | २ |
| ऊर्ध्वोत्थितौ रोमराजौ | ६३ |
| **ऋ** | |
| ऋज्वी लोला लेहिनी च | ५४५ |
| ऋज्वी सा व्यात्तवक्त्रे या | ५४६ |
| ऋजुरूर्ध्वमुखो योज्य: | ८६ |
| ऋजुरूर्ध्वा तु सैकत्वे | ८३ |
| ऋजु: समो धारणे तु | ४२२ |
| ऋतूनिमानर्थवशात् | ६४३ |
| **ए** | |
| एकं पादं समं कृत्वा | ९३८ |
| एक: करश्चेदन्यस्य | ७८५ |
| एक: करो यदा कर्ण | ७८४ |
| एकजानुनताख्यं च | ८७२ |
| एकजानुनते त्वेक: | ९३६ |
| एकतालान्तरौ पादौ | ८९० |
| एकदा चालनं बाहु- | १५२४ |
| एक: पाद: समोऽन्यस्तु | ९१७ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| एकः पश्चाद्वराश्लिष्ट- | ९२८ | एलकाक्रीडितं तद्वत् | ११३३ |
| एक पार्श्वगताख्यं च | ८७२ | एलकाक्रीडिताख्या च | ९५५ |
| एकस्य वलने पार्श्वे | ७७३ | एलकाक्रीडितैः सूची | १४७९ |
| एकस्याङ्गुष्ठको यत्र | ९३५ | एवं कर्मान्तराण्यस्य | ६२ |
| एकस्याङ्घ्रेः समस्यान्यः | ९१२ | एवं खड्गकलासस्य | १५८६ |
| एकस्मिन्नाभिदेशस्थे | ७७० | एवं द्व्यंङ्घ्रिकृता सैव | १०९५ |
| एकाङ्गुलादधः पाति | ५६९ | एवं पञ्चविधो धीरैः | ४१७ |
| एकाङ्घ्रिपादमुत्क्षिप्य | १०६५ | एवं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षुः | १४७५ |
| एकाङ्गेन ततः कुर्यात् | १३९० | एवं यदा तदैवान्यः | २८८ |
| एकादश तथाभ्यास- | १३९४ | एवं पञ्चदश प्राहुः | ६०४ |
| एकादशाभिरादिष्टः | १३५० | एवं योग्येन हस्तेन | ७०३ |
| एकैकं करणं कार्यम् | १३४३ | एवं वासकसज्जापि | ६८४ |
| एकैकं चेत् तदोक्ता सोत्- | १०४० | एवं विनिर्दिशेत् षड्जम् | ६८८ |
| एकैकमथवा नेत्र | ८३२ | एवं विनिर्दिशेद्धीमान् | ६९२ |
| एकोच्छ्वासेन च प्राज्ञ | ६२३ | एवं लोकाद् बुधैरुह्या | ५३२ |
| एतच्चिकीर्षितासु स्यात् | ९०५ | एवं सप्ताधिकस्त्रिंशत् | १५१७ |
| एतदेव परे प्राहुः | १०७६ | एवं सति पुनर्यत्र | ७९८ |
| एतदेवावहित्थाख्यम् | ९०९ | एवमङ्घ्र्यन्तरेणापि | १११३ |
| एतद्व्यत्यासनेनापि | १५७३ | एवमन्ये बुधैरुह्याः | २११ |
| एतद् द्विजाति दत्ताशीः | ८९१ | एवमेकादश ज्ञेया | ७४३ |
| एतन्नियुज्यते धीरैः | ९२३ | एवमेव विशेषज्ञैः | ५८५ |
| एतन्नियुज्यते धीरैः | ११५३ | एष वस्तुग्रहे चौर्यात् | २०० |
| एतान्याकाशिकानि स्युः | १४२७ फु० | एष सुप्तोत्थजृम्भायाम् | २२१ |
| एतयोर्भ्रमणं वक्षः | २८५ | एषा पश्चात्पुरः क्षेपात् | १०९० |
| एताभ्यामेव हस्ताभ्याम् | ६२७ | एषा श्रमे श्वापदानाम् | ५४६ |
| एतावेव परावृत्तौ | २७९ | एषोऽन्नादातुपस्थाने | १५१ |
| एतावेव परे प्राहुः | २५९ | **औ** | |
| एताः समासतः प्रोक्ताः | १११५ | औत्सुक्यचिन्तानिर्वेद- | ५७९ |
| एभिः स्यादङ्गहारोऽयम् | १३६८ | | |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
| --- | --- |
| **क** | |
| कटाक्षः स्याद्विवर्तनम् | ४९६ |
| कटाक्षिणी सहर्षा सा | ४४१ |
| कटिक्षेत्र गतौ कार्यः | ७० |
| कटिच्छिन्नं च करणम् | १३४५ |
| कटिच्छिन्नं च करणम् | १३६० |
| कटिच्छिन्नं च करणैः | १३५१ |
| कटिच्छिन्नं च कुर्यात्सः | १३५६ |
| कटिच्छिन्नं च रचयेत् | १३५८ |
| कटिच्छिन्नं च सम्प्रोक्तः | १३४७ |
| कटिच्छिन्नं चाङ्गहारः | १३६३ |
| कटिच्छिन्नमपि ज्ञेयः | १३६२ |
| कटिदेशगतस्त्वेक | ७८६ |
| कटिदेशगतौ हस्तौ | ८१६ |
| कटिस्थेनार्धचन्द्रेण | ६८९ |
| कटीच्छिन्नं क्रमान्मत्त | १४१५ |
| कटीच्छिन्नममीभिः स्यात् | १४१३ |
| कटीच्छिन्नं भवेन् नो वा | १३८६ |
| कटीच्छिन्नं षष्ठमसौ | १४१४ |
| कटीच्छिन्नं समं पश्चात् | १३८२ |
| कटीजानुसमौ तत्स्यात् | ८९५ |
| कटीदेश करौ न्यस्तौ | ३०२ |
| कटीसमं कटीच्छिन्नम् | ११२१ |
| कट्यां करं निवेश्याथ | १६०० |
| कपित्थौ हस्तकौ स्याताम् | ७१ |
| कण्टकोद्धरणे सूक्ष्म | १७१ |
| कण्ठग्राहमनिन्दितः | १५०६ |
| कथने स्कन्धदेशस्थः | ४८ |
| कथाप्रयोगक्षोभं हि | १०२१ |
| कद्रौ तत्सुतविद्यायाम् | १७७ |
| कनिष्ठाद्यङ्गुलीनां चेत् | ६१४ |
| कनीयस्योर्वीमाश्लिष्ये | ९१६ |
| कपाटोद्घाटने त्वेष | २५४ |
| कपित्थस्योत्थिते वक्रे | ७२ |
| कपित्थावथवा मुष्टिः | २९५ |
| कम्पितोद्वाहिता छिन्ना | ३३८ |
| कपित्थो मुकुलो हस्तम् | २३१ |
| कबरीग्रहणे स्त्रीणाम् | १९२ |
| कपोलपुलकावली | १५०४ |
| कम्पनं चलनं ज्ञेयम् | ४९५ |
| कम्पनेन शरीरस्य | ६६६ |
| कम्पमानाथ कर्तव्याः | ९० |
| कम्पिता कम्पनादुक्ता | ४०६ |
| कम्पितौ रोमहर्षेषु | ५६३ |
| करणं दण्डपादाख्यम् | १३४४ |
| करणं न्यूनताधिक्यम् | १३४३ |
| करणव्रातसन्दर्भात् | १३४३ |
| करणानां समुद्दिष्टम् | ११३५ |
| करणाभ्यां मातृका स्याद् | १३४३ |
| करणोत्करसन्दर्भात् | १४१६ |
| करणैः स्थिरहस्तं स्यात् | १३४३ |
| करणोद्वेष्टिताख्येन | ३०३ |
| करप्रचारोऽशोकेन | ६०० |
| करयोः क्रियते यत्र | ७९६ |
| करयोरखिलाङ्गुल्यो | २२० |
| करयोर्जायते यत्र | — |
| कररेचितरत्नं च | ७६४ |
| कररेचितरत्नाख्यम् | ८३४ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| करस्तद्दोलमादिष्टम् | ७८० | कर्मणान्दोलनेनाथ | ७७१ |
| करस्य शिखरस्य स्यात् | ६३ | कर्मणा वेष्टिताख्येन | ७१७ |
| कराङ्गुल्यो बुधैरुक्ता | ५९२ | करौ कृत्वाऽलपद्मा | १५११ |
| कराणामेवमन्येषाम् | ७५३ | करौ कृत्वोज्झितालीढः | १३४३ |
| कराभिनयशोभां या | ७०८ | करौ दक्षिणवामौ चेत् | १५७६ |
| करावेवं यत्र तत् स्यात् | ८५० | करौ निवृत्तौ वेगेन | ८१७ |
| करावेवमुभौ यत्र | ७१९ | करौ पताकौ निर्गम्य | २६२ |
| करिहस्तं कटिच्छिन्नम् | १३६६ | करौ यत्र तदोक्तं तत् | ८४२ |
| करिहस्तं कटिच्छिन्नम् | १३४३ | करौ विलुठितौ भूत्वा | ८०१ |
| करिहस्तं कटिच्छिन्नम् | १३७२ | कलविङ्कविनोदाख्यम् | ७९६ |
| करिहस्तं कटिच्छिन्नम् | १४०५ | कलहे स्वस्तिकाकारे | ८९ |
| करिहस्तं कटिच्छिन्ने | १३६४ | कलासाः क्रमशस्तेषाम् | १५६९ |
| करिहस्तकटिच्छिन्ने | १४०१ | कश्चिदन्तर्बहिश्चक्र | ८१५ |
| करिह्स्तकटिच्छिन्ने | १४१२ | काङ्गूलः संज्ञितस्तस्य | ३५ |
| करिहस्तकटीच्छिन्नैः | १३६८ | काङ्गूल हस्तकौ कृत्वा | ६९३ |
| करिहस्तकमर्धाद्यम् | १३५९ | कातरा करिहस्ता च | ९६२ |
| करिहस्तं च करणम् | १३५१ | कातरे स्यादथेयत्ता | २१६ |
| करिहस्तमुरः पूर्वम् | १३९७ | कान्तं चित्रपटे विलिख्य | १५०८ |
| करो मकरनामा चेत् | ७२० | कान्ता हास्या च करुणा | ४२६ |
| करो मुष्टिरशोकेन | ४६ | कामपि भ्रमरीं कृत्वा | १५९१ |
| करो यत्र तदुद्दिष्टम् | ८५२ | कामिनीभिर्यथाकामम् | २१३ |
| कर्णदेशस्थ तर्जन्या | ६२० | कामेन ग्रहपाशाभ्याम् | ६७७ |
| कर्णयुग्मप्रकीर्णाख्यम् | ८४६ | कार्मुकाकर्षणे योज्यः | ६४ |
| कर्णरन्ध्रगता कार्या | ९३ | कायसंकोचनाद् वह्नेः | ६३४ |
| कर्णस्थो धनुराकर्षे | ७०० | कात्स्न्यार्दिन्तश्चिरस्था या | ५०३ |
| कर्णान्तिकगतौ कार्यौ | १४६ | कालकाष्ठामुहूर्तेषु | ४२ |
| कर्तयस्याभिधा मुष्टि- | ७४२ | किं कुर्वे सखि कैतवम् | १४९४ |
| कर्तर्योऽस्य ततं[?ते] पञ्च | ६९७ | किञ्चित्कुञ्चित पक्ष्माग्रा | ४४० |
| कर्मान्तराण्येवमस्य | ४० | किञ्चित्कुञ्चत्पुटा लक्ष्यात् | ४५० |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| किञ्चित्पृष्ठागतः पादः | १०६९ |
| किञ्चित्साचिनतं शीर्षम् | ७९० |
| किञ्चिदुत्फुल्लपक्ष्माग्रा | ४६३ |
| किञ्चिल्लक्ष्योर्ध्वदन्तो यः | ५४२ |
| कियन्तोऽपि मया प्रोक्ताः | ३१८ |
| कुचदेशगतौ कार्यौ | ४० |
| कुचदेशस्थितौ कार्यौ | १९६ |
| कुचदेशागतं जानुः | ४११ |
| कुचयो संमुखावेतौ | १९८ |
| कुचोन्नमनचातुरी | १५०४ |
| कुञ्चत्कूर्परकौ प्राहुः | २२८ |
| कुञ्चन्मध्यं तिरश्चीनम् | ५९९ |
| कुञ्चितं पादमुद्धृत्य | १०१३ |
| कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य | १०६२ |
| कुञ्चितः सरलो नम्रः | ६७१ |
| कुञ्चिते वलितप्रान्ते | १०३५ |
| कुञ्चिताङ्गुलि [?को] भ्रमन् | ११९ |
| कुञ्चिताङ्गुलिरेष स्यात् | १२५ |
| कुञ्चिता चाभितप्ता च | ४२९ |
| कुञ्चितावस्तली भूय | ११४ |
| कुञ्चिताङ्घ्रि समुत्क्षिप्य | १०११ |
| कुञ्चितेनाङ्घ्रिणाग्रेण | १०५० |
| कुञ्चितो मुष्टिरेकोऽन्यः | ७२९ |
| कुञ्चितोऽसावतिक्रान्त- | ३४८ |
| कुञ्चितो मुष्टिरेकश्चेत् | २९६ |
| कुञ्चितौ साध्वसे स्पर्शे | ५६४ |
| कुकुट्टार्धनिकुट्टे द्वे | १४०९ |
| कुटिल भ्रुकुटी रूक्षा | ४४४ |
| कुट्टनं दन्तसंघर्षः | ५५७ |
| कुट्टयित्वा तु विन्यस्य | १११२ |
| कुट्टितं वृश्चिकाद्यं चेत् | १३५७ |
| कुट्टितश्चेत्पुनः स्थाने | १०९२ |
| कुट्टितः स्थापितो यत्र | १०९१ |
| कुट्टितः स्थापितोऽङ्घ्रिः | १११४ |
| कुट्टितोऽङ्गुलिपृष्ठे च | १११३ |
| कुट्टितोऽङ्घ्रिः पुनः स्थाने | १११२ |
| कुन्तखड्गग्रहेऽप्येष | ४७ |
| कुब्जादिगमनप्रोक्ता | ३३९ |
| कुम्भाभिनयने स्याताम् | १४७ |
| कुरुतश्चेत् तलाग्रेण | ९७८ |
| कुरुते कठिनं यत्र | १५५१ |
| कुर्यात् तथा भवेद्भेदः | १५७६ |
| कुर्यात् वामाङ्घ्रिणा सूचीम् | १४४६ |
| कुर्यादाकुञ्चितं यत्र | १०६६ |
| कुर्यादिवं तदा हस्तौ | ३१४ |
| कुले स्वयं नियोक्तव्यः | ११७ |
| कुशाङ्कुशग्रहे चाप- | ५३ |
| कुष्टव्याधौ तथा शीर्ष- | २०० |
| कुष्माण्डादिलतासूर्ध्वा | ८५ |
| कूर्परस्वस्तिकाकारौ | २९८ |
| कूर्परस्वस्तिकेन स्तः | ८३१ |
| कृतापराधान् यान्ति | १४९७ |
| कृतिः क्रियाविशेषस्य | ६०८ |
| कृते जङ्घा स्वस्तिके च | ९९४ |
| कृते योज्यावर्तिताख्या | ४०३ |
| कृतोऽप्याभिनयस्तावत् | ५८६ |
| कृत्वा कपोतमूर्ध्वं चेत् | १५८३ |
| कृत्वा कृत्वा स्वकर्तव्यम् | १०२४ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| *श्लोकार्ध* | *श्लोक संख्या* |
| --- | --- |
| कृत्वा दक्षिण भागेन | १३४८ |
| कृत्वा नृत्यति पाणिभ्याम् | १५७९ |
| कृत्वान्तराद्ववतुर्यान् | १५४० |
| कृत्वा पार्ष्णिः स्वपार्श्वे च | १००८ |
| कृत्वा पुष्पपुटं पाणिम् | १५७७ |
| कृत्वा प्रसारयेद् बाहू | १५७५ |
| कृत्वालपल्लवं शश्वत् | २९४ |
| कृत्वालपल्लवौ हस्तौ | ६९२ |
| कृत्वा व्यावर्तने स्याताम् | ३०७ |
| कृत्वा सकल्पं चेदर्ध- | १५८२ |
| कृत्वा समनखं यत्र | १५५४ |
| कृत्वोत्तानावूरूयुगे | ११४५ |
| कृत्वोरसि समं पाणी | ११५२ |
| कृत्वोर्ध्वाधोमुखौ हस्तौ | ८२० |
| कृत्वोर्वोश्चलनं जङ्घा | ९७५ |
| केचित् पादौ क्षितिश्लिष्ट- | ९३१ |
| केचिदन्यान्य लग्नाग्रौ | — |
| केचिदत्रावदन् पादम् | ११४७ |
| केचिन्नृतकरं ह्यत्र | ९८२ |
| केचिद्विपश्चितोऽत्राहुः | ९०९ |
| केचिदावेष्टिताख्येन | २८३ |
| केचिदेनं करं प्राहुः | २१५ |
| केवले परितोषे च | २०७ |
| केशपर्णतृणादीनाम् | १७१ |
| केशपाशाकर्षणेऽपि | ३६७ |
| केशबन्धाभिधौ हस्तौ | ७२५ |
| केशबन्धौ करौ [कृ] त्वा | १५७६ |
| केशानां बन्धने स्त्रीणाम् | १५८ |
| कोपे स्त्रीणां वितर्के च | ४७७ |

| *श्लोकार्ध* | *श्लोक संख्या* |
| --- | --- |
| कोमलं मधुरं तिर्यक् | १५२४ |
| कोमलिका चाभिनयः | १५१६ |
| कोऽहं कस्त्वं मया सार्धम् | १६३ |
| क्रतौ बिम्बे शङ्कायाम् | ३८ |
| क्रमतो यत्र जायन्ते | १४६७ |
| क्रमतो युगपद्वाथ | ८८९ |
| क्रमपादनिकुट्टा च | १०८४ |
| क्रमात्कुर्वन्नङ्गुलिभ्याम् | १२० |
| क्रमात् पाणेश्च वक्षस्तत् | ६१२ |
| क्रमादङ्घ्रिर्दक्षिणः स्यात् | १४८४ |
| क्रमादथ पुरो वामम् | १४७४ |
| क्रमादधः पुनः पश्चात् | १५२७ |
| क्रमादधस्तिर्यगूर्ध्वम् | १२१ |
| क्रमाद्यो घट्टयत्यग्र- | ३५४ |
| क्रमान् मार्गस्थितानीति | १४८९ |
| क्रमान् मुहुः सव्यवामौ | १४६८ |
| क्रमेण रेचकस्यानु- | ९८७ |
| क्रमेण रेचितो हस्तः | ११५१ |
| क्रमे स्थितौ च क्षेपे [च] | १३४ |
| क्रव्यादे मकरे मीने | २५२ |
| क्रियते जानुपर्यन्तम् | १०७८ |
| क्रियते स्वस्तिकौ यत्र | — |
| क्रिया तन्नृतकरणम् | १११७ |
| क्रियाभिरुदरोक्ताभिः | ३९३ |
| क्रीडायामपि पर्याप्ते | २०८ |
| क्रोधं निरूपयेद् धीमान् | ६५८ |
| क्रोशनेऽङ्गुलिसंस्फोटे | ६१ |
| क्वचिदङ्घ्रेः प्रधानत्वम् | १०२१ |
| क्षामं खल्लं तथा पूर्णम् | ३८८ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| क्षितिघृष्टौ बहिः प्राप्तौ | १०३६ |
| क्षितिलग्नाखिलतलौ | ९९६ |
| क्षितिश्लिष्ट बहिः पार्श्वा | ४०७ |
| क्षितिश्लिष्टोरुपार्ष्णिश्चेत् | ९३२ |
| क्षितौ संघट्टयेत् पादौ | १०६० |
| क्षिपेत् क्षितौ यदा चारी | १०६२ |
| क्षिपेदस्यामिति परे | १००४ |
| क्षिप्रं निरूपितांस्तालान् | १५३६ |
| क्षिप्रं विदिशि यात्वाथ | ८०९ |
| क्षिप्रमन्तरमाक्षिप्य | ७७१ |
| क्षिप्तं भ्रान्त्वा चतुर्दिक्षु- | १४४७ |
| क्षिप्तः सकृत् सशब्दो यः | ५२४ |
| क्षिप्ता नतोद्वाहिताख्या | ३९९ |
| क्षिप्ताङ्गुलिरथासौ तु | १९४ |
| क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिरसौ | १८९ |
| क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिस्तद्वत् | ४४ |
| क्षुद्रे विवर्तितः किञ्चित् | १८० |
| **ख** | |
| खटकावर्धमानोऽसौ | २३७ |
| खटकास्य करस्थाने | ७०१ |
| खटकास्यौ पताकौ वा | २४३ |
| खटकास्यौ यदा हस्तौ | २९५ |
| खड्गवर्तनिका दण्ड- | ७१२ |
| खड्गवर्तनिकेत्याहुः | २९७ |
| खण्डैस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा | ९५३ |
| खड्गसूचिः स्थित पादः | १०४७ |
| खुत्ता लङ्घितजङ्घा च | ९६४ |
| खेदनिःश्वासचिन्ताभिः | ६८० |
| खेदस्वेदकपाटकोटि- | १५०९ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| **ग** | |
| गंगावतरणं कृत्वा | १४०६ |
| गंगावतरणं चात्र | १३९५ |
| गंगावतरणं चेति | ११३५ |
| गगने चेत् तदा चारी | १०६८ |
| गजक्रीडितकं पार्श्वं | ११२९ |
| गन्धं घ्राणस्य योगेन | ७०३ |
| गन्धघ्राणे प्रसूनानाम् | ६३७ |
| गन्धे स्पर्शे तथा प्रोक्तौ | ४८६ |
| गच्छन्त्यनुपदं तद्वद् | १५९८ |
| गच्छेत् तदा प्लवस्योक्तः | १६०६ |
| गतस्थानासनेष्वेसा | ४०१ |
| गतागतं च वलितम् | ८६८ |
| गतागतः पार्श्वयोः सः | ७९७ |
| गतागते दधत् दिक्षु- | ८०४ |
| गतिमङ्घ्रेर्विदित्वैवम् | १०२३ |
| गत्यर्थाच्चरतेर्धातोः | ९४९ |
| गत्वा गत्वा यथा चार्याम् | १०२४ |
| गत्वान्यपादपार्श्वं चेत् | ९९२ |
| गत्वा विदिशि तत्रैव | ८०८ |
| गम्भीरार्थानुदात्तार्थान् | ६५० |
| गरु [ड]प्लुत संज्ञं च | १३७७ |
| गर्वोत्सेके भाषणे च | ३२९ |
| गर्वगांभीर्यधैर्यादिः | २३३ |
| गायन्ति सुखसंस्थाना- | १४९९ |
| गीतं नृत्यानुगं यत्र | १५३९ |
| गीतवाद्यलयेष्वेतन् | १५४१ |
| गीतादिमानताले च | ४३ |
| गुल्फावपि मिथः श्लिष्टौ | ९२३ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| गेये शब्देऽपि कर्तव्या | १०५ | चतुरस्रस्तयोरेकः | २७२ |
| गृध्रावलीनकं दण्ड- | ११२९ | चतुरस्रेण मानेन | १३४३ |
| गृध्रावलीनकं पश्चात् | १३८९ | चतुरस्रौ तदा हार- | २५६ |
| ग्रथने च प्रसूनानाम् | २३७ | चतुरस्रौ यदा हस्तौ | ७४४ |
| ग्रन्थविस्तरतो नाति | ८३५ | चतुरस्रौ विधायादौ | २५७ |
| ग्रन्थविस्तारसंत्रासात् | १५६५ | चतुरा भ्रुकुटी चेति | ४७५ |
| ग्रन्थविस्तारसंत्रासात् | ८६२ | चतुरा सा भवेत्सौम्य | ४८० |
| ग्लाना तथा शंकिता च | ४२८ | चतुर्थैवं तदाख्यातम् | ६१० |
| ग्लानिसन्तापयोः शोके | १४३ | चतुर्थोदरमाख्यातम् | ३८८ |
| ग्लाने जरार्दिते सुप्ते | ३२४ | चतुर्भिः खण्डको ज्ञेयः | १३४३ |
| ग्लान्याश्रुपात दैन्यैश्च | ६८१ | चतुर्मुखोऽपि ता वक्तुम् | ४७४ |
| ग्रहणे पार्श्वगामी स्यात् | ६८ | चतुस्तालान्तरौ पादौ | ८९६ |
| ग्रीवा पार्श्वोन्मुखा या तु | ३६५ | चमत्काराय चारीणाम् | १४२७ फु० |
| ग्रीवाभंगे तथा भर्तुः | ३६५ | चमूं समूहमम्भोधिम् | ६७६ |
| घ | | चरणकुट्टितः पूर्वम् | १०९९ |
| घटोपकरणे चक्रे | ८१ | चरणन्यूनताधिक्यम् | १४८६ |
| घट्टितो घट्टयन्पार्ष्णिः | ३५५ | चरणोऽग्रे द्रुतं गच्छन् | ३५७ |
| घातयन्निव तत्रैतम् | १५८४ | चरणौ छिन्नकरणम् | ४३३ |
| घातवर्तनिका गात्र | ७१४ | चरणौ संहतस्थौ चेत् | १०४५ |
| घृणयोद्वेगमापन्ना- | ४३९ | चरणौ समपादाया | ९७८ |
| च | | चलस्तदा नियोगोऽसौ | ४२० |
| चक्रचापगदादीनाम् | ६४ | चलदङ्गुलिरुत्तानः | १११ |
| चक्रमण्डलकं पश्चात् | १३७६ | चलसंहतमन्वर्थम् | ५७० |
| चक्रवर्तनिकेत्यस्या | ७२६ | चला किसलये तु स्यात् | ८६ |
| चक्रवर्तनिकेत्याहुः | २८१ | चलाङ्गुलिरथाल्पेऽर्थे | ११६ |
| चञ्चला प्रसृता या सा | ३६७ | चलाङ्गुलिस्तु लेपे स्यात् | २७ |
| चतुरस्रं तदाचष्ट | ८८९ | चलितं श्लेषविश्लेषे | ५६७ |
| चतुरस्रक्रियोपेतौ | २७६ | चलेयुर्यत्र गात्राणि | १५५८ |
| चतुरस्रकरौ वक्षः | ११४२ | चापवत् तालसहिता | १५४५ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| चारी डमरुकुट्टाख्या | १०८४ |
| चारी च करणं खण्डः | ९५२ |
| चारी त्रिकोणचारान्या | १०८५ |
| चारी त्रिकोणचारी चेत् | ११०८ |
| चारी नाम्ना प्रविज्ञेयः | १४८६ |
| चारीभिश्च मनोहरः | १११६ |
| चारी सा कथिता धीरैः | १०३० |
| चार्यते तेन मुड्डपः- | १०८० |
| चार्यः षोडश भौम्यः | ९५७ |
| चार्याप्यञ्चितया धीमान् | ६९ |
| चार्या बद्धाख्यया सार्धम् | १३६९ |
| चार्यां स्थानेऽथवा ताल- | १५३१ |
| चार्यो भूमिलिताः मार्ग्यः | ९६० |
| चालकज्ञास्तदा प्राहुः | ८०२ |
| चालनज्ञैः समाख्यातम् | ७९८ |
| चालिश्चालिवटस्तूक्तम् | १५१३ |
| चित्रार्थं श्लेषभावाढ्यम् | १५०० |
| चिन्तानिर्वेदयोः शोके | ५१५ |
| चिन्तान्विते प्रमत्तेऽपि | ३२५ |
| चिन्तालज्जावितर्केषु | ९१० |
| चिन्तासागरसन्निमग्न | १४९४ |
| चिबुकं दूरनिष्क्रान्तम् | ५६६ |
| चिबुकं लक्षितप्रायम् | ५६५ |
| चिबुकस्थाविमौ कार्यौ | २०२ |
| चिबुकोष्टप्रकम्पेन | ६५९ |
| चिरं निरुध्य यो मुक्तः | ५२१ |
| चिह्नं यद्यच्च रूपं च | ६४२ |
| चुचुकाभिनयेऽप्येष | ३६ |
| चुम्बनेष्वनुकम्पायाम् | ५४० |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| चेष्टाकृतिविशेषः सा | ९५० |
| च्युतसन्दंश एव स्यात् | ७५ |
| छ | |
| छिन्नं चेति क्रमादेभिः | १३९७ |
| छिन्नं तु दृढसंश्लेषः | ५५४ |
| ज | |
| जगुरेतावथान्ये तु | २७७ |
| जङ्घा मनाक् नता तु स्यात् | ८८० |
| जङ्घावर्ताभिधा सोक्ता | १०६७ |
| जङ्घा स्वस्तिक विश्लेषात् | १०१६ |
| जङ्घैवं पञ्चधा प्रोक्ता | ३९९ |
| जनतोत्सारणे प्रोक्तः | ३८६ |
| जनसंघे निजं पार्श्वम् | ८२ |
| जनितं दक्षिणाङ्गेन | १३७१ |
| जनितो दक्षिण पादः | १४३१ |
| जनितोत्सन्दिता चाष- | ९५५ |
| जनितो दण्डपादश्च | १४५९ |
| जनितो दक्षिणोऽङ्घ्रिः | १४४९ |
| जलक्लिन्नाथवा सव्यम् | १५९२ |
| जलाशयान् वनान्तांश्च | ६२६ |
| जलोदराभिधे व्याधौ | ३९१ |
| जानुदघ्नं समुत्क्षिप्य | १०७० |
| जानुद्वयं बहिर्भूतम् | ४१३ |
| जानुनोर्निकटं प्राप्तौ | २९२ |
| जान्वन्तर्गतौ यः स्यात् | ३९६ |
| जानु यावत् स्तनसमम् | १००५ |
| जानुशीर्षे बहिः पार्श्वे | ९२६ |
| जानु सत्वरमापात्य | १५९६ |
| जानुसन्धिसमत्वेन | ९३७ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| जायते या क्रिया तत् स्यात् | ८२२ | ततो वक्षःस्थलं प्राप्तः | ७४८ |
| जिह्वादृष्ट्याङ्गसंकोचात् | ६५३ | ततो वक्षःस्थलं प्राप्तौ | ८५८ |
| जुगुप्सया न चात्यन्तम् | ६१९ | ततो वामं सपर्यन्तम् | ७७० |
| जुगुप्सिता विस्मितेति | ४२७ | तत्कालार्हक्रियायोग्यौ | ८५० |
| जृम्भायां तु मुखाभ्यासे | ९२ | तत् स्वस्तिकत्रिकोणाख्यम् | ८४३ |
| जृम्भोच्चवीक्षणे दीर्घः | ३३२ | तत्तदेशगता कार्या | ९१ |
| ज्येष्ठमध्यमनीचेषु | ७०६ | तत्तदेशानुसारेण | १५५७ |
| ज्योव् [?प्रयोज्यौ च] | १ | तत्तद्रसानुगुण्येन | १५६४ |
| ज्वलद्भिरिव मामयम् | १४९८ | तत्पार्श्वमागतौ हस्तौ | २८० |
| ढ | | तत्र विधाश्चतुर्धोक्तम् | १५८६ |
| ढालश्छेवाङ्गहारश्च | १५१४ | तत्र सिद्धास्तथासिद्धा | ८३४ |
| ढिल्लाई त्रिकलिः किन्तु | १५१३ | तत्र स्वाभाविकोऽन्वर्थः | ५८२ |
| त | | तत्राद्यः षड्विधः खड्ग- | १५६७ |
| तं निर्दिशेत् पताकेन | ६९६ | तत्राद्यो धैर्यमाधुर्य- | ६६५ |
| ततः पृथङ्मया नास्य | ३९३ | तत्राद्यौ प्लुतमानेन | १५६७ |
| ततश्चेच्चलितैः पाण्योः | ७९१ | तत्रेत्यर्थेऽप्यसावेव | ५० |
| ततः सहोत्तरोष्ठेन | ५४४ | तत्रैव लोडयित्वाथ | ७८८ |
| ततः स्थाने कुट्टयेच्च | ११०२ | तत् साचि यत् तिरश्चीनम् | ५०२ |
| तताद्यनुगता गान- | १४९९ | तथा गण्डमुखस्पर्शे | ६२१ |
| ततो निकुट्टकं चार्ध- | १३४४ | तथातिशयशोभाभिः | ६८३ |
| ततोऽन्तर्मण्डलभ्रान्तौ | ८१६ | तथा परं करं वामाम् | १५७२ |
| ततोऽन्यदेशचलनम् | ७६८ | तथा पुष्पपुटाख्यान्या | ७४२ |
| ततोऽन्यस्मिन् करे तिर्यक् | ८१० | तथाप्यमूर्मया काश्चित् | १०८२ |
| ततोऽन्याङ्गपरावृत्तौ | ८४८ | तथाप्यहं सुबोधाय | ५६५ |
| ततोऽपविद्धोरूद्वृत्त- | १३६८ | तथाभिनयनैर्युक्तम् | १५११ |
| ततोपसृत्य वामाङ्घ्रिः | ९२६ | तथा यत्रपताकादीन् | १५७० |
| ततो मयेह लिख्यन्ते | ७०८ | तथाविधे खेचरे च | १२१ |
| ततोऽर्धकुञ्चितं चेति | ४१० | तथा समपुटा बाह्य- | ४४९ |
| ततोर्ध्ववतर्ना प्रोक्ता | ७२२ | तथा स्वपार्श्वनीता सा | ९९२ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| तथोच्चितं प्रकुर्वीत | ५८९ |
| तथोद्वाहित शीर्षेण | ६३२ |
| तथोर्ध्वप्रेक्षणादेवम् | ६४१ |
| तथोरभ्रकसम्बन्धात् | ७६३ |
| तथोल्लुकसनेनापि | ६५९ |
| तदश्वारोहणारम्भे | ९१३ |
| तदवादि तथा सद्भिः | ७७१ |
| तदनूत्संगमारच्य | १५७७ |
| तदन्यस्मिन् क्रमाद्धस्ते | ७८९ |
| तदाकरः स्वस्तिकाख्यः | २४४ |
| तदा खड्गकलासोऽसौ | १५८१ |
| तदाङ्गहारो दशभिः | १३५० |
| तदा चालि समाचष्टम् | १५१९ |
| तदा चाषगतं सेयम् | १४८३ |
| तदा तत् करणं धीरैः | ६१४ |
| तदा तद् बलितं स्थानम् | ९१६ |
| तदा तलमुखौ स्याताम् | २६१ |
| तदात्र सद्भिराख्यातम् | ७८६ |
| तदा त्वाविद्धवक्राख्यौ | ३०७ |
| तदा दाननिषेधे स | १४१ |
| तदा दोलाभिधो हस्तः | २४७ |
| तदा धीरैः पुष्पपुट | ७४८ |
| तदा धीरै समादिष्टा | ७४४ |
| तदा निगदिता सद्भिः | ११०८ |
| तदा निषधनामासौ | २३१ |
| तदानुवृत्ते योज्योऽयम् | ११३ |
| तदा पुष्पपुटो हस्तः | २३४ |
| तदा भेदः प्लवस्य स्यात् | १६०९ |
| तदा भेदो द्वितीयः स्यात् | १५७४ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| तदा मनो मनोहारि- | १५२३ |
| तदालातं मण्डलं स्यात् | १४४८ |
| तदा लीनं वल्लभायाः | ११५० |
| तदा वा भवतो हस्तौ | ३१५ |
| तदा सद्भिः समादिष्टा | ७४६ |
| तदा सूचीमुखः प्रोक्तः | ८० |
| तदासौ बाणसन्धाने | ७०१ |
| तदासौ मुकुलः प्रोक्तः | १८४ |
| तदासौ शुकतुण्डः स्यात् | १६५ |
| तदा स्तो नलिनीपद्मकोश- | २९० |
| तदाहुः पल्लवौ केचित् | २७५ |
| तदीर्ष्याकोपलज्जादि– | ४१२ |
| तदुक्तं प्रावृतं सद्भिः | १०७४ |
| तदेलकाक्रीडिताख्यम् | १४८० |
| तदेवाङ्गपरावृत्त्या | ९१८ |
| तदेष भेद आद्यः स्यात् | १५९३ |
| तदोक्त भ्रमरं धीरैः | १४६४ |
| तदोद्वृत्तौ जगुः केचित् | २६० |
| तदोद्वृत्तौ करौ स्याताम् | २५९ |
| तदोद्वेष्टनमाख्यातम् | १०७७ |
| तदोल्लासं समाचष्टम् | १५३७ |
| तद्देशसंश्रये लक्ष्ये | १७९ |
| तद्देशस्थो बुधैरुक्तः | १८१ |
| तद् भुग्नं यदधोवक्त्रम् | ५७४ |
| तद्वत् यत्र शिरः क्षेत्रे | ८५३ |
| तद्वदङ्गान्तरेणापि | ३०१ |
| तद्विलोकितमाख्यात् | ५०५ |
| तनोति यत्र नृत्तं स | १५९५ |
| तन्मतेऽपि तदभ्यासात् | १३८८ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| तन्मण्डलमतिक्रान्तम् | १४३४ | तामाचष्टाशोकमल्लः | १०१८ |
| तन्मण्डलमिति प्रोक्तम् | १४२७ फु. | तारुणोऽसौ प्रसिद्धे. स्यात् | २०९ |
| तपस्विदर्शने स्याताम् | १२८ | तारयोः समवस्थानम् | ४९३ |
| तरलौ नर्तने स्याताम् | १५४४ | तार्क्ष्यपक्षविनोदाख्यम् | ७६३ |
| तर्केऽद्भुते पुटद्वन्द्वा | ४६२ | तालद्वयान्तरेऽथाङ्घ्री | ९८३ |
| तर्जनी चापवद्वक्रा | १५० | तालतौल्ययुतं नाति | १५१८ |
| तर्जन्यग्रं यदा यत्र | ६३ | तालपत्रे त्वसौकर्ण- | ३२ |
| तर्जन्यनामिके यत्र | १६५ | तालप्रयोगनैपुण्यात् | १५६० |
| तर्जन्यस्य भ्रमन्त्यूर्ध्वः | ८१ | तालपत्रं समाचष्टम् | ८८५ |
| तर्जन्याद्यङ्गुलीनां चेत् | ६१२ | तालान्तरे पुरो गत्वा | ९८३ |
| तर्जन्याङ्गुष्टको युक्त्वा | १५७ | तालान्तरे यदा वामः | ९०१ |
| तर्जन्याद्या यदाङ्गुल्यः | ६१० | तालान्तरौ स्थितौ स्याताम् | ३१७ |
| तलपुस्पपुटे त्वेतत् | ११४१ | ताले शीले च कर्तव्यः | ३२ |
| तलपुष्पपुटं पूर्वम् | १३४३ | तालौ द्वावर्धतालश्च | ८७९ |
| तलपुष्पपुटं वक्षः | १११९ | तावत् मज्जदनल्पवाष्प- | १५०८ |
| तलमध्यमरालस्य | — | तिरश्चीना यथा गूढा | ४५५ |
| तलश्लिष्टौ पताकौ चेत् | २१२ | तिर्यक् कुञ्चितजानुः स्यात् | ९३६ |
| तलसंमुखमावक्षः | ६११ | तिर्यक्तलेन मृद्नाति | ३५६ |
| तलसंस्फोटितं चाथ | १४१५ | तिर्यक्ताण्डवचाराख्यम् | ७६३ |
| तलसंस्फोटितं गण्ड- | ११२८ | तिर्यक्प्रसारितो सर्व- | ३०८ |
| तला [लता] ख्यं वृश्चिकं पश्चात् | १३५३ | तिर्यक् प्रसृतपादस्य | १०४३ |
| तलेनादौ निकुट्याथ | १०८९ | तिर्यक् संकुचितो यः स्यात् | ५३५ |
| तले यस्य विकीर्णाश्चेत् | २०३ | तिर्यक् सञ्चारयेदन्यम | १०३९ |
| तस्मान्नाटयप्रयोगे तु | ७०५ | तिर्यक् स्थितेनोपलाभम् | ६९८ |
| तस्य रङ्गप्रविष्टास्ताम् | ६८६ | तिर्यगायत एष स्यात् | ६५ |
| तस्योक्तो मानसो भावः | ६१६ | तिर्यगास्योऽथ सूर्यस्य | २३८ |
| ता एव परिवर्तिन्यः | १०४ | तिर्यगूर्ध्वमधोधश्चेत् | १५७१ |
| ताण्डवेऽशोकमल्लेन | ४०४ | तिर्यग्गतं यत्तद्वक्रम् | ५७३ |
| तादृगेव भवेदेष | २५४ | तिर्यग्गतागते विभ्रत् | ५६८ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| तिर्यग्गमनं वलनं मतम् | ४९५ | त्रितालान्तरमुत्क्षिप्य | १०१९ |
| तिर्यग्निवेशिता यार्ध– | ४६४ | त्रिधान्तिमः कलासः स्यात् | १५६९ |
| तिर्यग्बहिः पार्श्वगतः | ९३४ | त्रिपताकं यदा वामम् | ११२ |
| तिर्यग्भ्रान्तिरथो यः स्यात् | १४२३ | त्रिपताकस्तदा प्राहुः | २६९ |
| तियग्भ्रान्तिरथो यः स्यात् | १४२४ | त्रिपताकस्तदा प्रोक्तः | १०७ |
| तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रम् | ७६१ | त्रिपताकोक्तरीत्यैव | ७५० |
| तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्रम् | ८१२ | त्रिपताकोदितेस्त्वेष | १६४ |
| तिर्यङ्मुष्टिं विधायैकम् | ७७७ | त्रिपताकौ कटी क्षेत्रे | १६०७ |
| तिर्यञ्चावुत्पतन्तौ द्राक् | ३०२ | त्रिपताकौ कटौ मूर्ध्नि | २७८ |
| तिर्यञ्चौ तौ यदा यत्र | — | त्रिपताकौ पताकौ वा | १६०३ |
| तिलके स्याद्वर्ध्वमेष | ११९ | त्रिपताकौ प्रचलितौ | २६६ |
| तीक्ष्णकूर्परकौ स्याताम् | ८२३ | त्रिपताकौ यदा पाणी | १५९४ |
| तीक्ष्णाग्रं यत्र सा सूची | १०७३ | त्रिभंगीवर्णसारकम् | ७७९ |
| तुर्यं यत्र कटीच्छिन्नम् | १४०८ | त्रैगुण्येऽपि स्त्रियां तीरे | १०८ |
| तुर्यो भेदो बकाद्यस्य | १६०१ | त्रोटितोद्वट्टितोत्सेधः | ३४५ |
| तृणादेर्धारणं दन्तैः | ५६० | त्र्यस्रभावात्पुनश्चापि | ११०४ |
| तृतीयस्त्वेकधा तुर्य– | १५६८ | त्र्यस्रभावेन पार्श्वे स्वे | ९८६ |
| तेन शब्दं सुधीरेवम् | ६९९ | त्र्यस्रपक्षस्थितौ पादौ | ८९२ |
| ते लिख्यन्तेऽभिनेयार्थम् | ६१५ | त्र्यस्रः स्यादथ हस्तस्य | ८८४ |
| तेषामभिनयं कुर्यात् | ६७७ | त्र्यस्रे ताले सद्भिरेतत् | ९५३ |
| तोषे तूत्तानितः स स्यात् | ११८ | त्र्यस्रौ द्वावपि चेत् तत्स्यात् | ८९८ |
| तों [? थों] शब्दं त्वर्ध– | ६९६ | त्र्यस्रौ पक्षस्थितौ पादौ | ८९४ |
| तोलनं ताडनं छेद– | ६०७ | त्वयाभिलषिते कथम् | १५०४ |
| तौ तिर्यक्स्वस्तिकौ स्याताम् | १२८ | त्वरया परितो भ्रान्तिः | १४२२ |
| तौ स्वस्थौ स्वस्वकार्येषु | ५१९ | द | |
| त्रयोविंशतिमाचक्षे | ८७० | दक्षिणः शकटास्यत्वम् | १४८१ |
| त्रयोविंशतिरन्यानि | ८७७ | दक्षिणः शकटास्योऽथ | १४६२ |
| त्रासनिष्क्रान्तमध्येव | ४४६ | दक्षिणश्चरणः सूची | १४५६ |
| त्रासोद्भ्रमत्पुटद्वन्द्वा | ४६८ | दक्षिणस्तु करो वामम् | १४१ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| दक्षिणस्तु ततो वामः | ८०९ | दिक्स्वस्तिकमथैकेन | १३६७ |
| दक्षिणां तु यदा जङ्घाम् | ९४३ | दिशास्वष्टासु चेद्धस्तौ | ८३८ |
| दक्षिणाङ्घ्रिः समो वामः | ९४० | दिग्वर्षाख्यमनङ्गानाम् | ८५१ |
| दक्षिणेनालपद्मेन | ६८७ | दीप्ता विकासिता दृष्टिः | ४३६ |
| दक्षिणे यत्र सूची स्यात् | १४४४ | दीर्घं मानं तथोच्चत्वम् | ६२९ |
| दक्षिणे वामतः पादे | ४०३ | दूते ते ऊर्ध्वमुख्यौ तु | ९९ |
| दक्षिणोऽङ्घ्रिर्भवेत् सूची | १४६८ | दूरे स्थितिदन्तपङ्क्त्योः | ५५६ |
| दक्षिणो जनितोऽथ स्यात् | १४६५ | दृश्यन्तेऽन्तर्बहिर्वा चेत् | २२० |
| दक्षिणो जनितोऽथाङ्घ्रिः | १४६२ | दृश्यात्पलायमानेव | ४३८ |
| दक्षिणो जनितो वामः | १४७६ | दृश्याद् द्रुतनिवृत्ता च | ४५५ |
| दक्षिणो दण्डपादोऽन्यः | १४३५ | दृशोऽनूक्ताभिनयना | ४४८ |
| दक्षिणो भ्रमरः पादः | १४८१ | दृष्टयो मिलिता सर्वाः | ४३१ |
| दक्षिणो यदि पादः स्यात् | १४७२ | दृष्टादृष्टफलादृष्ट- | १४१७ |
| दक्षिणो विच्यवीभूयः | १४५२ | दृष्टिदृप्ताभिधोत्साहे | ४४५ |
| दण्डपक्षं ललाटाद्यम् | १३८३ | दृष्टिभ्रूमुखरागाद्यैः | ३१९ |
| दण्डपादा पुरःक्षेपा | ९६६ | दृष्ट्याधोगतया धीरैः | ६७८ |
| दधती चरणौ गच्छेत | १६०८ | दृष्ट्या निर्वर्णयन्त्यापि | ६२२ |
| दधल्लाद्यौ तु शिथिले | २३ | दृष्ट्या मुकुलया किञ्चित् | ६२८ |
| दधाते चेत्तदा प्रोक्तः | २२७ | दृष्ट्यावधूतशिरसा | ६९४ |
| दन्तोष्टशिरसः कम्पात् | ६३५ | दृष्ट्या सहास्यया धीरः | ६९१ |
| दष्टनिष्कर्षणे तद्वत् | ५५३ | दृष्टयो मिलिता सर्वा | ४३१ |
| दर्शयेत् तीक्ष्णरूपाणि | ६४९ | दृष्ट्योर्ध्वयाकेकरया | ६४७ |
| दशभिः करणैरेभिः | १३४३ | दृष्ट्वा खिद्यति चेदुक्तम् | १५०७ |
| दशस्त्वन्वर्थलक्ष्माणो | ५२८ | देवताया द्विजातेश्च | २१२ |
| दशायामन्तिमायां सः | ५२५ | देवेषु दक्षिणो वामः | २१० |
| दशोदिष्टान्यथामीषाम् | १४३० | देवोपहारकं प्रोक्तम् | ८१४ |
| दक्षिणो दण्डडपाद स्यात् | १४३६ | देशाद्यानामथैतेषाम् | १५१७ |
| दाने त्वभयदानेऽपि | ४१८ | देहस्वभावभावेषु | १५३ |
| दिक्स्वस्तिकं पुनरथ- | १३६७ | दोलं नीराजिताख्यं च | ७५६ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| दोलापादा तथोद्वृत्ता | ९५९ | धृतिमोहघातपात- | १५८५ |
| दोलापादाभिधा त्वेषा | १०१३ | धृतिस्थैर्यबलोत्साह- | १५९ |
| दोलोत्थितो लताहस्तः | २६८ | ध्यानाभिनयने चित्र- | १७४ |
| दोहने च गवादीनाम् | ४७ | ध्याने योगे सद्भिरेष | ५२१ |
| द्रुतं तत्र प्रदेशेषु | ८३० | ध्वजच्छत्रपताकादीन् | ६५१ |
| द्रुतं विनिश्य लुठनात् | ७८८ | न | |
| द्रुतभ्रान्तौ हंसपक्षौ | २७० | न कराभिनयः कार्यः | ३२५ |
| द्रुतमन्दादिभावेन | १५२१ | नक्राणां वडवाग्नेश्च | १३१ |
| द्रुतशाखावलम्बे च | ९१३ | नखक्षते कामिनीनाम् | ५३२ |
| द्व्याङ्घ्रिप्रचारः करणम् | ९५३ | न जानामीति वाक्यर्थे | १३१ |
| द्वापञ्चाशदिमानीति | ८७८ | नटेनेत्यवदन्नृत्ये | ८८२ |
| द्वाभ्यां त्रिचतुराभिर्वा | १३४३ | नतं चोन्नतमेवेति | ३३३ |
| द्विगुणैस्त्रिगुणैर्यद्वा | १५३६ | नतं तु न्यञ्चितस्कन्धः | ३३६ |
| द्वितीययासहामूलोत्क्षिप्ता | ४८१ | नतजानुर्यत्र जङ्घा | ९९१ |
| द्वितीया खड्गपूर्वस्य | १५८३ | नतध्वस्तनिमित्तानि | ६३० |
| द्वित्रिशत्ते तथाऽप्युक्ताः | १३४३ | नताग्रावथवोच्चाग्रौ | ३०६ |
| द्विधा तान्यात्मनिष्ठानि | ४९१ | नतोन्नताङ्गुलिरसौ | १०९ |
| द्विस्त्रिर्वा मण्डलाकारः | १५९ | नतोन्नते संहते च | ४१० |
| द्विस्त्रिर्वा मूर्ध्नि संयोज्यः | २२५ | नतोन्नतौ मुहुः स्याताम् | ३९५ |
| ध | | नत्वाहं तमकिञ्चनम् | १११६ |
| धत्ते सा विप्लुता दृष्टिः | ४६७ | नत्वैकदायतः सद्यः | १०६ |
| धनुराकर्षणाख्यं च | ७६० | नदीपूरे च नक्रेऽपि | २५२ |
| धनुराकर्षणे प्रोक्तम् | ८०५ | नन्द्यावर्तं चैकपादम् | ८७० |
| धारणे लेखनस्यापि | १६६ | नन्द्यावर्तस्थानकस्थौ | १०४९ |
| धाराभिमुखता तत् स्यात् | ८२३ | नन्द्यावर्तस्थितावङ्घ्री | १०२८ |
| धीरधुर्योऽशोकमल्लः | १४२६ | नन्द्यावर्तस्य चेत्स्थानम् | ९२७ |
| धीरैः स्तब्धो दोलितो वा | २४८ | नन्द्यावर्ते स्थिताङ्घ्रिभ्याम् | १०३३ |
| धूमे सा मण्डलाकार- | ८९ | नभस्तेजोऽनिलं चोष्णम् | ६५४ |
| धूतमुक्ते यथा मीने | १५९८ | न भाति यावन्नोपैति | ५८६ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| नमज्जानुस्तु या जङ्घा | ४०१ | नानार्थगीतसहितम् | १५०९ |
| नमनं स्यात् प्रयोगेषु | १५४९ | नानालङ्कृतिचिन्नांङ्गैः | ६७९ |
| नमनात्तु नितम्बस्य | ४१५ | नान्दीपिण्डप्रदाने तु | १९३ |
| नमनादुदरं क्षामम् | ३८९ | नाभिक्षेत्रादयं कार्यः | १६० |
| नमनोन्नमनोपेता | १४२५ | नाभिदेशसमीपस्थे | ८०० |
| नम्रा ग्रीवा नता प्रोक्ता | ३६२ | नाभिदेशस्थितावेतौ | ६९ |
| नयने किञ्चिदाकुञ्च्य | ६२३ | नाभिदेशस्थितो नीवि– | ५५ |
| नरः स्त्रियोऽथवा कुर्युः | ९०७ | नाभिपार्श्वद्वयं पश्चात् | ६०५ |
| नर्तकी गुरुमानेन | १५८८ | नायिकाप्रार्थनोक्तौ स्यात् | १६८ |
| नर्तकी तनुते नृत्ते | १५३० | नारादघ्नजले धार्ये | ९२ |
| नर्तकी दक्षिणे पार्श्वे | १६११ | नासाक्षेत्रादथाग्रस्थः | १३६ |
| नर्तकी नर्तने गीत- | १५४८ | नासादेशगतः कार्यः | ३० |
| नर्तकी लघुमानेन | १५९० | नासादेशगतः कार्यः | १५६ |
| नर्तकी यत्नतस्तावत् | ८६३ | नासानिल प्रसंगेन | ५३३ |
| नर्तने तनुयात् क्षिप्रम् | १५५४ | नासा संकूचिता या स्यात् | ५१३ |
| नलिनीपद्मकोशौ चेत् | ७३१ | नास्तीत्युक्तवथ मनाक् | ६२ |
| नवधोच्छ्वासनिःश्वासौ | ५१७ | नास्तीत्युक्तौ च नारीभिः | २०५ |
| नवभिः करणैरेभिः | १३९१ | नाहं मत्वं न मे कार्यम् | १६६ |
| नवरत्नमुखं चेति | ७६६ | निकुञ्चितपुटापाङ्गा | ४३९ |
| नवोक्तान्यात्मनिष्ठानि | ४९३ | निकुञ्चिताकुञ्चितौ स्याताम् | ४१७ |
| नवोपविष्टस्थानानि | ८७५ | निकुट्टकं विधायाथ | १४११ |
| नागबन्धमथ स्वस्थम् | ८७४ | निकुट्टकः पुराटचर्ध- | ९६४ |
| नाट्ये नृत्ये गतौ युद्धे | १०२० | निकुट्टं करणं पश्चात् | १३९२ |
| नाट्ये नृत्ये तथा नृत्ते | ९९७ | निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्य | १३४३ |
| नाट्यवेदेनादिमूल– | ९९७ | निकुटाधनिकुट्टार्ध- | १३९८ |
| नाट्योपयोगिनः प्रायः | ६१५ | निकुटटार्धनिकुट्टे च | ११२१ |
| नानाकार्यान्तरोपेतम् | ८८१ | निकुट्टार्धनिकुट्टे द्वे | १४०९ |
| नानादृष्टियुतं धीरः | ६२६ | निकुट्टितौ समौ पादौ | १०९६ |
| नानारीत्यान्वितं नृत्तम् | १५३४ | निकुट्टोरूद्वृत्तके चेत् | १३६६ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| निकुट्टोरूद्वृत्तके तु | १३४७ | निरीक्षणालसे तारे | ४५९ |
| निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्य | १३४३ | निरुक्तिमेवं केऽप्याहुः | १०८१ |
| निगूढ स्रस्ततारा या | ४६० | निरोधात्तु गतिस्थित्योः | ९१५ |
| निघृष्टोऽङ्घ्रिः क्रमाद्यत्र | ९७४ | निर्गम्य मणिबन्धाद्यः | ३७५ |
| निजं पार्श्वं सरन्नन्य | ३८६ | निर्गताभिमुखौ स्याताम् | ८२८ |
| निजपार्श्वे भ्रमन्ती सा | ८२ | निर्गतावंशदेशाच्च | ८४२ |
| निजे पार्श्वे पुरो देश | — | निर्णयाङ्गी कृतौ योज्यः | २३९ |
| नितम्बं करिहस्तं च | १३४३ | निर्दिशेत् तमृतुं तेन | ६४२ |
| नितम्बं विष्णुक्रान्तः | १३८५ | निर्दिशेत् तानि रोमाञ्चैः | ६४८ |
| नितम्बकरिहस्तेन | १३९२ | निर्दिशेदथ वृक्षादीन् | ६७४ |
| नितम्बपल्लवाख्ये द्वे | ७१२ | निर्निमेषा समुत्फुल्ला | ४६९ |
| नितम्बवर्तना सोक्ता | ७३३ | निर्वर्णना तया युक्तम् | ५०३ |
| नितम्बस्वस्तिकाद्यं तु | १४०२ | निर्वेदादिष्वपि च या | ५१२ |
| नितम्बाभिमुखीं यत्र | १००६ | निर्वर्तितस्तथेत्यूरोः | ३९४ |
| नितम्बौ तु यदा हस्तौ | ७३२ | निवारणे बहिः क्षिप्तः | १५४ |
| निदध्यादुपविष्ट सन् | ९४२ | निवृत्तविनिवृत्ते च | ११२७ |
| निद्रामुद्रितनेत्रयापि | १५०६ | निवृत्तः सन् निजे पार्श्वे | ७८५ |
| निपुणं श्लिष्टविश्लिष्टौ | १८ | निवृत्ता कथिता स्कन्ध- | ३६८ |
| निमेषिणी या सा दृष्टिः | ४५६ | निवृत्ता रेचिता चेति | ३६० |
| निम्नं खल्लं समाख्यातम् | ३९० | निश्चलं मीलितास्यं यत् | ५७१ |
| नियुज्यते वाजिगज- | ४१३ | निश्चलात्माङ्गविन्यास- | ८६५ |
| नियुज्यन्ते बुधैरेते | ?? | निःशङ्कगमनेनापि | ६७९ |
| नियुज्यन्ते बुधैरेताः | ५९४ | निःशङ्कः पतिरभ्युपैति | १४९४ |
| नियोज्या सा बुधैस्तद्वत् | ३६३ | निःश्वासेनाङ्गकम्पेन | ६५८ |
| नियोज्यास्तूत्तमैः पात्रैः | ३२२ | निःश्वासोत्सुक्यदौर्बल्य- | २५० |
| निरन्तरोत्क्षेपणैर्यत्– | ३३१ | निषण्णो तु नमस्यूरू | ८९२ |
| निरन्तरौ विधायोर्ध्व- | १४७३ | निषण्णौ व्योम्नि यत्रोरू | ८९४ |
| निरवादि तदा धीरैः | ७३४ | निष्कम्पा समतारा या | ४४९ |
| निरस्तस्खलितौ श्वासः | ५१६ | निष्कर्षणं स्यान्निष्कासः | ५५९ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| निष्क्रामो निर्गम: प्रोक्त: | ४९६ |
| निष्पीडने त्वलक्तस्य | १७५ |
| निष्षेपणे तथा सत्यम् | २३२ |
| नि:सारे मृदुनि श्लक्ष्मे | २१ |
| निहिते पर पादस्य | ९९४ |
| नीकी नमनिका शङ्का | १५१५ |
| नीचैस्तैस्ते प्रयोक्तव्या: | ३२३ |
| नीतोर्ध्वतर्जनीकौ चेत् | २०२ |
| नीत्वा क्रमेणैकदा वा | १५९२ |
| नीत्वा यत्र करौ चित्रम् | १५९५ |
| नीव्यादिरचने त्वेष | ५५ |
| नूपुरं करणं पूर्वम् | १३९८ |
| नूपुरं च तत: कृत्वा | १३७५ |
| नूपुरं भ्रमरं चाथ | १३६३ |
| नूपुरं यत्र विक्षिप्तम् | १३६२ |
| नूपुराक्षिप्तके चार्ध- | १३९७ |
| नूपुराक्षिप्तके छिन्न- | १३५१ |
| नृत्तति प्रेष्यते दृष्टि: | १५३५ |
| नृत्यहस्तानुगां नृत्ये | १५५९ |
| नृत्याय देवरङ्गाया: | ६२४ |
| नृत्यज्ञैर्यदि रेच्यन्ते | ७५४ |
| नृत्ये चित्रमसौ भेद: | १५९९ |
| नृत्येत् ससौष्ठवं स स्यात् | १५९० |
| नृत्येद् विलासमधुरम् | १५३९ |
| नृत्येदनुगुणं यत्र | १५५२ |
| नृत्येदसौ तथा प्रोक्त: | १६०३ |
| नृत्ये यत्राङ्गसञ्चार: | १५४३ |
| न्यसेत् कटितटेऽथाङ्घ्री | १४७४ |
| **प** | |
| पक्षपाते पराधीने | २१८ |
| पक्षिणां पञ्जरेष्वेतौ | १९७ |
| पक्षिणां वरवध्वोश्च | ९८१ |
| पञ्चतालान्तरं पाद: | ९७७ |
| पञ्चभि: करणैरेभि: | १३९२ |
| पञ्चभिर्मूर्धभिर्यत्र | १५३२ |
| पञ्चमं तु कटीच्छिन्नम् | १३७० |
| पञ्चमो लघुमानेन | १५६७ |
| पञ्चविंशतिरित्युक्ता | ७१४ |
| पञ्चविंशतिसंख्याकै: | १३८६ |
| पञ्चसंख्यादिनिर्देशे | १९० |
| पञ्चेति चालकानि स्यु: | ८५१ |
| पतत्कनीनिका श्रान्ता | ५५२ |
| पतनेऽध: पतन्कार्य: | ८७ |
| पतन्तावुत्पतन्तौ तौ | ५२ |
| पताकीकृत्य तावेव | २८२ |
| पताकौ त्रिपताकौ वा | २६३ |
| पताकौ त्रिपताकौ वा | २६९ |
| पताकौ तु बुधा: प्राहु: | २७५ |
| पताकौ स्वस्तिकी कृत्य | ३११ |
| पताकौ स्वस्तिकौ कृत्वा | ६९१ |
| पताकौ हंसपक्षौ वा | २८६ |
| पतिता भ्रूरध: प्राप्ता | ४७९ |
| पतितोत्पतितौ शीर्षात् | ८२९ |
| पतेतां यत्र तत्प्रोक्तम् | ८०६ |
| पत्रवृन्तच्छेदने च | ७४ |
| पदद्वयनिकुट्टा च | १०८३ |
| पदद्वय निकुट्टा स्यात् | १०९३ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| पदद्वय निकुट्टा स्यात् | १०९२ | परिमण्डलितोत्तानः | १५ |
| पद्भ्यां तलानुगं गच्छेत् | १६०४ | परिमण्डलितो रक्ते | ५ |
| पद्मकोशस्य हस्तस्य | १९९ | परिवर्तितो भवेदेषः | १३ |
| पद्मकोशाभिधौ हस्तौ | २९० | परिवेशे भ्रमन्ती सा | ९६ |
| परः करो मूर्धदेशः | ८४० | परिवृत्त ततस्तस्मिन् | ११४० |
| परस्तु भ्रमरोऽथाङ्घ्रिः | १४६४ | परावृत्ततला तिर्यक् | ९६१ |
| परस्परमुखी भूय | ७७५ | परिवृत्तविधिर्ज्ञेयः | १४०६ |
| परस्य लीलया यत्र | ७८९ | परिवृत्तस्त्वविनये | ७ |
| परागधोमुखत्वेन | ७९१ | परिवृत्ताभिधा चासौ | ४०० |
| परागस्येन पात्रेण | ३४२ | परिवृत्तिप्रकारेण | १३८० |
| परागस्योऽपविद्धः स्यात् | ७३९ | परिवृत्या पुष्पपुटः | ७४८ |
| पराङ्घ्रिपृष्ठाभिमुखी | ९९० | परे करानुगं प्राहुः | ११४७ |
| पराङ्घ्रेर्जानुपर्यन्तम् | १०११ | परे तौ विधुतौ मूर्ध्नि | २९२ |
| पराङ्घ्रेरुद्धतस्यैषा | १०५२ | परे प्रसारणं बाह्वोः | ३०१ |
| पराङ्मुखः परित्राणे | १०९ | परे सर्पशिरो हस्तौ | ३१० |
| पराङ्मुखः परित्राणे | १५४ | परोक्षास्तेऽभिनेतव्या | ६७० |
| पराङ्मुखे लुठत्येक- | ८३९ | परोरुमूलक्षेत्रान्तम् | १००६ |
| पराङ्मुखोऽथ खेदे स | १४५ | पर्यायगजदन्ताख्यम् | ७६५ |
| पराङ्मुखो नृणां माने | १२५ | पर्यायाच्चेत् तत् तदोक्तम् | ८०० |
| पराङ्मुखौ च पूर्वाभ्याम् | २७९ | पर्यायादेकदा वा यद् | १५२६ |
| पराङ्मुखौ स्वस्तिकौ च | २५३ | पर्यायात् पतितश्चारी | ९८७ |
| परावृत्तः सोऽङ्गहारः | १३७२ | पर्यायाद् यत्र तत् प्रोक्तम् | ८४१ |
| परावृत्ताख्यमूर्ध्ना च | ६९३ | पर्यायेण तदा धीरैः | १४२२ |
| परावृत्ताख्यशीर्षेण | ६१८ | पर्यायेणोत्प्रकोष्ठं चेत् | ८०१ |
| परिग्रहे यथौचित्यम् | ४९ | पर्वतारोहणेऽथ स्यात् | ५३० |
| परिणामे पार्श्वमुखः | १८० | पल्लवौ वर्तितौ चेद् सा | — |
| परितो गतया दृष्ट्या | ६३१ | पश्चात्क्षेपाद्भवेदेषा | ११०० |
| परिधाने नाभिगतः | ७८ | पश्चात्तापादिषु प्रोक्तः | ५३१ |
| परिमण्डलितेनाथ | ६८७ | पश्चादपि तदा प्रोक्तम् | ९३१ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| पश्चान्निष्कुट्टितः स्थाने | १०९७ |
| पश्चात्प्रक्षिप्य पादं चेत् | १०५५ |
| पश्चात्प्राप्ता परावृत्ता | ४०८ |
| पश्चात् स्वस्तिकबन्धेन | ८२९ |
| पश्चात् बिलोड्य दोलावत् | ८३६ |
| पश्यन्तीमवनिं ज्ञेयः | १६०८ |
| पश्यन्त्यग्रे पार्श्वयोश्च | १५९५ |
| पाणिकण्ठकटीपाद- | १४२१ |
| पाणिकण्ठकटीपाद- | १४२२ |
| पाणिमेव विधं वामम् | १६०५ |
| पातयेच्चेत् पताकौ द्वौ | ११४५ |
| पातस्तु करुणे योज्यः | ४९७ |
| पातोऽधोगमनं तिर्यक् | ४९५ |
| पात्रं विश्रभ्य विश्रभ्य | १५४६ |
| पात्रं सविस्मयं यत्र | १५४२ |
| पात्रे यत्राप्रयत्नेन | १५३५ |
| पादं परोरुपर्यन्तम् | १००४ |
| पादः सूची भवेद् वामः | १४३७ |
| पादयुग्मकृता सैव | १०९८ |
| पादश्चेत्कुट्टितः पूर्वम् | १०९७ |
| पादश्चेत्कुट्टितः पूर्वम् | ११०३ |
| पादश्चेत्कुञ्चितः पृष्ठे | ११११ |
| पादाग्राभ्यां समानाभ्याम् | ९१९ |
| पादाग्रेण क्षितौ घातः | १०४६ |
| पादाग्रेण नटी मन्दम् | १५९३ |
| पादाग्रे सा तदादिष्टा | १०२७ |
| पादाङ्गुलीभिराक्रम्य | १५८७ |
| पादाङ्गुष्ठ करस्पर्शान् | १६०१ |
| पादालङ्करणे त्वेष | १४४ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| पादाहतौ तथा नाना | ३४७ |
| पादेऽङ्घ्री यत्र घूर्णन्तौ | ९९५ |
| पादेनैकेन यद्यन्यम् | १०७३ |
| पादौ स्वस्तिकबन्धेन | १०५७ |
| पानभोजनयोरेष | ३८८ |
| पार्श्वक्षेपनिकुट्टान्या | १०८४ |
| पार्श्वक्रान्तोऽथ सूच्यङ्घ्रिः | १४५१ |
| पार्श्वक्रान्तं निवेशं च | ११३१ |
| पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्यात् | १४५८ |
| पार्श्वक्रान्तोऽपरस्तद्वि | १४४५ |
| पार्श्वक्रान्तोऽप्यथो वामः | १४५२ |
| पार्श्वक्रान्तो भवेत् सव्यः | १४५६ |
| पार्श्वक्रान्तोर्ध्वजानुश्च | ९५८ |
| पार्श्वक्रान्तस्तु सव्यः स्यात् | १४३६ |
| पार्श्वक्रान्तस्ततो वामः | १४३८ |
| पार्श्वक्रान्तस्ततो वामः | १४४१ |
| पार्श्वक्रान्तस्ततो वामः | १४४४ |
| पार्श्वं गच्छन् पार्श्वगः स्यात् | ३५९ |
| पार्श्वजश्चाथ ते ज्ञेयः | १७० |
| पार्श्वतः क्षेपणादेवम् | ११०१ |
| पार्श्वतः प्रेक्षणं धीरैः | ५०८ |
| पार्श्वद्वयचरीमध्य | १०८७ |
| पार्श्वद्वयेन या किञ्चित् | ३४० |
| पार्श्वनम्रा भवेत् त्र्यस्रा | ३६४ |
| पार्श्वप्रसारिता नृत्ये | ४०५ |
| पार्श्वमण्डलिनो स्वस्व- | ७२८ |
| पार्श्वयुग्मेन वैशाख- | १३६५ |
| पार्श्वयोः क्रमतस्तत्र | ८४५ |
| पार्श्वयोर्दोलितौ तिर्यक् | २६७ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| पार्श्वयोः प्रथमं यात्वा | ८२४ | पिपीलिका स्वयं योज्यः | १७९ |
| पार्श्वयोर्लोडनैः प्राप्य | ८५४ | पिहितौ स्फुरितौ स्याताम् | ४८२ |
| पाश्वयोर्लोडितौ प्रोक्तौ | ८१९ | पीडने कुट्टने स्थाने | ३५१ |
| पार्श्वव्यत्यासतो यद्वा | ३१७ | पीडयित्वा स्थितोऽङ्गुष्ठः | ४५ |
| पार्श्वव्यत्यासतो लग्नौ | ३७७ | पंसामभिनयेद् धीमान् | ६६३ |
| पार्श्वव्यत्यासतो योज्ये | १०३ | पुंस्कृतः स्त्रीकृतो भावः | ६६५ |
| पार्श्वादत्यन्तमसकृत् | १०४ | पुटान्तरे प्रवेशो यः | ४९६ |
| पार्श्वानतेन शिरसा | ६२० | पुटान्तर्मण्डलावृत्तिः | ४९४ |
| पार्श्वान्तरं पातयेत् | १०१९ | पुटौ साहजिकौ स्याताम् | ४८३ |
| पार्श्वोपगमनाद् बाहुः | ३७९ | पुनः पुनः क्रिया या स्यात् | ७९६ |
| पार्श्वाभ्यां चेत्तदा धीरैः | १०५७ | पुनराहार्य तान्यग्रे | १५५० |
| पार्श्वाभ्यां चेत् तदा सद्भिः | १०३४ | पुनरेतद् द्वयं चाङ्ग | १३५२ |
| पार्श्वावलोकनैश्चित्र | ६६४ | पुनर्नितम्बदेशस्थौ | ७३३ |
| पार्श्वे तथागते शीघ्रम् | ३३९ | पुनश्चलुठितः स्थाने | ११११ |
| पार्श्वेऽथैककरोऽकस्मात् | ८०५ | पुनस्तन्मुख एव स्यात् | ८४० |
| पार्श्वेनोरो विनिक्षिप्य | १०७३ | पुम्भिर्नियुज्यते त्वेतत् | ८८१ |
| पार्श्वे न्यस्येत् तदा चारीम् | १००० | पुराटिका मिथोऽङ्घ्रिभ्याम् | १०५१ |
| पार्श्वे प्रसारित स्त्वेकः | २८७ | पुरुषे श्मश्रुदेशस्थः | ६७ |
| पार्श्वैकमिश्रिते द्वे स्तः | ९३५ | पुरुषैरङ्गहारास्ते | १४२० |
| पार्श्वोत्ताना कुन्तले तु | ९१ | पुरोगतास्तिरस्कारे | ११२ |
| पार्श्वोत्थितः प्रयोक्तव्यः | २२६ | पुरोङ्घ्रिः कुञ्चितो वामः | ९४१ |
| पार्ष्णिगः पार्श्वगोऽप्येवम् | ३४५ | पुरोदण्डभ्रमाख्यं च | ७५६ |
| पार्ष्णिजङ्घोरुसंश्लिष्ट | ९३० | पुरोदण्डभ्रमाख्ये तत् | ७७८ |
| पार्ष्णिदेशे स्थापयित्वा | १००९ | पुरोमुखी सूचिते सा | १०१ |
| पार्ष्णिपार्श्वगतेऽन्यस्य | ९३३ | पुरः क्षेपनिकुट्टा च | १०८४ |
| पार्ष्णिपार्श्वगताख्येन | १०२९ | पुरः पश्चात्सरा चारी | १०८२ |
| पार्ष्णिरष्टविधा ज्ञेया | ५९० | पुरः पश्चात्सरा चारी | १०८९ |
| पार्ष्णिश्लिष्टौ तिरश्चीनौ | ९२४ | पुरः पुरः कुञ्चितश्चेत् | १०७१ |
| पार्ष्णिः स्याच्चरणस्याग्र- | ९९० | पुरतः पार्श्वयोस्तद्वत् | ८०२ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| पुरः प्रसार्यतः पादौ | १०५३ |
| पुरतो धावतो यस्मिन् | ८१२ |
| पुरतो यत्र हंसीव (हंसक०) | — |
| पुरश्चेत्सर्पतस्तूर्णम् | १०२७ |
| पुरः सरति यत्राङ्घ्रिः | १०५४ |
| पुरस्तात्पार्श्वयोस्तिर्यक् | ८५२ |
| पुरस्तात्स्वस्तिकौ भूत्वा | ८५४ |
| पुरस्तादन्तरिक्षेऽङ्घ्रिम् | १०६६ |
| पुरस्तान्निसृतिर्यत्र | ७७८ |
| पुरस्ताल्लुठिता पृष्ठ- | १०८६ |
| पुरस्ताल्लुठिता सा स्यात् | १११० |
| पुरश्चलन्नुच्चनीच | १२४ |
| पुष्पगुच्छाग्रहेऽप्येतत् | ९१४ |
| पुष्पधान्यजलादीनाम् | २३५ |
| पुष्पाञ्जलौ प्रसादे च | २३५ |
| पुष्पावचयने हारे | ७४ |
| पुष्पितेऽधोमुखः कार्यः | २९ |
| पूर्णविशोकमल्लेन | ५६४ |
| पूर्णौ कपोलौ षोढेति | ५६१ |
| पूर्वं पूर्वमुपक्रान्ता | १५६० |
| पूर्वभागं शरीरस्य | ९८८ |
| पूर्वमूर्ध्वं विधायैकम् | ८२२ |
| पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यान् | १३४३ |
| पूर्वसूरिभिरादिष्टा | ७३१ |
| पूर्वे पार्श्वे ततः पश्चात् | ७७९ |
| पूर्वोक्तं गजदन्तं तु | २३३ |
| पृथगुत्तानितौ चेत् तौ | २६४ |
| पृष्ठतः सरणात् पृष्ठा- | ३८० |
| पृष्ठतो याति यः पार्ष्ण्या | ३५८ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| पृष्ठप्रसृतपादस्य | १००८ |
| पृष्ठाद्यं स्वस्तिकं चाथ | १३८१ |
| पृष्ठायातावुभौ कार्यौ | ४० |
| पृष्ठोत्तानतलं पार्ष्णिः | ८७१ |
| पृष्ठोत्तानतलो यत्र | १०३० |
| प्रक्षप्रद्योतको यद्वा | १०२५ |
| प्रचुरः स बुधैरेवम् | ३२२ |
| प्रचारयोग्यतामात्रात् | ९७१ |
| प्रच्छेदकः शेषपदम् | १४८७ |
| प्रणामेऽधः पतन्ती सा | १०२ |
| प्रतिक्षणं यथा नेत्रम् | ५८८ |
| प्रतिद्वन्द्विनि ते स्याताम् | १०० |
| प्रतिलोमानुलोमाभ्याम् | ८०३ |
| प्रतिषेधे तथा स्त्रीणाम् | ९०४ |
| प्रतीपं यायिनी जङ्घा | ४०४ |
| प्रतोदग्रहणेऽप्येष | ६५ |
| प्रत्यक्षा देवताः साक्षात् | ६७३ |
| प्रत्यक्षा येऽभिनेयास्ते | ६७१ |
| प्रत्यङ्गत्वं कथं तेषाम् | ४२३ |
| प्रत्यङ्गत्वं भवेदेवम् | ४२५ |
| प्रत्यङ्गैश्च करा योज्या | ३१९ |
| प्रत्यपादि तदा धीरैः | ७१७ |
| प्रत्यालीढं भवेत्स्थानम् | ९०० |
| प्रथमेऽथ बुधैरुक्तः | ५२९ |
| प्रदक्षिणं भ्रमन् कार्यम् | १६२ |
| प्रदोषं दिवसं रात्रिम् | ६२६ |
| प्रयत्नेन विना यः स्यात् | ५२७ |
| प्रयुज्य स्वस्तिको यत्र | ११४९ |
| प्रयोक्तव्यमिति प्राहुः | १३४३ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| प्रयोक्तव्या इमाश्चार्यः | — | प्रसृताश्च तथा कुञ्चन् | ५९२ |
| प्रयोक्तव्याः शिवस्याग्रे | १४२० | प्रसृताऽस्यान्नताग्रा या | ५४९ |
| प्रयोक्तव्यौ करौ बाला | १४९ | प्रसृतौ त्वायतावुक्तौ | ४८५ |
| प्रयोगे चापवज्रादेः | ८९५ | प्रसृतौ पार्श्वयोः पूर्वम् | ८११ |
| प्रवेशनं समुद्वृत्तम् | ४९२ | प्रहारान् विविधांश्चैव | ६५१ |
| प्रवृद्धनामासौ वायुः | ५२२ | प्रह्लादनेन गात्रस्य | ६४५ |
| प्रसन्नस्यस्तथा स्वस्थ | ६३३ | प्रांशुग्राह्य फलादीनाम् | ९२० |
| प्रसन्नो मुखरागः स्यात् | ९०१ | प्राकृतं भ्रमणं पातः | ४९२ |
| प्रसरति दिनमणितेजसि | १४९३ | प्राकृतं समभावेषु | ४९७ |
| प्रसरत्यग्रदेशे यः | ३७२ | प्राङ्मुखः कम्पितो वक्षः | २१६ |
| प्रसर्पितं तलाद्यं तु | १३७८ | प्राचुर्याद् भौमचारीणाम् | १४२७फु० |
| प्रसादकं सरोषस्य | १५०९ | प्रातिलोम्येन गात्रस्य | ७४० |
| प्रसारितं मुदादौ तत् | ३३५ | प्रातिलोम्येन यद्वेदम् | ८३६ |
| प्रसारितः पार्श्वयोश्चेत् | ३८३ | प्राधान्यं यत्र पादस्य | १०२२ |
| प्रसारितः पुनस्तिर्यक् | ९३८ | प्राप्तो वसन्तसमयः | १५१० |
| प्रसारितभुजो मुष्टिः | ७०० | प्रायः प्रयुज्यतं धीरैः | ४११ |
| प्रसारित मुखे या वा | ५५१ | प्रायशोऽमूः प्रयुज्यन्ते | १११५ |
| प्रसारितां दधानौ यौ | ३०९ | प्रार्थने देवपूजायाम् | १८५ |
| प्रसारिता अधः क्षिप्ताः | ५९३ | प्राहापकुञ्चितामेनाम् | १०४१ |
| प्रसारिताधोमुखाख्य- | ३७० | प्राहुः परे त्वलक्ष्ये तौ | ४९० |
| प्रसारिते तु ये स्याताम् | ८८४ | प्राहोत्तानोऽग्रगं भट्टः | ६०१ |
| प्रसारितो भवेद् यत्र | ९८९ | प्रियं स्वप्ने समालोक्य | १५०५ |
| प्रसारितौ तथोत्तान | २७० | प्रियेण यदसंलापः | ४५१ |
| प्रसार्य पुरतः किञ्चित् | ९९८ | प्रीतिकोपे नवेर्ष्यायाम् | १४७ |
| प्रसार्येत पुरो यत्र | १०२८ | प्रेक्षणे गरुडादीनाम् | ८९६ |
| प्रसुप्ताभिनये प्रोक्तः | ५२६ | प्रेरणे वाजिनामाजौ | ८९३ |
| प्रसूनोद्धरणे वृन्ता | १७२ | प्रेषणे कुङ्कुमादेस्तु | ७९ |
| प्रस्पन्दमानपक्ष्माग्रा | ४५० | प्रोच्यतेऽशोकमल्लेन | १४८९ |
| प्रसृताङ्गुलिकः पादः | ३४७ | प्लुतमानकृतानर्घ- | १५८१ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| प्लुतमानकृताङ्घ्रिश्चेत् | १५७९ |
| **ब** | |
| बकाद्यः प्लवपूर्वश्च | १५६६ |
| बद्धया स्थितिरेवं चेत् | ११५३ |
| बद्धां विरच्य चारीं चेत् | १००० |
| बद्धा तु स्वस्तिकम् पूर्वम् | ८४२ |
| बलिदाने भोजने च | १८५ |
| बहिः क्षेपाद् भवेत् क्षिप्ता | ४०० |
| बहिर्गताः तिरश्चीना | ४०० |
| बहिर्गता मिथोयुक्ता | ५९० |
| बहिर्मण्डलगः स्थित्वा | ८१८ |
| बहिर्यो निम्नतां प्राप्तः | ४१८ |
| बहिस्थिताङ्गुलिस्तु स्यात् | २२२ |
| बहुधा चालनानि स्युः | ७५४ |
| बहुयानप्रसाध्येऽर्थे | २४२ |
| बालग्रहे सुगादाने | ७३ |
| बालव्यजनकं चान्यत् | ७५९ |
| बालव्यजनचालाख्य | ८२५ |
| बालसर्पे भवेद्व्याः | ९० |
| बालाह्वानेऽप्यसावेव | ४३ |
| बालेन्दुदर्शने कार्यः | १२५ |
| बाष्पाविलाल्पसञ्चारा | ४४३ |
| बाहुकट्यूरुपादानाम् | १५१८ |
| बाहुः प्रसारितस्तिर्यक् | ३०० |
| बाहुरभ्यन्तराक्षेपात् | ३८७ |
| बाहुरान्दोलितोऽन्वर्थः | ३८५ |
| बाहुल्यान्नर्तनारम्भे | ११३८ |
| बाहुशीर्षसमुत्थोऽयम् | १२३ |
| बाह्यपार्श्वसुसंश्लिष्टौ | २३४ |
| बाह्यपार्श्वेन संस्पृश्य | १०६३ |
| बिभ्रती सर्वतश्चित्रम् | १३०२ |
| बिभ्रतोः स्वस्तिकाकारम् | ७८२ |
| बिलोड्योरःस्थले हस्तौ | ८५६ |
| बीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टौ | ४२६ |
| बीभत्सा दृष्टिरुक्ता सा | ४३९ |
| बुधैर्योज्यो विमर्दे तु | २३ |
| बुधैर्योज्योऽथ विश्वासे | ३१ |
| बृहन्मण्डलपूर्णौ चेत् | ७९४ |
| ब्राह्मस्थ शुकतुण्डेन | ६९८ |
| ब्राह्माख्यस्थानकेनापि | ६८९ |
| ब्राह्मो समोऽङ्घ्रिरेकोऽन्यः | ९३७ |
| ब्रुवेऽहं तानि कर्माणि | ४९७ |
| **भ** | |
| भञ्जने कार्मुकादीनाम् | ५० |
| भट्टाभिनवगुप्तस्य | ९०८ |
| भद्रे परस्मिन् प्रथमे | १०५ |
| भयहर्षरोदनवदन | १५०३ |
| भयानके तु चलनम् | ४९८ |
| भयानके सबीभत्से | ५८४ |
| भवन्ति वर्तना मुष्टिः | १७५२ |
| भवेच्चेद्धस्तको मुख्यः | १०२२ |
| भवेत्तज्जृम्भणे हास्ये | ३८९ |
| भवेदन्ते तदा धीरैः | १४८५ |
| भवेदर्धनिकुट्टाख्य | १४०१ |
| भवेत् सव्योऽङ्घ्रिरुद्वृत्तः | १४५३ |
| भवेद् द्विचरणश्चाप | १४७१ |
| भानौ चन्द्रे च कर्तव्या | ९९ |
| भारस्योद्वहने स्तम्भ- | २२९ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| भालवर्तनिकोरःस्थ | ७११ | भूरिनिर्भुजचेष्ठाभिः | ८६१ |
| भालस्थोऽप्यन्यपार्श्वाच्चेत् | १६१ | भूषावलित सर्वाङ्गा | १५६० |
| भावार्द्रहृदयोपेता | १५३० | भूष्यन्तेऽङ्गानि ये स्तानि | ४२३ |
| भालेऽलक्तकमञ्जिताधरमुरः | १४९४ | भूस्थापसारणे भूमि | ३५१ |
| भावं विनिर्दिशेत् चैवम् | ६५७ | भूस्थितार्थग्रहे लोभे | १९४ |
| भावप्रकाशकैरङ्गैः | | भेदान् कतिपयानस्य | १११८ |
| भावार्थे तिष्ठतेर्धातोः | ८६४ | भौमाकाशिकभेदानाम् | १४२७ फु० |
| भावानुभावसंयुक्तान् | ६५५ | भौमानि मण्डलानीति | १४२७ फु० |
| भाषासिन्धुभवाच्चैतत् | १४९५ | भौमाकाशिकं चेति | १४२७ फु० |
| भिद्यन्ते दशना यैस्तु | ५५२ | भ्रमणाद् भ्रमितः खड्गः | ४२१ |
| भिन्नोच्चा स्यान्मनाग्वक्रा | १५१ | भ्रमणे तु गदाखड्ग- | ३७८ |
| भीतिकासश्रमश्वास- | ३३१ | भ्रमन्त्यौ संयुते भ्रान्तौ | ९७ |
| भुग्नमुद्वाहि विवृत्तम् | ५७४ | भ्रमन् प्रदक्षिणे सद्भिः | १६३ |
| भुजङ्गत्रासितं पाणिम् | १४१२ | भ्रमरं च तदावर्तम् | १४२७ फु० |
| भुजङ्गत्रासितं कुर्याद् | १४०९ | भ्रमरं दण्डपक्षं च | ११२३ |
| भुजङ्गत्रासितांश्चारीम् | १४४६ | भ्रमर नूपुरं चैव | १३४८ |
| भुजङ्गत्रासितोन्मत्ते | १३६५ | भ्रमरं शकटास्यं च | १४२९ |
| भुजङ्गत्रासितोऽन्यः स्यात् | १४५० | भ्रमरीभिश्च सम्प्रोक्तम् | १५५३ |
| भुजङ्गत्रासितो ऽप्येष | १४६० | भ्रमरेण सहेमानि | १४०४ |
| भुजङ्गाञ्चितकं दण्ड- | १३७५ | भ्रान्तिरामणिबन्धं सा | ७२१ |
| भुजङ्गाञ्चितमाक्षिप्तः | ११२४ | भ्रान्त्वा च प्रसृतो यत्र | १०१० |
| भुजांसकूर्पराग्रेषु | ३०७ | भ्रान्त्वा प्रसारणं केचित् | ३१० |
| भुजावंसान्तरं गत्वा | ८०६ | भ्रामयित्वा विलासेन | ८२७ |
| भुजावधि विलासेन | १५५४ | भ्राम्यते सकला यत्र | १००१ |
| भुवो विशाखदैवं तत् | ८९३ | भ्रुवयोः स्तनयोः कट्याः | १५३३ |
| भूपालदर्शने तौ स्तः | १२७ | भ्रुवा सा कुञ्चिता प्रोक्ता | ४७८ |
| भूमिघातादपि स्त्रीणाम् | ६६२ | भ्रूरेका ललितोक्षिप्ता | ४७६ |
| भूमिप्राप्तं जानु नतम् | ४१० | म | |
| भूमिश्लिष्टैर्यदा पादैः | १४७९ | मंत्रेण मुदेशस्थ | ३६ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| मकरं दक्षपार्श्वस्थम् (हंसक०) | — | मत्तल्लि च नितम्बं च | १४१४ |
| मकराख्या ततो ज्ञेया | ७१० | मत्तल्लि चार्धमत्तल्लि | ११२२ |
| मङ्गल्यं दधिदूर्वादि | १०८ | मत्तल्लिरर्धमत्तल्लि | १४६९ |
| मणिबन्धप्रकोष्ठांस- | ७९० | मत्तल्ल्यथो गण्डसूचि | १४१५ |
| मणिबन्धप्रदेशस्थ: | १४५ | मत्तक्रीडस्तथा विद्युत् | १३४३ |
| मणिबन्धसमायुक्तौ | २९१ | मत्स्यग्रहासक्तचित्त | १५९३ |
| मणिबन्धावधिभ्रान्ति: | ७१५ | मदिरा सा मदे धीरै: | ४७२ |
| मणिबन्धावधिप्रोक्ता | ७४९ | मदनप्रभुकोपतापिताया | १४९१ फु० |
| मणिबन्धावधिभ्रान्तौ | ७३२ | मदस्खलितमत्तल्लि | १३४६ |
| मणिबन्धासिकर्षाख्यम् | ७५८ | मधुरं सविलासं च | १५१९ |
| मणिबन्धासिकर्षाख्यम् | ७८९ | मध्यचक्राभिधा चारी | १०८३ |
| मणिबन्धस्थितौ स्याताम् | २४३ | मध्यप्रसारिताङ्गुष्ठौ | ३१० |
| मणिबन्धे यदैकस्य | ८१८ | मध्यभावेन मध्यस्थम् | ६१९ |
| मणिबन्धौ जानुनी च | ४२५ | मध्यस्थापनकुट्टेति | ११०३ |
| मण्डलभ्रमणं प्रान्ते | १४६८ | मध्यमाङ्गुष्ठयोर्यत्र | ४१ |
| मण्डलस्वस्तिकं त्वाद्यम् | १४१३ | मध्यमायां स्थिता पृष्ठे | १३३ |
| मण्डलस्वस्तिकं लीनम् | १११९ | मध्यमे सात्विके प्रोक्त: | ३२१ |
| मण्डलस्वस्तिकमिदम् | ११४९ | मध्यसाम्ये कटिस्थौ द्वौ | १४७ |
| मण्डलस्वस्तिकौ यात्वा | ८३७ | मध्यस्थ तारकं सौम्यम् | ५०१ |
| मण्डलाकारसंप्राप्तौ | ८४९ | मध्यस्थ स्याद् विचारे तु | ५१ |
| मण्डलाकृतिसंभ्रान्तौ | ८२० | मध्यस्थापनिकुट्टा च | १०८५ |
| मण्डलाग्रं तत: पश्चात् | ७५९ | मध्यस्य वलनाच्छिन्ना | ३४१ |
| मण्डलान्यन्तरिक्षाणि | १४२८ | मध्ये गते स्वस्तिकोऽसौ | १६ |
| मण्डिका सा तदा प्रोक्ता | १५९७ | मध्ये निवेशित: पश्चात् | ११०७ |
| मञ्जुलैरुज्ज्वलैर्वेषै: | ६७५ | मध्ये निवेशितश्चाथ | ११०३ |
| मता नमनिका धीरै: | १५४९ | मध्ये मध्यप्रदेशस्थ: | ४८ |
| मतान्तरे कामिनां सा | २३८ | मनाक्कलितयोरूर्ध्वम् | २६६ |
| मत्तक्रीडोऽथ गणना | १३५० | मनाक् पार्श्वनतावेतौ | ८७ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| मनाक् सुललितं तिर्यक् | १५२८ | मिथोऽभिमुखतां प्राप्य | ८११ |
| मनाक् स्रस्तपुटा दृष्टिः | ४७१ | मिथोऽभिमुखतां यातौ | २६१ |
| मनाक्स्रस्तोर्ध्व पुटा | ४४२ | मिथोयुक्तौ वियुक्तौ च | ५९१ |
| मनागञ्चितपक्ष्माग्रा | ४५३ | मिथो लग्नकनिष्ठौ च | ९२२ |
| मनागभ्यन्तराविष्टा | ४३३ | मिलिते प्रोचिरे लक्ष्य– | ९७६ |
| मनागाकुञ्चितप्रान्ता | ४४२ | मुकुलं हस्तमारभ्य (हंसक०) | — |
| मनागुत्प्लुत्य चेत्पादौ | ९८७ | मुक्तादीनां गुणक्षेपे | १७३ |
| मनाग्वक्रीकृतो नम्रः | ३८४ | मुखदेशगतावेतौ | १४८ |
| मनाङ मनोहरं केचित् | १५२९ | मुखदेशस्थितः पाने | १४४ |
| मनोवाक्कायचेष्टाभिः | १४९६ | मुखदेशस्थितोऽथैकः | १३९ |
| मनोहरं यदग्राम्यम् | १५३४ | मुखदेशाद् विनिर्गच्छन् | १५७ |
| मन्थस्याकर्षणे योज्यः | ७७ | मुखदेशस्थितः प्रश्ने | १० |
| मयणप्यहुकोवताविनाए | १४९१ | मुखदेशे तु पार्श्वस्थ | ११४ |
| मयापि विदितागसम् | १४९८ | मुखप्रदेशमागच्छन् | १११ |
| मयूरललितं सूची | ११३० | मुखरागश्चतुर्धोक्तः | ५८१ |
| मयूराद्यं ततः पश्चात् | १३७७ | मुखरागो नियुक्तोऽसौ | ५८५ |
| मयैवमेते संप्रोक्ता | ७०४ | मुखसंकोचने त्वेष | १८२ |
| मर्दिताग्रमथाग्रं तु | २२ | मुखस्थितो भवेदेष | ३९ |
| मर्दिताङ्गुष्ठकः कार्यः | २ | मुखस्यातिविकाशेन | ६१७ |
| मस्तकाच्चेद्भ्रमत्यूर्ध्वम् | ११९ | मुखाद् यो निर्गतो दीर्घ- | ५२६ |
| मातृकोत्करसम्पाद्यम् | १३४३ | मुखाग्रसंश्रितौ कार्यौ | १२९ |
| माधुर्यधैर्यगाम्भीर्य- | ४३७ | मुखान्तरित एष स्यात् | ११६ |
| माने भवेत्तृतीयस्तु | ३८३ | मुख्या पादक्रिया चास्याम् | ९८० |
| मायासङ्गमभङ्गभीरु– | १५०६ | मुग्धां स्निग्धां यदा दृष्टिम् | १५५८ |
| माराधितोऽपि नहि | १५१० | मुदितेनापि मनसा | ६७५ |
| मिथः श्लिष्टास्तु सांगुष्ठाः | ५९८ | मुधा विनार्थे सिंहे | २०८ |
| मिथः संमुखतां प्राप्तौ | २८२ | मुनिस्तु यानि चत्वारि | ८६८ |
| मिथोंसवीक्षाबाह्यं तत् | ७८५ | मुडुपोपपदाश्चार्यः | १०८१ |
| मिथोंसवीक्षाबाह्याख्यम् | ७५७ | मुष्टिकं स्वस्तिकावेवम् | २९७ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| मुष्टिमूर्ध्वकनिष्ठे तु | ४४ |
| मुहुरन्तर्बहिः क्षेपात् | ३८७ |
| मुहुर्दर्शनसंश्लेष- | ५५५ |
| मुहुर्लग्नपुटा या तु | ५१४ |
| मुहुर्मुहुरथ द्रव्य- | १८८ |
| मुहुर्मुहुः संनिपात्य | १५८७ |
| मुहुर्मुहुः समुल्लङ्घ्य | १५४६ |
| मुष्टिर्विलुठितस्त्वेकः | ७९७ |
| मूर्च्छातिवर्षयोरुष्ण– | ४८७ |
| मूर्च्छितादिष्वपि प्रायः | ३२६ |
| मूर्च्छिते तन्द्रिते भीते | ३२४ |
| मूर्च्छिते तु विलीनोऽथ | ५२९ |
| मूर्ध्वं देशोपरिकरौ | ७९५ |
| मूलाग्रपार्श्वसंश्लेषात् | २१४ |
| मृगप्लुता तदा चारी | १००२ |
| मृदङ्गप्रमुखैर्वाद्यैः | १४१८ |
| मृदुभङ्गा तु यैका भ्रूः | ४७८ |
| मृगकर्णविनिर्देशे | ९ |
| मृगशीर्षौ हंसपक्षौ | २५३ |
| मेघपंक्तौ यथा विद्युत् | १५७० |
| मेघप्रच्छादिते तस्मिन् | २४६ |
| मोक्षणं रक्षणं क्षेपः | ६०६ |
| मोक्षणे तोमरस्यासौ | १० |
| मोट्टायिते कुट्टमिते | ४७८ |
| मौनविसर्जनगर्व- | ९०५ |
| य | |
| यतः पादस्ततः पाणिः | १०२३ |
| यत्कुचादौ कामिनीनाम् | १९० |
| यत्तन्नतं श्रमालस्य | ९४४ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| यत्र चित्रकृतं कान्तम् | १५०७ |
| यत्र तत्कुचदेशस्थ | ११४० |
| यत्र तत् स्थानमादिष्टम् | ९२१ |
| यत्र तन्मुनिभिः क्रान्तम् | १४३९ |
| यत्र तिर्यक् पताकाख्यम् | १५८३ |
| यत्र त्रेताग्निसंस्थानाः | २० |
| यत्र नृत्येऽनयोर्योगः | १५६१ |
| यत्र पक्षौ समानीयौ | १५८९ |
| यत्र पात्रं कालहीनम् | १४९५ |
| यत्र पात्रं द्रुतं गात्रम् | १५२९ |
| यत्र पात्रं मुखे कुर्यात् | १५६४ |
| यत्र पादौ भवेदग्र- | ९७९ |
| यत्र पार्श्वमुखौ पूर्वम् | ८२३ |
| यत्र पार्ष्ण्या निजे पार्श्वे | १०१३ |
| यत्र वक्रानामिका स्यात् | ३४ |
| यत्र विद्धाभिधा चारी | ११५१ |
| यत्र सन्तापलग्नान्ता | ४५९ |
| यत्र सा दण्डपादाख्या | १०६१ |
| यत्र साधारणमदः | ८१६ |
| यत्र सा स्यात्तिरश्चीन | ११०८ |
| यत्र सोक्ता तदा चारी | १०५९ |
| यत्र स्तस्तत् तदादिष्टम् | ८० |
| यत्र स्पृशेन्मुहुः सोक्ता | १०४३ |
| यत्र स्वकायाभिमुखम् | १००९ |
| यत्राकुञ्चितपादाभ्याम् | १०४७ |
| यत्राङ्गना खण्डितास्ते | १४९२ |
| यत्राङ्गना गीतताल- | १५३३ |
| यत्राङ्गनाः परित्यक्त- | १४९७ |
| यत्राङ्गुल्याः कनीयस्या | ९८१ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| यत्राङ्घ्रिः कुट्टितः पूर्वम् | ११०४ | यथौचित्यं हस्तकाद्यैः | ६९९ |
| यत्राङ्घ्रिमेकमुद्धृत्य | ९१५ | यन्मनागायतं वक्त्रम् | ५७९ |
| यत्राङ्घ्रिरुद्धृतो मूर्तिः | १०७४ | [यदा] कन्दर्पतप्तांगी | १४९० |
| यत्राङ्घ्री नूपुरस्थाने | ९२२ | यदा करौ कर्कटाख्यौ | ९१७ |
| यत्राङ्घ्री रेचितौ सा स्यात् | १०३२ | यदा कलाकलापज्ञैः | १५४१ |
| यत्रान्यचरणे नैषा | १०४७ | यदाग्रे पृष्ठतश्चैव | १६०९ |
| यत्रान्यजानुतः पृष्ठे | १०६७ | यदाङ्घ्रि कुट्टितं पार्श्वात् | ११०२ |
| यत्रान्याङ्घ्रि समुद्धृत्य | १०१५ | यदा तदा मताऽन्वर्था- | २७४ |
| यत्रासौ कथिता चारी | १०७२ | यदा तलमुखौ हस्तौ | ७४५ |
| यत्रासौ पञ्चमो भेदः | १५७८ | यदा [त्व] मन्दमुल्लोल- | १५४३ |
| यत्रासौ परिवृत्ताद्यः | १४०५ | यदा नतोन्नतौ स्याताम् | २७४ |
| यत्रेषद् वलितं गात्रम् | ९१६ | यदा निकुञ्चितं स्कन्ध- | ११५० |
| यत्रैतत् समपादाख्यम् | ८९० | यदा नृत्यति हंसाद्यः | १६१७ |
| यत्रोभयोः प्रधानत्वम् | १०२२ | यदा नृत्येङ्गनाङ्गानाम् | १५६३ |
| यत्रोरभ्रकसंबाध- | ८१७ | यदा पताकौ संश्लिष्टौ | २५१ |
| यत्रोरुस्ताड्यते चारी | १०३७ | यदापसरतोऽसौ स्यात् | ९९६ |
| यत्रोर्ध्वाधोमुखौ तिर्यक् | ८३३ | यदा प्रसारयेद् दण्ड- | १००९ |
| यत्रोर्ध्वोऽधोमुखस्त्र्यस्रम् | ७८० | यदा मण्डलतो हस्तौ | ८५३ |
| यत्रोद्वृत्तेन पादेन | १०५२ | यदा यत्र तदा सद्भिः | १०४९ |
| यत्रोर्व्यां पातयेत्पार्ष्ण्या | १०१९ | यदा यत्र तदा स स्यात् | १९९ |
| यत्रोर्वीं कुट्टयेत्तेन | १०५५ | यदा यद्वा स्वस्तिकौ तौ | २३६ |
| यथाभिनेयं स्थानं हि | ९०७ | यदा यदासौ खटकामुखः | ७३ |
| यथा मन्दानिलायातात् | १५५८ | यदा याभिमुखीभूय | ३६८ |
| यथारसं यथाभावम् | १८९ | यद्वक्षः सौष्ठवोपेतम् | ३२८ |
| यथालक्ष्मविनिष्पन्न- | ६०८ | यदा वामोऽर्ध्यधिकः स्यात् | १४८२ |
| यथासंभवमेतस्मिन् | ७९ | यदा समस्य वामाङ्घ्रेः | ९३९ |
| यथोचितं बुधैर्योज्यः | १५ | यदा स्यातां तदा प्राप्तौ | २९६ |
| यथोचित्य योजनीयः | १८३ | यदा स्यातां तदा प्रोक्ता | ७३५ |
| यथोल्लुकसितेनेष्टम् | ६१७ | यदा हस्तौ कपोताभौ | २१४ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| *श्लोकार्ध* | *श्लोक संख्या* | *श्लोकार्ध* | *श्लोक संख्या* |
|---|---|---|---|
| यदि द्रुतं तदालाता | १०६९ | या दृश्यमापिवन्तीव | ४३१ |
| यदीक्षणं स्वभावस्थम् | ५०६ | या दृष्टिः कुञ्चिता सोक्ता | ४५८ |
| यदुन्नतं पुरः स्तब्धम् | ३२९ | या नर्तनेऽङ्घ्रिजङ्घोरु- | ९५० |
| यदूर्ध्वं दर्शनं सद्भिः | ५०७ | या यस्य नियता लीला | ६८६ |
| यदैको हंसपक्षस्तु | ३०० | यावन्न निर्गतो रङ्गात् | ६८६ |
| यद्येष पृष्ठ एव स्यात् | १०७९ | या विश्रान्तिं क्वचिन्नैति | ४६६ |
| यद्यप्यस्ति तथाप्येते | १४१६ | यावुन्नतौ कपोलौ तौ | ५२६ |
| यद्गतागतविश्रान्ति | ४३२ | या षड्भिरधिकाभीषाम् | १३७९ |
| यद्वाक्यं तद् द्वि[मू]ढाख्यम् | १५०० | या स्थितिर्ललिता भूमौ | १५५५ |
| यद्वा द्वादशभिर्यत्र | १५५६ | या स्रस्तोर्ध्वपुटा सास्रा | ४३४ |
| यद्वानयोर्मिलित्वामू | २७१ | युक्तं चित्ररसैर्वाक्यम् | १५११ |
| यद्वापगच्छतो यत्र | १०५८ | युक्तोऽन्वर्थोऽद्भुते वीरे | ५८३ |
| यद्वा हारो हरस्यायम् | १३४३ | युगपच्चेत्सूची पादौ | ९३१ |
| यन्निम्नं शिथिले वक्षः | ३३० | युगपत् क्रमतो यद्वा | ७९२ |
| यन्निष्कम्पमृजूत्क्षिप्तम् | ३३२ | युगपत् क्रमतो वा स्यात् | ७२८ |
| यः पादोऽसावग्रतल- | ३५० | युगपल्लुठतो यत्र | ७८१ |
| यवादिताडने दण्डे | ५८ | ये करास्त्वान्तरं भावम् | ३२६ |
| यष्टिग्रहे किमर्थे च | ४७ | येनाभिव्यज्यते चित्त- | ३२६ |
| यस्मिन् प्रवर्तते तत्स्यात् | ८१८ | ये यक्षा राक्षसा दैत्याः | ५७० |
| यस्यां सैषा चाषगतिः | ९८४ | ये वक्षः स्वस्तिककटी | १३८८ |
| यस्यां निकुट्टितः पादः | १०९४ | योगे स्तोके निर्धने च | १७६ |
| यस्याभितस्ततः पादौ | १०३८ | योग्यतायां च कर्तव्यः | १५५ |
| या कायमायतीकृत्य | ९१९ | योङ्गोपाङ्गकरप्रचारकरणैः | १११६ |
| या कुञ्चितपुटातीव | ४३३ | योजनीयो यथौचित्यम् | १०६ |
| या ग्रीवा विधुत भ्रान्ता | ३६९ | योज्यं करणमेकैकम् | १४१८ |
| याग्रे प्रसारिता जङ्घा | ४०९ | योत्कृष्टमारुता नासा- | ५१२ |
| या जिह्वा लीढसृक्का सा | ५५० | यो दधात्युन्नतावोष्ट- | ५४० |
| या जिह्वा लेढि दन्तोष्ठम् | ५४८ | योद्विग्ना दृश्यमालोक्य | ४४७ |
| या त्वन्तर्बहिरङ्गुष्ठ- | १४२५ | योऽधरो दशनैर्दष्टः | ५३९ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| यो नासया शनैः पीतः | ५२३ |
| यो निःश्वासः प्रबृद्धः सन् | ५२२ |
| यो निष्क्रान्तोऽतिदुःखेन | ५२५ |
| यो भवेच्चरण पार्श्वम् | ८८३ |
| यो भवेन्निष्क्रियः स्तब्धः | ३९४ |
| यो भूमिस्थितपार्ष्णिः सन् | ३४७ |
| यो मध्यगतया पार्ष्ण्या | ३९८ |
| योऽर्धचन्द्राकृतिधरः | १४२ |
| योल्लसल्लग्नपक्ष्माग्रा | ४५७ |
| योषितां स्वैरगमने | ३९६ |
| यौ तौ चलौ शोकचिन्ता | ५२० |
| **र** | |
| रङ्गं प्रविश्य यैः स्थित्वा | ८६३ |
| रङ्गावतरणारम्भे | ९०३ |
| रङ्गावतरणारम्भे | ९०६ |
| रङ्गे पुष्पाञ्जलिक्षेपे | ११४१ |
| रचयित्वा चतुर्दिक्षु– | १३७९ |
| रचयेच्चातुरी योगात् | १३८१ |
| रचयेत् त्रिश्चतुः पञ्च- | १३४६ |
| रचयेद् हस्तकः पात्रम् | १५५३ |
| रच्येते रेचितौ यत्र | ७२३ |
| रञ्जने सविलासेऽपि | ५३६ |
| रथचक्रकृती तिर्यक् | ८४४ |
| रथचक्रा तलोद्वृत्ता | ९६१ |
| रमणीयमिदं यत्र | ८३४ |
| रमात्र देवता तत्स्यात् | ९०३ |
| रम्यवर्णनिबद्धं यत् | १५०२ |
| रवेर्भवेदुपस्थाने | ३७७ |
| रसभावसमाकीर्ण– | ५८८ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| रसभावेषु तान्याहुः | ५०९ |
| रसाभिव्यक्तिहेतुत्वात् | ५८० |
| राक्षसेऽधोमुखः कार्यः | १८७ |
| रूक्षा क्रूरा स्तब्धतारा | ४३५ |
| रेखायां च निमित्तेऽपि | १०६ |
| रेचकं विदधाते च | २६२ |
| रेचकांश्चतुरोऽवोचत् | १४२६ |
| रेचकाद्यं निकुट्टं च | १३७४ |
| रेचकाद्यं निकुट्टं च | १३९९ |
| रेचकै रङ्गहारैश्च | ६६८ |
| रेचितं वृश्चिकाद्यं च | १३८२ |
| रेचिता क्रियते पार्ष्णिः | १०२९ |
| रेचितोऽर्धनिकुट्टश्च | १३४३ |
| रेचितोऽन्वर्थलक्ष्मा स्यात् | ५४३ |
| रेचितौ पूर्ववत् यत्र | ७७६ |
| रोषं परित्यज्य भजस्व | १५१० |
| रोषेर्ष्याजनिते जल्पे | ८९८ |
| **ल** | |
| लक्ष्माण्यशोकमल्लेन | १५१७ |
| लक्ष्यते शिक्षिताद् योऽति | १५२२ |
| लग्नाग्राः संहता ऊर्ध्वा | १८४ |
| लग्नोग्रे तु यदाङ्गुष्ठः | १६९ |
| लग्नान्तर्जानु यज्जानु | ४१२ |
| लज्जानुतापयोरस्य | ११४३ |
| लक्ष्यन्ते लक्ष्मविदुषाम् | ११३७ |
| लताद्यं वृश्चिकं चाथ | १३९० |
| लतावेष्टितकाख्यं च | ७६६ |
| लतावृश्चिकवैशाख- | ११२ |
| लब्धो जीवनवासरैः | १५०८ |

## श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| ललाटप्राप्तिमर्यादम् | २८७ | वक्रमेकं प्रसार्य स्व- | १०१६ |
| ललितं दण्डपादं च | ११८ | वक्षं उद्वाहितं सोक्ता | ९८९ |
| ललितं स्यात्कुचाधस्तात् | १५३८ | वक्षसः स्कन्धयोरूर्ध्वम् | ३०४ |
| ललिता यत्र गात्रस्य | १५४५ | वक्षस्याभिमुखौ हस्तौ | ११४४ |
| लास्याङ्गानि सचारीणी | १५४० | वक्षः स्वस्तिकमिच्छन्ति | १३८३ |
| लीनं समनखं कृत्वा | १३४३ | वक्षः स्वस्तिकमुक्तं तत् | ११४३ |
| लीलया ललितौ हस्तौ | ७३५ | वक्षोग्रस्थः पुरोवक्रः | ३१६ |
| लीलयावस्थितौ सद्भिः | ९४८ | वक्षोदेशात्प्रयोक्तव्यः | ७५ |
| लीलादावपि हेलायाम् | ४७७ | वञ्चयन्तीव चेल्लोकम् | १५५० |
| लीलावतंसयुतयोः | १५२१ | वदनान्तप्रवेशेन | ५३८ |
| लुठत्येककरे तिर्यक् | ७६८ | वदान्यं खटकावक्रम् | ३१३ |
| लुठत्येककरो तिर्यक् | ८४१ | वरवध्वोर्विवाहार्थम् | २२९ |
| लुठत्येतत् समादिष्टम् | ८१० | वर्जिताभिनयैर्वाक्यैः | १४९२ |
| लुठनं मण्डलाकारम् | ७६९ | वर्तना चतुरस्राख्या | ७४७ |
| लुठितोऽन्यः करो यत्र | ८४५ | वर्तनाद्या पताकाख्या | ७०९ |
| लेखप्रवाचनेऽथासौ | १३७ | वर्तना स्वस्तिकं कृत्वा | ८१७ |
| लेहनं जिह्वया लेहः | ५६० | वर्तना स्वस्तिकाख्यं च | ७५५ |
| लोकयुक्त्यनुसारेण | ९४ | वर्तना स्वस्तिकाख्यान्या | ७४१ |
| लोकयुक्त्यनुसारेण | १४६ | वर्तनास्वस्तिकीभूय | ८१९ |
| लोकयुक्त्यनुसारेण | २०९ | वर्तनास्वस्तिकौ पार्श्व– | ७९४ |
| लोके प्रसिद्धा सा पार्श्व- | १००४ | वर्तने शुकतुण्डाख्यौ | ७०९ |
| लोको वेदस्तथाध्यात्मम् | १२०८ | वर्तितश्चोरुपृष्ठे सा | ७१८ |
| लोडितः स्यात् तदाख्यातम् | ७६७ | वर्तितः सालपद्माख्या | ७१६ |
| लोडितौ तदनङ्गाङ्ग- | ८५३ | वर्तितावूर्ध्वदेशे चेत् | ७२२ |
| लोडितौ यत्र तत् प्रोक्तम् | ८५५ | वर्तितौ दण्डपक्षौ चेत् | ७३० |
| लोलतारकनेत्राभ्याम् | ६६४ | वर्तितौ नावि सम्प्रोक्तौ | ६० |
| लोलितं शकटास्यं च | ८५३ | वर्तितौ स्वोक्तरीत्यैव | ७३६ |
| व | | वर्तितौ यत्र तत्रासौ | ७२५ |
| वंशादिजलयंत्रे स्यात् | ५७ | वर्तुले मथनेऽप्येषा | ३६९ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| वर्त्यञ्जनशलाकादिः | १७३ | वामेन पितृकार्येऽर्थे | ४०८ |
| वर्धमानासारितेषु | १४१९ | वामोऽङ्घ्रि स्पन्दितोऽथ स्यात् | १४५० |
| वलनं चेत् तदा प्रोक्तम् | ७८२ | वामोऽड्डितोऽप्यघ्र्यधिकः | १४७१ |
| वलितः पृष्ठतः पादः | १०१० | वामोऽथ दण्डपादस्तु | १४६१ |
| वलिताभिधहस्तौ चेत् | ७३७ | वामोऽलातोऽथ चरणः | १४६० |
| वाञ्छया वा महीपस्य | १५५७ | वामो लताकरो यत्र | ९०२ |
| वादने कोहलादीनाम् | ५६ | वामो व्योम्नि निषण्णोरुः | ८९७ |
| वाद्यप्रबन्धवर्णानाम् | १५५३ | वासोऽवगुण्ठनाद् भानुम् | ६४६ |
| वानरे मुखदेशस्थौ | १३१ | वाहने वेगदाने च | ८९३ |
| वामं करं कटौ न्यस्य | १५८२ | विकाशिता चला दृष्टिः | ४७० |
| वामं करं पताकाख्यम् | १५७२ | विकाशिता मनोजन्म | ४६१ |
| वामः क्रमादतिक्रान्तः | १४५८ | विकाशिनी समा दृष्टिः | ४४८ |
| वामतश्चेदर्धसूचि– | १३५२ | विकासिरेचितोद्वृत्त- | ५३५ |
| वामतो गमनं कृत्वा | ६०६ | विकृते घोषवाग्गन्धे | १२० |
| वामदक्षतिरश्चीनम् | ७५७ | विक्षिप्ताक्षिप्तके चाथ | १४०२ |
| वामदक्षतिरश्चीनम् | ७८३ | विक्षिप्ताञ्चितके दण्ड- | १३९५ |
| वामदक्षिणतो यत् स्यात् | ७६९ | विक्षिप्ताभ्यां पताकाभ्याम् | ६७६ |
| वामदक्षिणयोस्तूर्णम् | १०३१ | विक्षिप्तोद्वृत्तयोरेष | १३९१ |
| वामदक्षिणपाश्चात्य | ८३७ | विचित्रं यत्र कान्तानाम् | १४९६ |
| वामदक्षिणयोः पश्चात् | ८३२ | विचित्रं ललितं चेति | १४२७ फु. |
| वामदक्षिणयोर्मूर्ध्नः | ७९३ | विचित्रमण्डनैर्हर्षैः | ६८३ |
| वामदक्षिणयोस्तिर्यक् | ७८३ | विचित्रवर्तनायोगात् | ७२५ |
| वामः समो निषण्णोरुः | ९७७ | विचित्ररससंकरो जयति | १५१२ |
| वामः स्याद् भ्रमरो यत्र | १४६१ | विचित्रलास्यमेदज्ञा (हंसवि०) | — |
| वामांसक्षेत्रपर्यन्तम् | ८४३ | विचित्रान् रचयेद् भावान् | १५०५ |
| वामाङ्गनिर्मितावाथ | १४३३ | विच्युतश्लिष्टपार्श्वौऽसौ | २१९ |
| वामाङ्गरचितं पश्चात् | १३९६ | विच्यूतानामिकाङ्गुष्ठ- | १२२ |
| वामाङ्गे भ्रमरं चार्ध- | १३५५ | विच्युतावथ नेत्रादिः | १७८ |
| वामाङ्घ्रिनिर्मिता बाह्य | १४४३ | विच्युतोऽसौ कामिनीभिः | २४५ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| विच्युतौ स्वस्तिकावेतौ | ३०६ |
| विच्छिन्नमन्दरुदिते | ५१४ |
| विटकर्तृककान्तादि– | १८६ |
| विडालादिपदेऽप्येष | ३७ |
| वितत्यन्तरितावङ्घ्री | ९२१ |
| वितर्कितं तथा ध्यानम् | ६२८ |
| वितर्किता ततोऽप्यर्ध– | ४३० |
| वितर्केऽपराधे च | १३७ |
| वितर्के पेलवासूया | १७६ |
| वितर्के सविवादानाम् | ३१५ |
| वितस्तिमात्रं तत्स्थानम् | ९२५ |
| वितालिताभिधौ चैवम् | ४८३ |
| वितालितावृत्तरेण | ४९० |
| विदध्याद् यत्र पात्रं चेत् | १५६२ |
| विदध्याद्यदि सान्वर्था | १००७ |
| विदध्याद् विचित्र्यां यत्र | १५८८ |
| विद्युत्कलासः खड्गाद्यः | १५६६ |
| विद्युद्भ्रान्तं च करणम् | १३८४ |
| विद्युद्भ्रान्ता च विक्षेपा | ९६७ |
| विद्वद्भिस्तत्समादिष्टम् | ८५७ |
| विधत्ते सोत्सन्दिताख्या | ९८२ |
| विधाय स्वस्तिकौ पश्चात् | ८४३ |
| विधाय त्रिपताकौ चेत् | १६०५ |
| विधाय त्रिपताकौ द्वौ | १५८४ |
| विधाय दक्षिणं पाणिम् | १५७४ |
| विधाय नूपुरं यत्र | १३८९ |
| विधाय पार्श्वयोरन्तः | ७७५ |
| विधाय मण्डिकां पादौ | १५९४ |
| विधाय मुकुलं हस्तम् | १५९७ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| विधाय व्यंसितं वामे | १३६४ |
| विधाय स्वस्तिकौ यत्र | ७६७ |
| विधायादावरालौ चेत् | ३१४ |
| विधायादौ पताकौ द्वौ | ३०९ |
| विधायाधोमुखावेतौ | २०१ |
| विधायैकं नितम्बाख्यम् | ८२७ |
| विधायोत्तानितौ हस्तौ | ६२५ |
| विधायोद्वाहितं शीर्षम् | ६२९ |
| विधुतं तिर्यगायामि | ५७७ |
| विधुताकम्पिताधूत | १५ |
| विनष्टे च तथासत्ये | २०७ |
| विना कृतं स्वस्तिकेन | २५५ |
| विनिष्क्रान्तो विसृष्टः स्यात् | ५३६ |
| विनिःसरति सव्येऽङ्घ्रौ | ११३९ |
| विप्रकीर्णौ केचिदाहुः | ३०६ |
| विप्रलब्धाखण्डिताश्च | ६८२ |
| विभक्ते छेदने चैते | १०१ |
| विभाति विद्युदाद्यस्तु | १५७१ |
| विभ्रमे सा तथा वेगे | ४६६ |
| विभ्रान्ता विप्लुता त्रस्ता | ४३० |
| विमुक्तकं जानुगतम् | ८७५ |
| विमोहनविवर्तनैः | १५०४ |
| वियुक्ताः संहता वक्राः | ५९२ |
| वियोज्यौ रशनायां च | १४८ |
| विरलाङ्गुलिकौ कार्यौ | १९७ |
| विरलाङ्गुली पताकौ चेत् | २४७ |
| विरूपितस्तथा ज्ञेया | ६२४ |
| विलम्बेनाविलम्बेन | १५२८ |
| विलासस्यायथाकार– | ९११ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| विलासितं तलाद्यं च | १३८४ | विश्रृङ्गाटकबन्धाख्यम् | ८०३ |
| विलासेन चतुर्दिक्षु | ७९९ | विष्कम्भं च तथा क्रान्तम् | ८७४ |
| विलासेनांसपर्यन्तम् | ८५६ | विष्कम्भापसृतौ मत्तः | १३४३ |
| विलोक्य च पुरः पश्चात् | १५८० | विषमं वा ततः स्थानात् | १६०६ |
| विलोडनं विधायाथ | ७८७ | विषमं वा यदा स्थित्वा | १६०७ |
| विलोडितो यदा पश्चात् | ८५९ | विषमस्था समुत्प्लुत्य | १६०२ |
| विलोक्य च नटी कुर्यात् | १५७४ | विषमादि च खण्डाद्यम् | ८७२ |
| विलोड्यते यत्र करः | ८०४ | विषमाभिमुखान्याहुः | ५०१ |
| विलोड्य पार्श्वयोः स्तोकम् | ७७२ | विषर्जनं तथाह्वानम् | ६०७ |
| विलोड्य मण्डलाकारम् | ७९५ | विस्तारितपुटद्वन्द्वा | ४४८ |
| विलोमवचनैर्धीमान् | ६६६ | विस्तार्याङ्घ्री समुत्प्लुत्य | १०६८ |
| विलोलतारका भीत्या | ४४६ | विस्तीर्णा च बुधैः सोक्ता | ४६६ |
| विलोलाङ्गुलिकावेतौ | ३०४ | विस्तीर्णे गगनेऽम्भोधिः | २४५ |
| विलोलोद्वृत्ततारा या | ४३८ | विस्फुलिङ्गान् घनरवान् | ६५२ |
| विवर्तितौ समुद्भ्रान्तौ | ४८४ | विस्मृतावथ मायायाम् | ८ |
| विवर्तनं थरहरम् | १५१५ | विहसी तु यदा ज्ञेया | १५४७ |
| विवृतं त्वोष्ठविश्लेषे | ५७६ | विहाय प्रेक्षणाच्चापि | ६६१ |
| विवर्तितं परावृत्तौ | ३३३ | विह्वतावज्ञया चैतत् | ५७८ |
| विवर्तितमतिक्रान्तम् | ११२७ | वीक्षणे वरमार्गस्य | ९११ |
| विवर्तिताभिधमथ | ३३३ | वीटिकाच्छेदने भीतौ | ५५४ |
| विवर्त्तितो विसृष्टश्च | ५३४ | वीटिकाग्रहणे त्वेष | ३८० |
| विवाहदर्शने स्याताम् | १२७ | वीरसिंहसुतेनोक्तम् | ४६५ |
| विष्णुक्रान्तमपक्रान्तम् | ११३३ | वीराख्यया तथा दृष्टया | ६८८ |
| विंशतिर्व्यभिचारिण्यः | ४३० | वीरे रौद्रेऽथ निष्कामः | ४९९ |
| विशेषे तु चलाबेतौ | २११ | वृत्त्या लक्षणया तेषाम् | ४२५ |
| विश्लिष्टवर्तितं त्वाद्यम् | ७५५ | वृश्चिकं वृश्चिकाद्ये च | ११२५ |
| विश्लिष्टवर्तिताद्यैश्च | ८४७ | वृश्चिकाद्यं कुट्टितं च | १४०० |
| विश्लिष्टे ते पराङ्मख्यौ | १०२ | वृषभक्रीडितं चाथ | १३७८ |
| विश्रृङ्गाटकबन्धाख्यम् | ७६० | वृषभासनमाख्यातम् | ९४२ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| वेतालभृङ्गिगरिटचादि | ३९० |
| वेदनादौ सूत्कृतं स्यात् | ५३१ |
| वेष्ठयित्वा यदाङ्घ्रेः स्यात | १०७७ |
| वैभाविकं चित्रपदम् | १४८८ |
| वैशाखरेचितं पश्चात् | १३९९ |
| वैशाखरेचितं पूर्वम् | १४०७ |
| वैशाखरेचितः पार्श्व– | १३४३ |
| वैशाखरेचितोऽसौ स्यात् | १३६६ |
| वैष्णवं समपादं च | ८६६ |
| वैष्णवं स्थानकं प्रोक्तम् | ८८० |
| वैष्णवस्थानकेनापि | ६९२ |
| व्यंसितं चतुरं कान्तम् | ११२४ |
| व्यंसितं च विवृत्तं च | १३७६ |
| व्यक्तः कुटिलकेशेषु | ११५ |
| व्यत्यस्तत्तर्जनीकः स्यात् | १३८ |
| व्यत्यासारचिता सैव | ११०९ |
| व्यात्तास्ये या चला लोला | ५४७ |
| व्यादीर्णं चलितं लोलम् | ५६६ |
| व्याधिभीतिविषादेषु | ३३० |
| व्यावौ च संभ्रमे गर्व– | २४८ |
| व्याभुग्नं चेति षोढोक्तम् | ५७४ |
| व्यावर्तितं तथा ज्ञेयम् | ६०९ |
| व्यावर्तितो वहिश्चान्तः | ७२० |
| व्यावर्तन्ते कनिष्ठाद्याः | ६१३ |
| व्यावर्तनक्रियापूर्वम् | ७४६ |
| व्यायच्छतो मिथश्चार्यः | ९५१ |
| व्यावृत्तं विनिवृत्तं तत् | ५७८ |
| व्यावृत्तक्षेपणादौ स्यात् | ३४१ |
| व्यावृत्तपरिवृत्तौ च | ५१ |
| व्यावृत्तिक्रियया मुष्टिम् | ७५१ |
| व्यावृत्तिक्रियया यत्र | २८९ |
| व्यावृत्तिक्रियया वक्षः | २८० |
| व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्याम् | २९२ |
| व्यावृत्तिक्रिययोर्ध्वं तु | २५८ |
| व्यावृत्तपरिवृत्तौ चेत् | २६० |
| व्यावृत्तौ परिवृत्तौ च | २९१ |
| व्यावृत्तौ परिवृत्तौ च | २९२ |
| व्यावृत्या च समानीय | ११४२ |
| व्यावृत्या तु भुजावर्ध्वम् | २७३ |
| व्यावृत्योरःस्थलायातः | २८७ |
| व्युत्क्रमाच्चेत्पुरः प्राप्तौ | २८५ |
| **श** | |
| शकटास्यं पृष्टकुट्टम् | १४२७ फु. |
| शकटास्यश्चतुर्दिक्षु | १४८५ |
| शकटास्यस्ततः पादः | १४६७ |
| शकटास्यस्ततोऽनूरुद् | १४७७ |
| शकटास्यस्ततोऽसौ स्यात् | १४६५ |
| शङ्खस्य धारणे योज्यः | २२४ |
| शनैर्गत्वा शिरोदेशम् | २७७ |
| शमसम्भवयोरुक्तः | ३९८ |
| शरदं निर्दिशेन्नाटचे | ६३३ |
| शल्यावयवनिष्कर्षे | १७२ |
| शकटास्योऽथ वामोऽङ्घ्रिः | १४६६ |
| शकटास्यो भवेत् पश्चात् | १४७६ |
| शकटास्यो भवेद्वामः | १४७८ |
| शक्त्या यदपि बाधः स्यात् | ४२५ |
| शिखरस्य कपित्थस्य | ७५२ |
| शिखरस्यापि कर्माणि | ७१ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| शिखराख्या कपित्थाख्या | ७४३ | शैवाख्यस्थानकेनापि | ६९१ |
| शिखिनां रम्यवाणीभिः | ६४१ | शोकहृच्छल्ययोः शीतम् | ३३० |
| शिथिलौ मणिबन्धस्थौ | २७५ | शोभां द्विगुणतां धत्ते | ५८७ |
| शिथिलौ मेनिरे केचित् | २७४ | शोभातेजोविशेषादीन् | ४३७ |
| शिरः क्षेत्रे यदा प्राप्तौ | २७६ | शोकमन्थरतारा सा | ४३४ |
| शिरसोद्बाहिताख्येन | ६२५ | श्लथपक्ष्मपुटा भ्रूर्या | ४५४ |
| शिरःस्थितौ पताकौ द्वौ | ६२२ | श्लिष्टौ पुरोऽथवापश्चात् | १०२६ |
| शिरोंसकूर्परं तुल्यम् | ८८५ | श्लिष्टोरुजङ्घं जानूक्तम् | ४१६ |
| शिरोदेशगतौ कार्यौ | ५९ | श्रमम्लानपुटा सन्ना | ४५२ |
| शिरोदेशात् व्रजन्नूर्ध्वम् | ३७४ | श्रव्ये श्रवणयोगेन | ७०२ |
| शिरोऽभिघातात् सध्वानैः | ६६२ | श्राद्धकर्माणि योज्योऽयम् | १५६ |
| शिरो ललाटं श्रवणम् | ६०५ | श्रितं कञ्चिल्लयं वेगात् | १५४२ |
| शिरोवक्षो मखस्थोऽयम् | २१३ | श्रीमताशोकमल्लेन | १०८८ |
| शिरोद्वेष्टित एष स्यात् | ११० | श्रोत्रकण्डूयने दुष्ट– | ९३ |
| शिशिरर्तौ वसन्ते च | ६४० | **ष** | |
| शीघ्रमुत्पन्नरोमाञ्च | ६५७ | षडङ्गुलं यदैतस्य | ९२५ |
| शीताभिनयनं वेवम् | ६३६ | षडशीतिर्मताश्चार्यः | ९६९ |
| शीतार्ताभिनयेऽशोकः | ९४५ | षड्भिस्तु करणैरेभिः | १३५४ |
| शीतार्ते व्याधिते मत्ते | ३२५ | षड्वारमथवा सप्त– | १४४७ |
| शीर्षदेशे कटीदेशे | ८२१ | षोडशेति त्र्यस्रमाना | १३४३ |
| शीर्षस्य कम्पनेनापि | ६५९ | षोढेति रसनां प्राह | ४५५ |
| शुकतुण्डाभिधौ हस्तौ | २४९ | **स** | |
| शुकतुण्डेन हस्तेन | ६९० | संगमादौ वरस्त्रीणाम् | ७६ |
| शून्या च मलिना श्रान्ता | ४२८ | संग्रामधीरधुर्येण | ७०७ |
| शृङ्गाररससम्पन्न– | १५२२ | संघट्टितेत्यमूर्भ्यः | ९६६ |
| शृङ्गाराभिनयेऽप्येवम् | ४८० | संज्ञया ज्ञातलक्ष्माणि | ६०७ |
| शेषास्त्रेताग्निसंस्थाना | ३४ | संचक्षे करणं तु सम्प्रति मुदे | १११६ |
| शेषे तलस्थिते स्तोऽसौ | ४१ | संचारितोत्कुञ्चिता– | ९६३ |
| शौध्यसांमुख्यबहुला | १५२० | संत्रस्तोर्ध्वपुटा दृष्टिः | ४५३ |

# श्लोकानुक्रमणिका


| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| संप्राप्य कूर्परक्षेत्रम् | ८१४ | सक्रोधे वामहस्तेन | १७५ |
| संप्रोक्ता ये न ते ज्ञेयाः | ७०४ | सखित्वे संयुतः स स्यात् | १ |
| संभाविते प्रकर्तव्यौ | १३२ | सखि वल्लभसङ्ग– | १४९१ फु. |
| संभ्राम्योर्व्यां क्षिपेद्यत्र | १०६५ | सखि स्फुरति यामिनी | १४९८ |
| संमुखं रचयेद् विद्युत् | १५७३ | सखेदवचसीदानीम् | २१७ |
| संमुखीन रथाङ्गं तत् | ७७६ | सञ्चरं ललिताद्यं स्यात् | १४४३ |
| संमुन्नतमुरः सन्नम् | ८८६ | सञ्चरल्ललितं यत्र | १४५८ |
| संयतस्वस्तिकौ स्याताम् | ८२४ | स तज्जनितसंस्कारः | ६४४ |
| संयुते वियुते यद्वा | ९४२ | सत्योवितस्तम्भमानेषु | ३२९ |
| संयुक्ते तु सहाये स्यात् | १०३ | स त्रोटिताभिधौ योज्यः | ३५३ |
| संयुतौ तौ विधातव्यौ | १७ | सत्वरं भ्रामयेदन्तः | १०७० |
| संयोगे त्वस्य तर्जन्यौ | ८८ | सतृष्णे चानुरक्तेऽपि | २५० |
| संलग्नाग्रा यदाङ्गुल्यो | २० | सदा तिष्ठन्ति सुप्रीताः | ८३५ |
| संलग्नश्चेति पादयोः | ५९३ | सद्भिरेतत् समादिष्टम् | ८०४ |
| संलापेऽध्ययने तत् स्यात् | ५५५ | सद्वितीयः प्रयोक्तव्यः | १७४ |
| संवाहनेऽप्यथ स्याताम् | ५२ | सनिकर्षं बिना यस्य | ६१६ |
| संशये दधदङ्गुल्यौ | ११७ | सनिमेषा च सा धीरैः | ४७२ |
| संश्रित्य स्वस्तिके पार्ष्ण्यः | १०३२ | सन्दष्टकः समुद्गाख्यः | ५३४ |
| संश्लिष्टमणिबन्धौ च | १९६ | सन्धानेऽपि च शस्त्राणाम् | ८९९ |
| संश्लिष्टो बाह्यपार्श्वेन | ९२६ | सन्ध्याकाले प्रथक् स्याताम् | १९८ |
| संश्लिष्य मणिबन्धौ स्तः | १६ | सप्तभिः करणरेभिः | १३६१ |
| संस्पर्शाच्चोष्णवातस्य | ६६९ | सप्तमं तु कटीच्छिन्नम् | १४१० |
| संस्पर्शाद् रूक्षवातस्य | ६३७ | स पादो घट्टितोत्सेधः | ३५४ |
| संहृतं स्फुरितं वक्रम् | ५६६ | स बाहुरञ्चितः खेदे | ३७६ |
| संहतस्थानकेनाङ्घ्री | १०३४ | सभावैश्चेष्टितैर्देवाः | ६७२ |
| संहर्षास्फोटनादौ च | ८९९ | सम्यातिमोहनीभाव– | १५३५ |
| स ईष्यारोषयोः स्त्रीणाम् | ५३८ | सम्भ्रान्तोद्घट्टिताख्यः | १४०० |
| स एव चेत्पुरोदेशे | ८८३ | सभ्रूक्षेपकटाक्षा सा | ४३१ |
| स कण्ठरेचकः प्रोक्तः | १४२४ | सभ्रूक्षेपेण नेत्रेण | ६२१ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| समं छिन्नं खण्डनं च | ५५२ | सर्वतो भ्रमणात् कटचाः | १४२४ |
| समं नताकुञ्चिते च | ८७६ | सर्वतो भ्रमणाद् यः स्यात् | ३७८ |
| समं निर्भुग्नमाभुग्नम् | ३२७ | सर्वत्रैवाङ्गहारेषु | १४१७ |
| समं साच्यनुवृत्तं च | ५०० | सर्वदिक् भ्रमणात्प्रोक्ता | ३४३ |
| समदृष्टिर्नटी हस्तम् | १५७५ | सर्पशीर्षौ करौ मध्यम् | २२७ |
| समपादं समाश्रित्य | १४७३ | सर्वार्थग्रहण देश्यम् | ६३१ |
| समपादस्थानकेन | ९७० | सर्वार्थग्रहणे योज्यः | २०६ |
| समपादस्थानहेतोः | ९७३ | सर्वे चापगताः पादाः | १४८३ |
| समपादं स्वस्तिकं च | ८७० | सविलासं यदा स्याताम् | ७३६ |
| समपादाड्डिता बद्धा | ९५४ | स विस्मितोऽद्भुते कार्यः | ५२७ |
| समः पुरस्ताद् यत्रेदम् | ९२८ | स वैद्ये त्वेकहस्तस्थः | ११० |
| समप्रकोष्ठचलनम् | ८०७ | सव्याङ्घ्रेः पार्ष्णिदेशं चेत् | ९८५ |
| समप्रकोष्ठबलनम् | ७६१ | सव्यापसव्यतो नाभि | ७२१ |
| सममुक्तं मनाक् श्लेषः | ५५३ | सव्यापसव्यतो भ्रान्तौ | ७४९ |
| समवाचि तदा सूची | १०१२ | सव्यापसव्यतो मुष्टिः | ७५१ |
| समवोचदिमां तिर्यक् | १०४० | सव्यापसव्यतो यत्र | ७१५ |
| समः सहजकार्येषु | ५२८ | सव्यापसव्यतो यत्र | ८०८ |
| समस्थितोऽड्घ्रिरेकोऽन्यः | ८७९ | सव्यापसव्यतो यत्र | १५८० |
| सम्पूर्णभ्रमणैः प्राग्वत् | १४८० | सव्यापसव्यतो यत्र | १५९६ |
| सम्प्रलापैस्तथा लीनाम् | ६८० | सव्यापसव्ययोरारात् | १५८९ |
| सम्प्राप्यारालतां याति | ११५ | सव्यापसव्ययोर्नृत्यम् | १६०९ |
| सम्भ्रान्त नामको धीरैः | १३९६ | सव्यासव्येतराङ्गाभ्याम् | १४०७ |
| सम्भ्रान्ताभिधमप्यन्य | ११३४ | सशब्दच्युतसन्दंशः | ६६ |
| सम्यक्तया च शास्त्रार्थ– | २३२ | सशब्दच्युतसन्दंशः | ४२ |
| सरलप्रसृतस्याग्रे | ८१३ | ससौष्ठवाः सुलक्ष्माणः | ३२२ |
| सरलोत्सारितोद्वेष्ट | ८२७ | ससौष्ठवैः साभिमानैः | ६५० |
| सरलोऽसौ तथा पूर्वः | ३८३ | स स्यादधीने | ९ |
| सारिका च लताक्षेपः | ९६५ | सहजा तु स्वभावस्था | ४७५ |
| स रोगे दुःखसंयुक्ते | ५२४ | सहजा रेचितोत्क्षिप्ता | ४७५ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| सहर्षोत्पादकारम्भैः | ६३८ | समौ सहजभावेषु | ५६३ |
| सहाक्षिप्ताख्यया चार्या | ११५२ | सहर्षमवलोकनम् | १५१२ |
| सहि वल्लह संगव | १४९१ | साकेकरा दुर्निरीक्ष्ये | ४६५ |
| स्थानान्यथ तथा सुप्त | ८७८ | साग्निधूमे प्रयोक्तव्यः | १२४ |
| समांसकूर्परो वक्षः | २५६ | सा तदा जनिता चारी | ९८० |
| समाङ्घ्रे पुरतः पश्चात् | ९७४ | सार्धं तु विच्यवां कृत्वा | ११४८ |
| समाचष्ट नृपाशोक– | १०६४ | सा दृष्टिः कथिता शून्या | ४४९ |
| समाञ्चितौ कुञ्चिताख्यः | ३४४ | सा दृष्टिर्मलिना प्रोक्ता | ४५१ |
| समादिष्टा तथा मध्य | १११४ | सा दृष्टिर्मुकुलानन्दे | ४५७ |
| समाधत्ताशोकमल्लः | ९७३ | सा दृष्टिर्ललिता धीरैः | ४६१ |
| समा नतोन्नता त्र्यस्रा | ३६० | सा दृष्टिः शङ्किता प्रोक्ता | ४५५ |
| समार्धे नर्त्तनेऽङ्गानाम् | १५५५ | साधुवादे ध्वजेऽप्येषा | ८३ |
| समाश्वासे गुणे चायम् | ४ | सारसान् केकिहंसौ च | ६६८ |
| समासाद्य मुदं यत्र | १५३९ | सालस्यगमनोपेता | १५८८ |
| समुत्क्षिप्तान्यभागोऽसौ | ३४९ | सा वक्त्रान्तःस्थ वीक्षाणाम् | ५५१ |
| समुद्वृत्तं समुन्नतम् | ४९६ | सा विवृत्ता कटी धीरैः | ३४२ |
| समद्वृतौ त्वधो गत्वा | ७६ | सास्मिता कुञ्चितप्रान्ता | ४६१ |
| समुन्नतकटिर्हस्तः | ९०२ | सा हृष्टा दृष्टिरादिष्टा | ४४२ |
| समे तूर्ध्वतले स स्यात् | १३ | सिते वर्णे तूर्ध्वगतो | ५ |
| समोत्सरितमत्तल्ली | ९५६ | सिंहविक्रीडितं सिंह– | ११३१ |
| समोत्सरितमत्तल्ली | ९९५ | सिंहाकर्षितकं नाम | १३८२ |
| समोत्सरितमत्तल्ली | १४७६ | सीत्कृतं चेति स प्रोक्तः | ५१८ |
| समोत्सरितमत्यर्धम् | १४२७ फु. | सीधुपाने मुखस्थः स्यात् | ५९ |
| समोत्सरितमेतत् स्यात् | १४७५ | सीमन्ताभिनये योज्यः | २५५ |
| समोत्सरितमावर्तम् | १४२९ | सुखं गन्धं रसं वायुम् | ६४५ |
| समो भ्रान्तः कम्पितश्च | ५१७ | सुखितः सुखितेष्वेव | ६४३ |
| समो यत्र तदाचष्ठा | ९१३ | सुखे कर्मगतः कार्यः | २१० |
| समौ क्षामौ कम्पितौ च | ५६१ | सुधाब्धिमतमाश्रित्य | ६९५ |
| समौ विवर्तितौ स्याताम् | ४८२ | सुप्यते यत्र तत् प्रोक्तम् | ९४६ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| सुभ्रुवो यत्र नेत्रान्तौ | १५४४ | सौम्यापाङ्गविकासाढ्या | ४४० |
| सुरते स्वस्तिकाकारौ | १७ | सौष्ठवस्य पुरोक्तस्य | १५५६ |
| सुवीजनैर्भ्रमितापैः | ६३९ | सौष्ठवेन तदा धीरैः | ७४५ |
| सुव्यक्तलक्षणाः कार्याः | ३२३ | सौष्ठवेन तदा सोक्ता | ७३७ |
| सूचीपादोऽथवा स्वीय | ९१२ | स्कन्धस्थौ सर्पशीर्षौ चेत् | २२८ |
| सूत्रधारादिनेत्याहुः | ८८२ | स्खलितं परिवृत्तं च | ११३० |
| सूक्ष्मैरसकृदुल्लासैः | १५३७ | स्खलितेऽपि स्खलद्वासः | ९१४ |
| सूच्याङ्घ्रिर्दक्षिणो वामः | १४३८ | स्खलितोऽङ्घ्रिर्यत्र तिर्यक् | १०५६ |
| सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामः | १४५३ | स्तनप्रदेशविधृतः | २५ |
| सूच्यङ्घ्रिभ्रमरश्चाथ | १४५५ | स्तब्धस्ततः कम्पितश्च | ३९४ |
| सूचीं कूर्वन् कूर्परस्तु | ३८२ | स्तब्धोद्वृत्तपुटादृष्टिः | ४४४ |
| सूची प्रावृतमुल्लालः | ९६८ | स्तम्भक्रीडनिका तिर्यक् | ९६३ |
| सूची भ्रमरको वाथ– | १४४० | स्तम्भितश्च तथोच्छ्वास– | ५१८ |
| सूची वामोऽप्यपक्रान्तः | १४४२ | स्तवकेषु समाकुञ्च्य | ८४ |
| सूचीविद्धमलातं च | १४२७ | स्तोकस्पन्दाऽलसा या भ्रू | ४८० |
| सूचीविद्धं वामविद्धम् | १४२७ फु. | स्तोकोन्मीलिततारास्या | ४६३ |
| सूची स्याद् दक्षिण पादः | १४३५ | स्त्रीभिरेवेति तद् योज्यम् | ९०६ |
| सूची स्यादथ वामोऽङ्घ्रिः | १४४५ | स्त्रीणां त्रीणि स्युरेतानि | ८६७ |
| सूची स्याद् भ्रमरश्चान्य | १४५९ | स्थानकं चतुरस्रं चेत् | १०२६ |
| सेवायामपि योज्योऽसौ | २१८ | स्थानकं साधितं तस्य | ८६४ |
| सोक्ता त्रिकोणचारीति | ११०६ | स्थानकं वैष्णवं त्वेतत् | ८८८ |
| सोङ्गहारोऽङ्गहारज्ञैः | १३४३ | स्थानकं वैष्णवं यत्र | ८८९ |
| सोद्वाहिता कटी लोला | ३४० | स्थानकानामतश्चिन्त्यम् | ९७२ |
| सोऽपविद्धो गदाखड्ग– | ३८१ | स्थानकत्वेऽपि चारीत्वम् | ९७१ |
| सोरूद्वृत्ता तदाचारी | ९९१ | स्थानादिन्यासभेदेन | ३१८ |
| सौन्दर्यभरसम्पन्नः | १५२५ | स्थानकेन विनिर्देश्यः | ६९३ |
| सौधान्तःपुरयोरेष | १३९ | स्थानचारीकराणां यत् | १५४१ |
| सौभाग्यादिसमुद्भूते | ११५१ | स्थाने कूर्मासने जानु– | ९४ |
| सौम्यानि यानि वस्तूनि | ६४८ | स्थाने तु कुट्टितः सा स्यात् | ११०४ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या | श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|---|---|
| स्थाने सा मध्यचक्रेति | १०९१ | स्फुरिताग्रे सृतौ वेगात् | १०४२ |
| स्थाने सिद्धे ततः पश्चात् | ८६४ | स्फुरितौ या पुटौ स्तब्धौ | ४६७ |
| स्थापितः कुट्टितः स्थाने | १०९९ | स्मरसङ्गरसंगमिनौ | १५०३ |
| स्थितपाठ्यमथासीनम् | १४८७ | स्मिततारा साभिलाष- | ४४१ |
| स्थितः साध्यर्धिका चारी | ९८६ | स्मिताकृतिर्विशत्तारा | ४४२ |
| स्थितातुरः पुरस्ताच्चेत् | २५६ | स्मृतौ संभावनायां च | १७७ |
| स्थितेऽन्यतोऽङ्गुलीसंघे | १४२ | स्यन्दनस्थे विमानस्थे | ८९१ |
| स्थितौ स्थितस्वभावेन | ३४६ | स्यात् स्वस्तिकं त्रिकोणं च | ७६५ |
| स्थित्वा चेद् वर्धमानेन | १०३१ | स्यातां यत्र तदा तत् स्यात् | ८२१ |
| स्थित्वा दिगन्तरास्यस्तु | १४०४ | स्यादन्वर्थं रिक्तपूर्णम् | ३९२ |
| स्थित्वा पादतलाग्रेण | ३५२ | स्यादपस्पन्दिता चारी | ९९३ |
| स्थित्वाङ्घ्रीपार्ष्णिविद्धेन | १०५८ | स्यादेकाङ्घ्रिप्रचारो यः | ९५२ |
| स्थित्वा विषमसूच्याख्य | १०६० | स्याद्रेचकनिकुट्टाख्यम् | ११३४ |
| स्थित्वा शीर्षोपरि करौ | ८५५ | स्याल्लतावृश्चिकं पूर्वम् | १४१४ |
| स्थित्वैकपादस्थानेन | १०३७ | सरोषमपि भाषणम् | १५१२ |
| स्थिरः स्वभावाभिनये | ३४६ | स्रस्तहस्तयुगं सुप्तम् | ९४४ |
| स्थिरहस्तोऽथ पर्यन्तः | १३४३ | स्रस्तापाङ्गा स्तब्धतारा | ४५६ |
| स्थूलोदरेऽप्यसावेव | २२२ | स्रस्तैरङ्गैस्तद्वदक्षि– | ६५२ |
| स्निग्धा हृष्टा तथा दीना | ४२७ | स्रुवा मसृणतोपारः | १५१६ |
| स्नेहविच्छेदतः कान्ते | ४६५ | स्वं स्वं पार्श्वे गते यत्र | ८७६ |
| स्पन्दितः शकटास्यः स्यात् | १४८२ | स्वच्छः प्रसन्नः शृङ्गारे | ५८२ |
| स्पन्दितोऽप्यथ वामः स्यात् | १४७० | स्वपार्श्वे कुट्टितः पूर्वम् | १०९२ |
| स्पृशतो बाह्यपार्श्वाभ्याम् | १०४५ | स्वपार्श्वे जनसंघे स्यात् | १६१ |
| स्पृशेत् स्फिजं यदि जनः | १०१७ | स्वपार्श्वे दोलितोऽथासौ | ५६ |
| स्पृशेद् दक्षिणहस्तेन | १५७८ | स्वपार्श्वे वक्षसो जातौ | २८४ |
| स्पृशेद् यदि तदा सद्भिः | ९४१ | स्वभावजौ यावुच्छ्वास– | ५१९ |
| स्पृश्यमङ्गादियोगेन | ७०२ | स्वभावस्थं समं प्रोक्तम् | ३२८ |
| स्फुटयन्त्यो रसादीन् याः | ४७४ | स्वभावाल्ललितं चारी | १५५१ |
| स्फरितं कम्पनादुक्तम् | ५७२ | स्वल्पे कुब्जे कुमार्यां च | ६ |

| श्लोकार्ध | श्लोक संख्या |
|---|---|
| स्वसंमुखतलः पार्श्वं | ६०३ |
| स्वस्तिकं करणं पूर्वम् | १३९३ |
| स्वस्तिकं कर्कटं मुष्टिः | १५९५ |
| स्वस्तिकं केचिदत्राहुः | २४१ |
| स्वस्तिकं स्वस्तिकान्यर्ध | ११२० |
| स्वस्तिकाकारयोर्यत्र | ७८३ |
| स्वस्तिकाकृतयोरङ्घ्यः | १०७१ |
| स्वस्तिकाकृतितां नीत्वा | ८१७ |
| स्वस्तिकाकृतिभागाङ्घ्रिः | १०४८ |
| स्वस्तिकाद्विच्युतः पूर्वः | १११३ |
| स्वस्तिकाधोमुखौ रात्रौ | २४६ |
| स्वस्तिकावथ कर्तव्यौ | १९ |
| स्वस्तिकापसृतं केचित् | १४०८ |
| स्वस्तिकीकृतयोः पाण्योः | ८०५ |
| स्वस्तिकीभय चेद्धस्तौ | ७८१ |
| स्वस्तिकीभूय तौ स्तोऽथ | १९ |
| स्वस्तिकेन विना चाङ्घ्रिः | ९७५ |
| स्वस्तिको मण्डलगतिः | ३७० |
| स्वस्तिकौ तौ प्रयोक्तव्यौ | १८ |
| स्वस्तिकौ युगपद्यत्र | ११४४ |
| स्वस्थाननिर्गतं सन्नम् | ८८६ |
| स्वस्थाने स्थापितपदा | ११०८ |
| स्वस्थौ चलौ वियुक्तश्च | ५१६ |
| स्वस्वचेष्टासमुद्भूतैः | ७०६ |
| स्वस्वपार्शगतौ प्रोक्ता | ७४७ |
| स्वाङ्गावलोकने स्त्रीणाम् | ९११ |
| स्वादुभक्ष्ये चैवमन्ये | ५५० |
| स्वाभाविकं यत्र गात्रम् | ९२३ |
| स्वाभाविकं समं जानु | ४१४ |
| स्वाभाविकः प्रसन्नश्च | ५८१ |
| स्वाभाविकी समोक्ता सा | ३६१ |
| स्वाभाविकी स्वभावस्था | ५१० |
| स्वाभाविको यदा वामः | ३४९ |
| स्वेदापनयनेऽज्ञात- | ९४ |
| **ह** | |
| हंसपक्षावुरो देशे | २५७ |
| हंसपक्षौ स्वस्तिकाच्चेत् | ७२३ |
| हंसास्यः स करः प्रोक्तः | २१ |
| हंसस्थाभिधहस्तेन | ६८९ |
| हसीवासौ तृतीयोऽयम् (हंसक०) | — |
| हरिणीत्रासिता चारी | १०३५ |
| हस्तस्य त्रिपताकस्य | १३३ |
| हस्तं हंसास्यमाधाय (हंसक०) | — |
| हस्तयोस्तत् समाख्यातम् | ७६८ |
| हस्तावुन्नम्य युगपत् | — |
| हस्तेन करिहस्तेन | ६९४ |
| हस्तौ विलुठितौ यत्र | ८४४ |
| हस्तौ विधाय हंसास्यौ | १६१० |
| हस्तौ शिरस्तथा दृष्टिम् | ६४० |
| हृदयक्षेत्रगः कार्यः | २२५ |
| हृदयस्थोऽथ पार्श्वाच्चेत् | १४० |
| हृदयस्थो निरालम्बे | ४९ |
| हृदि मुष्टिकरोऽन्यः- | ९७९ |
| हृदि सन्दंशहस्तेन | ६२८ |
| हृद्यगन्धे च सन्दिग्धे | ५२३ |
| हृद्यूर्ध्वाधोमुखः स स्यात् | २४ |
| हनु बिभ्रदसौ पृष्ठे | २२३ |
| हारादिवन्धने चैषा | ३६२ |
| हासे घ्राणे विस्मये च | ४७९ |
| हास्यबीभत्सयोर्धीरैः | ४९८ |
| हास्या दृष्टिरसावुक्ता | ४३३ |
| हिरण्यकशिपोर्वक्षः | २७१ |
| हेमन्तर्तुविनिर्देश्यः | ६३४ |
| हेलाभावालसं यत्र | १५३० |


● ●

# पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

*संक्षिप्त संकेत*

अं० हा० : अंगहार
अ० ह० : असंयुतहस्त
आ० चा० : आकाशचारी
आ० मं० : आकाशमण्डल
उ० क० : उत्प्लुतिकरण
क० क० : करकर्म
कला० : कलास
ख० क० : खड्गकलास
च० गु० : चरणांगुलि
ता० क० : ताराकर्म
त्य० अं० : त्र्यस्रमान में अंगहार
द० क० : दन्तकर्म
दे० आ० : देशी आकाशचारी
दे० भू० : देशी भूमिचारी
दे० ला० : देशी लास्यांग
दे० स्था० : देशी स्थानक
नृ० क० : नृत्तकरण
नृ० ह० : नृत्तहस्त
पा० त० : पादतल
पु० स्था० : पुरुषस्थानक
प्र० भू० : प्रत्यंगभूषण
प्ल० क० : प्लवकलास
फु० : फुटनोट
भ० म० : भरतमत
भा० भा० : भावानुभाव
भा० न० : भावाभिनय

भू० चा० : भूमिचारी
भू० मं० : भूमिमण्डल
म० बं० : मणिबन्ध
मा० ला० : मार्गलास्यांग
मु० द० : मुखदर्शन
मु० रा० : मुखराग
मु० चा० : मुडुपचारी
मृ० क० : मृगकलास
र० दृ० : रसदृष्टि
वि० न० : विचित्राभिनय

वि० क० : विद्युत्कलास
व्य० दृ० : व्यभिचारी दृष्टि
सं० दृ० : संचारी दृष्टि
सं० ह० : संयुतहस्त
सु० स्था० : सुप्तस्थानक
स्त्री०स्था० : स्त्रीस्थानक
स्था० दृ० : स्थायिभाव दृष्टि

हं० क० : हंसकलास
ह० क० : हस्तकरण
ह० क्षे० : हस्तक्षेत्र
ह० प्र० : हस्तप्रचार
ह० वि० : हस्तविन्यास
ह० म० : हनूमत्मत

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| अंगहार | (दे० ला०) | अधोगत | (पा० त०) |
| अंगानंग | (दे० ला०) | अधोगत | (ह० प्र०) |
| अंगुलिसंगता | (पार्ष्णि) | अधोमुख | (बाहु) |
| अंघ्रिताडिता | (दे० आ०) | अधोमुख | (ह० प्र०) |
| अंसपर्यायनिर्गत | (चालन) | अध्यर्ध | (भू० मं०) |
| अंसवर्तनिक | (चालन) | अध्यर्धिका | (भू० चा०) |
| अग्रग | (ह० प्र०) | अनंगांगमोटन | (चालन) |
| अग्रग | (पाद) | अनंगोद्दीपन | (चालन) |
| अग्रतल | (ह० प्र०) | अनिल | (वायु) |
| अग्रतलसंचर | (पाद) | अनिष्ट | (भा० न०) |
| अञ्चित | (पाद) | अनुलोमविलोमा | (मु० चा०) |
| अञ्चित | (बाहु) | अनुवृत्त | (मु० द०) |
| अञ्चित | (उ० क०) | अन्तरालग | (उ० क०) |
| अञ्चित | (करण) | अन्तर्गता | (पार्ष्णि) |
| अञ्चिता | (ग्रीवा) | अन्तर्यात | (गुल्फ) |
| अञ्जलि | (सं० ह०) | अपक्रान्त | (करण) |
| अड्डस्खलितिका | (दे० भू०) | अपक्रान्ता | (आ० चा०) |
| अड्डित | (भू० मं०) | अपकुञ्चिता | (दे० भू०) |
| अड्डिता | (भू० चा०) | अपक्षेपा | (दे० आ०) |
| अतिक्रान्त | (आ० मं०) | अपराजित | (चा० अं०) |
| अतिक्रान्त | (करण) | अपविद्ध | (बाहु) |
| अतिक्रान्त | (आ० मं०) | अपविद्ध | (चालन) |
| अतिक्रान्ता | (आ० चा०) | अपविद्ध | करण) |
| अत्यर्ध | (भू० मं०) | अपविद्ध | (त्र्य० अं०) |
| अद्भुता | (र० दृ०) | अपसर्पित | (च० गु०) |
| अध | (ह० क्षे०) | अपसृत | (पार्श्व) |
| अधःक्षिप्ता | (च० गु०) | अपसृत | (करण) |
| अधर | (अधर) | अपस्पन्दिता | (भू० चा०) |
| अधस्तल | (ह० प्र०) | अभितप्ता | (सं० दृ०) |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका


| शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|
| अभिनय | (दे० ला०) |
| अराल | (अ० ह०) |
| अरालखटकामुख | (नृ० ह०) |
| अरालवर्तना | (वर्तना) |
| अर्गल | (करण) |
| अर्धकुञ्चित | (जानु) |
| अर्धचन्द्र | (अ० ह०) |
| अर्धनिकुट्ट | (करण) |
| अर्धनिकुट्टक | (करण) |
| अर्धपुराटिका | (दे० भू०) |
| अर्धमण्डलवर्तना | (वर्तना) |
| अर्धमण्डलिका | (दे० भू०) |
| अर्धमत्तल्लि | (करण) |
| अर्धमुकुला | (सं० ह०) |
| अर्धरेचित | (नृ० ह०) |
| अर्धरेचित | (करण) |
| अर्धसूचि | (करण) |
| अर्धस्वस्तिक | (करण) |
| अलग | (उ० क०) |
| अलगाञ्चित | (उ० क०) |
| अलाग | (करण) |
| अलात | (त्र्य० अं०) |
| अलात | (आ० मं०) |
| अलातचक्र | (चालन) |
| अलपद्म | (नृ० ह०) |
| अलपद्मवर्तना | (वर्तना) |
| अलपल्लव | (अ० ह०) |
| अलाता | (दे० आ०) |
| अलाता | (आ० चा०) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|
| अवलोकित | (मु० द०) |
| अवहित्थ | (सं० ह०) |
| अवहित्थ | (स्त्री० स्था०) |
| अवहित्थ | (करण) |
| अवहित्थवर्तना | (वर्तना) |
| अश्वक्रान्त | (स्त्री० स्था०) |
| अष्टबन्धविहार | (चालन) |
| असंयुत हस्त | (अ० ह०) |
| आ | |
| आकाशचारी | (आ० चा०) |
| आकाशमण्डल | (फु० नो०) |
| आकुञ्चित | (म० ब०) |
| आकुञ्चित | (सु० स्था०) |
| आकृष्टि | (क० क०) |
| आकेकरा | (सं० दृ०) |
| आक्षिप्त | (करण) |
| आक्षिप्त | (च० अं०) |
| आक्षिप्तरेचित | (करण) |
| आक्षिप्तरेचित | (त्र्य० अं०) |
| आक्षिप्ता | (आ० चा०) |
| आच्छुरित | (च० अं०) |
| आदिकूर्मावतार | (करण) |
| आन्दोलित | (बाहु) |
| आभुग्न | (वक्ष) |
| आयत | (अधर) |
| आयत | (स्त्री० स्था०) |
| आलात | (आ० मं०) |
| आलीढ | (प्र० स्था०) |
| आलीढ | (च० अं०) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| आलोकित | (मु० द०) | उत्संग | (सं० ह०) |
| आवर्त | (करण) | उत्सन्दिता | (भू० चा०) |
| आवर्त | (भू० मं०) | उत्सारित | (बाहु) |
| आवर्तिता | (जंघा) | उदर | (उदर) |
| आविद्ध | (बाहु) | उद्घट्टित | (पाद) |
| आविद्धवक्र | (नृ० ह०) | उद्घट्टित | (करण) |
| आविद्धवर्तना | (वर्तना) | उद्घट्टित | (त्र्य० अं०) |
| आविद्धा | (आ० च०) | उद्वर्तित | (उरु) |
| आवेष्टित | (ह० क०) | उद्वाहि | (मुख) |
| आसीन | (मा० ला०) | उद्वाहित | (वक्ष) |
| आस्कन्दित | (भू० मं०) | उद्वाहित | (सु० स्था०) |
| आह्वान | (क० क०) | उद्वाहिता | (कटि) |
| इ | | उद्वाहिता | (जंघा) |
| इन्द्रियाभिनय | (इन्द्रिय) | उद्वृत्त | (नृं० ह०) |
| इष्ट | (भा० भा०) | उद्वृत्त | (अधर) |
| उ | | उद्वृत्त | (करण) |
| उक्तप्रत्युक्त | (मा० ला०) | उद्वृत्त | (त्र्य० अं०) |
| उच्छ्वास | (अनिल) | उद्वृत्ता | (आ० चा०) |
| उत्कट | (उ० स्था०) | उद्वृताग्र | (पा० त०) |
| उत्कुञ्चिता | (दे० भू०) | उद्वेष्टन | (दे० आ०) |
| उत्कृष्टि | (क० क०) | उद्वेष्टित | (बाहु) |
| उत्क्षिप्ता | (भ्रू) | उद्वेष्टित | (क० क०) |
| उत्क्षिप्ता | (पार्ष्णि) | उन्नत | (पार्श्व) |
| उत्क्षिप्ता | (च० गु०) | उन्नत | (जानु) |
| उत्क्षेप | (दे० आ०) | उन्नता | (ग्रीवा) |
| उत्तमोत्तम | (मा० ला०) | उन्नता | (रसना) |
| उत्तान | (ह० पु०) | उन्मत्त | (करण) |
| उत्तानवञ्चित | (नृ० ह०) | उन्मेषित | (पलक) |
| उत्प्लुतिकरण | (उ० क०) | उपविष्ट स्थानक | (भ० म०) |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

| शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|
| उपार | (दे० ला०) |
| उर | (हृ० क्षे०) |
| उरः पार्श्वार्धमण्डल | (नृ० हृ०) |
| उरभ्रसम्वाध | (चालन) |
| उरःस्थ वर्तना | (वर्तना) |
| उरुद्वय | (हृ० क्षे०) |
| उरुद्वृत्ता | (भू० चा०) |
| उरोंकण | (दे० ला०) |
| उरोमण्डल | (नृ० हृ०) |
| उरोमण्डल | (करण) |
| उल्लाल | (दे० आ०) |
| उल्लास | (दे० ला०) |
| उल्लासित | (अनिल) |
| उल्लोकित | (मु० द०) |
| उल्वण | (नृ० हृ०) |
| उरुताडित | (दे० भू०) |
| उरुवेणी | (दे० भू०) |
| **ऊ** | |
| ऊरुद्वृत्त | (करण) |
| ऊर्णनाभ | (अ० हृ०) |
| ऊर्ध्व | (हृ० क्षे०) |
| ऊर्ध्वग | (हृ० प्र०) |
| ऊर्ध्वजानु | (आ० चा०) |
| ऊर्ध्वजानु | (करण) |
| ऊर्ध्वमण्डल | (नृ० हृ०) |
| ऊर्ध्वमुख | (हृ० प्र०) |
| ऊर्ध्ववर्तना | (वर्तना) |
| ऊर्ध्वस्थ | (बाहु) |
| ऊर्ध्वालिग | (उ० क०) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|
| **ऋ** | |
| ऋज्वी | (रसना) |
| **ए** | |
| एकजानुनत | (दे० स्था०) |
| एकपदकुट्टिता | (मु० चा०) |
| एकपाद | (दे० स्था०) |
| एकपादलोहडी | (उ० क०) |
| एकपादाञ्चित | (उ० क०) |
| एकपार्श्वगत | (दे० स्था०) |
| एकलाक्रीडित | (भू० मं०) |
| एणप्लुत | (उ० क०) |
| एलकाक्रीडित | (भू० चा०) |
| एलकाक्रीडित | (भू० चा०) |
| **क** | |
| कक्षवर्तनिका | (वर्तना) |
| कटि | (कटि) |
| कटिच्छिन्न | (करण) |
| कटिभ्रान्त | (करण) |
| कटिशीर्ष | (हृ० क्षे०) |
| कटिसम | (करण) |
| कटीरेचक | (रेचक) |
| कण्ठरेचक | (रेचक) |
| कपाल चूर्णन | (उ० क०) |
| कपित्थ | (अ० हृ०) |
| कपित्थ वर्तना | (वर्तना) |
| कपोत | (सं० हृ०) |
| कपोल | (कपोल) |
| कम्पित | (उरु) |
| कम्पित | (अनिल) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| कम्पित | (अधर) | कुञ्चित | (जानु) |
| कम्पित | (कपोल) | कुञ्चित | (पलक) |
| कम्पिता | (जंघा) | कुञ्चित | (कपोल) |
| कम्पिता | (कटि) | कुञ्चित | (करण) |
| करकर्म | (क० क०) | कुञ्चित | (भ्रू) |
| करण | (करण) | कुञ्चिता | (ग्रीवा) |
| कररेचितरत्न | (चालन) | कुञ्चिता | (सं० दृ०) |
| करस्पर्श | (उ० क०) | कुञ्चिता | (च० गु०) |
| कराँगुलि | (क० गु०) | कुट्टन | (द० क०) |
| करिहस्त | (नृ० ह०) | कुण्डलिचारक | (चालन) |
| करिहस्त | (करण) | कुलीरिका | (दे० भू०) |
| करिहस्ता | (दे० भू०) | क्रुद्धा | (स्था० दृ०) |
| करुणा | (र० ह०) | कूर्मालग | (उ० क०) |
| कर्कट | (सं० ह०) | कूर्मासन | (दे० स्था०) |
| कर्णयुग्मप्रकीर्ण | (चालन) | केशबन्ध | (नृ० ह०) |
| कर्तरीमुख | (अ० ह०) | केशबन्धवर्तना | (वर्तना) |
| कर्तरीमुख वर्तना | (वर्तना) | कोमलिका | (दे० ला०) |
| कर्तरी लोहडी | (उ० क०) | क्रमपादनिकुट्टिका | (पु० चा०) |
| कर्तर्याञ्चित | (उ० क०) | क्रान्त | (उ० स्था०) |
| कर्लाबकविनोद | (चालन) | क्रान्त | (करण) |
| काङ्गूल | (अ० ह०) | क्रान्त | (आ० मं०) |
| कातरा | (दे० भू०) | क्रोध | (भा० भा०) |
| कान्त | (आ० मं०) | क्लिष्ठांगुष्ठ | (गुल्फ) |
| कान्ता | (र० ह०) | क्षाम | (उदर) |
| किन्तु | (दे० ला०) | क्षाम | (पृष्ठ) |
| कुञ्चन्मध्य | (पा० त०) | क्षाम | (कपोल) |
| कुञ्चन्मूला | (क० म०) | क्षिप्ता | (जंघा) |
| कुञ्चित | (पाद) | क्षेत्राञ्चित | (उ० क०) |
| कुञ्चित | (बाहु) | क्षेप | (क० क०) |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| ख | | घ | |
| खटकामुख | (अ० ह०) | घट्टित | (पाद) |
| खटकामुखवर्तना | (वर्तना) | घट्टितोत्सेध | (पाद) |
| खटकावर्धन | (हं० ह०) | घातवर्तना | (वर्तना) |
| खड्गवर्तना | (वर्तना) | घूर्णित | (करण) |
| खड्गकलास | (ख० क०) | च | |
| खण्डन | (द० क०) | चक्रकुट्टनिका | (मु० चा०) |
| खण्डसूचि | (दे० स्था०) | चक्रमण्डल | (करण) |
| खल्ल | (उदर) | चतुर | (अ० ह०) |
| खल्ल | (पृष्ठ) | चतुर | (करण) |
| खुत्ता | (दे० भू०) | चतुरस्र | (दे० स्था०) |
| ग | | चतुरस्र | (नृ० ह०) |
| गंगावतरण | (करण) | चतुरस्र अंगहार | (च० अं०) |
| गजक्रीडितक | (करण) | चतुरस्राख्यवर्तना | (वर्तना) |
| गजदन्त | (सं० ह०) | चतुरा | (भ्रू) |
| गण्डसूचि | (करण) | चतुर्थ | (ख० क०) |
| गतागत | (स्त्री० स्था०) | चतुर्थ | (वि० क०) |
| गतिमण्डल | (अ० अं०) | चतुर्थ | (ब० क०) |
| गन्धाभिनय | (ह० भि०) | चतुर्थ | (प्ल० क०) |
| गरुडपक्षक | (नृ० ह०) | चतुर्मुखलोहडी | (उ० क०) |
| गरुडप्लुत | (करण) | चतुष्कोणनिकुट्टिता | (मु० चा०) |
| गात्रवर्तना | (वर्तना) | चतुष्पत्राब्ज | (चालन) |
| गारुड | (दे० स्था०) | चरणांगुलि | (च० गु०) |
| गीतवाद्यता | (दे० ला०) | चल | (म० बं०) |
| गुल्फ | (गुल्फ) | चल | (अनिल) |
| गृध्रावलीनक | (करण) | चलन | (ता० क०) |
| ग्रहण | (द० क०) | चलसंहत | (चिबुक) |
| ग्रीवा | (ग्रीवा) | चलित | (चिबुक) |
| ग्लाना | (सं० दृ०) | चालका | (ह० सं०) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| चालि | (दे० ला०) | ढिलाई | (दे० ला०) |
| चालिवट | (दे० ला०) | त | |
| चाषगत | (भू० मं०) | तर्जन | (क० क०) |
| चाषगति | (भू० चा०) | तलदर्शिनी | (दे० भू०) |
| चित्रपद | (मा० ला०) | तलपुष्पपुट | (करण) |
| चिबुक | (चिबुक) | तलमुख | (नृ० ह०) |
| चुक्कित | (द० क०) | तलमुखवर्तना | (वर्तना) |
| छ | | तलविलासित | (करण) |
| छिन्न | (द० क०) | तलसंघटित | (करण) |
| छिन्न | (करण) | तलसंस्फोटित | (करण) |
| छिन्ना | (कटि) | तलोद्वृत्ता | (दे० भू०) |
| छेद | (क० क०) | तार्क्ष्यपक्षविनोद | (चालन) |
| छेवा | (दे० ला०) | ताडन | (क० क०) |
| ज | | ताम्रचूड | (अ० हृ०) |
| जंघा | (जंघा) | ताराकर्म | (ता० क०) |
| जंघालंघनिका | (दे० आ०) | तिरश्चीना | (जंघा) |
| जंघावर्ता | (दे० आ०) | तिर्यक् | (बाहु) |
| जनित | (करण) | तिर्यक्करण | (उ० क०) |
| जनिता | (भू० चा०) | तिर्यक्कुञ्चिता | (दे० भू०) |
| जलशयन | (उ० क०) | तिर्यक्ताण्डव | (चालन) |
| जानु | (जानु) | तिर्यक्स्वस्तिक | (उ० क०) |
| जानुगत | (उ० स्था०) | तिर्यगाञ्चित | (उ० क०) |
| जिह्वा | (सं० दृ०) | तिर्यग्यातस्वस्तिकाग्र | (चालन) |
| जुगुप्सिता | (स्था० दृ०) | तिर्यङ्मुखा | (दे० भू०) |
| ड | | तिरश्चीन | (पा० त०) |
| डमरी | (दे० आ०) | तिरश्चीनकुट्टिता | (मु० चा०) |
| डमरुकुट्टिता | (मु० च०) | तूक | (दे० ला०) |
| ढ | | तृतीय | (वि० क०) |
| ढाल | (दे० ला०) | तृतीय | (ख० क०) |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका


| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| तृतीय | (ब० क०) | दण्डवर्तना | (वर्तना) |
| तृतीय | (प्ल० क०) | दन्तकर्म | (द० क०) |
| तृतीय | (हं० क०) | दर्पशरण | (उ० क०) |
| तोरणचालक | (चालन) | दष्ट | (द० क०) |
| तोलन | (क० क०) | दिक्स्वस्तिक | (करण) |
| त्र्यस्र अंगहार | (अं० हा०) | दिग्वर्षाभिधचालन | (चालन) |
| त्र्यस्रा | (ग्रीवा) | दीना | (स्था० दृ०) |
| त्रस्ता | (सं० दृ०) | दुःख | (भा० भा०) |
| त्रिकलि | (दे० ला०) | दृप्ता | (स्था० दृ०) |
| त्रिकोणचारी | (मु० चा०) | देवोपहारक | (चालन) |
| त्रिकोणस्वस्तिक | (चालन) | देशी आकाशचारी | (दे० आ०) |
| त्रिकूट | (मा० ला०) | देशीकर | (दे० ला०) |
| त्रिपताक | (अ० ह०) | देशी भौमचारी | (दे० भौ०) |
| त्रिपातकवर्तना | (वर्तना) | देशी लास्याँग | (दे० ला०) |
| त्रिभंगीवर्णसार | (चालन) | देशी स्थानक | (दे० स्था०) |
| त्रोटित | (पाद) | दोल | (सं० ह०) |
| थ | | दोल | (चालन) |
| थरहर | (दे० ला०) | दोलापाद | (करण) |
| थासक | (दे० ला०) | दोलापादा | (आ० चा०) |
| द | | द्विगूढ़ | (मा० ला०) |
| दण्डपक्ष | (नृ० ह०) | द्वितीय | (हं० क०) |
| दण्डपक्ष | (करण) | द्वितीय | (प्ल० क०) |
| दण्डपाद | (आ० सं०) | द्वितीय | (ख० क०) |
| दण्डपाद | (करण) | द्वितीय | (वि० क०) |
| दण्डपाद | (आ० मं०) | द्वितीय | (ब० क०) |
| दण्डपादा | (दे० आ०) | ध | |
| दण्डपादा | (आ० चा०) | धनुराकर्षण | (चालन) |
| दण्डपादाञ्चित | (उ० क०) | धनुर्पल्लविनाक | (चालन) |
| दण्डरेचित | (करण) | धूनन | (क० क०) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| न | | निर्भुग्न | (वक्ष) |
| नत | (पार्श्व) | निर्वर्तित | (उरु) |
| नत | (जानु) | निवृत्ता | (ग्रीवा) |
| नत | (सु० स्था०) | निवेश | (करण) |
| नत पृष्टक | (उ० क०) | निशुम्भित | (करण) |
| नता | (ग्रीवा) | निःश्वास | (अनिल) |
| नता | (जंघा) | निषध | (सं० ह०) |
| नता | (नासा) | निष्कर्षण | (द० क०) |
| नन्द्यावर्त | (दे० स्था०) | निष्क्राम | (ता० क०) |
| नमनिका | (दे० ला०) | निःसृता | (जंघा) |
| नम्र | (बाहु) | नीकी | (दे० ला०) |
| नलिनी पद्मकोश | (नृ० ह०) | निराश्रित | (चालन) |
| नवरत्नमुख | (चालन) | नूपुर | (करण) |
| नागबन्ध | (दे० स्था०) | नूपुरपादिका | (अ० च०) |
| नागबन्ध | (उ० क०) | नूपुरविद्धिका | (दे० भू०) |
| नागापसर्पित | (करण) | नृत्त हस्त | (नृ० ह०) |
| नाभि | (ह० क्षे०) | प | |
| नासा | (नासा) | पंचम | (वि० क०) |
| निकुट्टक | (दे० भू०) | पक्ष प्रद्योतक | (नृ० ह०) |
| निकुट्टक | (करण) | पताकवर्तना | (वर्तना) |
| निकुञ्च | (म० ब०) | पतिता | (भ्रू) |
| निकुञ्चित | (करण) | पतिता | (पार्ष्णि) |
| निग्रह | (क० क०) | पतिता | (क० गु०) |
| निजापन | (दे० ला०) | पतिताग्र | (पा० त०) |
| नितम्ब | (नृ० ह०) | पतितोत्थिता | (पार्ष्णि) |
| नितम्ब | (करण) | पदद्वयनिकुट्टा | (मु० चा०) |
| नितम्ब वर्तना | (वर्तना) | पद्मकोश | (अ० ह०) |
| निमेषित | (पलक) | पद्मवर्तना | (वर्तना) |
| निरस्त | (अनिल) | पराङ्मुख | (ह० प्र०) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
| --- | --- | --- | --- |
| परावृत्त | (दे० स्था०) | पार्श्वक्रान्त | (आ० चा०) |
| परावृत्त | (त्र्य० अं०) | पार्श्वक्षेपनिकुट्टिता | (मु० चा०) |
| परावृत्ततला | (दे० भू०) | पार्श्वग | (पाद) |
| परावृत्ता | (जंघा) | पार्श्वगत | (ह० प्र०) |
| परिग्रह | (क० क०) | पार्श्वच्छेद | (च० अं०) |
| परिच्छिन्न | (च० अ०) | पार्श्वजानु | (करण) |
| परिवर्तित | (क० क०) | पार्श्वद्वय | (ह० क्षे०) |
| परिवर्तिता | (जंघा) | पार्श्वद्वयचारी | (मु० चा०) |
| परिवृत्त | (करण) | पार्श्वतल | (ह० प्र०) |
| परिवृत्तरेचित | (त्र्य० अं०) | पार्श्वनिकुट्टक | (करण) |
| पर्यस्तक | (च० अं०) | पार्श्वमण्डल | (नृ० ह०) |
| पर्यायगजदन्तक | (चालन) | पार्श्वमुख | (ह० प्र०) |
| पल्लव | (नृ० ह०) | पार्श्वस्वस्तिक | (च० अं०) |
| पल्लववर्तना | (वर्तना) | पिष्टकुट्टक | (भू० मं०) |
| पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता | (मु० चा०) | पिष्टनिकुट्ट | (भू० मं०) |
| पश्चात्पुरःसरा | (मु० चा०) | पिहित | (पलक) |
| पाणिरेचक | (पा० रे०) | पुट | (पुट) |
| पात | (ता० क०) | पुरः | (ह० क्षे०) |
| पाद | (पाद) | पुरःक्षेपनिकुट्टिता | (मु० चा०) |
| पादतल | (पा० त०) | पुरःक्षेपा | (दे० आ०) |
| पादरेचक | (पा० रे०) | पुरः पश्चात्सरा | (मु० चा०) |
| पादस्थितिनिकुट्टिता | (मु० चा०) | पुरस्तलुठिता | (मु० चा०) |
| पादापविद्धक | (करण) | पुराटिका | (दे० भू०) |
| पार्ष्णिग | (पाद) | पुरुषस्थानक | (पु० स्था०) |
| पार्ष्णिपार्श्वग | (दे० स्था०) | पुरोदण्डभ्रमाख्य | (चालन) |
| पार्ष्णिरेचिता | (दे० भू०) | पुष्पपुटवर्तना | (वर्तना) |
| पार्ष्णिविद्ध | (दे० स्था०) | पुष्पमण्डिका | (मा० ला०) |
| पार्श्व | (पश्र्व) | पुष्पमुख | (सं० ह०) |
| पार्श्वक्रान्त | (करण) | पूर्ण | (उदर) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| पूर्ण | (पृष्ठ) | प्रसृत | (पलक) |
| पूर्ण | (कपोल) | प्रसृत | (अनिल) |
| पृष्ठ | (पृष्ठ) | प्रसृता | (क० गु०) |
| पृष्ठलुठित | (मु० चा०) | प्रावृत | (दे० आ०) |
| पृष्ठस्वस्तिक | (करण) | प्रेङ्खोलित | (करण) |
| पृष्ठानुसारी | (बाहु) | प्रोन्नत | (स्त्री० स्था०) |
| पृष्ठोत्क्षेप | (दे० आ०) | प्लवकलास | (प्ल० क०) |
| पृष्ठोत्तानतल | (दे० स्था०) | फ | |
| प्रकम्पित | (वक्ष) | फुल्ल | (कपोल) |
| प्रच्छेदक | (मा० ला०) | ब | |
| प्रतिवर्तना | (वर्तना) | बककलास | (ब० क०) |
| प्राकृत | (ता० क०) | बद्धा | (भू० चा०) |
| प्रत्यंकभूषण | (प्र० भू०) | बलित वर्तना | (वर्तना) |
| प्रत्यालीढ़ | (प्र० स्था०) | बलिबन्धाञ्चित | (उरु क०) |
| प्रथम | (वि० क०) | बहिर्गत | (गुल्फ) |
| प्रथम | (ख० क०) | बहिर्गता | (जंघा) |
| प्रथम | (ब० क०) | बाहु | (बाहु) |
| प्रथम | (प्ल० क०) | बाहुबन्धलोहडी | (उ० क०) |
| प्रथम | (हं० क०) | ब्राह्मण | (दे० स्था०) |
| प्रतिलोमानुलोमका | (मु० चा०) | भ | |
| प्रविलोकित | (मु० द०) | भय | (भ० भा०) |
| प्रवृद्ध | (अनिल) | भयानका | (र० दृ०) |
| प्रवेशन | (ता० क०) | भयान्विता | (स्था० दृ०) |
| प्रसन्न | (मु० रा०) | भाल वर्तना | (वर्तना) |
| प्रसारित | (पार्श्व) | भाव | (दे० ला०) |
| प्रसारित | (बाहु) | भावाभिनय | (भा० न०) |
| प्रसारित | (सु० स्था०) | भग्न | (मुख) |
| प्रसारिता | (च० गु०) | भुजंगत्रासित | (करण) |
| प्रसर्पित | (करण) | भुजंगत्रासिता | (आ० चा०) |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| भुजंगत्रस्तरेचित | (करण) | मत्तल्लि | (करण) |
| भुजंगाञ्चित | (करण) | मत्तल्ली | (भू० चा०) |
| भूमिलग्न | (पा० त०) | मत्तस्खलित | (व्य० अं०) |
| भेद | (ता० क०) | मत्स्यकरण | (उ० क०) |
| भैरवाञ्चित | (उ० क०) | मदविलासित | (च० अं०) |
| भौमचारी | (भू० चा०) | मदस्खलितक | (करण) |
| भौममण्डल | (भू० मं०) | मदालस | (उ० स्था०) |
| भ्रमण | (ता० क०) | मदालसा | (दे० भू०) |
| भ्रमर | (अ० ह०) | मदिरा | (सं० दृ०) |
| भ्रमर | (भू० मं०) | मध्य | (भा० भि०) |
| भ्रमर | (करण) | मध्यचक्रा | (मु० चा०) |
| भ्रमर | (च० अं०) | मध्यलुठिता | (मु० चा०) |
| भ्रमित | (म० ब०) | मध्यस्थापनकुट्टा | (मु० चा०) |
| भ्रान्त | (अनिल) | मन | (दे० ला०) |
| भ्रान्तपादाञ्चित | (उ० क०) | मन्दा | (नासा) |
| भ्रामरी | (आ० चा०) | मयूरललित | (करण) |
| भ्रुकुटी | (भ्रू) | मराला | (दे० भू०) |
| म | | मरुदान्दोलित | (अनिल) |
| मकर | (सं० ह०) | मर्दित | (पाद) |
| मकर वर्तना | (वर्तना) | मलिन | (सं० दृ०) |
| मणिबन्ध | (म० बं०) | मसृणता | (दे० ला०) |
| मणिबन्धगतागत | (चालन) | मार्गलास्य | (मा० ला०) |
| मणिबन्धासिकर्षाख्य | (चालन) | मिथोंसवीक्षावाह्य | (चालन) |
| मण्डल | (प्र० स्था०) | मिथोयुक्त | (गुल्फ) |
| मण्डलगति | (बाहु) | मिथोयुक्ता | (पार्ष्णी) |
| मण्डलस्वस्तिक | (करण) | मुकुल | (अ० ह०) |
| मण्डलाग्र | (चालन) | मुकुला | (सं० दृ०) |
| मण्डलाभरण | (चालन) | मुक्तजानु | (उ० स्था०) |
| मत्तक्रीड | (च० अं०) | मुख | (मुख) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| मुखदर्शन | (मु० द०) | रेचित वर्तना | (वर्तना) |
| मुखरस | (दे० ला०) | रेचिता | (भ्रू) |
| मुखराग | (मु० रा०) | रेचिता | (कटि) |
| मुडुपचारी | (मु० चा०) | रेचिता | (ग्रीवा) |
| मुरजकर्तरी | (चालन) | रेचितनिकुट्टक | (करण) |
| मुरजाडम्बर | (चालन) | रौद्री | (र० दृ०) |
| मुष्टि | (अ० ह०) | ल | |
| मुष्टिक स्वस्तिक | (नृ० ह०) | लंकादाहाञ्चित | (उ० क०) |
| मुष्टिवर्तना | (मु० व०) | लंघित | (दे० ला०) |
| मृगकलास | (मृ० क०) | लंघितजंघा | (दे० भू०) |
| मृगप्लुता | (आ० चा०) | लज्जिता | (सं० दृ०) |
| मोक्षण | (क० क०) | लताकर | (नृ० ह०) |
| मोटन | (क० क०) | लताक्षेप | (दे० भू०) |
| मोटित | (स्त्री० स्था०) | लतावृश्चिक | (करण) |
| मौलिरेचितक | (चालन) | लतावेष्टित | (चाल ) |
| र | | लय | (दे० ला०) |
| रक्त | (मु० रा०) | ललाट | (ह० क्षे०) |
| रक्षण | (क० क०) | ललाटतिलक | (करण) |
| रथचक्रा | (दे० भू०) | ललित | (नृ० ह०) |
| रथनेमिसम | (चालन) | ललित | (करण) |
| रस दृष्टि | (र० दृ०) | ललित | (आ० मं०) |
| रसना | (रसना) | ललितवर्तना | (वर्तना) |
| रसाभिनय | (इं० भि०) | ललितसंचर | (आ० मं०) |
| रिक्तपूर्ण | (पृष्ठ) | ललिता | (सं० दृ०) |
| रिक्तपूर्ण | (उदर) | लहरीचक्रसुन्दर | (चालन) |
| रूपाभिनय | (इं० भि०) | लीन | (करण) |
| रेचित | (नृ० ह०) | लेढि | (दे० ला०) |
| रेचित | (अधर) | लोहनी | (रसना) |
| रेचित | (अ० अं०) | लोल | (चिबुक) |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

| *शब्द* | *संक्षिप्त संकेत* | *शब्द* | *संक्षिप्त संकेत* |
|---|---|---|---|
| लोला | (रसना) | विकूणिता | (नासा) |
| लोलित | (करण) | विकृष्टि | (क० क०) |
| लोहडी | (उ० क०) | विकृष्टा | (नासा) |
| लोहड्याञ्चित | (उ० क०) | विकोशा | (सं० दृ०) |
| व | | विक्षिप्त | (करण) |
| वक्र | (चिबुक) | विक्षिप्ताक्षिप्तक | (करण) |
| वक्रकुट्टिता | (मु० चा०) | विक्षेपा | (दे० आ०) |
| वक्रा | (क० गु०) | विचित्र | (आ० मं०) |
| वक्रा | (रसना) | विचित्रलोहडी | (उ० क०) |
| वक्ष | (वक्ष) | विच्यवा | (भू० चा०) |
| वक्षः स्वस्तिक | (करण) | वितड | (दे० ला०) |
| वर्तनाभरण | (चालन) | वितर्किता | (सं० दृ०) |
| वर्तनास्वस्तिक | (चालन) | वितालित | (पलक) |
| वर्तित | (करण) | विद्युत्कलास | (वि० क०) |
| वर्धमान | (सं० ह०) | विद्युद्भ्रान्तक्रिय | (करण) |
| वर्धमान | (दे० स्था०) | विद्युद्भ्रान्ता | (चा० लं०) |
| वलन | (ता० क०) | विद्युद्भ्रान्ता | (आ० चा०) |
| वलित | (नृ० ह०) | विद्युद्भ्रान्ता | (दे० आ०) |
| वलित | (उरु) | विद्धा | (दे० आ०) |
| वलित | (स्त्री० स्था०) | विधुत | (मुख) |
| वलितोरु | (करण) | विनिगूहित | (अधर) |
| वल्लित | (करण) | विनिर्वर्तित | (स्त्री० स्था०) |
| वलिता | (ग्रीवा) | विनिवृत्त | (करण) |
| वलिता | (क० गु०) | विनिवृत्त | (मुख) |
| वहिर्गता | (पार्ष्णि) | विप्रकीर्ण | (नृ० ह०) |
| वामदक्षतिरश्चीन | (चालन) | विप्रकीर्णवर्तना | (वर्तना) |
| वामविद्ध | (आ० मं०) | विप्लुता | (सं० दृ०) |
| वालव्यसनचालन | (चालन) | विभ्रान्ता | (सं० दृ०) |
| विकासी | (अधर) | विमुक्त | (अनिल) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| विमुक्तक | (उ० स्था०) | विसर्जन | (क० क०) |
| वियुक्त | (गुल्फ) | विसृष्ट | (अधर) |
| वियुक्ता | (पार्ष्णि) | विस्मित | (अनिल) |
| वियुक्ता | (क० गु०) | विस्मिता | (स्था० दृ०) |
| विरुडितबन्धन | (चालन) | विहसी | (दे० ला०) |
| विलीन | (अनिल) | विहृत | (आ० मं०) |
| विलोकित | (मु० द०) | वीभत्सा | (र० दृ०) |
| विवर्तन | (ता० क०) | वीरा | (र० दृ०) |
| विवर्तन | (दे० ला०) | वृश्चिक | (करण) |
| विवर्तित | (पार्श्व) | वृश्चिककुट्टित | (करण) |
| विवर्तित | (पलक) | वृश्चिकरेचित | (करण) |
| विवर्तित | (अधर) | वृश्चिकापसृत | (व्य० अं०) |
| विवर्तित | (सु० स्था०) | वृषभक्रीडित | (करण) |
| विवर्तित | (करण) | वृषभासन | (दे० स्था०) |
| विवृत | (मुख) | वेष्टन | (दे० आ०) |
| विवृत | (जानु) | वेपथुव्यञ्जक | (चालन) |
| विवृत | (करण) | वैभाविक | (मा० ला०) |
| विवृत्ता | (कटि) | वैशाखरेचित | (करण) |
| विषण्णा | (सं० दृ०) | वैशाखरेचित | (च० अं०) |
| विषमसूचि | (दे० स्था०) | वैशाखस्थानक | (प्र० स्था०) |
| विष्कम्भ | (उ० स्था०) | वैष्णव | (पु० स्था०) |
| विष्कम्भ | (करण) | वैष्णव | (दे० स्था०) |
| विष्कम्भ | (व्य० अं०) | व्यंसित | (करण) |
| विष्कम्भापसृत | (व्य० अं०) | व्यभिचारिदृष्टि | (व्य० दृ०) |
| विष्णुक्रान्त | (करण) | व्यादीर्ण | (चिबुक) |
| विश्लिष्टवर्तित | (चालन) | व्याभुग्न | (मुख) |
| विश्लिष्टा | (दे० भू०) | व्यावर्तित | (क० क०) |
| विश्लेष | (क० क०) | व्यस्तोप्लुतिनिवर्तक | (चालन) |
| विश्रृंगाटकवन्ध | (चालन) | | |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका


| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| **श** | | सन्दंष्टक | (अधर) |
| शंका | (दे० ला०) | संभ्रान्त | (करण) |
| शंकिता | (सं० दृ०) | संभ्रान्त | (व्य० अं०) |
| शकटास्य | (भू० मं०) | संमत | (करण) |
| शकटास्य | (करण) | संमुख | (ह० पु०) |
| शकटास्या | (भू० चा०) | संमुखागत | (ह० पु०) |
| शब्द | (भा० भा०) | संमुखीन | (चालन) |
| शब्दाभिनय | (इं० भि०) | संलग्ना | (च० गु०) |
| शरसन्धान | (चालन) | संहत | (जानु) |
| शुकतुण्ड | (अ० ह०) | संहत | (चिबुक) |
| शुकतुण्डवर्तना | (वर्तना) | संहत | (दे० स्था०) |
| शून्या | (सं० दृ०) | संहता | (क० गु०) |
| शिखर | (अ० ह०) | सम | (वक्ष) |
| शिखरवर्तना | (वर्तना) | सम | (पाद) |
| शिर | (ह० क्षे०) | सम | (जानु) |
| शीर्ष | (ह० क्षे०) | सम | (म० बं०) |
| शेषपद | (मा० ला०) | सम | (पलक) |
| शैव | (दे० स्था०) | सम | (मु० द०) |
| श्याम | (मु० रा०) | सम | (अनिल) |
| श्रवण | (ह० क्षे०) | सम | (द० क०) |
| श्रान्ता | (सं० दृ०) | सम | (कपाल) |
| श्लेष | (क० क०) | सम | (सु० स्था०) |
| श्वसित | (चिबुक) | समकर्तरिलोहडी | (उ० क०) |
| **ष** | | समकर्त्तचत | (उ० क०) |
| षष्ठ | (वि० क०) | समनख | (करण) |
| **स** | | समपाद | (पु० स्था०) |
| संघट्टिता | (दे० भू०) | समपाद | (दे० स्था०) |
| संचारिता | (दे० भू०) | समपादा | (भू० चा०) |
| सन्दंश | (अ० ह०) | समपादाञ्चित | (उ० क०) |

| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| समपादनिकुट्टित | (मु० चा०) | सूचीविद्ध | (आ० मं०) |
| समप्रकोष्ठचलन | (चालन) | सूच्यन्तर | (उ० क०) |
| समसूचि | (दे० स्था०) | सूच्यास्य | (नृ० ह०) |
| समस्खलितिका | (दे० भू०) | सूत्कृत | (अनिल) |
| समा | (ग्रीवा) | सैन्धव | (मा० ला०) |
| समुद्गक | (अधर) | सोच्छ्वासा | (नासा) |
| समुद्वृत्त | (ता० क०) | सौष्ठव | (दे० ला०) |
| समोत्सारित | (भू० मं०) | स्कन्ध | (ह० क्षे०) |
| समोत्सारितमत्तल्ली | (भू० चा०) | स्कन्धभ्रान्त | (उ० क०) |
| सरल | (बाहु) | स्कन्धाञ्चित | (उ० क०) |
| सर्पित | (करण) | स्खलित | (अनिल) |
| सहजा | (भ्रू) | स्खलित | (करण) |
| साचि | (मु० द०) | स्तब्ध | (उरु) |
| साधारण | (चालन) | स्तम्भक्रीडनिक | (दे० भू०) |
| सारिका | (दे० भू०) | स्तम्भित | (अनिल) |
| सिंहार्कषित | (करण) | स्त्रीस्थानक | (स्त्री० स्था०) |
| सिंहविक्रीडित | (करण) | स्थापना | (दे० ला०) |
| सीत्कृत | (अनिल) | स्थायिदृष्टि | (स्था० दृ०) |
| सुकलास | (दे० ला०) | स्थितपाठ्य | (मा० ला०) |
| सुप्तस्थानक | (सु० स्था०) | स्थितावर्ता | (भू० चा०) |
| सृक्कागुना | (रसना) | स्थिरहस्त | (च० अं०) |
| सूचि | (करण) | स्निग्धा | (स्था० दृ०) |
| सूची | (पाद) | स्पन्दिता | (भू० चा०) |
| सूची | (आ० चा०) | स्पर्शाभिनय | (हं० भि०) |
| सूची | (दे० आ०) | स्फुरिका | (दे० भू०) |
| सूचीमुख | (अ० ह०) | स्फुरित | (पलक) |
| सूचीमुखवर्तना | (वर्तना) | स्फुरित | (चिबुक) |
| सूचीबिद्ध | (करण) | स्फुरिता | (दे० भू०) |
| सूचीविद्ध | (च० अं०) | स्फोटन | (क० क०) |

## पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका


| शब्द | संक्षिप्त संकेत | शब्द | संक्षिप्त संकेत |
|---|---|---|---|
| स्रुवा | (दे० ला०) | स्वाभाविक | (मु० रा०) |
| स्वसंमुखतल | (ह० प्र०) | स्वाभाविकी | (नासा) |
| स्वस्तिक | (सं० ह०) | **ह** | |
| स्वस्तिक | (नृ० ह०) | हंसास्य | (अ० ह०) |
| स्वस्तिक | (बाहु) | हरिणत्रासिता | (दे० भू०) |
| स्वस्तिक | (दे० स्था०) | हरिणप्लुत | (करण) |
| स्वस्तिक | (करण) | हरिणप्लुता | (दे० आ०) |
| स्वस्तिकरेचित | (करण) | हर्ष | (भा० भा०) |
| स्वस्तिकरेचित | (त्र्य० अं०) | हस्तकरण | (ह० क०) |
| स्वस्तिकवर्तना | (वर्तना) | हस्तक्षेत्र | (ह० क्षे०) |
| स्वस्तिका | (दे० भू०) | हस्तप्रचार | (ह० प्र०) |
| स्वस्तिकाश्लेष | (चालन) | हारदामविलासक | (चालन) |
| स्वस्थ | (अनिल) | हास्या | (र० दृ०) |
| स्वस्थ | (उ० स्था०) | हृष्टा | (स्था० दृ०) |
| स्वस्थालसा | (उ० स्था०) | | |